"मंगलाचरण"

श्री श्री सदगुरू परमजगदगुरू आत्मोपम विश्वम्मर के।
सर्व शिरोमणि परमधाम के, पुनि पुनि चरण कमल बंदे।।
कोटि कोटि परनाम तुम्हें हे, श्वेत वस्त्र धारी आकार।
चूड़ा मांणी तुम ब्रह्म सृष्टि के, पद रज बंदन बारम्बार।।
अरब खरब कर नमन चरण गुरू पद, रज तिलक लगाकर आज।
अल्प बुद्धि अल्पग्य अल्प चित, चला लेखनी ले महाराज।।
बुद्धि नहीं जो करूँ व्यक्त कुछ, पर लिखता ले तेरा ओट।
है अनधिकृत चेष्टा मेरी, हूँ मैं क्यों कि खोट की पोट।।
भला अधूरा तुम पूरों का, कैसे लिख्खे स्वर्ण चरित्र।
जिनके स्वप्न तलक में आते, नहीं कभी तुमसों के चित्र।।
जो कुछ दिया आपने सदगुरू, मुझ को एक धरोहर मात्र।
है यह कृपा आपकी हम पर, मैं इस योग्य कहाँ था पात्र।।
धरा आपने जो कुछ मेरे, पापा कुंड पिंड के बीच।
उसे लिखूंगा जयों की त्यों मैं, क़सम आपकी आँखें मींच।।
भाव भेद होने नहिं दूंगा, शब्द हमारे हों केवल।
चौपाई सब व्यक्त करूंगा, उसी भाँति से हे देयल।।
कृपा करी जो इतनी अब तक, और कृपा इक करदो नाँथ।
लिखने की सार्मथ और दो, वर दो प्रभो बढ़ा कर हाथ।।
आप सम्भाले रखना प्रीतम, चित्र खेंच पाऊँ जिससे।
मेरे तो हो सिर्फ़ आप ही, और भला मांगू किससे।।
आतम पुष्प सिर्फ़ इक हम पै, और न कुछ भी मेरे पास।
वही समर्पित करूँ चरण पर, स्वीकारो पर आतम नांथ।।

आ रहे हैं

ज़माने से कहदो कि थम जाए अब ये।
दो आदाब अदबी कि पी आ रहे हैं।।
हैं सरकरे आला परमधाम आक़ा।
रतन बनके दुनियाँ पै अब छा रहे हैं।।

बहुत दिन बाद आया हूँ, ख़ता इसमें न कुछ मेरी।
तुम्हारा ही भुलाया हूँ।।
बहुत दिन ....

किसी दुख के सताये की, कराहें खींच लाईं हैं।
किसी संतप्त मन की तप्त, आहें खींच लाईं हैं।।
हमें सकुचाई और भीगी, निगाहें खींच लाईं हैं।
पिछानो या न पहचानो, तुम्हारा ही बुलाया हूँ।।
बहुत दिन ....

नज़र क्यों फेरती हो, मुझको लखकर कुछ तो पहचानो।
ये कानफूसी किस कारन है, आपस में ऐ दीवानो।।
कभी मैं था तुम्हारा, तुमतो मेरी अब भी सच जानो।
अरी वामाँगिनी हो तुम हमारी, मैं तुम्हारा अंग दाँया हूँ।।
बहुत दिन ....

तुम्हें कुछ याद है क्या, वायदा करके चली थीं सब।
उछलती थीं बड़ी तब तो, मगर सब चुप्प क्यों हो अब।।
तुम्हें हरगिज़ न भूलें क्या, हमें चकमे दिये थे जब।
तुम्हारे झूँट तूफ़ानों से, बेहद तंग आया हूँ।।
बहुत दिन ....

तुम्हें आने से यहाँ रोका, अजी समझाए क्या थोड़े।
मगर तुमने न इक मानी, तुम्हारे हाथ तक जोड़े।।
कहो इन खेल कूदों ने, तुम्हें किस काम के छोड़े।
तुम्हें तो खेल ही भाये, प्रियाओ मैं न भाया हूँ।।
बहुत दिन ....

थके हम इन्तज़ारी कर, थकी पर तुम न खेलों से।
थके हम याद कर करके, थकीं पर तुम न मेलों से।।
बहुत ही तंग आकर अब, तुम्हारे इन झमेलों से।
तुम्हारे वास्ते बनकर के, मैं ख़ुद खेल आया हूँ।।
बहुत दिन ....

उड़ालो क़हकहे मुझपर, तुम्हारा जितना जी चाहे।
तुम्हारी मौज है पागल बनालो, जितना जी चाहे।।
तुम्हारे घर पै हैं अपमान, करलो जितना जी चाहे।
मगर यह भूलना मत मैं, तुम्हें लेने को आया हूँ।।
बहुत दिन ....

मुझे पहचानों तौ अच्छा, न पहचानो तो तौ अच्छा।
तुम्हारा हूँ तो तौ अच्छा, पराया हूँ तो तौ अच्छा।।
तुम्हें परताप समझाऐगा, दो में कौन है अच्छा।
उधर माया तमाशा है, इधर मैं स्वयं आया हूँ।।
बहुत दिन ....

पुष्पान्जली

भेट सुंदर साथ जी को, जो चुने अब तक सुमन।
साथ के पग पर समर्पित, कर रहे हैं आज हम।।
भेट जितने भी सुमन ये, हैं पिया के बाग के।
देन उनकी को कहूं क्या, ये हमारे भाग थे।।
उनकी फुलवारी में पहुँचे, फूल चुनने को मिले।
शोभा देखी गंध सूंघा, निकले मनके बलबले।।
सुक्ख इन आँखों निहारा, और हक भी साथ साथ।
जी में थी के साथ जाऐं, बात थी पर हक़ के हाथ।।
वो जो भावुकता थी जानें, सब किधर को वह गई।
ज्यों के त्यों ही रह गये सब, हाथ बीतक रह गई।।
है निशानी उनकी दी हुई, ... भेट करता है प्रताप।
आशा है श्रद्धा से स्वीकारेंगे, मिलकर सारे आप।।

प्रस्तावना

जब जब किसी महा आत्मां का होता है प्रार्दुभाव।
तभी तभी उन महापुरूषों के व्यक्त किये जाते हैं भाव।।
लिखे गये जीवन चरित्र जो प्रशंषनीय उतरे जग में।
घटनाऐं उनके जीवन की घटित लिखी जाती उनमें।।
जिन्हें ग्रंथ के नामों से उच्चारण करते संसारी।
महाराज श्री राम रतन जी के हैं हम अति आभारी।।
क्योंकि उन्होने अपबीती देकर हम पै अहसान किया।
साथ साथ हम कौन हैं क्या हैं परिचायक निज ज्ञान दिया।।
उन ही ने खुद निज श्री मुख से अपना फाश किया ये राज़।
परम हंस गादी से हैं हम फूल पूर भइया इलाहाबाद।।
सर्व प्रथम गोपाल दास जी हुवे संस्थापक उसके।
कर रहे हैं आरम्भ हम उन ही की बीतक से।।
क्योंकि मूल हैं परम हंस जी जिससे उदय हुई ये शाख।
परिचायक ब्रह्मण्गनाओं के परमहंस जी है साक्षात्।।

बीतक

"श्री श्री 108 श्री परमहंस गोपाल दास महाराज फूलपुर भईया"

थी जगने को ब्रह्मसृष्टि कुछ, उनपर किरपा करनी थी।
अतः श्री सदगुरू साहिब ने, उन्हें जगाने की सोची।।
पुष्पा वती अंगना अपनी, दर्शन के लिए थी बेचैन।
बन पर्वत आरण्य आदि में, ढूंढ़ रही पी को दिन रैन।।
विरह वेदना में व्याकुल अति, कहाँ मिले शान्ती की कोर।
रैन दिवस जगते सोते में, खोज रही कहाँ मन के चोर।।
सरूवार मधुवनी ग्राम में, वेदमंणी जी के घर पर।
जन्मे श्री गोपाल दास जी, सम्वत् सोलह, सोलह पर।।
थी सुलक्षणा माता उनकी, कोख सपूती की जिनकी।
पिता वेद मणि, कुल को जिनके, पावन किया कीर्ति बख्शी।।
सोलह सौ बत्तिस तक उनमें, कोई विशेषता नहीं हुई।
पुष्पा वती वासना उन पर, बत्तिस में आकर उतरी।।
सोलह वर्ष जीव सृष्टि थी, कटा बालपन साधारण।
जब उतरी उन पर यह आतम, हुवे एक दम असाधारण।।
जाते समय पाठशाला को, घटी बात इक इनके साथ।
देखी श्री गोपाल दास ने, महात्माओं की एक जमात।।
था प्रस्थान अयोध्या जी को, हुवे प्रफुल्लित लख उनको।
लग चरनों उनसे जा पूछा, आप कहाँ मिल जाते हो।।
कहने लगा अग्रणी उनका, पर्व राम नौमी का है।
उत्सव राम जन्म देखेंगे, हम सब की यह इच्छा है।।
प्रश्न महात्माओं ने उल्टा, किया, किधर तुम जाते हो।
हमसे क्यों सब पूछ रहे हो, चाह रहे क्या, हमें कहो।।
बोले सुन गोपाल दास जी, विद्यालय जाता था मैं।
काशी पढने की इच्छा है, किन्तु न मौका, मिला हमें।।
बिन साथी के क्यों कर चलदे, संगी मिले तो संग चल दें।
बोले सब इक साथ महात्माँ, आप हमारे साथ चलें।।
जुद्या जी के, बाद बनारस, दर्शन को हम, जाऐंगे।
चलो साथ ताकारण दोनों, काम ठीक हो जाऐंगे।।
मन वान्चित उत्तर पा करके, चले महात्माओं के साथ।
थे किशोर सोलह वर्षों के, कही न घर, जाने की बात।।

साथ हो लिये, रस्ते ही से, किया न घर का किंचित मोह।
किसका प्रेम सताता उनको, जाग गई थी, अंदर टोह।।
सत्संग मिला, महात्माओं में, अन्दर उदय हुवा बैराग।
गुरू परिवार, बहन भाई से, रहा न तिल भर उनको राग।।
चिन्तन में लग गयी आत्माँ, किसकी विद्या पढ़ते वे।
रहे महात्माओं से मिलके, दशों दिशाओं में घूमें।।
मिले न जब घर, विद्यालय में, माता पिता तड़प उठे।
विद्याधर जी गुरू थे उनके, सुन कर वे भी चोंक पड़े।।
ज्योतिष शास्त्र, उठाकर देखा, कहने लगे, पिताजी से।
चिन्ता करना मत बेटे की, ज्योतिष कहती है हमसे।।
सुत गोपाल, विलक्षण सुत है, चिन्ता मंणि समझो उसको।
किसी रोज चमकेगा जग में, मणि समान, दमकेगा वो।।
चिरंजीव है वह पंड़ित जी, उसके ह्वदय प्रभू उपजे।
अब बैराग, जाग उठ्ठा है, कुछ दिन जग में घूमेंगे।।
है अचिन्त शक्ती अब उन पर, उन पर उतरा, परा प्रकाश।
पुत्र न जानो उनको अपना, करना तुम, हम पर विश्वास।।
कृपा पात्र हैं, श्री राज के, जिस घर ऐसे, सुत प्रगटे।
धन्य समझता हूँ उस घर को, बारम्बार प्रणाम उन्हें।।
चिंन्ता छोड़ो पंड़ित जी अब, पार ब्रह्म का भजन करो।
माता को गोपाल भाई की, जाकर के घर, शान्त करो।।
गुरूजी के सुन, मुख से ऐसा, पिता वेदमंणि घर आये।
अपनी धर्म पत्नि को आकर, वचन गुरू के बतलाये।।
धीर बंधाई, बात सुनाकर, किया महा प्रभु पर निर्भर।
शनः शनः दुख पुत्र बिछोता, होता गया, नित्य कमतर।।
उधर श्री गोपाल दास जी, हुवे तीर्थाटन में व्यस्त।
जितने फिरे, बढी उत्कष्ठा, हुवे खोज में कभी न त्रस्त।।
पर्वत सागर भू खण्ड़ो में, फिरे शान्ति की, करते खोज।
सम्प्रदाय मत, और मतान्तर, मथते फिरे, जगत के रोज।।
सिद्धी हर प्रकार की कर ली, हर प्रकार का पाया ज्ञान।
किन्तु शान्ती मिली न उनको, किया भ्रमंण सर्म्पूण जहान।।
उमर अठारह वर्ष आपकी, सम्वत् सोलह सौ चौंतीस।
दर्शन दिये श्री गंगा ने, आन झुकाया, सन्मुख शीष।।
बोले श्री गोपाल दास जी, आप कौन हैं, देवी जी।
कष्ट किया मुझ तक क्यों तुमने, तो बोली श्री गंगा जी।।
तुमने तीन रोज तक रहकर, मुझमें जो, स्नान किया।

आप महामुनि हो मैं जानी, मुझे पाप से मुक्त किया।।
पुत्र सागर के, भस्म हुवे जब, शाप कपिल का, पाकर के।
उनके तारन हेतु, सगर की, तीन पुश्त ने जाप किये।।
खुश होकर, ब्रह्मा ने मुझसे, पूछा बोलो, हे देवी।
मृत्यु लोक जाना है तुमको, जन भू के है, अभिलाषी।।
मैंने कहा मुझे मत भेजो, नित्य पाप, धोऐंगे लोग।
फिर जाकर के पाप करेंगे, हमें मिले पापों के भोग।।
हरते हरते पाप जगत के, मैं मलीन हो, जाऊगी।
कृपा मुझे न भेजो भू पर, पापों के दुख, पाऊगी।।
ब्रह्मा निकट विष्णु के पहुचे, जा खोला मेरा इन्कार।
विष्णू बोले, मुझे कि जाओ, करो जहाँ तक हो, उद्धार।।
कलयुग तलक, हरो जन के अघ, आवे कलि अट्ठाइसवां।
पांच सहस्त्र, वर्ष के पीछे, परमधाम दल उतरेगा।।
प्रगट होंएगे, महा मुनि जन, जब स्नान, करें तुममें।
पाप संग्रहित, नष्ट होंएगे, मिल गये सो अब आप हमें।।
वचन सत्य पाये, विष्णु के, आज आपने कर स्नान।
मैं निर्मल, पवित्र कर ड़ाली, करी आपकी, यों पहचान।।
हुई अलख गंगा इतना कह, लगे सोचने श्री गोपाल।
शायद मुझमें कोइ शक्ति है, ज्ञात न मुझको उसका हाल।।
और हौसला, बढा जानकर, और बढे पग, आगे को।
मचल मचल कर, भागी आतम, परमातम को पाने को।।
काशी जा, पहुँचे इक दिन वे, ठहरे असी घाट ऊपर।
विद्या पढ़ने का विचार था, बैठे थे कुछ चिन्तातुर।।
वक्त चार का, था प्रातः का, थे अन्दर संकल्प विकल्प।
प्रकट हुई आकर इक देवी, बहुत ही आयू जिनकी अल्प।।
किया दण्डवत् उस देवी ने, कौनः कह उठे श्री गोपाल।
ठहरे वे दो वर्ष वहां पर, शिव पुर में सब कुछ पाया।
श्री गोपाल मह ने अपने, मात पिता को बुलवाया।।
दर्शन उन्हें कराये सब के, भर दिया उनमें पूरण ज्ञान।
माया और पार माया के, पहुंचा दिये कराकर ध्यान।।
पूरे के पितु, पूरे हो गये, लग गए राज भजन में वे।
गये न फिर शिव पुरी छोड़कर, जाकर के क्या, वहां करे।।
मोह टूट गया, पूर्ण ज्ञान से, उठ गए पड़े, हुवे पर्दे।
आंख चमक उट्ठी अंदर की, धुल गये सब उनके गर्दे।।
बीस वर्ष की आयू में ही, भेष ब्रह्मचारी त्यागा।

भेष परमहंसी धारण किया, संषय दुनियाँ का भागा।।
परमहंस हो, विचरें जग में, जहाँ कही करते विश्राम।
दर्शक छा, जाते थे आकर, तब तक रहते, वहीं तमाम।।
रस भीगी अमृत वाणी ही, जहाँ कहीं करते बौछार।
छोड़ छोड़ कर घर द्वारा सब, पीछे हो जाता संसार।।
ऋषी और मह ऋषियों से वे, जब जब भी सत्संग करते।
निज जिज्ञासा रखते पहले, ब्रह्म कहाँ बतलाओ हमें।।
रहता है किस ठौर अचल वह, पार ब्रह्म कहते जिसको।
बड़े आभारी होंगे उसके, पता बतावे जो हमको।।
गोकुल मथुरा और द्वारिका, जगन्नाथ औ बद्रीनाथ।
करते फिरे निवारण शंका, सत्संग किया सभी के साथ।।
किन्तु कहीं भी मिला न वह कंण, पता बतावे जो पी का।
दुनियाँ के परदे सब झांके, पता लगा ना उन ही का।।
जल बिन मछली, क्यों कर रह ले, फिरे घूमते नित बेचैन।
घबराहट को लखकर उनकी, देवी बोल उठी तत्काल।।
सर्व वेद विद्या की अधिपति, सरस्वती में, हूं महाराज।
आप देव सब, अधिपतियों के, चलते सब तुम ही से काज।।
आई हूँ, दर्शन करने मैं, आप किसलियें, चिन्तातुर।
बोले श्री गोपाल सुना जब, विस्मय हुवा उन्हें खुदपर।।
थी इच्छा, विद्या पढ़ने की, सोच रहा था, यह ही मैं।
छोड़ छाड़कर घर दर अपना, यों ही आया, काशी मैं।।
भूले तुम अपने सरूप को, बोली सरस्वती उनसे।
तुम्हें प्रगट है, सारी विद्या, होगा सब, कण्ठस्त तुम्हें।।
हो अब से, गोपाल मंणि भट, करो उजागर सब विद्या।
प्रगटे तुम इस ही कारण वश, हम पर भी उपकार किया।।
दर्शन करने आई थी मैं, सो कृतार्थ हो गई में आज।
कर प्रणाण हो गई अलक्षित, दया द्रष्टि रखना महाराज।।
जैसे जाग्रत हुवे नींद से, हुई अवस्था यह इक दम।
सुध आई, अपने सरूप की, क्या सचमुच, भूले हैं हम।।
वेद और विद्या आदिक में, हुवे पराण्गत, श्री गोपाल।
अलख वस्तु सब लगीं दिखने, क्या सचमुच, भूले हैं हम।

वेद और विद्या आदिक में ....

बोले तुम शिवपुरी पधारो, हम आये तुमको लेने।
काशी से शिवपुरी गये वे, किये वहां दो वर्ष व्यतीत।।
जाग्रत ज्ञान उन्हें सब बक्शा, साथ रहे आतम के मीत।
दे अनेक साक्षी माया की, ज्ञान कराया सभी प्रकार।।
हर स्थान सरूपादिक के, करवाऐ सब साक्षातकार।
की प्रदशणाँ जाम्बु दीप की, तीन बार घूंमे दिन रैन।।
बिक्रम अट्ठारह सौ बत्तिस हुआ, दो सौ सोलह उमर हुई।
किन्तु वासना पुष्पावति की, क्षण के लिये न तृप्त हुई।।
लगे सोचने क्या कारण है, सब का होता सक्षात्कार।
वे क्यों नज़र नहीं आते हैं, जिनका आतम पर अधिकार।।
मेहनत कभी विफल नंहि जाती, फल करनी का सब पाते।
अपने पर किरपा क्यों नंहि है, सपने में भी नंहि आते।।
क्षर अक्षर तक सभी दीखते, सभी देव दिखते हमको।
अभी कमी है जो परमातम, नज़र नहीं आते हमको।।
निष्फल जाते नहीं परिश्रम, कृपा करेंगे निश्चय वे।
लेकर यह संकल्प ह्रदय में, पुनः खोज को निकल पड़े।।
चढ़े एक पर्वत के ऊपर, एक सरोवार वहाँ मिला।
बन उपवन थे बड़े सुहाने, मन जाकरके बड़ा लगा।।
एक छींट सी लगी शान्ति की, आश्रम एक वहाँ पाया।
एक तपस्वी मिले वहाँ पर, ह्रदय दरश कर अकुलाया।।
मिले वहाँ निम्मार्क सम्प्रदा, के इक महापुरूष बैठे।
दर्श पर्श पाकर के उनका, इक दम मन के द्वार खुले।।
दो सौ वर्ष भ्रमण में बीते, किन्तु न पाया तत्व महान।
सब ही मिल लिया जगत में, लेकिन मिला न ऐसा ज्ञान।।
चरम लक्ष तक जो आतम के, पहुचाता हमको इकबार।
ठौर न पाई पार ब्रह्म की, हुआ न इक दिन साक्षात्कार।।
अब तो शरण आपकी आया, कृपा करो मुझपर अब आप।
जला जा रहा हूँ अब विरह से, हरो आत्माँ का संताप।।
दिखलाओ वह मार्ग कृपाकर, सकल काज हो आतम का।
इस दुख से छुटकारा पाऊँ, दर्शन हो परमातम का।।
सुन इतनी निम्मर्क महात्माँ, बोले पुष्पावति से बैन।
सुनो योगेश्वर राज ध्यान दे, कृष्ण भक्ति में पाओ चैन।।
सुमरन उनके चरण कमल का, करके आतम होती पार।
है अनन्य भक्ती ही साधन, होगा उसमें सक्षात्कार।।
परम हंस गोपाल भट्ट जी, बोले सुन वे वचन अमोल।

मुझे मंत्र दो जिससे पाऊं, प्रीतम का दर्शन अनमोल।।
मंत्र प्राप्त करके चूड़ामंणि, आसन लगा हुवे तल्लीन।
सम हो गये ध्यान कर पी का, द्रश्य उपस्थित हुवे नवीन।।
बारह वर्ष कठिन कसनी की, पाया श्री कृष्ण का प्यार।
तन मन आतम हुई समर्पित, बरसी ऊपर रसकी धार।।
क्षण रोते क्षण में हंस उठते, हो गई उनकी ऐसी गति।
रहता भान न उनको बपु का, और न रहती वश में मति।।
उमर हुई दो सौ छब्बिस की, पार ब्रह्म पुरूषोत्तम के।
ऊपर हुऐ निछावर सब विधि, परम हंस जी प्रीतम के।।
मादक रूप मदन मोहन श्री, अक्षरातीत कृष्ण महाराज।
खड़े हऐ आ सन्मुख इक दिन, साधे आन भक्त के काज।।
मुस्काते हऐ मंद मंद से, टपकाते हुए रस लावण्य।
दर्शन दिये वासना को निज, जो थी उनकी भक्त अनन्य।।
नज़र ध्यान में आये उनको, और दिखाकर रूप तुरंत।
ओझल हो गए चोर हृदय के, जिस दम छिपे त्रिलोकी कंत।।
आँख खुली घबराकर उनकी, देखा तेजोमय मंडल।
छवि विचित्र द्राष्टीगोचर इक, हुई कृष्ण जी की उसपल।।
आँखें देख रही हैं उनको, जो न कभी नज़रों आया।
जो थे अभी ध्यान के अंदर, बाहर भी उनको पाया।।
फटी आँख हक्के बक्के से, ताक रहे थे श्री गोपाल।
थी विचित्र हालत लख करके, था इक पागल जैसा हाल।।
लग गई छवि निरखन में अँखियाँ, अंग अंग अवलोक रहे।
भूषण बसन दिव्य पीताम्बर, और हार गल शोभ रहे।।
दमक रहे कुण्डल श्रवणों में, बीच मुकुट रही मंणी झमाल।
भोंह नेत्र अनियारे मोहन, आड़ी चितवन मुख छवि लाल।।
दंत अधर मानो दाड़िम कलि, ता ऊपर मुस्कान रसाल।
रूप मधुर तम और निखरता, जब कपोल उड़ आते बाल।।
गजरे रत्न जटित कर कमलों, मुद्रिकाऐं उंगला उंगली।
नील कमल इक पुष्प हाथ में, धारे इक करमें मुरली।।
उठ रहीं कोटि तरंगें छवि से, तृप्त न होती आतम लख।
बरस रहा आनंद क़ंद सा, जोति जोति में थी चख मख।।
देख भक्त को प्रभु ने सोचा, भूल गया ये अपने को।
जड़वत हुआ विचारा लखकर, बोले चेत कराने को।।
पुष्पा सखी की आतम चेतो, सावधान हो पहचानो।
नाम हमारा श्री कृष्ण है, मुझे सच्चिदानंद जानो।।

क्षर अक्षर से परे वास है, निजानंद स्थित आकार।
चिदघन मुझे कहा श्रुतियों ने, शुद्ध सनातन दिवसाकार।।
जो सरूप तुम देख रहे हो, नहीं कोइ इसको पाता।
हो मेरी आनंद शक्ति तुम, तासे तुमको दिखलाता।।
दूजे हूँ सदगुरू सरूप में, प्रगट जागरन कारन जो।
करो प्रतीक्षा उस सरूप की, आगे चलकर तुम पाओ।।
उसी रूप से भेद खुलेंगे, सब रहस्य समझायेगा।
रक्खो उसे हृदय में हरदम, स्वयं तुम्हें मिल जायेगा।।
यदि कुछ इच्छा हो वर मांगो, अति प्रसन्न हैं हम तुमसे।
देख महाप्रभु को इतना ख़ुश, परम हंस बोले उनसे।।
आसन सदा सदा की ख़ातिर, प्रभो बिछालो आतम में।
अगर आप ख़ुश हो अपने पै, बख़्शो यह वर आप हमें।।
ऐवमस्तु प्रभू कहकर के, अंतरध्यान हुवे इक दम।
भौंचक्की सी रह गई अँखियाँ, भौंचक्की रह गई आतम।।
कहाँ गये प्रीतम आकरके, इक उबाल आया उर में।
बिरह वेदना ने तड़पाया, याद आए झट वचन उन्हें।।
सदगुरू रूप मिलेगा आगे, उठे और झट गये वहाँ।
श्री प्रकाश जी सदगुरू उनके, बैठे थे ध्यानस्त जहाँ।।
कह डाला ब्रतान्त दर्शन का, मनो कामना पूर्ण हुई।
आज आपकी द्रष्टि से गुरूवर, मिली शक्ति हमें खुई हुई।।
हुकुम हुआ दक्षिण दिश जाओ, सदगुरू उधर मिलें हमको।
विदा चाहते अब हम तुमसे, त्रुटियाँ अपनी क्षमाँ करो।।
सम्वत् अट्ठारह सौ चव्वन, दो सौ अड़तिस बरस उमर।
विदा हुवे सब से मिलकर के, परमहंस सदगुरू जिधर।।
उतरे उस उत्तुंग शिखा से, पर्वत की करके परनाम।
दो सौ अड़तिस बरस मनन के, पीछे जहाँ मिले थे श्याम।।
बन पर्वत झरने तय करते, परहंस ने किया प्रयाँण।
अंदर श्याम सुंदर का चिंतन, बैठे घुसे प्राँण में प्राँण।।
बड़ी विलक्षण हालत है यह, बैठे हों जब अंदर इष्ट।
बातें होती हैं आपस में, आतम रहती है उपदिष्ट।।
भान न रहता कुछ बाहर का, है विचित्र यह दशा बड़ी।
जन संसारी जानें पागल, ख़बर न रहती दुनियां की।।
सदगुरू दर्शन करने के लिये, उत्कण्ठा जागी उर में।
तरूवर के तल जा बैठे इक, इच्छा लेकर के मन में।।
मिले दर्श श्री श्री सदगुरू का, लिया हृदय में यह संकल्प।

बैठे खेंच समाधी उनकी, देर लगी दर्शन में श्वल्प।।
निजानन्द स्वामी जी प्रगटे, दिखलाया निज मूल सरूप।
धरती पर जो विचर रहा है, वह भी हुवा तत्क्षण रूप।।
की स्तुति दर्शन पा करके, बोले निजानन्द स्वामी।
हे पवित्र आतम तू पुष्पा, आप बड़ी हो सतगामी।।
पूर्ण ब्रह्म श्री कृष्ण चंद्र के, हो आनन्द की तुम इक कोर।
ता से तुम बारह हजार भइ, चालिस युथ्थ हुवे अवतोर।।
रसानंद में लीन कलाओं, ने निज प्रेम बताया उग्र।
प्रेम परिक्षा पर उतरी अब, बिछुड़ गई यों आप समग्र।।
किसका प्रेम अधिक दर्शाओ, माया के परदों को ड़ाल।
इम्तहान पर सब उतार दीं, पुरा भुलवनी ऊपर जाल।।
हो तुम वहीं किन्तु माया से, लगने लगीं अलग जैसे।
प्रीतम को क्या सब को भूली, छल रही है छलना ऐसे।।
सिर्फ परिक्षा के कारण यह, नश्वर औ झूंठा संसार।
छोड़े भुलवनी माया तुम पर, रचा गया ये खेल संवार।।
कहा दिव्यपुर धाम तुम्हारा, कहां गई सखिया सारी।
कहाँ कृष्ण महाराज प्राणधन, खो गइ सभी वस्तु प्यारी।।
ऐसा धुन्ध उड़ाया ऊपर, ऐसी है अंधी आंधी।
बिछुड़ गई सब, एक एक से, इधर उधर सब ही फांदी।।
घबरा गई देखकर इसको, सब पै ही विपलव छाया।
कभी न देखी, माया तासे, भेद हाथ कुछ ना आया।।
देख देख इन तूफानों को, बैठे बैठे ही घर में।
लगने लगा कहीं जा पंहुचे, विस्मृत पिछला हुवा तुम्हें।।
भूल गईं तुम निज सरूप भी, यह जो तुम पै है इस वक्त।
ये सब छल का दिया हुवा है, बदल गईं तुम सब इक लख्त।।
भूल गईं हम क्या कहते थे, प्रीतम से क्षण भर पहले।
खो गया होश थपेडे में इक, पड़ा न कुछ इसमे पल्ले।।
दो ब्रह्माण्ड देख निमटी तुम, पहला ब्रज जहां बाल सरूप।
जिसमे मिले पिया जी तुमको, किन्तु न पहचाना वह रूप।।
दूजे मिले रास में जाकर, थे किशोर छवि में प्रीतम।
थीं दो बुद्ध तुम्हारी उस दम, पहचाने नहि गये खसम।।
अब ब्रह्माण्ड जागनी का है, बुद्ध जाग्रत आई साथ।
सदगुरू छवि में अब हैं प्रीतम, हटे न तुमसे इक पल नाथ।।
तीनों दशा जचेंगी अब वे, घर अपने की होगी सुद्ध।
प्राणनांथ जी ने किरपा की, दिया जाग्रत ज्ञान व बुद्ध।।

विचर रहीं तुम चिरकालों से, दुनियाँ के जो पाये ज्ञान।
हमसे ही वे मिले तुम्हें सब, जिससे जाना सकल जहान।।
सब कुछ पा बोले क्या पाया, विचर रही फिर भी उद्दण्ड।
किन्तु शान्ती मिली न तुमको, तिल तिल मथ डाला ब्रह्माण्ड।।
अब अपने असली सरूप को, स्मृति में अपने लाओ।
जो सखियाँ सहचरी तुम्हारी, निकट आप उनके जाओ।।
जाग्रत ज्ञान, तारतम देकर, करो चेत उनको जाकर।
युथ्थ समेटो अपना अब तुम, चेतें तारतम्य पाकर।।
चलो धाम लेकर अब उनको, पदमावति होकर ऐकत्र।
रहे न अब तुसमे कुछ परदा, दीखेगा सब कुछ सर्वत्र।।
हम हैं साथ तुम्हारे हरदम, अपने में जानो हमको।
मूल रूप जा पधरे पहले, पुष्पा वति अब कार्य करो।।
साथ तुम्हारा है बघेल खण्ड़, काशी औ प्रयाग के बीच।
भोग रही दुख पड़ी हुई सब, उन्हें नींद से जाकर खींच।।
करो ऐकत्रित पदमावति में, देते हैं हम तुमको मंत्र।
दूर करेगा जो इस दुख से, यही छुड़ाने वाला यँत्र।।
दिया मंत्र श्री सदगुरू जी ने, बैठे आतम के अन्दर।
दिव्य द्रष्टि हो गई उसी क्षण, ऐसा इक दम हुवा असर।।
मृत्यु लोक से परमधाम तक, द्रष्टी गोचर हुवा सभी।
प्राणनाथ श्री निजानन्द को, पाकर हो गए आप श्री।।
बिना युगल ना चले जागनी, आ पधरा उनमें जोड़ा।
धन्य धन्य श्री इन्द्रावति औ, पुष्पावति का जोड़ा।।
उठे उधर ये इधर विराजे, पुष्पावति पर की किरपा।
सम्वत् अट्ठारह सौ छप्पन, में किरपा का परशाद मिला।।
पदमावति की ओर मुड़े फिर, जा पहुंचे था साहुन ग्राम।
सुंदर दास वहाँ रहते जिन, छत्रसाल पाया निजनाम।।
थे इकानवे वर्ष पुराने, परम हंस से हुवा मिलाप।
अर्श पर्श सत्संग हुवे सब, करी एक ने इक की जांच।।
लगी जागनी में पुष्पावति, प्राणनांथ जी तिनके साथ।
चले जागते दर्श मात्र से, था प्रीतम का उन पै हाथ।।
बना फूल पुर केन्द्र जागनी, भइया भी कहते उसको।
परम हंस जी करी जागनी, जाग्रत किया प्रियाओं को।।
सम्वत् उन्निस सौ सत्तह में, पहुचे इक साधू बाबा।
पाया ज्ञान जाग्रत उनसे, एक माह सत्संग रहा।।
जान गये बाबा सत्संग में, परम हंस जी तजें शरीर।

पाकर के यह भाव ह्रदय में, बाबा जी हुए बड़े अधीर।।
हाथ जोड़ श्री जी के आगे, खड़े हुवे औ बोले यों।
जब सामर्थ हमारे सन्मुख, रहे हमें फिर संषय क्यों।।
संषय मानो एक हमारा, यदि पतनी, पति के रहते।
धाम चली जावे अच्छा है, या जावे पति के पीछे।।
उत्तम धर्म कौन है खोलो, सुन श्री जी बोले तत्काल।
प्रश्न किया तुमने अति सुंदर, है शास्त्रों का यही ख्याल।।
पति रहते पतनी चल देवे, पहले पहुचे पति से धाम।
पतिव्रता भी वही कहाती, उत्तम धर्म यही मतिमान।।
सुनकर के साधू बाबा ने, किया दण्ड़वत् चरनों में।
आज्ञा मांगी हमें विदा दो, अपनी कुटिया जाते हैं।।
विखल ह्रदय हो नेत्र बहाते, अपने साथी साथ लिये।
परम हंस जी से ले आज्ञा, अपनी कुटिया ओर चले।।
टिकुरी ग्राम रियासत रीवाँ, दुवगांवा में था स्थान।
बाबा ने सोचा के श्री श्री, परम हँस जी जाऐं धाम।।
कृष्ण पक्ष दिन रविवार का, आवे जब असाढ़ का माँस।
था संकेत श्री जी का यह, जायेंगे हम प्रीतम पास।।
पती ब्रता को उचित यही है, गमन करे पहले पीसे।
झूँठ नहीं कहते ये श्री जी, रह जाऐंगे हम पीछे।।
पहले चलो श्री से निजघर, बाबा ने कर लिया विचार।
सम्वत् उन्निस सौ सत्रह थी, फागुन शुक्लपक्ष छः वार।।
छोड़ दिया यह बपु बाबा ने, मिले परातम से अपने।
परमधाम जा पहुँचे पहले, पीछे पिया रहे उनके।।
इधर फूलपुर संत मंडली, सत्संग में ऐकत्रित थी।
परमहंस जी थे चर्चा में, आह स्वतह मुँह से निकली।।
मरगया मरगया कहा शब्द ये, लगे पूछने सेवक गंण।
बोले बाबा धोखा दे गए, धाम गई उनकी आतम।।
जा पहुँचे वे, हमसे पहले, बात परख गए थे अपनी।
समाचार लेने इक व्यक्ती, भेजा बात सही निकली।।
क्या रोते हो उन्हें साथियों, सुँदर साथ सभी हुशियार।
हम भी धाम जाँएगे अब तो, षाढ़ कृष्ण पड़वा रविवार।।
सुनकर सब कै लगी चोट सी, बिलख उठा इकदम से साथ।
किन्तु ज्ञान चर्चा कर धीरज, दिया भुलाया वह आघात।।
धाम जाएगे बात उड़ी जब, दिये समय पर सब आये।
इक हुज्जूम हुआ ऐकत्रित, थे व्याकुल सब अकुलाये।।

आता गया समय नज़दीकी, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पूनम।
समय रात्री का जब आया, कर रहे थे श्री जी सत्संग।।
ध्यान अवस्था में अचेत हुए, भेद किसी ने नंहि जाना।
छोड़ गये चोला ये शायद, इकदम सब ने यह जाना।।
रूदन और क्रंदन जग उठ्ठा, कोलाहल आरम्भ हुआ।
खाने लगे पछाड़ें साथी, दुख का पर्वत टूट पड़ा।।
बिन कुछ कहे मौन क्यों हो गए, था सब में यह पश्चाताप।
आतम झेले क्यों वियोग यह, करता सुँदर साथ विलाप।।
देख दुखी इस तरह साथ को, परम हंस जी बोले बैन।
क्या कारण जो तुम सब के सब, मेरे कारण हो बेचैन।।
निश्चित ख़बर धाम जाने की, मैंने तुम को पहले ही।
दे दी थी तो क्यों रोते हो, हम को तो जाना है ही।।
फिर क्यों अड़चन डाल रहे हो, अपने घर के जाने में।
समझो जाना अटल हमारा, रोको मत अब आप हमें।।
बोले झट आनंद दास जी, आज्ञा तो दो कुछ हमको।
मंदिर कैसे चले यहाँ का, इसका इन्तज़ाम क्या हो।।
धर्म भार सिर सभी आपके, छोड़ रहा पूरन करना।
मुट्ठी के आधार आश्रम, और मंदिर को बनवाना।।
मिट्टी दाह हमारे शव का, करवा देना मिल सब साथ।
बोले फिर आनंद महात्माँ, एक प्रार्थना सुनलो नाँथ।।
मिट्टी दाह रस्म को ये सब, उचित नहीं बतलाते हैं।
संस्कार अंतिम क्या होवे, अन्य और कुछ चाहते हैं।।
बोले नहीं श्री जी इस पर, समय चार का जब आया।
ठोकी पृथ्वी एक हाथ से, इक प्रकाश सब पर छाया।।
चका चोंद सब अँखियाँ हो गई, देख नहीं पाये कुछ भी।
परम हंस स्थूल सहित, हो गये अलख इक साथ वहीं।।
सम्वत् ऊन्निस सौ अट्ठारह, षाढ़ कृष्ण पख की पड़वा।
दिन रविवार पहर चौथा था, धाम गमन जिस समय हुवा।।
नश्वर जग का परित्याग कर, पहुँची अपने घर आतम।
मिले परातम से जा अपनी, रहते जहाँ श्री पुरूषोत्तम।।
बोलो जय श्री परमहंस और, श्री राज प्यारे की जय।
पुष्पावति निज धाम अंगना, परआतम में हुई विलय।।

— इती श्री बीतक पुष्पावति —

'पहली लहर'

"मंगला चरण"

सतगुरू परिचय व जन्म

सम्वत् उन्निस सौ इक्यावन, विक्रम चौथ बदी वैसाख।
मिथुन लग्न की शुभ वेला में, जन्में श्री सदगुरू महाराज।।
जन्म नाम श्री झण्डू दत जी, आतम का श्री रामरतन।
याथा नाम गुँण तथा आपमें, बड़ा विलक्षण था बचपन।।
संत आप बचपन ही के हैं, जैसे सेवक हो संतोष।
जितना मिला मगन उतनें में, समझा उस ही को परितोष।।
विद्या तो जैसे चेली हो, उपजी उर से अपने आप।
ना गुरू कुल, ना ही विद्यालय, ना दर्जों ही का कुछ नाप।।
वहीं गाँव की चौपलों में, नौ वर्षों की आयू तक।
पठन करी हिन्दी थोड़ी सी, ढाई महीने संसकिरत।।
प्रातः ही उठ साथ पिता के, उंगली पकड़ जूड़ तक साथ।
नन्हे नन्हे पैरों पर चल, संग जाते थे उनके आप।।
जूड़ भयानक जंगल सा था, इक फ़र्लांग गाँव से दूर।
जहाँ गुथे थे वृक्ष आपस में, कूड़े करकट से भरपूर।।
बाँसों के बीड़ों की टोली, फँसी खड़ी थी चारों ओर।
दिन को रात बनाने वाला, अंधकार रहता था घोर।।
है देवालय उसी जूड़ में, भारी भूत नाँथ शिव का।
सेवा पूजा नित छज्जू जी, तन मन से करते इनका।।
बड़े नियम पर चलने वाले, कर्म काण्डीवी उत्तम।
थी अपार श्रद्धा शिव जी में, समझते उनको पुरूषोत्तम।।
दिन चर्य्या थी नपी तुली सी, रहन सहन भी नपा तुला।
रहते थे तल्लीन भजन में, जग को मन से भुला भुला।।
यजमानी औ प्रोहताई का, काम पिता जी करते थे।
था व्यवसाय सिर्फ़ इतना ही, पेट इसी से भरते थे।।
परिचय करा रहा मैं केवल, शब्द कहे जितने अब तक।
थे सब मेरे अपने जानो, सुनो उन्हीं के मुँह बीतक।।
स्वयं कहें अब अपनी बीती, अब प्रताप हटता पीछे।

श्री बीतक – श्री मुख द्वारा – परिवार का वितरण

श्री राज और साथ को, करता हूँ प्रणाम।
झण्डू दत्त कभी कहते थे, राम रतन अब नाम।।
बुद्धिदास छोटा भाई है, दो भाई हम माँ जाये।
बाबा भी थे तीन हमारे, तीनों वे भी माँ जाये।।
इक जगह ही रहते थे हम, बस सब चूल्हे ही थे न्यारे।
और काम सब एक जगह था, आमद बाँट लिया करते।।
पिता भक्ति में रहते ज्यादा, हमें बहुत करते थे प्यार।
जाते साथ जिधर जाते वे, कंधे पर होके अस्वार।।
नहीं अलसाते थे हमसे, उम्र हमारी थी छः वर्ष।
ग्राम दूधली है नेडे की, मेला भरता है प्रतिवर्ष।।
ले गये पिता दिखाने मेला, घुमा फिरा कर मेले में।
निकट औरतों के बिठला गये, सौंप–सांप कर उन्हें हमें।।
चले गये फिर मेले में वे, मेरा मन वहाँ नहीं लगा।
ग्राम चले गये पिता हमारे, भ्रम सा ऐसा हमें हुआ।।
जिनको सौंपा मुझे पिता ने, थीं वे सभी जड़ौदे की।
पिता चले गये शायद वापस, मेरे मन को यही जंची।।
भाग पड़ा मैं आँख बचाकर, उन्हें न हो पाया कुछ ज्ञात।
मैं चल पड़ा बिछुड़ कर उनसे, दिन छिपने की है ये बात।।
तीन कोस के लगभग दूरी, समय मक्की पकने का था।
जब कुछ दूर निकल आया मैं, एक आदमी हमें मिला।।
मैं रोता जाता था जिस दम, बोला वह हमसे आकर।
क्यों रोता जाता है भईया, उठा लिया गोदी आकर।।
रोवे मत चल पिता तुम्हारे, यहीं मक्की पर हैं मेरी।
चल हम तुझे मिलावें उनसे, चला मुझे लेकर गोदी।।
मैं भी चुप हुआ इतनी सुन, खेतों–खेतों वह निकला।
जब जंगल की ओर चला वह, मैं डरता डरता बोला।।
अपना रस्ता नहीं उधर को, उस रस्ते जायेंगे हम।
लगा हमें धमकाने वह तो, खबरदार जो मारा दम।।
तेरे पिता इधर ही हैंगे, चुप बैठा रह कंधे पर।
बोला नहीं पुनः मैं उससे, वह भागा मुझ को लेकर।।
जंगल–जंगल भागा जाता, जब आया पांडो तालाब।
अपना नौकर "सुमरू" दीखा, हमने दी "सुमरू" आवाज।।

जंगल फिरने आया था वह, टेर पड़ी जब उसके कान।
न थी रूकावट वहाँ फसल की, इकदम था खाली मैदान।।
दूर–दूर तक दिखता था, "सुमरू" सुन करके भागा।
किसका बच्चा टेर रहा है, है कौन व्यक्ति लेकर भागा।।
निकट गया जिस दम वे पुरूष के, उसको सुमरू ने पकड़ा।
खेंचा तान हुई बहुत दोनों में, काफी देर हुआ झगड़ा।।
वह अपना बतलाता हमको, सुमरू अपना बतलाता।
आधा मैं उसकी जफफी में, आधा वो खैंचे जाता।।
अपनी हालत ऐसी समझो, भेड़ भेड़ियों में जैसे।
चाह रहे दो टुकड़े करने, फँसा बीच में मैं ऐसे।।
लगी चटकने चूल्हों की नस, आँखों में तारे चमके।
चीख मारता बुरी तरह मैं, कोई न देता था सुनके।।
घूँसे लात एक दूजे को, मार रहे वे आपस में।
कभी हमारे भी लग जाती, ऐसी अंधा–धुंधी में।।
लात लगी सुमरू की उसकी, छाती में जमकर के एक।
छूट गया मैं उसके कर से, उठा लिया सुमरू ने देख।।
भाग पड़ा वह व्यक्ति वहाँ से, घबराकर जंगल की ओर।
रहा चींखता सुमरू दौड़ो, पकड़ो कोई है बच्चा चोर।।
लेकिन दिन छिप चुका अंधेरा, काफ़ी उतर चुका था तब।
पहुँच न पाया और मदद को, हुआ न हल कोई मतलब।।
सुमरू ने पूछी मुझसे तू, कैसे हाथ लगा इसके।
सुनकर मेरी बीती सुमरू, भगा मुझे मेले लेके।।
परेशान होंगे पंडित जी, मेले में फिरते होंगे।
ढूँढ़ मँची होगी चौतरफ़ा, उन्हें ख़बर देनी थी जाके।।
हमें चिरंजी पंडित के घर, जैपुर छोड़ छाड़ करके।
सूचनार्थ भागा मेले को, उन्हें ख़बर देदूँ जाके।।
इधर खोज मेले में हो रही, मेले का चप्पा–चप्पा।
खोज रहे थे लोग और भी, जिसदम उनको पता लगा।।
दौड़े पिता तुरन्त जैपुर को, आकर मुझसे पूछा हाल।
किस प्रकार भागा मेले से, तुझे उठाकर के दज्जाल।।
हमने रो रो घटित सुनाई, लिपटे वक्ष पिता के हम।
अर्थ लगाने लगे पिता जी, बहुत हुआ सुनकर के ग़म।।
मिली भगत है घर वालों की, साँस मार कर के बोले।
परमात्माँ ही ठीक करेंगे, अधिक भेद कुछ नंहि खोले।।
घर आये हमको लेकर के, रही बहुत दिन इसकी खोज।

कौन आदमी लेकर भागा, लेकिन हुआ न कुछ भी बोध।।
बड़े कुटिल थे ताऊ हमारे, सगे न थे, थे ताऊ ज़ाद।
उन्हें न भाते किसी आंख हम, कोसा करते हो बरबाद।।
घर औ बार हमें मिल जावे, हो छज्जू का दीवा गुल।
इस प्रकार की मनोव्रत्ति थीं, खुददारी थी हृदय अतुल।।
मिली भगत ताऊ की हो या, अनायास घट गयी स्वयं।
जाने करने वाला या, परमात्मां क्या जानें हम।।
करनी खुद करता ही भरता, भोग भोगता आया है।
हमने तो अप बीती कह दी, किस्सा घटित सुनाया है।।
खेले कूदे आठ वर्ष तक, रहा पिता जी का साया।
लेकिन एकसां वक्त न रहता, उसने भी पलटा खाया।।
सम्वत् उन्निस सौ उनसठ में, पिता हमारे धाम गये।
समय मृत्यु का पूर्व कह दिया, था भगवत प्रशाद जी से।।

आठ वर्ष की आयु में, ही विधना के बंध।
टूट गये इक साथ सब, पिता पुत्र सम्बंध।।

'दूसरी लहर'

न्हीं भरोसा खिन का, बरस मास और दिन।
ये तो दम पर बाँध्या तो भी भूल जात भजन।।

ये जीव निमख के नाटक में, तू रहयो क्यों बिलमाये।
देखत चली जात है बाजी, भूलत क्यूँ प्रभु पाये।।

धाम चले गए पिता हमारे, हमें भाग्य के ऊपर छोड़।
माया के बंधन जितने थे, दिये विधाता ने सब तोड़।।
नीचे धरती ऊपर अम्बर, मध्य सभी कुछ अनजाना।
थे दुनियां में इस प्रकार, जैसे दो पाटों में दाना।।
खैर तभी तक दाने की, जब तक कीली से सटा हुवा।
कीली से हटते ही पल में, दाना पांता पिसा हुवा।।
पाट घूंमता चक्की का, केवल श्रोताओं ऊपरला।
जग के दोनों पाट घूंमते, क्या ऊपर क्या नीचरला।।
दाने का टिकना मुश्किल है, चक्कर में आही जाता।
काल चक्र की चक्की में, दाना दाना सब पिस जाता।।
निराकार साकार पाटके, सदा आदि से घूम रहे।
इस चक्की की घोर अजब है, पिसने वाले झूंम रहे।।
घोर निरन्तर इन पाटों की, आँख न खुलने देती है।
बेहोशी छाई रहती है, पीस एक दम देती है।।
चबा डालती सब दानों को, लेकिन लोहे के दानें।
पिसे न अब तक पिस न रहे हैं, ना मुमकिन हैं पिस जाने।।
फाड़ फेंकता है पाटों को, लोहे का दाना यदि हो।
क्या मजाल पाटों की पीसें, हो जाते पाटों के दो।।
क्या बिगाड़ सकती जग चक्की, क्या कर सकता चकियारा।
लोह पुरूष इन पाटों के, रगड़ों से रहता है न्यारा।।
माया उन्हें न वश कर सकती, महाजनों की है पहचान।
बिगड़ न पाये जब माया से, क्या बिगाड़ सकता इन्सान।।

पिता हमारे छोड़कर, चले गये जब धाम।
धीरे धीरे पास जो, धन था हुवा तमाम।।

माता रह गइ सिर्फ साथ में, लालन पालन को केवल।
आठ वर्ष का बालक मैं, क्या दे सकता था उनको बल।।
और भार सा था इक अपना, उल्टा माता के ऊपर।
क्यों कर पालन होगा इनका, हमें देख रोती अक्सर।।
उलट फेर हैं ही माया में, उलट गई बाजी सारी।
काम किसी का करता कोई, करता को पड़ता भारी।।
लाले आन पड़े खाने के, घेरा संकट ने आकर।
कभी कभी माँ रो उठती, भूखा हम दोंनों को पाकर।।
दिन दरिद्रता के कुछ दिन तो, घर के कोनों में काटे।
कुछ रोज पड़ौसों ने अपने, थोड़े थोड़े संकट बांटे।।
कुछ रोज पीसने पीस पीस, चुपके चुपके माँ ने पाला।
जितना टल सका वक्त उससे, ये बुरा वक्त उसने टाला।।
लड़ती भी रही संकटों से, सब किया हमारा भर पाया।
लेकिन दुख टालन हारी का, खुद ही टलने का वक्त आया।।

काल पक्ष की ओर से, उड्डा ऐसा वेग।
चारों खूँटों देश की, फैला भीषण प्लेग।।

साल तरेसठ का अंतिम था, लगा न था समवत् चौंसठ।
महामरी फैली घर–घर में, बाकी बची न कोइ चौखट।।
छोड़ भगे घर सब घरवाले, पड़े जंगलों में जा जा ।
नाँच रहा था काल गाल में, ठूँसे बुरी तरह खाजा।।
कीड़ें और मकौड़ों की गति, मानव चारों ओर मरे।
मरने वालों को सच जानों, ठाने वाले नहीं मिले।।
अजल मज़ल करने वाला तक, किसी–किसी को मिला नहीं।
चिता एक पर मुर्दे दो दो, बाज बाज तो फुका नहीं।।
बचते एक दूसरे से सब, घर घर बंद पड़े रहते।
भाँए भाँए करते गलि कूंचे, छोड़ छोड़ घर लोग भगे।।
गोद छिपाऐ हम दोनों को, माँ घर में बैठी रहती।
चाहे काम बिगड़ जावे जो, बाहर जाने ना देती।।
मानो बाहर खैर नहीं है, गली गली फिर रही हो मौत।
जो निकला घर से बाहर को, मानों पकड़ करेगी फौत।।
घर में न था एक दाना तक, भूखे गुजर रहे थे वक्त।
समय तंग था तो पहले ही, लेकिन और हुवा कुछ सख्त।।
अपनी परम सनेही जननी, अनायास बीमार हुई।

लिये फिरी कुछ देर दुख्ख को, आखिर को लाचार हुई।।
गिर ही गई अंत शय्या पर, दवा न दारू गाँठ न दाम।
सिर्फ़ आसरे पर पानी के, माँ ने काटा समय तमाम।।
दिया किये जल भर भर हम भी, चम्मच खुले हुवे मुंह में।
खुलवाऐ अपने दरवाजे, प्रातः आकर ताऊ ने।।
बिना घुसे ही अंदर माँ का, हाल ताऊ जी ने पूछा।
हमको क्या मालूम कि क्या है, हमने बता दिया अच्छा।।
आधी रात तलक तो ताऊ, कूल्ह कूल्ह इसकी बीती।
चुप्प पड़ी है अब तो पानी, देने पर ही है पीती।।
बड़ी देर में आंख लगी हैं, मुंह फाड़े है पड़ी हुई।।
ताऊ स्वयँ देखने आये, तो माँ पाई मरी हुई।
खुला हुवा मुँह देख देखकर, भरे गये पानी अनसूझ।।
जा अब कहीं गांव में जाके, कोई मरा है क्या, यह बूझ।।
मुझे झिड़क कर बोले ताऊ, कहता है माँ सोयी हुई।
अकड़ी हुई पड़ी है कबकी, जाने बुढ़िया मरी हुई।।
उसकी गाड़ी में धर देंगे, वरन कौन ले जाऐगा।
पड़ी पड़ी सड़ जायेगी यहाँ, लेने कोइ न आयेगा।।
मुझे चून देता जा इतने, पिण्ड़ बनाकर रख दूंगा।
जब गाड़ी आयेगी उसमें, तेरी माँ को धर दूँगा।।

ताऊ जी अपने यहाँ, कहा धरे हैं चून।
शायद ढूड़ो तो कही, तनिक मनिक बस नून।।

गुड़ चाहो तो है थोड़ा सा, चून न गेहूँ का दाना।
सच पूछो तो दो दिन से, भूखे है मिला नहीं खाना।।
थोड़ा थोड़ा गुड़ खा करके, पानी पी सो जाते हैं।
गर उधार मिल गया कहीं तो, चून मांगकर लाते हैं।।
इक सुनार पर वाजिब था कुछ, कर्ज पिता का दिया हुवा।
जिसने देने का वादा, कुछ दिन पहले था किया हुवा।।
मैंने उस सुनार के फाटक, खट खटाये फौरन जाकर।
ताऊ ताऊ चिल्लाया जब मैं, फाटक खोले तब आकर।।
मैंने निज मजबूरी अपनी, पिण्डों की रक्खी सन्मुख।
तो उसको मां के मरने का, सुनकर हुवा बड़ा ही दुख।।
एक धड़ी गेहूँ देकर के, बोला अब ये ले जाओ।
पिण्डदान देकर माता के, अजल मजल अब करवाओ।।

चले आयें हम गेहूँ लेकर, थमा दिये ताऊ जी को।
गुड़ देकर के चले पूछने, गाड़ी के लिये माता को।।
हमने एक द्वार पर जाकर, उसकी कुंडी खड़काई।
बड़ी देर के बाद द्वार पर, बोली आकर इक माई।।
क्यों भईया क्यों आया बतला, जो कहना झट कहजा।
हमने भी झट से पूछा कोइ, तेरे आज मरा है क्या।।
अपने शब्दों को सुनकर झट, उसने बंद किया द्वारा।
लगी गालियाँ देने मुझको, नास गया, उत्ता, वारा।।
मरा मना अपनों को जाके, बड़बड़ाई वह काफ़ी देर।
सुनता रहा भोंकना उसका, कहीं बात सब मुझ पर गेर।।
लेकिन मेरी समझ न आया, क्यों मुझ पर नाराज़ हुई।
खैर वहाँ से चला अगाड़ी, फिर आगे आवाज दई।।
सुनकर के आवाज वहाँ भी, द्वारे पर आई इक माँ।
जो कुछ हम पीछें कह आये, वह ही हमने कहा वहाँ।।
बड़ा बुरा मुंह बना एक दम, ऐसा हमको फटकारा।
भाग पड़ा मैं इक दम वाँ से, सुनकर उसका ललकारा।।
हमें समझ न आयी फिर भी, मेरी बातें सुनते ही।
क्यों बक बक करने लगती है, जिससे मुर्दे की पूछी।।
झांक झांक कर ही घर घर में, हमने फिरना शुरू किया।
भिड़े मिले यदि द्वार किसी के, तो दरजों से झांक लिया।।
फिरे गांव सारे में भागे, एक जगह मुर्दा पाया।
हमने उस मुर्दे वाले से, अपना मतलब बतलाया।।
अपनी माँ भी मरी पड़ी है, उसको गाड़ी में धर लो।
सुनते ही हाँ करी एक ने, कहा कि तय्यारी करलो।।
जाओ उसको बाँध बूध लो, हम जल्दी ही आयेंगे।
गाड़ी साथ लिये आते हैं, धर देना ले जायेंगे।।
धर रक्खे थे पिण्ड़ ताऊ ने, भींच भाज गुड़ गेहूँ साथ।
इतने में मैं भी जा पहुँचा, गाड़ी की बतला दी बात।।
गाड़ी जल्दी ही आ पहुँची, माँ को लाद दिया उसमें।
जिसमें सदा बोझ लधते हैं, लाध दिया माँ को उसमें।।
धन्य वक्त तुझको बलिहारी, तू जो कर दे थोड़ा है।
तैने कभी किसी को हँसने, के लायक नंहि छोड़ा है।।
कभी जोड़ता कभी तोड़ता, करता अपनी मनमानी।
तेंने ओ बेदर्द किसी की, कभी पीर ही ना जानी।।
धर्म अधर्म न कुछ भी तुझको, ना विचार कुछ करता तू।

इक मदान्धता सी है तुझमें, लगती अहं भाव की बू।।
तेंने बड़े ज़माने बदले, बड़े बड़े बदले इन्सान।
वक्त, वक्त आने को हैं अब, तेरा भी तू, झूँट न जान।।
सर तेरे भी है महाकाल, मुँह तोड़े एक तमाचे में।
दुनियाँ अब ढलने वाली है, काल नये ही साँचे में।।
सम्वत् उन्निस सौ चौसठ में, मगन देई माँ धाम गई।
दोंनों भईया शेष रह गये, सरपरस्त सर कोई नहीं।।

सभी सहारे तोड़के किये काल ने अंत।
एक सहारा शेष बस सगा पुरबला कंत।।

'तीसरी लहर'

दुख से पीऊ जी मिलसी, सुखे न मिलया कोए।
अपने धनी का मिलना, सो दुख ही से होए।।

दुख बड़ो पदारथ, जो कोई जाने एह।
ताथे सुख को छोड़ के, दुख ले सके सो लेय।।

रात दिन दुख लीजिए, खाते पीते दुख।
उठते बैठते दुख चाहिए, यूँ पिऊ सो होईए सन्मुख।।

श्री महामत कहें पीछा न देखिए, न किसी की परवाह।
इक धाम ह्रदय में लेय के, उड़ाय दीजे अरवाह।।

वही रहा रखवाला अपना, वही खिवय्या नय्या का।
दिया सहारा उस ही ने जब, उठा सहारा मईया का।।
बड़ा भयंकर समय एक़ दम, अपने सर पर आ टूटा।
भाग्य न जाने कैसा था जो, बच्चे पन में ही फूटा।।
छूट गया पढ़ना लिखना सब, बने ग्वालिये गायों के।
पेट भरा इस ढ़ंग से अपना, ढोर चुगा हमसायों के।।
कभी पेट भर कभी एक दो, किसी वक्त की टाल रही।
इसी तरह खाने पीने की, औनी पौनी चाल रही।।
हम यह कहते हुवे शुरू ही, से लोगों से शरमाये।
हम भूखे हैं इस प्रकार के, शब्द नहीं मुँह पर आये।।
फिरे न घर घर कभी झाँकते, कभी न फैला आगे हाथ।
कभी न छूआ माल किसी का, नहीं बिगाड़ी अपनी बात।।
किसी खेत से पके नाज की, बाल तलक इक ना तोड़ी।
बला से भूके हैं होने दो, पेट भरा या हो थोड़ी।।
कोई मिल जाते कभी कबार, बालक समझ दया दिखा जाते।
किया सब्र उस ही में अपना, कर प्रणाम उसको खाते।।

श्री महामत कहें ए मोमिनों, शुकर गरीबी सबर।
इन विधि दोस्ती हक की, प्यार कर सके सो कर।।

जिस हालत में साँई रक्खे, अधिक न उससे कुछ चाहते।
खेत अगर कट जाता कोई, सिल्ला बीन लिया करते।।
एक वक्त इक मुट्ठी दाने, कच्चे चाब लिया करते।
और संतोष मान जीवन का, यों ही जी लिया करते।।
कौन पीसता कौन पकाता, कहाँ धरी थी तरकारी।
चबा लिया करते बस यों ही, किस्मत ही मेरी म्हारी।।
किसे ज़ायका कहते हैं हम ने, यह बात नहीं जानी।
कभी चून घोला औ पी गये, कभी कभी केवल पानी।।

ताऊ मनाते ही रहे, हमें कि ये मर जाँए।
घर दर इनके सहज ही, अपने पै आ जाँए।।

रहा न सर साया जब कोई, एक रोज़ ताऊ जी ने।
बुद्धि दास को गोद उठाया, चला खेंच कर हाथ हमें।।
थोड़ी दूर एक कूआ था, जिसकी मन थी कुछ ऊँची।
हमें डालने को कूऐ में, ऊपर को बाँहें खेंची।।
पैर अड़ाये मैंने मन में, गोदी रो रहा बुद्धी दास।
खेंचा तानी हुई हमारी, छुड़ा रहा में उससे हाथ।।
वंश नष्ट करना छज्जू का, चाहे फाँसी हो हमको।
लेकिन तुम्हें न ज़िंदा छोड़ूँ, हम ही से ज़िद थी उसको।।
समय रात का लोग न सोये, बैठक इक कूऐ के पास।
जिसमें बैठा एक चौधरी, कान पड़ी उसके आवाज़।।
बाहर आया तुरंत निकलकर, उसने उसको धमकाया।
तुझे शर्म नंहि आती पंडित, उसने हमको बचवाया।।

हम तो हाथ हुकम के, हक के हाथ हुकम।
इत हमारा पिया जी क्या चले, ज्यो जानों त्यो करो खसम।।

वरन डाल देता कूऐ में, पहुँच न पाये कूऐ तक।
बालक थे हम क्या कर लेते, अगर चौधरी ना हो तब।।
बत्तिस दाँतों में ज्यों रसना, बस अपना था वैसा हाल।
जिधर देखते कोई न अपना, जित देखा पाया दज्जाल।।
दुख के साथ युद्ध हो मानो, देखें कौन हार माने।
खैस वैस सी होती हैं ज्यों, लड़ते ज्यों दो, दीवाने।।
बुद्धिदास बच्चा था छोटा, उसे नहीं थी कुछ भी होश।

यह थी बस सौगात हमारी, पीते रहे दुख्ख ख़ामोश।।
अपने हम स्वभाव के कारन, कहते न थे किसी से दुख।
जब कोई दुख आता हम पै, उसको पीना समझा सुख।।

दुख देवे दीवानगी, स्यानप देवे उड़ाए।
ताथे दुख कोई न लेवही, सब सुख स्यापन चाहे।।
चाहन वाले दुख के, दुनिया में ढूँढ़ देख।
ब्रह्माण्ड यार है सुख को, देख दोस्त हुआ कोई एक।।
जाको स्वाद लग्यो कछु दुख को, सो सुख कबहुँ न चाहे।
वाको सो दुख फेर–फेर, हृदय चढ़–चढ़ आये।।
महामत कहें इन दुख को, मोल न कियो जाये।
लाख बेर सिर दीजिए, तो भी सर भर न आवे ताये।।

जैसे हो मखौल यह कोई, दुनियाँ ऐसी लगी हमें।
इक घटना है जिससे जाना, बतलाता हूँ आज तुम्हें।।
कई रोज़ के भूके थे हम, गाय चुगाया करते थे।
छोटा भाई साथ रहता था, गाय छोड़ उसके आगे।।
इन्तज़ाम खाने का करने, जाता हूँ उससे कहके।
गाँव चला आया मैं वापिस, चून कहीं से ला करके।।
कई दिनों में बनी रोटियाँ, चला उन्हें जंगल लेकर।
गया बुलाने बुद्धिदास को, रोटी पेड़ तले धर कर।।
जब वापिस आकर देखा तो, रोटी ग़ायब मिलीं हमें।
खोज करी जब तो वे रोटी, पाईं बंदर के मुँह में।।
धमका धमका खाता जाता, हम देखे जाते उसको।
कहो दोष दें अपने को या, दोषी कहदें बंदर को।।
जैसे ज़िद हो तुम्हें न मिलने, चाहे तू जो कुछ करले।
पैज मारता हमसे कोई, खावेगा क्या ले खाले।।
रह गये बंदर का मुँह तकते, रोता रह गया भूखा पेट।
कुछ मजाक सी करता था दुख, ज्यों हम ही रिपु उसके ढेठ।।
मिलते रहे फूल ऐसे ही, हम धरते रह गये सम्भाल।
कभी न रोऐ हम पिछलीपर, आगे का ही रहा ख़याल।।

अपने चाहे होत क्या, रब चाहे सब होत।
वो चाहे तो रात हो, करदे जोत उद्योत।।

जितने थे यजमान हमारे, बटे नहीं थे आपस में।
ताऊ ही सब कै जाते थे, फंसे हुवे थे लालच में।।
खुद डकारते दान दक्षणा, हमें नहीं कुछ देते थे।
आमदनी की जगह नाम तक, अपना कभी न लेते थे।।
कुछ ललौन खेड़ी में भी, यजमान हमारे रहते थे।
कभी कभी यजमान हमारे, हमें बुलाते रहते थे।
पर रोड़ा बन वे बीच, हमारे आ जाते।।
एक दफा आया इक न्यौता, ख़बर नाई लेकर आया।
दिन छिपने ही वाला था तब, मुझे ताऊ ने बुलवाया।।
बड़े प्यार से बोले मुझसे, तुम ललोन खेड़ी जाओ।
हम बुड्ढे हैं जा न पायेंगे, तुम बच्चे हो भग जाओ।।
अभी बुलाया है प्रोहित को, यजमानों को है संदेश।
चार कोस ही तो है सारा, संग ले जाना अपना खेस।।
वहाँ सवेरे कुछ होना है, सुबह पहुँच नंहि पायेगा।
इसी लिये अब बुलवाया है, अब से पहुँच भी जायेगा।।

ताऊ ने जिस वक्त यह, दिया हमें संदेश।
उसी समय हम चल दिये, रख कंधे पर खेस।।

अस्त हुई सूरज की किरनें, चले निकलकर जब घर से।
लगा काँपने दिल जंगल में, रात हुई जिसदम डर से।।
भाँए भाँए करता था जंगल, जानवरों का भय पूरा।
हिल जाया करते उनके भी, दिल जो होते हैं शूरा।।
ले जाते उन दिनों भेड़िये, गाँवों से ही बच्चों को।
फ़िकर चढ़ी रहती थी गांवों, में ही अच्छों अच्छों को।।
हम तो फिर भी बालक ही थे, करते क्या यदि कुछ आजाए।
ताऊ ने भेजा यों ही था, ताकि जानवर ही खा जाए।।
इल्लत कटी माँ बाप की तो, बेटे की ऐसे काटो।
छोटे की देखी जायेगी, घर बर आपस में बांटो।।
चढ़ बैठो अब एक पेड़ पर, उचित यही मन ने माना।
जाय भाड़ में यजमानी, सोहताई का आना जाना।।
वृक्ष देखकर एक बड़ा सा, मैं सीधा उस ओर चला।
आता हवा उधर ही से इक, मानव मेरी ओर मिला।।
मुझे देखकर बोला बालक, किधर जा रहे हो बे वक्त।
मैं बोला चढ़ बैठूँ जिससे, खोज रहा था एक दरख्त।।

वैसे तो लालौन खेड़ी, जाने को घर से आया हूँ।
पर सुनसान अँधेरा होने, के कारण घबराया हूँ।।
यही बात है तो आ जाओ, तुम्हें वहाँ पहुँचा देंगे।
इस खटके से क्यों ड़रते हो, यह तो हमीं मिटा देंगे।।
मिला सहारा जिस दम उसका, हो गए हम पीछे पीछे।
बड़ा हितेषी दीखा हमको, झट लालौन खेड़ी दीखे।।
हम लालौन खेड़ी ना जाने, किस प्रकार कैसे आये।
देर लगी थोड़ी सी ही हम, अपने यजमानों में पाये।।
अगले दिन उन्निस रूपये औ, एक धड़ी लडडू लेकर।
विदा किये यजमानों ने हम, दान दक्षणायें देकर।।
खुशी खुशी हम चले उछलते, पहर तीसरे घर की ओर।
गुजर जायेंगे काफी दिन अब, गद गद हो मन हुवा विभोर।।
गिने बैठकर के जंगल में, कितने दिन कट जायेंगें।
एक एक करके खाया तो, काफी दिन चल जायेंगे।।
बुना उधेड़ी में लडुओं की, हम रस्ता भी भूल गये।
जाना था किस ओर मगर हम, ओर दूसरी चले गये।।
फिर भटकते जंगल जंगल, सूरज अस्त हुवा कब का।
किन्तु रास्ता मिला न हमको, डर उपजा उर बेढ़ब का।।
भूल गये लडडू वडडू का, गिनना और गिनाना सब।
किधर जाँए औ किससे पूछें, कोई नहीं जंगल में अब।।
कल की तरह आज फिर फंस गये, क्या बीतेगी हे भगवान।
कुछ ही दूर गयें होंगे के, दीखा एक हमें इन्सान।।
देखा निकला एक गड़रिया, किसी गाँव से आता था।
जब हमने उससे पूछा तो, खास जड़ौदे जाता था।।
साथ साथ हम हो गये उसके, खास हमें घर पर छोड़ा।
सुना ताऊ ने मैं आ पहुँचा, हटा न रस्ते का रोड़ा।।
पश्चाताप हुवा बहुतेरा, लडडू और दक्षणा पर।
कर ही क्या सकता था ताऊ, पड़ा बैठना पछताकर।।

दिया सहारा एक ने, हमको पूरा आन।
उतर नहीं सकता कभी, बूआ का अहसान।।

'चौथी लहर'

अपना जान हमें बूआ ने, निज बेटे सा नेह दिया।
बड़ी बड़ाई उन हाथों की, पाल पोस कर बड़ा किया।।
नारी ही साक्षात् स्नेह की, परम मूर्ति मानी जाती।
मर्दों में तो खुदगरजी की, सच पूछो बदबू आती।।
बने आदमी पर न जानते, आदमियत किसको कहते।
हम हैं मर्द सिर्फ़ इक इस ही, बदबू में अकड़े रहते।।
नारी यदि आपे से बाहर, हो जावे तो मार धरे।
यदि अपने नारी पन में ही, रहे तो बेहद प्यार करे।।

बूआ ने इक रोज कुछ, करके स्वयँ विचार।
अलग बिठाके पास में, पूछा यों पुचकार।।

क्यों बेटा कुछ तुम्हें पता है, हमें शुबा है कुछ धन का।
मरते वक्त दिया हो कोई, पता तुम्हें घर आँगन का।।
तुम्हें इल्म हो तो बतला दो, काम तुम्हारे आयेगा।
अगर कहीं थोड़ा भी शकहो, खोदेंगे मिल जायेगा।।
दीवा दावा कही जलाती, हुई अगर माँ देखी हो।
मुझे भरोसा पूरा है तुम, हमें जगह वह बतलादो।।
कभी कभी देखा है माँ को, दीवा जहाँ जलाती थी।
हम जब पूछा करते क्या है, तो हमको धमकाती थी।।
बूआ उसी जगह ले करके, पहुँच गई हमको तत्काल।
कुण्डी बन्द करी बाहर की, जब खोदा तो निकला माल।।
पंद्रह सौ रूपयों से छोटा, भरा हुआ था एक घड़ा।
बूआ अति विभोर हो उट्ठी, मैं भी खुश हो उछल पड़ा।।
समझा कर बूआ यों बोली, ख़बरदार जो कहीं कही।
जैसे तैसे ये ही तो है, तुम पै दौलत रही सही।।
घर कुनबे के जितने भी हैं, ठग ही ठग हैं बसे हुऐ।
ठग लेंगे सारों को पल में, रह जाओ फिर धंसे हुऐ।।
ये पैसे तुम दोनों के, ब्याहों में काम आजाऐंगे।
बिगड़े हुवे काम सब के सब, इस धन से बन जाऐंगे।।
बूआ सुहद दयालू थी ही, था अपने पै प्यार बहुत।
अब पैसे से हाथ खुले कुछ, पहले थे लाचार बहुत।।
बूआ कभी यहाँ आ रहती, कभी घर अपने ले जाती।

यथा समय अपने पल्ले से, भी सहायता दे जाती।।
हम छोटों छोटों की मंगनी, पहले ही थी हुई हुई।
पिता धाम जब चले गये तो, मंगनी वंगनी छूट गई।।
बुद्धिदास के लिये जो कन्या, करी गई थी पहले तै।
वह सम्बंध हुआ विच्छेदन, किया गया वह हमसे तै।।
थी इक और तीसरी लड़की, बुद्धिदास को वह वरदी।
एक मंढे हम दोनों की, उन लोगों ने शादी करदी।।
किसी ने अपनी बात न मानी, ब्याह दिये हम झटपट से।
दुलहन नहीं हमारी दुश्मन, बेठा दी घर में लाके।।
दहशत सी लगती थी हमको, उसे देख कर अन्तर में।
ज़्यादातर बाहर रहते अब, घुसते कभी कभी घर में।।
प्रेम लगा बढ़ने अब अपना, रामायण सुखसागर से।
चढ़ने लगी मनों में चर्चा, स्वाद बड़े हमको आते।।
पद्रह वर्ष आयु तक हमने, रामायण को कण्ठ किया।
पाठ निरंतर करते रहने, पर हमको वैराग हुआ।।
रस मानो अब रहा कहीं नंहि, मुरझाया लगता संसार।
जैसे फाड़ खायगे मुझको, ऐसे लगे मुझे घर बार।।
सोचा करते थे ग्रहस्थी से, परमात्माँ कैसे छूटें।
जकड़े हम नाहक बंधन में, ये बंधन कैसे टूटें।।
अति उत्तम हो किसी तरह यदि, पतनी अपनी मर जावे।
तो यह सब झंझट जो कुछ है, अपने सर से हट जावे।।
निष्कंटक हो जाँए मार्ग सब, जब जो चाहूँ सो करदूँ।
जब चाहूँ तब दण्ड कमण्डल, उठा उधर ही को चलदूँ।।
जन्म हो चुका था कन्या का, गृहस्थी का विस्तार हुआ।
इधर जगी उर अमर ज्योति, नीरस्ता का संचार हुआ।।
भावुकता वैराग्य आदि सब, सामिग्री ऐकत्रित थी।
बिना बहाने घर से कैसे, चलें आत्माँ चिंतित थी।।
कारण बिना कार्य का होना, सम्भव नहीं बताते हैं।
कारण के बनते ही कारज, क्षण भर में हो जाते हैं।।
कितनी देर छिपा सकती है, रूई आग को अपने में।
राख एक दम हो जाती है, दावानल को ढकने में।।
गाड़ी चढ़ी लैन पर अपनी, बस धक्के की देरी थी।
घर आना जाना तो केवल, जोगी जैसी फेरी थी।।

एक दफ़ा निज गाँव ही में थी एक जनेत।
हम भी थे जौनार में अपने कुटुम समेत।।

रात हो चुकी थी दावत को, जीम रही थीं सातों जात।
हम भी सब के बीच बैठकर, जीम रहे थे उनके साथ।।
हुआ पेट में दर्द अचानक, उठना पड़ा हुवे लाचार।
टट्टी की हाजित ज़ोरों की, पकड़ पाए मुश्किल से द्वार।।
ज्यों त्यों करके दरवाज़े से, जैसे ही बाहर आया।
निकल गई टट्टी कपड़ों में, रोका किन्तु न रूक पाया।।
था थोड़ा उस जगह अंधेरा, हुआ जहाँ हम से यह काम।
हमको देख न पाया कोई, था उस वक्त वहाँ सुनसान।।
जल्दी से निव्रत हो करके, चाहा के हम हट जावें।
हाथ और कपड़े धोने थे, जल बिन क्यों कर धुल पावें।।
वहीं सामने इक कूआ था, इक गड्ढे में पानी था।
किन्तु बहुत ही गंदा था वह, उस दम और न कुछ सूझा।।
जल्दी से मल त्याग त्यूग के, हाथ उसी में साफ़ किये।
अक्समात गुज़रा इक भाई, ऐसा करते भाँप लिये।।
सर नींचा हो गया उसी दम, ख़ुद ने ख़ुद को धिक्कारा।
ग्लानि आई अपने हमको, मन ने मन को फटकारा।।
टूटे से घुटनों पर चलके, ज्यों त्यों दरवाज़ा आया।
देखा तो इक हमें खोजता, हुआ भाई बाहर आया।।
लिये हुवे था हाथ परोसा, अपने को पकड़ाने को।
मेरे ऊपर डाल डूलके, अंदर गया जिमाने को।।
क्या बतलायें उस दिन हम पै, जाने कैसे ख़ाक पड़ी।
हों मलेक्ष पूरे हम जैसे, ऐसी हमको जाँच पड़ी।।
है मलीन हाथों पर भोजन, घ्रंणा युक्त कितना अपराध।
तुझे देख कर क्या कहता, होगा ये जितना यहाँ समाज।।
घूर घूर के देख रहे हैं, मानो ये दावत वाले।
भाग पड़ा घर ले वह भोजन, आकर कुत्तों को डाले।।
हाथ धोए माँजे और न्हाया, पर वो बूंद गई पाताल।
भाँडा फूट गया पंचों में, जान गये सब मेरा हाल।।
अब मुँह दिखलाने के क़ाबिल, नहीं समझता अपने को।
दुनियाँ सब तय्यार नज़र, आती है मुझ पर हँसने को।।
जिसने मेरा यह कुकर्म, देखा वह कभी न बख़्शेगा।
क्या जवाब दूँगा जब कोई, मुझ से ये सब पूछेगा।।

स्वच्छताई बाहर इतनी और, अंदर इतने कर्म मलीन।
इतना नींच कर्म करने को, बता कौन है तेरा दीन।।
हमें रात भर नींद न आई, प्रश्नोत्तर करते बीती।
हार गये हम ख़ुद अपने से, मनकी भावनाऐं जीतीं।।
मन बोला चल निकल यहाँ से, इज्ज़त अब काफ़ूर हुई।
अपनी बात बनी जो अब तक, एक मिनिट में चूर हुई।।
देख न दिखला अब मुँह अपना, चलदे अब घर से तत्काल।
छोड़ यहाँ अब क्या रक्खा है, इस घर को चूल्हे में डाल।।
जो सोना कानों को चीरे, लानत है उस सोने पर।
होकर पैदा, हों नपैद थू, ऐसे पैदा होने पर।।
रूके नहीं पल को शय्या पर, दबे पाँव पहुँचे घर में।
गौने का जोड़ा रक्खा था, पहन लिया लेकर तन में।।
पैसा घर में एक नहीं था, ख़ाली हाथ चले इकदम।
फ़कत एक गौने का जोड़ा, लेकर चले सिर्फ़ यह धन।।
निकल पड़े स्थापित करने, अमर शान्ति अंतस्तल में।
जिस घर में जन्में और पनपे, छोड़ चले उसको पल में।।
अंतर से अंतरयामी का, ध्रुव सम्बध मिलाने को।
चले टोह में चिंता मंणि की, धक्के मुक्के खाने को।।

क्या छोटी सी बात पर छूटा घर औ देश।
परमारथ पर यों हुआ अपना श्री गणेश।।

'पाँचवीं लहर'

की परनाम जन्म भूमि को, और दण्डवत की घर को।
नमन किया सब घर वालों को, देखा एक नज़र सब को।।
कन्या एक वर्ष की थी घर, उन्निस वर्ष आयु अपनी।
उन्निस सौ सत्तर सम्वत् था, जब ऐसी इच्छा उपजी।।
मुँह मोड़ा फिर मोह तोड़ कर, रात ढली होगी आधी।
निकल चले हम ग्रहस्थी तजकर, सुरता बाहर को भागी।।
रोकड़ साथ सवा रूपया बस, धोती औ इक चादर साथ।
सोच लिया आगा पीछा सब, छोड़ी डोर उसी के हाथ।।
पैदल चले नाँपते रस्ता, थे विचार के पर्वत संग।
साथ उन्हीं के चले झगड़ते, बड़े बड़े थे हृदय प्रसंग।।
पहुँच मुज़फ्फर नगर रात में, मंदिर में विश्राम किया।
रोटी और पानी का बिलकुल, नहीं किसी ने नाम लिया।।
अगले दिन भी वहीं रहे पर, रहे सोच के धंधे में।
किन्तु न पूछी बात हमारी, किसी सख़ी के बंदे ने।।
कपड़े जो सुँदर पहने थे, रूप रंग में थे चोखे।
इस कारण वश हमें न कोई, समझ सका होंगे भूके।।
पल्ले कहाँ धरी थीं रोकड़, खाते भी तो काहे से।
उत्तम जाना यों ही रहना, आगे हाथ फलाऐ से।।
तीन रोज़ भूके मरने के, बाद विचार आया मन में।
दुनियाँ में कुछ नहीं दीखता, जो है प्रभु के दर्शन में।।
अब तो मथुरा चलो वहीं, प्रभु के दर्शन हो पाऐंगे।
प्रभु सेवा दर्शन पर्सन कर, जीवन सफल बनाऐंगे।।
सड़क सड़क पैदल पद यात्रा, मथुरा की आरम्भ हई।
भूके कभी कभी हैं प्यासे, कभी कभी मिल गई कहीं।।
कुछ दिन बाद अलीगढ़ पहुँचे, मिला एक लाला हमको।
अपनी शकल भाँपकर बोला, क्या भोजन चहिये तुमको।।
या कुछ और परेशानी है, मुँह उतरा उतरा है कुछ।
पैसे धेले अगर न हों तो, कहो तुम्हें देंगे सब कुछ।।
जब मनुष्यता का अंकुर, हमने उस मानव में देखा।
तो हममें भी साहस आया, अपनी कहने सुनने का।।
हमने भी कह दिया दयालू, तीन रोज़ के भूके हैं।
इसी वास्ते होट और मुँह, अपने सूखे सूखे हैं।।
माँग नहीं सकते माँगा नंहि, आगे माँग न पाऐंगे।

प्रभु आगे ही हाथ पसारें, अन्य नहीं फैलाऐंगे।।
प्रभु दर्शन की भूक प्यास के, मारे मथुरा जाते हैं।
पेट भूक क्या करती अपना, इससे नंहि घबराते हैं।।
अपनी इस प्रकार की सुनकर, लाला भावुकता में आ।
पेट बोझ भोजन जिमवाकर, दिया दक्षणा में लोटा।।
कहा तुम्हें बर्तन ना होने, से तंगी रहती होगी।
बिना पात्र मुश्किल पड़ती है, भोगी हो या हो योगी।।
हमने उसका भक्ति भाव लख, वह लोटा स्वीकार लिया।
उस लाला से विदा प्राप्त कर, आगे को प्रस्थान किया।।
ज़रा दूर निकले होंगे हम, खा पीकर लेकर लोटा।
एक डाट सी देकर हमको, दो सिपाहियों ने रोका।।
ठहरो अपना नाम पता दो, जब जाने देंगे आगे।
तुम ऐसे लगते हो जैसे, कहीं से हो भागे वागे।।
अपना नाम पता देकर हम, बोले, मथुरा जाते हैं।
दर्शनार्थ श्री कृष्ण की, पैदल घर से आते हैं।।
इस प्रकार अपनी सुनकर, उनमें से बोला एक।
जैसे कुछ सलाह देता हो, अपने हित की नेक।।
तुम जैसे लड़के सड़कों पर, अब न फिरेंगे आवारा।
चलो नौकरी देंगे तुमको, क्यों फिरते हो नाकारा।।
नाम नूम लिख पढ़ लेते हो, बोलो जल्दी चुप क्यों हो।
काम बहुत हलका है बोलो, मौज करोगे चलते हो।।

हम तो बोल न पाये इतने, दूजा बोल पड़ा इकदम।
कैसे नहीं चलेगा डण्डे, के बल से, ले जाऐं हम।।
हमें घुड़क कर बोला देखो, सीधी तरह समझ जाओ।
तुम्हें नौकरी उम्दा देंगे, अपने साथ चले आओ।।
तुमको हम पचास का नौकर, सरकारी बनवा देंगे।
नाम नूम लिखने भर का ही, काम तुम्हें दिलवादेंगे।।
मना किया हमने बहुतेरा, हुई बड़ी खेंचा तानी।
ले ही गये हमें अपने संग, एक हमारी ना मानी।।
भरा हुआ था एक डिपू सा, छत्तिस क़ौमों से भरपूर।
पहरे लगे हुवे थे जिसके, चारों तरफ़, शहर से दूर।।
डेरे लगे हुवे थे चारों, तरफ़ छाँवनी सी छाई।
भेद भाव उस जगह कहीं भी, दिया न हमको दिखलाई।।
एक जगह खाते सब मिलकर, सब जा छूते खाने को।
रोक टोक कुछ नज़र न आई, उन चौकों में जाने को।।

दो दिन तक तो जान न पाये, रोटी कौन बनाता है।
धींवर रोटी पोता देखा, औ चमार जिमवाता है।।
चला न बस अपना क्या करते, दो दिन आँख मींच सटकीं।
दिवस तीसरे भंगी देखा, वहीं रोटियाँ दे पटकीं।।
चले आए अपने डेरे में, दो दिन तक उपवास किया।
उन्हीं दिनों के बीच एक, पंडित जी हमको वहाँ मिला।।
आक्रत्ति क्रोधी जैसी थी, योग भ्रष्ट होवे जैसे।
हमें देख कर योग भ्रष्ट, बोला तुम आन फंसे कैसे।।
दाने से पंछी फंसता है, तुम कैसे फंस गए कागा।
तुम जैसों को फंसा देखकर, हम भी आन फंसे बाबा।।
एक मरज़ के दो बीमारों, का जब हो जाता संयोग।
तो दोनों ही गाया करते, बैठ बैठ अप अपना रोग।।
खाने पीने की अड़चन, दोंनों के लिये समस्या थी।
बातों बातों भाव बदलकर, बोले उनसे भइया जी।।
हम भी पंडित तुम भी पंडित, यह उलझन सुलझा लेंगे।
यदि सूखा राशन ले लो तो, स्वयं बनाके खा लेंगे।।
फंस तो गये न शक इसमें कुछ, पर ईमान तो बचवादो।
जैसे भी हो हमें यहाँ से, आटा वाटा दिलवादो।।
पंडित जी बोले तो अच्छा, खाना पीना सब तजदो।
हम शौहरत करते हैं इसकी, तुम उपवास शुरू करदो।।
क्रोधी तो थे ही पंडित जी, भूखे और प्रचण्ड हुवे।
हुवे उतारू संघर्षण पर, बुरी तरह उद्दण्ड हुवे।।
लड़ लड़ पड़ते, थे जो आता, कहने हमसे खाने को।
शौहरत भूकों की सुनकर सब, आने लगे मनाने को।।
सुना मैस मैनेजर ने जब, तो दफ़्तर में बुलवाया।
छान बीन करने पर उसने, सूखा राशन दिलवाया।।

इबतदा ही है अभी रोता है क्या।
आगे आगे देखिये होता है क्या।।

मन के हारे हार हैं, मन के जीते जीत।
मन ही देवे सत साहेबी, मन ही करे फजीत।।

कुछ दिन बाद हुकुम आया, सब का कलकत्ते चलने का।
रेलों में भर भर पहुँचाया, कलकत्ते अपना जथ्था।।

वहाँ पहुँच करके हमको, अफ़सर के आगे पेश किया।
उसने देखे हाथ हमारे, तो हमको आदेश दिया।।
जाओ चूना मलो हाथ से, सख़्त न हों जब तक इतने।
कैसे काम करोगे जाकर, हाथ मुलायम हैं कितने।।
तीन रोज़ तक हमने अपने, हाथों से चूना रगड़ा।
तीन रोज़ के बाद हाथ का, सख़्त हुआ कुछ कुछ चमड़ा।।
तब उन लोगों ने हमको, अपने ही कपड़े पहनाये।
अपने जो कपड़े थे तन पर, सब उतार कर धरवाये।।
जितने भी टापू हैं स्थित, इस भारत के दक्षिण में।
भारत वासी पकड़ पकड़ कर, सब आबाद किये उनमें।।
जितने भी आवारा फिरते, भारत में मिल जाते थे।
भर भर कर उनको जहाज़ में, वहाँ बसाकर आते थे।।
उन्हीं टापुओं में इक फ़ीजू, नामक टापू कहलाता।
करने को आबाद उसे, अंगरेज़ों ने हमको छाँटा।।
इक जहाज़ आ खड़ा हुआ, हम लोगों को ले जाने को।
हुकुम हुआ हम लोगों को इक, लम्बी लैन बनाने को।।
बैठा था इक साहब आगे, मौहर हाथ पर ठप देता।
दूजा अफ़सर झट पकड़ उसे, अंदर जहाज़ के कर देता।।
हम दोनों पंडित पंडित, आगे पीछे थे खड़े हुवे।
अपने अपने बिस्तर अपनी, बग़लों में थे लिये हुवे।।

कहना सुनना हो अगर पंडित जी कुछ शेष।
तो कहलो अब वक्त है वरना छूटा देश।।

आते ही दिया धर्म भेंट अब, देश भेंट चढ़ने को है।
जो कहना कहलो वरना, लाईन आगे बढ़ने को है।।
साधनाऐं तुमने जो कीं वे, सिद्धी कब काम आवेंगी।
वतन छोड़ कर जब चलदें क्या, तब बंदूक चलावेंगी।।
पंडित ने सोचा कुछ सुनकर, बोला मेरे पीछे आ।
खड़े खड़े बस रहना तुम तो, लाईन से बाहर आजा।।
जो कहना है मैं कह लूंगा, एक शब्द तुम मत कहना।
अभी भुगतता हूँ इनको तुम, केवल पास खड़े रहना।।
यह कहते ही योग भ्रष्ट, हो गया खड़ा लाइन तजकर।
हम भी लाइन छोड़ छाड़, जा खड़े हुवे उससे लगकर।।
हमें लाइन से अलग देख, दो आदमियों ने आ पकड़ा।

और डपट कर के बोले, ऐ, कैसे तुम याँ हुआ खड़ा।।
किसी तरह का भी उत्तर जब, हमने उनको नहीं दिया।
उन सिपाहियों ने हमको, साहब के आगे पेश किया।।
देखो साहब ये दोनों, थे लैन छोड़ कर खड़े हुवे।
फिर साहब ने पूछा हमसे, तुम लाईन से क्यों निकले।।
योग भ्रष्ट बोला साहब, पहले हमको यह समझादो।
कहाँ भेज रहे हो तुम हमको, कारण यह है बतलादो।।
साहब बोला यह सुन करके, क्या तुम्हें मालूम नहीं।
क्या इस भर्ती में अपनी, मरज़ी से भरती हुआ नहीं।।
पंडित जी बोले साहब हम, मर्जी से कब आये हैं।
हम सिपाहियों ने क्या क्या, धोका दे दे बहकाये हैं।।
कहते थे तनख़ा पचास की, हम तुमको दिलवायेंगे।
नाम नूम लिखने का केवल, तुमसे काम कराऐंगे।।
अब तक हमें नहीं बतलाया, फ़लाँ जगह तुम जावोगे।
कहाँ हमें ले जाते हो और, क्या हमसे करवाओगे।।
कौन हो तुम, साहब बोला, क्या करते हो घर पर अपने।
महाराज ब्रह्मण हैं हम तो, कब ऐसे काम किये हमने।।
कथा कीर्तन करने का ही, पेशा अपना है साहब।
आप कराना चाह रहे जो, करी न कर सकते हैं अब।।
अपना वतन न छोड़ेंगे, हमको तो छुट्टी दिलवादो।
हुकुम दिया साहब ने इनको, फ़ौरन वापिस भिजवादो।।
दो समान इनको वापिस, जो दफ़्तर दाख़िल है इनका।
नक़द ख़र्च और रेल पास, बन वाकर देदो घर तक का।।

नक़द पाँच और रेल का, मिला साथ में पास।
जूते कपड़े पहन के, भगे जोड़ कर हाथ।।

मथुरा का पास लिया हमने, मथुरा का लक्ष हमारा था।
श्री कृष्ण चंद्र के दर्शन का, पहले ही मता विचारा था।।
किन्तु बनारस आया जब, और रेल़ रूकी स्टेशन पर।
कौतूहल सा होकर के कुछ, असर हुवा इकदम मनपर।।
ओ पागल क्यों फिरता यों, तू आज है विद्या के घर में।
अब भी है कुछ आयु शेष, बेटा बीते कुछ अवसर में।।
फिर शेष रहेगा पछताना, ये अवसर हाथ न आयेगा।
गर निकल गया यह अब मौक़ा, तो जीवन भर पछतायेगा।।

हम उतर गये स्टेशन पर, अपना मन चाहा कर ड़ाला।
औ शहर बनारस जा पहुँचे, प्रातः खोजा इक विद्याला।।
जब ऐन द्वार पर जा पहुँचे, तो मन फिर डांवा डोल हुवा।
विद्या ही यदि पढ़ली तैंने, तो क्या विशेष कुछ प्राप्त हुवा।।
सभी शास्त्री पंडित फिरते हैं, जीवन में उनके क्या हुआ।।
काँए काँए कव्वे की भाँति, करके तो हासिल होगी।
पढ़कर फिरे पढ़ाता जग को, काँए काँए ज़्यादा होगी।।
इससे बिना पढ़ा ही अच्छा, लाभ प्रभु की सेवा में।
इस विद्या का फल कड़वा है, मेवा है उस सेवा में।।
लौट पड़ा यह ध्यान आते ही, विद्यालय के आगे से।
बीता जब पढ़ने का अवसर, क्या होवे अब जागे से।।
लौट गये उस जगह जहाँ पर, अपना रैन बसेरा था।
पढ़ लूँ या रहने दूँ पढ़ना, इस दुविद्धा ने घेरा था।।
बीती रात बात यह मथते, निर्णय हो न सका इसका।
प्रातः फिर उठकर दो बारा, विद्यालय की ओर चला।।
लेकिन जब दरवाज़ा आया, उन्हीं विचारों के घेरा।
क्या रक्खा है इस पढ़ाइ में, जीवन बिगड़ जाए तेरा।।
वापिस लौटा फिर थक करके, अन्तर रह रह चिल्लाया।
कौन रोकता है यह अंदर, हमको समझ नहीं आया।।
अंदर थी खेंचा तानी सी, मल्ह युद्ध जैसे कोई।
विदा समय पति से पतनी ज्यों, सिसक सिसक कर हो रोई।।
आठ रोज तक विद्यालय के, द्वारे पर आया लौटा।
पर अंदर की हठ ने मुझको, विद्या पढ़ने से रोका।।
नौवे दिन जब विद्यालय के, द्वारे आकर खड़ा हुवा।
उसी तरह से अन्तर में वह, संर्घषण आरम्भ हुवा।।
मैं तमाश बीनी सी गति में, खड़ा हुवा नत्मस्तक सा।
अनायास इक बोल सुना, कानों में मेरे क्यों बेटा।।
चिन्तातुर औ विचलित से क्यों, खड़े हुवे हो द्वारे पर।
पहलवान जैसे निढाल सा, होता कुश्ती हारे पर।।
चौंक पड़ा यह सुनते ही में, देखा एक महात्माँ हैं।
दर्शन था तेजोमय उसका, जँचते पुण्य आत्माँ हैं।।
बोला जभी महात्माँ जी, क्या बतलाऊँ उलझन अपनी।
व्यस्त आठ दिन से हूँ इसमें, सुलझाने को यह गुथ्थी।।
द्वारे तक विद्यालय के, आसानी से आ जाता हूँ।
जानें किस शक्ती द्वारा, द्वारे पर पकड़ा जाता हूँ।।

सोच–सोच कई दिन से, ठिठक कर रह जाता हूँ।।
रोक रही जाने से अंदर, द्वन्द युद्ध सा छिड़ा हुआ।
वशीभूत हूँ अंदरले के, जैसे के हूँ बँधा हुआ।।
विवश लौटना पड़ता याँ से, समझ न आती यह लीला।
आप अगर समझा सकते हो, मुझ पर थोड़ी करो कृपा।।
अपने मुँह से ऐसी सुनकर, महामुनी बोले मुझसे।
क्या लोगे लौकिक विद्या में, क्या हासिल तुमको इससे।।
विद्या है केवल पर लौकिक, प्राप्त अगर करना चाहो।
जगन्नाथ जी जाकर के तुम, जगतनाथ को अपनाओ।।
दर्शन साक्षात् होवें, कल्यांण तुम्हारा करदेंगे।
जा बेटा झोली विद्या की, वे पूर्ण रूप से भरदेंगे।।
हो गये अलख कहकर इतना, हम तकते रह गये कहां गये।
दौहराते थे मन ही मन में, जो महा पुरूष ने वचन कहे।।
भटके को जैसे मार्ग मिला, डूबे को मिला सहारा सा।
इस जीवन को इक लक्ष मिला, फिरता था मारा मारा सा।।
संतोष भरा था शब्दों में, सुन पूर्ण रूप से शान्त हुवा।
जैसे संघर्षण का मेरे, उर से इकदम प्रांणन्त हुवा।।

अब जगन्नाथ की ओर की, मन में उठी उमंग।
पर पैसों की ओर से, थे बिलकुल हम नंग।।

थे पांच नक़द रूपये पल्ले, जो धर्म गवाँकर लाये थे।
कलकत्ते से जब चले मिले, जो साहब ने दिलवाऐ थे।।
थे आज बहुत खुश आपे में, हम गंगा न्हाने जा पहुंचे।
तो हमें देख इक पण्डे ने, गंगा में न्हाते जा दबोचे।।
अर्पण तर्पण प्रारम्भ किये, चंदन से मस्तक आ लेपा।
क्या मना किया हमने थोड़ा, पर एक रूपया जा ऐंठा।।
अब चार नक़द रूपये बाकी, औ जगन्नाथ की घर ठानी।
उन महा पुरूष के वचनों ने, की पूरी मेरी अगवानी।।
ढाई में कम्बल लिया एक, दो पैसे रोज चने आबे।
इतने पर ही संतोष किया, पानी पी पीकर दिन काटे।।
चार आने हमसे खर्च हुवे, जब यात्रा का आरम्भ हुवा।
था शेष सवा रूपया हमपै, जो इक वैष्णव ने भांप लिया।।
थे वे भी एक महात्माँ ही, आकर बोले क्यों ब्रह्मचारी।
क्या किसी यात्रा पर चलने, की कर रक्खी है तय्यारी।।

श्री जगन्नाथ जी के दर्शन, करने का अपना इरादा है।
उसने भी अनुमति दी अपनी, जैसे वह भी आमादा है।।
बोला यह अच्छा साथ बना, संयोग हुवा अच्छा अपना।
वे पैसे हमने उन्हें दिये, तो लो फिर ये तुम ही रखना।।
जिस जगह खर्च होगा करना, लो रक्खो अपने पास तुम्हीं।
जब जगन्नाथ ही जाना है, तो साथ साथ तो हो तुम भी।।
वे पैसे उनको सोंप दिये, जिस जगह खर्च होता करते।
इस तरह यात्रा शुरू हुई, हम चले गये आगे बढ़ते।।
सोलह दिन तक उन पैसों से, हम दोनों के अन्न पान हुवे।
जब निमट गया वह धन अपना, तो साधू अंतर ध्यान हुवे।।
गांवों से बचकर पड़ते हम, विश्राम किया करते थे जब।
वृक्षों के नींचे बैठ बैठ हम, रात काट लेते थे सब।।
थे अभी गया से इधर उधर, संध्या का काल निकट आया।
विश्राम कहीं करना ही था, सन्निकट एक आश्रम पाया।।
सोचा है कोई महात्माँ ही, बाहर ही रात बितालेंगे।
कुछ थोड़ी सी लकड़ी करके, सन्मुख धूनी सिलगा लेंगे।।
लकड़ी ऐकत्रित कर लीं जब, तो अग्नी लेने हम पहुँचे।
हमने प्रणाम की जाकरके, मुंह ऊपर किया नमन सुनके।।
पूछा अपना स्थान नाम, हमने सब पूरा बतलाया।
सुन अपना नाम पता पूरा, वह महा पुरूष कुछ हर्षाया।।
संकेत किया अंदर आओ, हम जा बैठे इक आसन पर।
कुछ हो प्रसन्न सी मुद्रा में, गदगद हो बोले अकुलाकर।।
तुम तो अपने प्रादेशिक हो, बल्के अपने भाई निकले।
हम भी चिराऊँ के हैं भाई, तुम इधर कहाँ फिरते इकले।।
हमने व्रतान्त सब कह डाला, सब हाल सुना डाला अपना।
पिछला चिट्ठा सब खोल दिया, अगला सन्मुख है जीवन का।।
सत्कार किया सुनकर अपना, इक बेल निकाली धूने से।
जो सिद्ध करी हुई थी उनकी, थी अद्‌भुत एक नमूने से।।
ख़ाली होने का नाम नहीं, जितना गूदा लो भरजाती।
खाने पीने के बाद पुनः, फिर धूने में दाबी जाती।।
दो टुकड़े सद्रस कटोरों के, जोड़े धूने में दाब दिये।
जब भूक लगी तो राख हटा, खाने पीने को काढ़ लिये।।
उसका प्रशाद अपने को भी, उन महापुरूष ने खिलवाया।
स्वादिष्ट बड़ा ही था प्रशाद, भर पेट खिला जल पिलवाया।।
रजनी बीती आनंद सहित, प्रातः जब चलने की ठानी।

आशीर्वाद अपना देकर वे, महापुरूष बोले वाँणी।।
यदि साधनाओं का स्वाद अमर, ऐ वत्स चाहते हो चखना।
तो इस जीवन में चार बात, अपनी भी याद सदा रखना।।
तजना अधिक वस्त्र और जूते, महात्माओं के संग रहना।
दूध, दही, गुड़, पान माई के, कर से कभी नहीं गहना।।
माई अगर घर नौत बुलावे, मत उसके न्योते जाना।
कहीं फिरो पर इन्हें न करना, जाओ यही था समझाना।।
विदा हुवे हम ले विदायगी, में संतों के वचन अमोल।
सड़क आई तो जा बैठे इक, पेड़ तले निज गठरी खोल।।
बेंत टाँग दी एक डाल पर, जूता पेड़ तले छोड़ा।
बाँट दिया आते जातों को, था हम पै धोती जोड़ा।।
कोट एक को दिया दुपट्टा, दूजे को जा पकड़ाया।
लोई एक माई को दी, इस तरह मामला निमटाया।।
दो लुँगी इक धोती की कीं, एक लंगोटी कुरता फाड़।
जो कुछ था अपने पल्ले में, इसे किया यों पल्ला झाड़।।
लुटिया हाथ कमलिया कंधे, ले अब भेष फ़कीराना।
देखो संत वचन तीखापन, पल में कर गए दीवाना।।

कारी कामरी रे, मोको प्यारी लागी तूं।
सब सिंगार को शोभा देवे, मेरा दिल बाँध्या तुम सो।।
तूं नाम निरगुण कहावही, सब सरगुण के सिरे।
सब नंग मोती तेरे तले, कोई नाही तुझ परे।।
रूह अल्ला पहरी अन्दर, हुई नहीं जाहिर।
दुनिया ह्दय अंधली, सो देखें नजर बाहिर।।
पट पहरें खाएँ चीकना, हेम जवाहर सिंगार।
हक लज्जत आई मोमनों, तिन दुनी करी मुरदार।।
सुहाग दिया साहिब ने, कामरी सुहागन।
आंगू बोले बुजरग, सराही साधू जन।।
हमारे ताले मिने, लिखे अल्ला कलाम।
महामत कहें सब दुनी को, प्यारी होसी तमाम।।

एक महात्माँ के वचनों ने, कितना हल्का किया हमें।
जानें कितने हलके होंगे, और मिले यदि जीवन में।।
इल्लत कटी बोझ ढोने से, लदे लदे से फिरते थे।
अब साधू से भी लगते हैं, तब ग्रहस्थी से लगते थे।।

जितना संग्रह होता पल्ले, मोह सभी में रहता है।
मोह मूल माया का प्राँणी, इसमें उलझा रहता है।।
नुक़्ता भला महात्माँ जी ने, दिया, हैं उनके आभारी।
साथ साथ वस्त्रों के बंट गई, अपनी ममता भी सारी।।
होकर के निर्द्वन्द यात्रा, पर अब चले लपक करके।
रात काटते बैठे बैठे, घुटनों से सर ढक करके।।
अब साधन सा जँचा हमें कुछ, आया मज़ा फ़कीरी का।
हो गई चिंता भस्म चिता सी, पाया राज़ सफ़ीरी का।।

चली यात्रा इस तरह अपनी हो निर्द्वन्द।
मिलने को निज यार से फेंकी उर्द्ध कमंद।।

ज्यों ज्यों पग पड़ते आगे को, निष्ठा दुगन चौगुन बढ़ती।
अब इस पौड़ी कल उस पौड़ी, चली गई ऊपर चढ़ती।।
फुरना फुरी जगा अंतस्तल, बड़े ज्वार भाटे आये।
दाह जलन जो संग लगे थे, इकदम राख हुवे पाये।।

मगर रहे दृढ़ भीतर से, नहीं कहीं घबड़ाए।।

बाह्य अंग अपना हल्का, अंदर भी सब हल्का हल्का।
वासनाऐं अंदर जो थीं जल, गल गल कर उनका ढलका।।
चार रोज़ पश्चात् रात्रि में, टिके एक बट के नींचे।
दिये हुऐ घुटनों में सर हम, बैठे थे आँखें मींचे।।
पहर रात बीते गाने की, इक आवाज़ मधुर आई।
जैसे कहीं कीर्तन हो, ऐसा कुछ आया सुनवाई।।
सोचा कोई महात्माँ होगा, सत संग भी हो सकता है।
प्रभू नाम संकीर्तन में तो, वक्त अनूठा कटता है।।
साथ रह सके यदि यात्रा में, तो फिर उच्च हमारे भाग।
दिन व्यतीत हो चलते चलते, रात कटे सत्संग में जाग।।
सुरता चली उधर को अपनी, हम भी छोड़ चले आसन।
पहुँच गये जब निकट बहुत ही, जहाँ हो रहा था गायन।।
लालटैन बुझ गई एक दम, गायन बंद हुआ इक साथ।
ईंट शुरू हुई हम पै आनी, मिली दक्षणा हाथों हाथ।।
उस प्रशाद को पाते ही, लौटे आसन को हम तत्काल।
आसन पर जब जा बैठे, दोनों हाथों से छेते गाल।।
करी प्रतिज्ञा अब आइन्दा, आसन कभी न छोड़ूँगा।
यदि छोड़ा तो अब कै मुँह को, अच्छे ढंग से तोड़ूँगा।।

पीट पाट कर अपने मुँह को, हमने मन को धर जोता।
पूछा यदि वहाँ पकड़े जाते, मन फिर बतला क्या होता।।
तू भागा रस पर ललचाकर, चाह रहा था रस चखना।
बिना बुलाये औरों के घर, बोल किसे न पड़ता पिटना।।
तू भी अपना मीत नहीं है, जान लिया है रस लोभी।
तुझ ही से संबंध न रखना, क़सम है अपनी मुझ को भी।।
तेरा मेरा मेल नहीं कुछ, तू अपनी कर मैं अपनी।
तुझे निभानी बातें अपनी, मुझे बात अपनी रखनी।।
तूं तो बिन सोचे समझे ही, ओछे वार सदा करता।
अनकर को कर उठता पलमें, कर्तव्यों से डर भगता।।
मैं तेरा भिक्षुक नंहि बल्के, तू ही है भिक्षुक मेरा।
सावधान होकर रहना मन, पतन करूँगा अब तेरा।।
बड़े दिनों में जगा हूँ सोके, चुभा रहा तू जैसे शूल।
रह न पाओगे काँटा बनकर, मन उन दिनों का जाओ भूल।।
जान जान की बाज़ी है, देखें तेरी अब मनमानी।
हमने भी कस लिया लंगोटा, तुझे देखना अभिमानी।।
या तेरी अर्थी निकलेगी, या अब मेरी निकलेगी।
या मिल जुलकर साथ रहेगा, गाड़ी यों नंहि धिकलेगी।।
तेंने अब बंगालन से जो, हम पै पत्थर फिकवाये।
क्या मिल गया तुझे मन बतला, कौन कौन से यश पाये।।
शहंशाह स्थूल कहाता, अक़ल नहीं पर धेले की।
गुरू ज़माने भर का बनता, नहीं बराबर चेले की।।
परदेशों में विचर रहे हैं, ख़बरदार होकर रहना।
सम्भल सम्भल पग धरना अब, आइन्दा इतना ही कहना।।
पाँच बजे तक तक़रीबन हम, अंतर द्वन्दों से जागे।
उठा कमलिया पेड़ तले से, प्रातः ही उठ भागे।।

शंकर विमुख भक्ति चहे मोरी।
वे मति मंद मूढ़ मति थोरी।।

ध्यान मनन चिंतन अपना सब, शिव शंकर का रहता था।
निगुरे तो थे ही हम तब तक, कभी 2 मन बहता था।।

देखा भाला कुछ नहीं ज्ञान न कुछ पहचान।
पर गाड़ी बढ़ती रही आगे हर इक आन।।

देखें क्या करता है मालिक, मेहेरबान कब होता है।
हृदय चाहता जो कुछ अपना, कब पूरा वह होता है।।
बैठे थे ध्यानस्त एक दिन, पेड़ तले थी आधी रात।
बाँह मरोड़ी पकड़ किसी ने, चेत कराने को इक साथ।।
बुत सा बन जाता था अपना, बहुत हिलाकर चेताया।
जब देखा दाँऐ बाँऐ तो, नज़र कोई भी नंहि आया।।
सहसा इक प्रकाश सा उट्ठा, तेज़ अधिक होता पाया।
जिस प्रकाश ने इस धरती का, ज़र्रा ज़र्रा चमकाया।।
ज्यों प्रकाश का पर्वत फट गया, या नींचे उतरी बिजली।
तेज पुंज फट पड़ा कहीं से, चपला जैसे चमक पड़ी।
इतने में इक दिव्य पुरूष की, प्रतिमाँ आकर हुई खड़ी।।
बाँह हाथ में न जाने किसके, अब भी मेरी लगी हुई।
आँख हमारी देख रही थी, द्रश्य उपस्थित फटी हुई।।
धुंधला था आकार शुरू में, अब इकदम स्पष्ट हुआ।
साफ़ दृष्टि गोचर होते ही, उन के मुख से शब्द हुआ।।
आप फ़कीरी ले लो हमसे, इतना कह ख़ामोश हुआ।
किस से ले लें योग्य न कोई, दिखता उत्तर तुरंत दिया।।
पानी कहा छान पर पीना, गुरू जानकर करना ठीक।
अपने को तो बड़े बड़ों ने, अक्सर दी है ऐसी सीख।।
दिव्य पुरूष इतनी सुनकर के, फ़ौरन अन्तरध्यान हुवे।
बाह प्रकाश जैसे आया था, तेज पुरूष दोऊ म्यान हुवे।।
विस्मय से भरे हुए हम, मन ही मन रीझ गए।।
बांह हमारी छूटी जैसे, यह हमको महसूस हुवा।
एक तमाशा सा होकर के, सारा वहीं विलीन हुवा।।
अन्तर द्वन्द लगे बढ़ने फिर, कैसा था यह दिव्य प्रकाश।
बाँह हमारी पकड़ जगाने, को ये कौन खड़ा था पास।।
शक्ती थी या व्याधा कोई, तार्त्पय्य क्या था इनका।
इसे समझने की इच्छा से, वेग बढ़ा अपने मनका।।
अपने ढ़ंग का एक निराला, चमत्कार देखा यह आज।
वृथा नहीं था अवश्य कोई, छिपा हुआ इसमें भी राज।।
नहीं इशारा किया किसी का, किसको गुरू बनालें हम।
जब दर्शन का कष्ट किया तो, बतलाते तो कम से कम।।
अपनी समझ नहीं आई कुछ, किसका हो सकता आवेष।
क्या जानें किस कारण वश, आया यह आज हमें आदेश।।
लगा चिपकने हमसे कोई, इतना जंचने लगा हमें।

हुवे अग्रसर प्रातः उठकर, हम फिर अपनी यात्रा में।।
दो दिन और अकेले बीती, मिला नहीं संगी साथी।
संत साथ को मिला न अब तक, रह रह सीख याद आती।।

वचन महात्माँ के हमें, रह रह आते याद।
जिसने चार बात दे करके, बख्श़ा हमको आशिर्वाद।।

संध्या काल निकट आया जब, खोजा टिकने का स्थान।
गये भास्कर अस्ताचल को, अन्धकार सा पहुँचा आन।।
कुटिया सी दीखी अपने को, दृष्टि पड़े कुछ साधूजन।
हम भी उसी दिशा में लपके, जा पहुँचे आनन फ़ानन।।
आसन लगे हुवे थे कुछ के, बैठी थी इक माई पास।
सोने को गुदगुदा किये थे, नीचे बिछा बिछाकर घास।।
हमने कुछ विनम्र से होकर, प्रश्न किया क्यों माई जी।
किस यात्रा पर चले हुवे हो, बोली वे जगन्नाथ जी की।।
क्या अच्छा हो अगर आप, हमको भी साथ साथ रखलें।
इतनी कृपा आपकी से, हम भी उनके दर्शन करलें।।
कितने मील रोज चलते हो, माई जी ने प्रश्न किया।
सतरह मील चला करते हैं, हमने उत्तर उन्हें दिया।।
बोली तुमसे नहीं निभेगा, तीन मील हम चलते हैं।
तीन मील भी मुश्किल से ही, अपने रोज निकलते हैं।।
उनकी सुनकर हमने सोचा, साधू जन को आने दो।
उनही से कुछ बात करेंगे, इसको बात बनाने दो।।
कहाँ गये हैं साधू जन ये, हमने पूछा माई को।
तो उत्तर पाया बस्ती में, गये हुवे हैं भिक्षा को।।
बैठ गये उनकी प्रतीक्षा, करने को इक पेड़ तले।
कुछ थोड़े से समय बाद ही, भिक्षा कर साधू लौटे।।
प्रणामादि उपरान्त साधुओं, से हमने उठकर पूछा।
तुम लोगों के साथ हमारी, भी रहने की है इच्छा।।
बड़ी कृपा हो यदि आज्ञा दो, इकदम अपन अकेले हैं।
कष्ट बड़े होते इकले को, सो अब तक तो झेले हैं।।
पर अब चाह रहे संग रहना, आज्ञा हमें किसी की है।
साधू जन सब इक स्वर बोले, यह तो बात खुशी की है।।
हमें साथ रखने में तुमको, दुख्ख नहीं कुछ है आराम।
साथ साथ कल को तुम अपने, निश्चय ही करना प्रस्थान।।

खिचड़ी भी कुछ दी हमको, और कहा बनाकर के खालो।
आसन निकट हमारे ही, चाहो तो अपना फैलालो।।
सूखे पत्तों में खिचड़ी की, लुटिया अपनी फदकाली।
कुछ कच्ची कुछ पक्की सी कर, हमने अंदर सरकाली।।
साधू बने स्वाद फिर कैसा, जैसा मिला प्रणाम किया।
जैसा समय जगह जैसी हो, उस ही में आराम किया।।
टुकड़ा कभी कभी पूरी हैं, कभी कभी उसकी भी टाल।
साधू उस ही को कहते हैं, हर हालत में जो खुशहाल।।
साधू साधक को कहते हैं, साधन होता लक्ष्य प्रथम।
साधन है परहेज निभाना, यही नियम है औ संयम।।
प्रातः ही उस साधू मण्डली, ने चलना आरम्भ किया।
हमने भी उनसे आज्ञा ले, संग चलना प्रारम्भ किया।।
ग्राम एक आया रस्ते में, शाम निकट थी होने को।
आटा सीदा चाह रहे थे, साधू रोटी पोने को।।
एक जगह भिक्षा जा मांगी, भिक्षा जो देता था सेठ।
उसने गिना हमें चारों को, पर भिक्षा दो को की भेंट।।
लख करके हम भिक्षा दो की, चले अन्य से लेने को।
छोड़ दिये साधू औ माई, उस भिक्षा को लेने को।।
तुम्हीं यहाँ से ले लो भिक्षा, हम आगे ले लेंगे और।
कह के उनसे बढ़े अगाड़ी, तुम्हें मिलेंगे अगली ठौर।।
आलू खुदते मिले अगाड़ी, एक खेत में थोड़ी दूर।
रूकवाया हमको किसान ने, अपने पास भेज मजदूर।।
दिये पेट भर आलू उसने, हम दो को उसकी खूराक।
विदा हुवे आलू भोजन ले, हम उससे आदर के साथ।।
आगे पहुँच उबाले हमने, जीम लिये हम दोंने ने।
थोड़े से माई की खातिर, बचा लिये हम दोंनो ने।।
तभी बुलाने आ भी पहुँची, माता उसी महात्माँ को।
जाने से इन्कार साफ, कर दिया परन्तू माता को।।
बोले न तो वहाँ जायेंगे, ना आइन्दा साथ रहें।
हमें अलग जानो अपने से, जहाँ मौज हो वहाँ रहें।।
अगर आपकी इच्छा हो तो, सुबह यहीं पर आ जाना।
हमें तुम्हारे साथ न रहना, अधिक नहीं कुछ समझाना।।
माई जी को दुख्ख हुआ अति, साधू से इतना सुनकर।
बेचारी लौटी निराश हो, अपने मन में दुख पाकर।।
अलग मार्ग पकड़ा माई ने, हम दोनों से फट करके।

जब न आइ सूरज निकले तक, उनकी बाट देख देखके।।
हमने अपना मार्ग सम्भाला, चले वहाँ से हम दोंनों।
लेकिन आगे मिले मार्ग में, साधू औ माई दोंनो।।
जो साधू अपना साथी था, किंचित बात न की उनसे।
एक तरफ रस्ते पर वे, हम एक तरफ अपनी धुन से।।
एक जगह ठहरे हम सब, माई लाई उनको भोजन।
जीमे नहीं महात्मा जी तो, दुखी हुवा माई का मन।।
सोचा था उसने जीमेंगे, बना लिया था खाने को।
इस ही भ्रम से ले आई वह, माई उन्हें जिमाने को।।
माई उन्हें जिमाकर के ही, भोजन जीमा करती थीं।
लेकिन जब इन्कार किया, माई जी तब से बरती थीं।।
कल कुत्तों को डाल दिया था, अब भी कुत्तों को ड़ाला।
जैसे प्रंण हो उनका कोई, माई जी ने दिया जता।।
साधू अपने साथ साथ थे, जीमाँ करते रोजाना।
तीन रोज तक माई जी ने, जीमाँ नहीं एक दाना।।
किये रही प्रंण माई भी, जब तक साधू नंहि जीमेंगे।
भोजन का इक दाना तक, हरगिज हरगिज नंहि हम लेंगे।।

वाँ से चलकर के किया, खड़गपुरी विश्राम।
था वो इक बंगाल का, बड़ा प्रतिष्ठित ग्राम।।

'छठीं लहर'

साधू जन जितने बोले, हैं आज बड़ा अच्छा अवसर।
बंगाली होली देखेंगे, सब चलो आज साधू मिलकर।।
सम्मति दी हमने भी अपनी, हमको भी सबने साथ लिया।
इक साधू का लिया कमण्डल, चिमटा इक से माँग लिया।।
अपना जो साधू साथी था, उसकी तबियत ठीक न थी।
माई उनकी देख भाल के, लिये पास उनके छोड़ीं।।
हम तो गये खड़गपुर होली, का देखें कैसा व्यौहार।
इधर हमारे साथी साधू, जी को चढ़ गया तेज बुखार।।
उसकी तेजी सह न पाये वे, गफ़लत में आये इकदम।
माई उनकों उठा वहाँ से, आरद्रा भाग गई फ़ौरन।।
साठ मील आरद्रा था वहाँ से, रेल वहाँ से जाती थी।
हमसे डर लगता था उसको, इसी लिये ले भागी थी।।
अच्छा मौका सोचा उसने, उस साधू की गफलत से।
टिकिट लिया अपने पल्ले से, ताके हमसे पिण्ड छुटे।।
जब वापिस हम हुवे वहाँ से, ना साधू ना माई ही।
इधर उधर उन दोनों की, हम सबने ढूँड़ मचाई भी।।
वे तो मिले नहीं पर उनका, पता एक ने बतलाया।
कैसे उनके पास जाँये अब, से कुछ समझ नहीं आया।।
आखिर हम पैदल ही लपके, तीन रोज में पहुँच गये।
देखा तो स्टेशन पर ही, साधू हमको पड़े मिले।।
तबियत तो थी ठीक मगर, थे गमगीनी सी हालत में।
जब हम उनके पास पहुँच गये, तो साधू ने कहा हमें।।
हम भी प्रंण करके बैठे थे, अनजल उस दिन पावेंगे।
जिस दिन हमें हमारे साथी, महाराज मिल जावेंगे।।
दुष्टताइ का परिचय पूरा, इस माई ने दिखलाया।
बेहोशी में लाइ उठाकर, साथ हमारा छुड़वाया।।
करवाया जलपान उन्हें, बीतक सुनकर उनकी सारी।
तो फिर क्या हो गया तुम्हें तो, थी बुखार में लाचारी।।
अच्छा हुवा रेल से आ गए, पैदल तुमसे था दुश्वार।
कुछ बुखार की कमजोरी थी, कुछ रहते तुम निरआहार।।
सोंपा उन्हें कमण्डल उनका, क्यों कि अमानत थी उनकी।
अगले दिन फिर की हमने, तय्यारी अपनी यात्रा की।।
चले अकेले यात्रा पर, उस रोज महात्माँ जी हमसे।

छोड़ गये माई औ हमको, हुवे अलंक्षित नज़रों से।।
मिले कभी नंहि फिर आइन्दा, बिछुड़ गया अपना जोड़ा।
अच्छा साथ मिला था हमको, पर उस माई ने तोड़ा।।
माई जी बोलीं अगले दिन, तुम्हीं साथ ले लो महाराज।
हमने कहा साथ तो हो ही, अपने तुम माता जी आज।।
पर जब माइयों की टोली, आवे तो उनमें मिल जाना।
साधू औ महात्माँ के संग, अनुचित है तेरा चलना।।
तीन रोज के बाद एक, बस्ती के बाहर हम ठहरे।
मौसम बदल गया इक दम से, बादल उठे बड़े गहरे।।
वर्षा शुरू हुई कुछ पड़नी, माई औ साधू बोले।
हम तो बस्ती में ठहरेंगे, भागे आसन ले झोले।।
साथ साथ अपनी गीता भी, चले गये वे लेकर के।
हमें छोड़ कर चले न जावें, गीता ले गये इस डर से।।
जाने के पश्चात उन्हों के, बारिश बरसी मूसलाधार।
पैड तले बैठे रहे सुकड़े, बहुत आइ ऊपर फ़व्वार।।
नागन सी लपलपा रही थी, बिजली घोर रहे जलधर।
उसी चमक में एक पेड़ की, नजर आइ हमको खोकर।।
घुस बैठे जाकर हम उसमें, दिन निकले तक रहे वहीं।
हमें देखने स़ाथी अपने, आये पर हम मिले नहीं।।
धूप चढ़े तक आए नहीं जब, माई औ साधू महाराज।
हमने भी सोची चलने की, अपने परमारथ के काज।।

आज अकेले ही चले, साथी ना कोई साथ।
लम्बी यात्रा खेंच दी, हमने बातों बात।।

ग्राम मेदनी पुर पहुँचे, आश्रम था जिसके एक समीप।
साध मण्डली पड़ी हुई थी, बाहर आश्रम के नजदीक।।
एक ब्रह्मचारी जी थे उस, आश्रम के संचालक मात्र।
जा बैठे हम भी उबालने, को खिचड़ी ले अपना पात्र।।
बनी न थी अब तक निज खिचड़ी, एक महात्माँ जी आये।
हमें भी भोजन दोगे क्या, ये शब्द उन्होंने दोहराये।।
बे ख़ौफ निडर संकोच हीन, जैसा व्यौहार किया आके।
हम भी कुछ आकृष्ट हुवे, उस प्रतिमा का दर्शन पाके।।
है किसका जो पूछ रहे हो,सभी आपका है महाराज।
हम से उत्तर पाकर बोले, पत्तल ले आवें महाराज।।

जब तक वे पतरावल लाये, खिचड़ी भी तय्यार हुई।
उलट के खिचड़ी को पत्तल पै, उनके आगे पेश करी।।
भूतनाँथ जैसा सरूप था, फबन निराली का इंसान।
हों विरक्त्ता के प्रतीक ज्यों, लगता था पुरूषत्व महान।।
नंग धड़ंगे गात लंगोटी, कंधे कमली का टुकड़ा।
जटा जूट तन में भभूत, था योग्य देखने के मुखड़ा।।
द्रष्टी कठोर सी दिखती और, शब्दों में अति तीखापन था।
हष्ट पुष्ट लम्बा चौड़ा सा, डील डौल बेढ़ब उनका।।
पत्तल पर धर हमने खिचड़ी, सब उनके आगे सरकादी।
साथ साथ बोले हम उनसे, जीमें आप महात्माँ जी।।
कहने लगे गुरू जी तुम भी, तो जीमोगे अपने साथ।
हमने कहा महात्माँ जी, क्यों शरमिंदा करते हैं आप।।
गुरू शब्द कह कहके नाहक, हमको आप लजाते हो।
गुरू पद के तो योग्य आप, ही हमें नज़र में आते हो।।
ऐसे वचन हमें मत कहिये, आप योग्य हैं पूजन के।
हमें लाज सी आती है, अपने लिए ऐसे सुन सुन के।।
हाथ पकड़ अपना जबरन, उसने अपने संग बिठलाया।
उस ही पत्तल पर भोजन, दोंनों ने साथ साथ खाया।।
उनकी ओर झूँठ के दाने, चावल के जो गिरजाते।
तभी उठा झटसे गुस्से में, वे समेट कर खा जाते।।
इतने उच्च महात्माँ ने जब, झूँटा खाना शुरू किया।
तो हमने भी उनके आगे, का खाना आरम्भ किया।।
बड़े प्रेम से जीमे दोनों, आया इक आनंद अपार।
थोड़ा ही भोजन था लेकिन, पेट भरे की आई डकार।।
खाने के पश्चात् उन्होंने, पूछा कहाँ जाँएगे आप।
जगन्नाथ जी की सुनकर के, बोले तौ हमभी हैं साथ।।
हमतो साथ खोजते ही थे, सुनते ही सम्मति देदी।
अच्छा साथ मिला अपने को, सुनते ही हमने कहदी।।
इतने में आये ब्रह्मचारी, संचालक जो उस आश्रम के।
महात्माओं के बीच आनकर, इक दम से वे खड़े हुवे।
बोले सभी महात्माओं से, जितने भी हो तुम इस वक्त।
लकड़ी की भी आवश्यकता, तुम लोगों को रहती सख़्त।।
हैं कोई तुम में ऐसा जो, इतनी कृपा करे हम पर।
लदे आ रहे हैं राजा के, लक्कड़ लधकर गाड़ों पर।।
एक एक लकड़ी क़ी गाड़ी, अगर उतरवा लो उनकी।

तुम लोगों की कठिनाई सब, सुलझ जायगी ईंधन की।।
धूंने सब के सिलग जांएगें, हम भी आश्रम में रखलें।
काम तुम्हीं लोगों का है सब, इतनी कृपा आप करदें।।
सुनकर इतनी कोई न बोला, लक़वा मार गया जैसे।
कचर कचर तो उससे पहले, बहुत हो रही थी वैसे।।
पर अब कठपुतले से हो गये, होठ किसी के नहीं खुले।
सूनसान उपरान्त हमारे, साथी ही हमसे बोले।।
आप गुरू जी यदि आज्ञा दें, तो यह काम हमीं करदें।
जितने लक्कड़ कहो उतरवा, गाड़ी के नीचे धरदें।।
हमने भी कर दिया इशारा, महाराज कुछ हर्ज नहीं।
तुम तो हो सामर्थवान, इन सब में तो सार्मथ नहीं।।
कृपा आपकी से आश्रम में, लकड़ी ऐकत्रित होगी।
बड़ा प्राप्त होगा यश इससे, आश्रम की सेवा होगी।।
लकड़ी वाला तो राजा है, इसमें हानि नहीं है कुछ।
राजा तो दाता होता है, परजा होती है भिक्षुक।।
जाओ उतरवा दो कुछ लकड़ी, चल जायेगा इनका काम।
पर उपकार काज करके कुछ, जाओ कमालो अपना नाम।।
इस प्रकार अपने मुँह सुनके, उठा चीमटा वे भागे।
खड़े हुवे जाकर के फ़ौरन्, पहली गाड़ी के आगे।।
उठा चीमटा डाट लगा कर, बोले ऐ गाड़ी वाले।
बिना चुकाये कर आश्रम का, भागा जाता है साले।।
सीधी तरह उतर कर नींचे, पहले आश्रम का कर दे।
महात्माओं के लिये एक, मोटा लक्कड़ नींचे धरदे।।
उनके कड़कदार शब्दों पर, और प्रभा को लखकरके।
हर गाड़ी वाला इक लक्कड़, धरता तले उतर करके।।
उलटी सीधी जो ज़बान पर, आ जाती उनके गाली।
चाहे जो भी हुआ सामने, इक दम बस दे ही डाली।।
सौ के निकट गाड़ियाँ होंगी, जब अंतिम गाड़ी आई।
इक प्रशाद रूपी गाली उस, गाड़ी को भी पकड़ाई।।
सुन अनसुन कर बैलवान ने, रोकी नंहि अपनी गाड़ी।
ऐसा करते देख उसे, पहले तो इक गाली झाड़ी।।
अच्छा साले, बिना चुकाये, चुंगी चला जायगा तू।
देख तुझे में अभी आनकर, कैसा ठीक बनाता हूँ।।
तू घमंड में है राजा के, हमें नहीं गिनता कुछ भी।
हम भी अपना नाम बदलदें, चला जाए याँ से तू भी।।

एक चीमटा जाते ही, गाड़ी में पहले मार दिया।
फिर जाकर गाड़ी को पीछे, एक हाथ से थाम लिया।।
खिंच न सकी बैलों से गाड़ी, एक इंच भी आगे को।
हाँक रहा था मार मार कर, बैलवान निज बैलों को।।
पर सरकी नंहि गाड़ी आगे, बैल हुवे इकदम बेदम।
अब लेजा साले गाड़ी को, पहले ही कहते थे हम।।
चुंगी लिये बिना साले में, आगे जाने नंहि दूँगा।
अभी बैल ही हुवे हैं बेदम, तुझे भी बेदम कर दूँगा।।
इस प्रकार की लीला लखकर, बैलवान फिर घबराया।
जभी उतर कर नींचे उनके, चरणों में गिरता पाया।।
हाथ जोड़कर खड़ा अगाड़ी, होकर के बोला महाराज।
जान बूझकर गलती की है, हमें माँफ़ कर दोबस आज।।
जिस लक्कड़ का आप इशारा, करें उसे ही धर दूँगा।
यदि सारी गाड़ी चाहो तो, ख़ाली इकदम कर दूँगा।।
तू तो महात्माओं से टक्कर, लेता फिरता है साले।
समझे हम भिकमंगे तेंने, या खड़िया पलटन वाले।
कुछ थोड़ी सी देर और, अड़ता तो तुझको बतलाता।।
साधू से टक्कर लेने के सब, दाव पेच तुझे सिखलाता।
जा अब माँफ़ किया बेटे, पर एक सज़ा तुझ को देंगे।।
लक्कड़ सब से बड़ा तुम्हारी, गाड़ी का साले लेंगे।
लक्कड़ सब से बड़ा डालकर, उसने उतर प्रणाम किया।।
तत्पश्चात् वहाँ से गाड़ी, वालों ने प्रस्थान किया।।
कहो गुरू जी यदि आज्ञा हो, फिर वही काम शुरू करदूँ।
कमी अगर लकड़ी की हो तो, शुरू दुबारा फिर करदूँ।।
महाराज बस काफ़ी हैं ये, अब इन सब को जाने दो।
इन सालों से इक इक लक्कड़, गुरू जी और उघाने दो।।
ब्रह्मचारी जी बोले उनसे, महाराज अब काफ़ी है।
गाड़ी वालों को जाने के, लिये आप अब आज्ञा दें।।
राजा के घमंड में अकड़े, चले जा रहे थे साले।
इन्हें पता नंहि था फक्कड़ के, सालों आज पड़े पाले।।
अच्छा अब ऐसा करना, जब भी लकड़ी लेकर आओ।
एक एक लकड़ी की गाड़ी, चुपके से यहाँ धरजाओं।।
जब गुजरो आश्रम से होकर, भेंट यहाँ लक्कड़ करना।।
भाग जाओ ले ले कर अपने, बैलवान सारे गाड़े।
वापिस आकर उसने जितने, साधू थे सब आ झाड़े।।

बड़े ज़ोर से ललकारा, सब उठ जाओ खड़िया पलटन।
इक इक लक्कड़ उठा उठाकर, पहुँचादो अंदर इकदम।।
उसका जब आदेश हुआ यह, साधू सारे खड़े हुवे।
पहुँचाये आश्रम में लक्कड़, जितने थे वहाँ पड़े हुवे।।
कुछ जमात के लिये ब्रह्म, चारी ने लक्कड़ छोड़ दिये।
धन्यवाद उन महात्माओं को, ब्रह्मचारी ने बहुत दिये।।
अगले दिन हमसे वे बोले, गुरू जी यदि आज्ञा हो।
तो हम राजा से मिल लें, पर तुम अपने साथ चलो।।
हमने भी कुछ हर्ज नहीं है, कह कर चल दिये उसके साथ।
पहुँच गये हम राज महल में, बातें करते बातों बात।।
तो देखा लगभग पच्चिस के, साधू हैं दरबार में।
वहाँ पहुँचते ही हमसे, पूछा इक पहरेदार ने।।
क्यों जी क्या जीमोगे बाबा, बैठ जाओ यदि इच्छा हो।
बड़े कड़क कर बोले क्या हम, आये तेरे भिक्षाको।।
क्या हम भूक प्यास लेकर के, राज द्वार पर आये हैं।
जाओ ख़बर देदो राजा को, गुरू जी मिलने आये हैं।।
पच्चिस और साथ हैं उनके, भोजन और दक्षणा भेज।
क्या जवाब देता है राजा, जल्दी इसका उत्तर भेज।।
ध्यान रहे देरी करदी तो, चली जयगी सभी जमात।
इन्तज़ार हम नहीं करेंगे, समझ गये सब अपनी बात।।
संदेशा वाहक झट भागा, राजा को संदेश दिया।
राजा ने उनके सवाल को, सुनते ही स्वीकार किया।।
थोड़ी देर बाद राजा ने, सब सामान पहुँच वाया।
पच्चिस रूपया साथ दक्षणा, सहित तभी लेकर आया।।
कहा महात्माँ जी से आकर, अपना यह सामान लीजे।
और दक्षणा पच्चिस साधू, लाये हैं सो सो ले लीजे।।
हम को क्या करने हैं रूपये, क्या करने तेरे सीदे।
जितने ये साधू बैठे हैं, इनमें इन्हें बाँट दीजे।।
बड़े हुवे विस्मित साधू सब, विस्मित सभी कर्मचारी।
खिलवाया भोजन उन सबको, दक्षणाए बाँटी सारी।।
साधू जन लगे सोचने, इनकी कृपा मात्र से हम।
राज मौहौल से पाइ दक्षणा, आन्दर से जीमे भी हम।।
पड़े हुवे थे यहाँ सुबह से, किसने पूछी अपनी बात।
इनके आते ही इकदम से, बने काम सब हाथों हाथ।।
क्या अच्छा हो अगर साथ, इन ही के रहती पूर्ण जमात।

आदर तो मिलता कम से कम, जहाँ पहुँचते इनके साथ।।
उनका काम निमट वाकर जब, उठ कर चले महात्माँ जी।
तो पूरी जमात साधू की, हम लोगों के साथ लगी।।
यात्रा हुई शुरू हम सब की, मिलकर जगन्नाथ जी की।
साध मण्डली पीछे पीछे, बनकर एक जमात चली।।

कहते रहते थे सदा, हमें महात्माँ रोज।
आज्ञा देने में हमें, क्यों करते संकोच।।

हमें हुक्म क्यों नंहि देते हो, खाने में सकुचाते हो।
जो कुछ भी तुम खाना चाहो, क्यों नंहि हमें बताते हो।।
आप अगर जंगल में भी हों, जो कुछ भी हमसे माँगे।
क़सम आपकी लाके देंगे, आप हमें आजमाँ तो लो।।
बस्ती की परवाह नहीं कुछ, पेड़ों से पैदा करदें।
हमें कभी अजमाँ कर देखो, जो चाहो ला करके दें।।
पर जानें क्यों शरमाते हो, हुक्म नहीं देते हमको।
हम जानें क्या क्या खिलवा यें, खाना अगर आप चाहो।।
आठ रोज के बाद एक, बस्ती के बाहर ठहरे हम।
कहा महात्मा जी ने हमसे, आज सैर कर आवें हम।।
जो कुछ आप मँगावें अपने, लिये आपको हम लादें।
नहीं चाहिए हमको कुछ भी, आप सैर खुद कर आवें।।
कुछ घंटों के बाद आप, देखा तो चिपके आते हैं।
भिनभिनाहट मखियों का पूरा, साथ उड़ाए लाते हैं।।
कुल शरीर मीठे से चिपका, हुआ आपका आता है।
ऐसा लगता था जैसे वन, मानुष कोई आता है।।
हम से कहा गुरू जी हम तो, मीठा जीम आये हैं आज।
हमने हंसकर कहा वाह वा, अजब जीमना है महाराज।।
कुल शरीर जीमा फिरता है, किस प्रकार का है ये भोज।
ब्रह्म भोज बतलावें इसको, या बतलावें मक्खी भोज।।
कहने लगे गुरू जी हमने, बनिये के देखा इक ढेर।
शक्कर देखी जब शरीर ने, तृष्णा जाग गई बस फेर।।
हमने इस शरीर को डाटा, पर साला नंहि रूक पाया।
आखिर हमने इसे विवष, होकर बनिये तक पहुँचाया।।
जाकर बोले बनिये से, इस शरीर को मीठा ला।
उसने आध पाव ला करके, इस शरीर को दिखलाया।।

हमने कहा अबे ओ बनिये, आध पाव औ यह स्थूल।
क्यों तेरी शामत आई है, देख इधर अपना तिरशूल।।
बनियाँ जभी किलस कर बोला, स्वयँ जीम लो वह है ढेर।
मिला जभी यह हमें इशारा, जा लेटे हम उस पर फेर।।
रगड़ा यह स्थूल खूब फिर, मीठे के उस ढेरी में।
फिर क्या था छक गई हमारी, चमड़ी थोड़ी देर में।।
कभी गुरू जी यह शरीर, साला हठ भी कर जाता है।
ख़ूब डाटते साले को, पर बे काबू हो जाता है।।
बोले कुछ सुलफ़ा दिखलाकर, इक बनिये से यह झपटा।
थोड़ा सा देता था साला, जब हमने उसको डपटा।।
तो फिर इतना लेकर आया, चाहो तो ले लो तुम भी।
हमने कहा महात्माँ जी, हम नंहि पीते हैं इसे कभी।।
और बहुत साधु बैठे हैं, आप इन्हें चाहें दे दें।
यह साली खड़िया पलटन है, गुरू जी इनको क्यों दे दें।।
ये तो सब पेटू बाबा है, हम तुम को ये खा के भी।
भूके के भूकें पायेंगे, पेटू छकता नहीं कभी।।

था अपने ही ढंग का, महा पुरूष वह एक।
चाल न मिलती किसी से, देखे सदा विशेष।।

यात्रा अपनी शुरू हुई फिर, थी अपने संग पूर्ण जमात।
बड़ा सुगमता से कटता था, रस्ता सब का मिलकर साथ।।
जहाँ कहीं मिल जाया करती, चिता दाह होती मग में।
जभी महात्मा पहुँचा करता, उसके निकट एक पल में।।
कहता मार चीमटा उसको, आ साले जलने वाले।
अगर नहीं आया मंगल तक, तब बतलाऊंगा साले।।
कभी कभी तो किसी चिता से, खोपड़ियाँ ले आता था।
बना बनाकर बातें उससे, झाड़ों में रख आता था।।
ऐसे ही कुछ घृणित और, अटपटे काम करते रहते।

नहीं मानता फिर भी उन्हें मैं,
हर दम समझाता ही रहता था।।

एक दफ़ा हम यात्रा, पर थे सभी फ़कीर।
मिला एक चलता हुआ कोल्हू, वहीं सड़क के तीर।।

कहा महात्माओं ने मिलकर, गुरू जी मीठा खिलवादो।
मीठे को तबियत करती है, थोड़ा थोड़ा दिलवादो।।
हमने कहा महात्माँ जी से, थोड़ा सा अब कष्ट करो।
हुकुम करो कहते ही आये, क्या इच्छा है आज्ञा दो।।
आज साधुओं की इच्छा है, कृप्या यह पूरी करदो।
थोड़ा मीठा लाकर इस, कोल्हू से इनको खिलवादो।।
जो आज्ञा कहते ही इकदम, वे कोल्हू पर जा पहुंचे।
दिखा चिमटा कोल्हू वालों, को जाते ही यों बोले।।
देखो सालो ख़बरदार जो, किया उलंघन आज्ञा का।
जितने साधू बैठे हैं वे, उनको खिलवा दो मीठा।।
मीठा तो तय्यार नहीं है, झट कोल्हू वाले बोले।
एक–2 गन्ना यदि चाहै, तो इन सब को दिलवादे।।
गन्ना नहीं चाहिए उनको, वे तो मीठा ही लेंगे।
कोल्हू वाले बोले तो फिर, इक गिलास रस पिलवादे।।
कह तो दिया और कुछ भी नंहि, केवल मीठा खायेंगे।
मीठा तो तय्यार नहीं है, कहाँ से हम दे पायेंगे।।
यह जो है कढ़ाव में क्या है, बस इस ही में से दे दो।
कोल्हू वाले बोले तुम में, ताक़त हो तुम ही ले लो।।
अपने बस की बात नहीं है, जलकर हमें नहीं करना।
बोले जभी महात्मा जी तो, लो फिर हमको है मरना।।
हमीं निकालेंगे साले को, खायेंगे भी हमीं इसे।
देखेंगे मारेगा मीठा, हम में से यह किसे किसे।।
जा बैठे अंदर कढ़ाव में, फदक रहा था खद्दों में।
शुरू किया न्हना मीठे से, भर भर अपनी लप्पों में।।
भाग गये कोल्हू वाले सब, ऐसा करते देख उन्हें।
आत्म घात करना जैसे के, चाह रहे यह लगा उन्हें।।
खड़े हुवे सौ गज भग करके, रूक न पाए भय के मारे।
देख रहे थे दूर खड़े, हो करके चमत्कार सारे।।
अजी गुरू जी आजाओ अब, भाग गये सारे साले।
माल हमारा ही अब सारा, चाहे जितना बरताले।।
तीन पात्र हम माँग साधुओं, से ले पहुँचे सुन आवाज़।
बोले हमें देखकर, चाहो, तो सब मीठा ले लो आज।।
देखा, भाग गये सब साले, आओ कमण्डल ख़ुद भरलो।
कितनी ठँडी है स्पर्श, अगर चाहो तो ख़ुद करलो।।
पुते हुवे बैठे मीठे में, भाप अंग से छिटक रही।

चारों तरफ़ चाश्नी उनके, विग्रह से थी लिपट रही।।
खेल रहे थे, भैंसा जैसे, अलट पलट हो कींचड़ में।
हमने भी भर लिया पहुँचकर, मीठा तीन कमण्डल में।।
इतने में कोल्हू वालों का, एक आदमी आ पहुँचा।
जब देखा अपने पै मीठा, वह धीरे से यों बोला।।
अजी महात्माँ जी तुमतो, ले चले सभी मीठा भर कर।
हम तो बड़े ग़रीबी में हैं, थोड़ी करो कृपा हम पर।।
दे दो एक कमण्डल वापिस, जब ये साले रोते हैं।
दान कलपने वालों के, बिलकुल भी हज़म न होते हैं।।

। भीक में से भीक दे, तीनों लोक जीत ले ।

बड़े कड़क कर कहा हमें यों, हमने भी अनुकरण किया।
एक कमण्डल वापिस हमने, उस कढ़ाव में डाल दिया।।
लिये हुवे जाते थे जब हम, भरे कमण्डल मीठे के।
बोल उठे इक साथ कड़क कर, साधू खड़िया पलटन से।।
क्यों बे ओ पेटू के बच्चों, तुम्हें दीखता नंहि है क्या।
तुम तो जीमो पसर पसर कर, गुरू महाराज ढोए मीठा।।
चलो कमण्डल थामो आकर, चले आ रहे हैं साले।
कुछ आगे जाकर के हमने, आपस में बटवा डाले।।
वे चिपके चिपकाऐ यों ही, चलते रहे यात्रा पर।
अगले रोज़ नदी जब आई, तब आये उसमें न्हाकर।
हमें न श्रद्धा रही कभी भी, भूतों औ अवधूतों पर।।
ऐसे चमत्कार सिद्धि के, ओछे काम कहे जाते।
ऐसे सिद्ध महात्माओं में, आदर कभी नहीं पाते।।
दुनियाँ दारों को बहकाने, और डराने का है काम।
केवल दुनियाँ वालों में ही, सिद्ध पुरूष पाते हैं नाम।।
चमत्कार दिखलाकर ये, उनको आकृष्ट किया करते।
किन्तु बाद में उन ही लोगों, के ये ख़ून पिया करते।।
पास नहीं होता है उनके, चिन्न्ह तलक परमारथ का।
उनका लक्ष हुआ करता है, केवल अपने स्वारथ का।।
बड़े ख़ुशी से एक रोज़ वे, आकर के हम से बोले।
छिपा पड़ा था हिय में कब से, आकर के परदे खोले।।
अजी गुरू जी अब तो तुम को, सदा साथ हम रक्खेंगे।
साथ साथ ही रहें आपके, अलग नहीं होने देंगे।।
हमने कहा न रहना चाहें, तब क्या जबरन रक्खोगे।

जब हम जाना चाहेंगे तो, कैसे नंहि जाने दोगे।।
कैसे नहीं रहोगे हम पै, जड़ी बूटियाँ आती हैं।
सेवन तो कर ही लेते हो, बस इतना ही काफ़ी है।।
सेवन के पश्चात् आप, ख़ुद ही जाने का नाम न लो।
जहाँ जाँएगे हम तुम अपने, आप हमारे साथ चलो।।

हमने फिर गंभीरता, से सोची यह बात।
जैसे कहता है किया, इसी तरह यदि साथ।।

हो सकता है खिला पिलादे, जैसे यह अब बकता है।
साथ 2 फिरना पड़ जाये, जिस प्रकार यह कहता है।।
तो फिर करा कराया सारा, मिट्टी में मिल जायेगा।
क़िला कल्पनाओं का इकदम, नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा।।
सेवक की सी भाँति साथ में, लगे फिरोगे झंडू दत्त।
इस से तो अब बचो और अब, इसके साथ रहो ही मत।।
बैठ गये निश्चय यह करके, धार लिया हमने मनमें।
ऐसे अपने भाव बने यह, प्रगट न होने दी उनमें।।
जिस चट्टी पर भी जाते थे, नियम बंधा था उनका एक।
इक छटाँक गाँजा माँगा, करते थे वे चट्टी प्रत्येक।।
जब दुकान गांझों की आई, पहुँचे सुलफ़ा लेने को।
हमने कहा महात्माँ जी से, लेकर के आजाने को।।
हम आगे चलते हैं तब तक, सुलफ़ा लेकर आजाना।
आप निमट आओ लेकरके, हमको चलते ही जाना।।
अनुमति दी कुछ हर्ज नहीं है, चलो आप हम आते हैं।
इस सुलफ़े वाले सुलफ़ा, अभी झपट कर लाते हैं।।
कारू दास नाम का साधू, एक हमारे साथ चला।
वह भी अपने साथ महात्माँ, के फंदों से बच निकला।।
कारू दास डरा करता था, पहले ही उनसे ज़्यादा।
कभी कभी तो उसे मारने, तक को आमादा रहता।।
हम और कारू दास वहाँ से, बहुत तेज़ हो भाग चले।
कई चट्टियाँ पार कर गये, इतने आगे जा निकले।।
पकड़ नहीं सकता अब हमको, यह मन को विश्वास हुआ।
छोड़ दिया अब पीछे काफ़ी, निश्चय करू दास हुआ।।
रूके एक नद्दी आने पै, ज़रा ताकि विश्राम करें।
न्हाने धोने के पीछे कुछ, खान पान का काम करें।।

सड़क गुज़रती थी ऊपर से, पुल के नींचे जा बैठे।
न्हा धोकर निमटे भी नंहि थे, तभी कान में शब्द पड़े।।
साला कारूदास गुरूजी, को लेकर के भागा है।
जाते नहीं गुरू जी साला, जबरन ले के भागा है।।

उड़ा ले गया कौन दिशा को, जानें कारू का बच्चा।
देखो साला मिला अगर तो, मार मार करदूँ तिरछा।।
सुनते ही उसकी हम बोले, सुनते हो ऐ कारू दास।
करा कराया चौपट हो गया, हो गया सारा सत्यानाश।।
आ पहुँचा वो यहीं ढूँड़ता, सुनते हो कारू महाराज।
अगर ख़ैरियत समझो अपनी, खुद दे लो उसको आवाज़।।
हम इसको यदि मिल न पाए तो, और अधिक यह बिगड़ेगा।
कारू बोला मुझ पै तो यह, अभी चीमटा पकड़ेगा।।
मुझ पै तो पहले ही बिगड़े, हुऐ फिर रहे हैं ये आज।
कृप्या तुम्हीं बुलालो तुम से, कुछ नंहि बोलेंगे महाराज।।
मैंने दी आवाज़ महात्माँ, जी आजाओ ये हैं हम।
सुनते ही आवाज़ उन्होंने, उत्तर हमें दिया इकदम।।
शब्द गुरू जी कहके बोले, आप यहाँ बैठे हैं क्या।
हाँ कहके जवाब में उनके, कहा आप आजाँए यहाँ।।
नींचे उतर आए वे पुल से, पाते ही हमसे संकेत।
कटु द्रष्टी डाली कारू पै, नैनों में था क्रोधावेष।।
जल्दी ही मुख मुद्रा पलटी, जब मुँह मेरी ओर हुआ।
हमें ग़ौर से देख उन्होंने, धीरे से इस तरह कहा।।
आप गुरू जी क्या न्हाने के, लिये यहाँ आ बैठे हैं।
कोई हर्ज की बात नहीं तुम, न्हालो लो हम बैठे हैं।।
नित्य कर्म स्नान आदि से, निमट चले जब यात्रा को।
बड़े प्यार औ नम्र भाव में, कहा उन्होंने यह हमको।।
गुरू जी कभी उलंघन आज्ञा, का तो हमने नहीं किया।
फिर विचार क्यों तुमने, हमसे फूट जाने का किया।।
ना ही किसी तरह से गुरू जी, हम ने तुम को तंग किया।
फिर विचार क्यों बना रहे हो, हम से फट जाने के आप।

अगर कोई दुख हो हमसे तो, निस्संकोच बतादें आप।।
हम तो तुम्हें चुटकुला देते, जो आगे को काम आता।
दूजा अगर कोइ भी होता, उसको नहीं दिया जाता।।
हम तो क्षमाँ चाहते हैं बस, हमने उन्हें प्रणाम किया।
उसके बाद महात्माँ जी ने, उठकर के प्रस्थान किया।।

'सातवीं लहर'

अलग हुवे जिस वक्त से हम से वे महाराज।
निज शरीर में दो गुना उदय हुआ वैराग।।

मात्राए वैराग भाव की, अधिक लगीं अपनी बढ़ने।
जिसका असर पड़ा खाने पर, इक दिन छोड़ लगे खाने।।
दिवस तीसरे भी थोड़ा सा, ही जीमाँ करते थे हम।
इतना ही काफ़ी होता था, जीम न सकते ज़्यादा हम।।
एक रोज़ रात्री में हमने, पेड़ तले विश्राम किया।
तो वहाँ इक अज्ञात शक्ति ने, अपना बाजू थाम लिया।।
बाँह शुरू हुई इठनी इकदम, जैसे पूर्व इठी अपनी।
बैठे थे आँखें मींचे तो, इक दम शुरू हुईं खुलनी।।
इक प्रकाश सा आया सन्मुख, बढ़ता बढ़ता गया बेतोल।
इतने में कानों में आने, शुरू हुवे कुछ हमको बोल।।
देखो शिव दर्शन देंगे अब, उनसे बातें कर लेना।
अगर कोई उलझन हो तो, तो अब उनसे समझ बूझ लेना।।
बढ़ा तेज द्रुत गति से इकदम, चमक उठे पूथ्वी के अंग।
तेज पुण्ज के मध्य विभूति, खड़ी थी प्रतिमाँ एक सुरंग।।
प्रभायुक्त मनहर अति सुँदर, दिव्य काँनति अति उभा रमन।
आड़े रूख से खड़े नज़र, आये थे उनके बंक नयन।।
जब प्रतक्ष हो गये उमापति, तो हमने सर झुका लिया।
पुलक पुलक अंतर ने अपने, गदगद हो परनाम किया।।
रोमावली रोमान्चित हो गई, जब यह साक्षात्कार हुआ।
बात न पूछो इस आभा की, सौंर्दय की विपुल छटा।।
कर डमरू त्रिशूल कंधे पर, गल में रहे सर्प लहरा।
उनके सिवा न कुछ दिखता था, जैसे सब कुछ अस्त हुआ।।
सुना ग़ौर से बोले शिव ऐ, भक्त गुरू धारण करलो।
सुनते ही हम बोले उनसे, शिरोर्धाय जो आज्ञा हो।।
पर किसको हम गुरू बनालें, समझ नहीं हमको आता।
धारण तो करते पर कोई, व्यक्ती योग्य नहीं पाता।।
शिव को गुरू बनालो भाई, सँवर जाँयगे सारे काज।
उन्हें जानते तो नंहि हैं हम, कहाँ मिलेंगे शिव महाराज।।
आगे तुम्हें मिलेंगे यहाँ से, कहते ही हो गये अलख।
वह प्रकाश भी हुवा तिरोहित, देर लगी बस एक पलक।।

अँधकार आ पसरा फिर से, मिली बाँह ढीली अपनी।
अंतर में प्रश्नोत्तर की इक, द्वन्द शुरू हो गई बढ़नी।।
रात काटदी मन से लड़ लड़, प्रातः ही उठकर भागे।
क्यों के जगन्नाथ जी की कुछ, मंजिल बाक़ी थी आगे।।
मंज़िल दर मंज़िल तै करते, हर्ष और उल्लास भरे।
गुज़रे सखि गोपाल और, भुवनेश्वर तुलसी चौरा से।।
आई हर्ष की वे घड़ियाँ, जिनकी थी इन्तज़ार कब से।
अब दर्शन की बेला आई, पैर घिसे जिस मतलब से।।
दर्शन साक्षात् तुम को हों, जगन्नाथ जी जाते ही।
खेंचे लिये चला आता था, महापुरूष का वचन यही।।
पूरी निष्ठा थी मनमें यह, साक्षात् दर्शन होंगे।
जीवन का है दिवस सुनहरा, आज इसे नंहि भूलेंगे।।
हो जिस दिवस मिलन पीतम से, उस दिन पर में बलिहारी।
चुकै न इसका मोल अगर, वारू इसपर वसुधा सारी।।
आज हर्ष का नहीं ठिकाना, गदगद हो मन उछल रहा।
ऐसे अपने भाव लिये श्री, जगन्नाथ जी मैं पहुँचा।।
वस्त्र हीन तन एक लंगोटी, वह भी टूटी हालत में।
ज्यों दरिद्रता के महाराजा, थे हम ठीक इसी गति में।।
भक्त सुदामा पै कुछ था तो, जिसमें तंदुल थे बाँधे।
गये मित्र से जब मिलने को, लटक रहे जिसमें काँधे।।
किन्तु यहाँ तो अर्ध नंग़ हैं, फूटी सी लुटिया कर में।
भेंट करेंगे क्या जब दर्शन, होंगे प्रभु के चरनों में।।
दुविधा जनक विचार लिये हम, जगत नाँथ तक पहुँच गये।
एक ताल था जाते ही, पहले उसमें स्नान किये।।
ना धोना ना कुछ निचोड़ना, मिनटों में निमटा स्नान।
क़दम बढ़े दर्शन के लिए अब, था त्रिकुटी में उनका ध्यान।।
हम जब मंदिर में पहुँचे तो, स्वागत शुरू हुआ अपना।
चले जा रहे थे दर्शन को, डाट बता बोला पण्डा।।
ऐ तुम चंदन ताल न्हाए हो, किधर जा रहे हो ऐसे।
हम बोले महाराल नहाकर, तो आये हैं हम वैसे।।
पर हम नहीं जानते चंदन, ताल किसे तुम कहते हो।
पण्डे ने धमका के मारा, चले आए हैं दर्शन को।।
भगा दिया हमको धक्का दे, पहले न्हाकर के आओ।
तब मंदिर में जाने देंगे, चलो यहाँ से भग जाओ।।
हम अपना सत्कार कराकर, मंदिर से बाहर आये।

पूछा चंदन ताल वही था, जिसमें हम पहले न्हाये।।
पण्डे का आदेश पूर्ण हो, डुबकी लगी दुबारा फिर।
एक नया उत्साह साथ ले, क़दम बढ़े दर्शन को फिर।।
अब कै पहुँच गये हम ऊपर, धाम भवन के पूर्ण समक्ष।
दर्शन की इच्छा से देखा, कि दर्शन होंगे प्रत्यक्ष।।
मगर काठ के काठ जगत के, नाथ हमें दीखे अंदर।
नज़र घुमाई हमने चारों, ओर बड़े विस्मित होकर।।
प्रतिमा में कुछ फ़र्क न दीखा, जैसे के तैसे थे फिर।
हमने यात्रियों को ताड़ा, दर्शन हुए इन्हें क्योंकर।।
देखा परिक्रमाँ में हैं, संलग्न सभी दर्शक इकदम।
सोचा परिक्रमाँ के पीछे, शायद होते हो दर्शन।।
हम भी परिक्रमां करने को, जुट गए इनकी देखा देख।
जब समाप्त होने को आई, अपनी परिक्रमाँ वह एक।।
तो दर्शन करने को झाँके, <u>वही ढाक औ वे ही पात</u>।
काठ नज़र आये ज्यों के त्यों, बदले नहीं जगत के नाथ।।
धुकड़ पुकड़ मच गई हृदय में, दर्शन क्यों नहीं हुवे हमें।
किस प्रकार दर्शन होते हैं, प्रश्न उठा यह अन्तर में।।
परिक्रमाँ कम लीं हमने, यही कमी हमको दीखी।
अतः जुटे फिर परिक्रमाँ में, हम श्री जगन्नाथ जी की।।
देखा फिर ज्यों के त्यों पाये, परिवर्तन लव लेष नहीं।
वे ही काले काले से मुँह, छिपे नहीं थे लगे वहीं।।
जभी हमारे साथी कारू, दास हमें मिल गये वहां।
वे भी घूंम रहे थे चारों, ओर लगाते परकम्माँ।।
क्या दर्शन हो गये आपको, हमने उनसे जा पूछा।
हम तो वंचित घूम रहे हैं, अब तक दर्शन नहीं मिला।।
उत्तर दिया महात्माँ ने अरे, यह क्या कहते हो तुम आज।
दर्शन तो साक्षात् दे रहे, हैं श्री जगन्नाथ महाराज।।
वह देखो उत हीरे मानिक, चमक रहे हैं अंगों पर।
झलक रही है एक अनूठी, प्रतिभा उनकी प्रतिमा पर।।
कहते हैं प्रत्यक्ष इन्हीं को,और कौन से होते हैं।
<u>सब कृतार्थ इस ही दर्शन से, जगन्नाथ के होते हैं।।</u>
हमने कहा महात्माँ अपने, को तो दर्शन मिले नहीं।
अगर कृपा हो जाए आपकी, तो दर्शन करवाओ कहीं।।
हम तो एक महात्माँ के, वचनों में बंध कर आये थे।
चले आ रहे हैं श्रद्धा औ, प्रेम साथ में अटल लिये।।

कर देंगे तुमको कृतार्थ श्री, जगन्नाथ दर्शन देकर।
पर हम वैसे के वैसे हैं, जगन्नाथ जी आने पर।।
जो कुछ सुना न पाया वैसा, हम निराश रह गये खड़े।
सभी दरश कहते हैं हो गये, हम ही को ना नजर पड़े।।
इस प्रकार की बातें अपनी, ताड़ रहा था इक पण्डा।
एक सिपाही को मंदिर में, लाकर वह पण्डा बोला।।
देखो मंदिर में पागल इक, घुसा हुआ है यहाँ आओ।
इक दम इसे निकालो याँ से, धक्के देकर ले जाओ।।
जाने क्या क्या यात्रियों को, कहकर भड़का रहा है वो।
एक मिनिट ऐसे पागल को,मंदिर में मत रहने दो।।
निकट सिपाही पहुँचा अपने, बोला ऐ तुम कौन।
बाहर निकलो इस मंदिर से, थे तब तक हम मौन।।
देखा कटु व्यौहार और इक, अमानुष्यता जब पाई।
तो हम देख दाखकर सब कुछ, बोले उससे ऐ भाई।।
काशी से पैदल आऐ हैं, है दर्शन की अभिलाषा।
दो ही परिक्रमाँ तो ली हैं, और रूको कुछ थोड़ा सा।।
अभी न हो पाये हैं दर्शन, शायद अब हो जायेंगे।
अच्छा बाहर चलते हो नंहि, डण्डे तुम्हें लगायेंगे।।
अपने लिये महास्वागत सा, जब वो करने आ पहुँचा।
तो जो मान मिला था अबतक, उसको ले चुपचाप चला।।
सोचा बस इतना काफ़ी है, अधिक मान क्या करना है।
दुनियाँ में है कौन हमारा, किसे कमाकर धरना है।।
जगन्नाथ ने नाथ दिये हम, नाक नकेल पड़ी अच्छी।
तृप्त किये इतने इच्छा अब, शेष न छोड़ी दर्शन की।।
मान मर्तबा उत्तम पाया, हमने दाता के द्वारे।
थकन दूर हो गई राह की, अवयव थे हारे हारे।।
जितने बंध बंधाऐ अब तक, अनायास सब तोड़ धरे।
मनो भाव अपने पवित्र थे, लेकिन सभी झंझोड़ धरे।।
दर्शन करने की इच्छा थी, छिप गई इक दम डर करके।
आये थे दर्शन करने जो, जगन्नाथ के मर मर के।।
हमने वहीं प्रतिज्ञा की इक, अब न किसी मंदिर जाना।
जगन्नाथ यदि घर आवें, दर्शन देने तो नंहि पाना।।
आठ रोज तक पड़े रहे हम, सागर तट पर चिंतिंत से।
क्या चाहा क्या मिला कहें क्या, रह गये रींते के रीते।।
भले महूरत से घर से तुम, निकले हो श्री झण्डू दत्त।

बिना बात छुट गया वतन ही, हाथ न कुछ आया अब तक।।

ख़ुदा ही मिला ना, विसाले सनम।
ना इधर के रहे ना, उधर के रहे।।

पाषाणों में सर न मार अब, क्या रक्खा प्रतिमाओं में।
क्या रक्खा मंदिर मस्जिद की, बड़ी बड़ी शालाओं में।।
वह जो अलख लखा नंहि जाता, कहीं अन्य ही पायेगा।
गुरू कामिल मिल जाए अगर कंहि, वो ही मार्ग बतायेगा।।
अब तो गुरू करो धारण कंहि, जब ही जन्म सफल होगा।
वरन यात्रा जगन्नाथ की, तरह से ही निष्फल होगा।।
घुटने क्यों तुड़ाए बे मतलब,इन धामों के चक्कर में।
भले आदमी पैर उठा, चलते हैं पहली ठोकर में।।
महा पुरूष कोई मिल जावे, रामेश्वर का लक्ष्य किया।
उन ही से कुछ हाथ लगेगा, हमने उठ प्रस्थान किया।।

अब मन इष्टों की नहीं, केवल सदगुरू चाह।
उठे सिन्धु की ढाँग से, भर कर लम्बी आह।।

खोज खोजने चल दिये उसकी, जिसका नाम निशान नहीं।
ना हुलिया का बोध चित्त को, आँखों को पहचान नहीं।।
किसको और कहाँ जा ढूँड़ें, बीड़ा चाबा एक अजीब।
सभी साहु हैं क्या दुनियाँ में, हम ही हैं क्या एक गरीब।।
अतः सखी गोपाल व ईसा, पटन व बीजा पटन गये।
और हिमाँचल पर्वत जाकर, महादेव मंदिर पहुँचे।।
यहाँ हमें गौ मुख धारा पर, कुटिया एक नजर आई।
वहाँ करें विश्राम आप, पण्डे ने हमको दिखलाई।।
निमयबद्ध होकर करते अब, दिवस पाँचवें हम आहार।
पर अब बदला नियम पाँचवे, दिन करते केवल फलिहार।।
द्रश्य उपस्थित हुवे रात में, हमको यहाँ पिछले जैसे।
बाँह मरोड़ी जाने किसने, आकर अपनी इकदम से।।
जब हमने आँखें खोलीं तो, पसरा पाया दिव्य प्रकाश।
चारों तरफ़ धूँप सी खिल रही, अंधकार का हो गया नाश।।
जो प्रकाश हम देख चुके थे, यात्रा में पहले दो बार।
थी विशेषता इस प्रकाश में, देख रहे जो हम इस बार।।

प्रगट हुवे इक दिव्य पुरूष, इकदम प्रकाश के अंदर से।
अविर्भाव होते ही उनका, इस प्रकार बोले हमसे।।
महादेव जी सहित मंडली, अब पधारने ही को है।
दर्शन जो अब होंगे मानव, को दुनियां में दुर्लभ हैं।।
सावधान हो लगे देखने, लीला क्या दिखलाते हैं।
किसी प्रकार का महादेव जी, दर्शन लाभ कराते हैं।।
ज्यों ज्यों द्रष्टि जमाई उनपर, तेज अधिक बढ़ता आया।
इकदम खिली धूँप सी चाँदन, जिसने कँण 2 चमकाया।।
एक पुरूष उतरा ऊपर से, जिसके आते ही इकसाथ।
आसन एक तख़्त के ऊपर, बिछ गया फ़ौरन अपने आप।।
इक प्रशाद का पात्र सामने, जिसमें चमचे जैसा एक।
पात्र बड़ा ही चमकदार सा, उस बर्तन में रक्खा टेक।।
फिर पैदा हो गई वहीं से, महात्माओं की एक जमात।
ऐसे खड़े हुवे आते ही, आवाहन कर रही जमात।।
लगे देखने सब ऊपर को, जैसे कोई आता हो।
औ प्रकाश आपे से बाहर, हो के उफना जाता हो।।
साक्षात् श्री महादेव जी, आसन पर पधारे पाये।
जँचा नहीं कब और कहाँ को, होकर आसन तक आये।।
किया दण्डवत् सबने हमने, भी उनको परनाम किया।
तत्पश्चात् बैठते ही, देना प्रशाद आरम्भ किया।।
बाँह गहे था जो अपनी, उसने हमको संकेत किया।
लगो लैन में तुम भी जाकर, हमें उठाकर भेज दिया।।
लुटिया हाथ कमलिया कंधे, लगे लैन में हम जाके।
बढ़े एक के बाद एक सब, हम भी पहुँच गये आगे।।
दिव्य पुरूष श्री महादेव जी, से जब आँख मिली जाके।
प्रेम बिंदु छलके नैनों से, नींचे द्दग से ढुलक पड़े।।
भर प्रशाद की चम्मच शिव जी, ने आगे की हमको भी।
खड़े रहे हम ज्यों के त्यों ही, फैली नंहि आगे झोली।।
दिव्य पुरूष बोला प्रशाद, ले लो देखो शिव देते हैं।
पाँच रोज़ के बाद नियम है, थोड़े फल ले लेते हैं।।
नियम टूट जायेगा अपना,लिया आज ही है फलिहार।
नहीं चाहते दिवस पाँच से, पहले करना कोई आहार।।
खाना ही जब नहीं हमें कुछ, तो लेकर के क्या करना।
लेकर अगर न खाया हमने, है यह निरआदर करना।।
दिव्य शक्ति ने बाद्य किया, हमको प्रशाद ले लेने को।

हाथ पात्र तो था ही शिव के, झुके प्रशादी देने को।।
सान्त्वनाऐं देते हुवे बोले, घबराने की बात नहीं।
कठिन प्रतिज्ञा करली तुमने, पर ठहरो इक मास यहीं।।
शंकर जी ठहरा करते यहाँ, एक मास सावन सावन।
समाधान हो सकता है तब, भक्त आपका जो है प्रंण।।
कहते ही हो गये अलक्षित, यहाँ न कोई था जैसे।
हम प्रशाद लुटिया में लेके, निज आसन पै जा बैठे।।

दर्शन पर्सन क्या करें, समझ न जब तक आए।
यह सदगुरू का काम है, उस के हाथ उपाए।।

सुबह हुई बैठे बैठे ही, डूबे उन्हीं ख़ायालों में।
उसी अवस्था में प्रसन्न हैं, रक्खे तू जिन हालों में।।
बोले एक महात्माँ प्रातः, अपने आसन पै आके।
श्री तृप्ति बाला जी के तुम, दर्शन और करो जाके।।
हर प्रकार से इक महत्व, दर्शाया श्री बाला जी का।
रूचि मोड़नी चाही मेरी, यह था मतलब साधू का।।
कहा महात्माँ से हमने हम, एक माह नंहि जायेंगे।
यहीं ठहरना है आवश्यक, धूनी यहीं रमाऐंगे।।
सुनकर तब तो चले गये पर, अगले दिन वे फिर आये।
फिर महत्व बाला जी के ही, साधू ने आ दर्शाये।।
कथा पूर्व की शुरू हुई फिर, बात बात पर बाला जी।
अति विभोर हो कर महत्व, दर्शाते रहे हमें बाबा जी।।
दिया बदल ही पासा आख़िर, निश्चय होने लगा हमें।
व्याख्या पर निदान अब उनकी, श्रद्धा आने लगी हमें।।
अब विचार बन गये हमारे, बाला जी की यात्रा के।
परिवर्तन आया अपने में, बृद्ध साधु की व्याख्या से।।
प्रातः ही प्रस्थान किया, हिमगिरी में वालटियर पहुँचे।
एक महात्मां का आश्रम, हमने आसन आ टेके।।
इक बरामदे से में साधू, और बहुत थे पड़े हुवे।
कुछ के आसन लगे पड़े थे, कुछ के थे वहाँ धरे हुवे।।
जगह बैठने योग्य देख के, अपना आसन लगा लिया।
सदा बैठ कर ही अपने ने, जहाँ गये विश्राम किया।।
लिये सहारा एक भींत का, हम आसन पर थे पधरे।
एक महात्मां जी अपने, आगे से होकर के गुज़रे।।

रहे देखते हम उनको पर, हमने नहीं प्रणाम किया।
देखा जब व्यौहार हमारा, अपने प्रति तो वहीं रूका।।
पूछा हमें ब्रह्मण हो तुम, हाँ कहकर उसे बतलाया।
यह शरीर ब्राह्मण ही का है, सुन हमसे वह खिसियाया।।
आप ब्राह्मण कैसे जो, संन्यासी को परनाम नहीं।
है सर्वथा अनादर अपना, गुरूओं का सन्मान नहीं।।
जगत गुरू ब्रह्मण होते हैं, ब्राह्मण गुरू सन्यासी।
शास्त्रों में गर्भित है ऐसा, सन्यासी गुरू अविनाशी।।
उचित नहीं था तुमको यह, जैसा तुमने व्यौहार किया।
सुनकर के उनका भाषण, हमने भी उन्हें जवाब दिया।।
हमें आपमें सन्यासी के, लक्षण नज़र नहीं आये।
इसी लिये चुप बैठे रहे हम, तुम्हें प्रणाम न कर पाये।।
स्वयं हमारा सर झुक जाता, यदि तुम में लक्षण होते।
यों कटाक्ष करने का तुम को, हम अवसर ही नंहि देते।।
कुछ खिसियाना सा होकरके, ज़रा तुनक करके बोला।
तू तो पहले हमें आज, सन्यासी के लक्षण बतला।।

गीता से

काम्यानाम् कर्मणान्यसम संन्यासम् कवियो विदो

यह लक्षण सन्यासी के हैं, जो गीता में बतलाये।
आप हमें ऐसे लक्षण के, बिलकुल नज़र नहीं आये।।
कर्म प्रर्वत भेष सन्यासी, यह व्यौहार असंगत है।
टाट और पशमीने का क्या, मेंल कौन सी संगत है।।
समझ लिया या और बतावें, इक हल्का सा व्यंग किया।
केवल इन्हीं कारणों के वश, हमने नहीं प्रणाम किया।।
जिस श्रेणी के थे बाबा जी, उन्हीं गज़ों से नाप दिया।
अपशब्दों की वर्षा करती, शर्म आवरण तार दिया।।
रूष्ट हुवे हमसे इकदम, बोले बस अब रहना हुशियार।
मंगल का दिन आने दे, बतलाऐंगे रहना तय्यार।।
हमने करी प्रार्थना उनसे, सब ही हैं तुम में सामर्थ।
मंगल तक की बाट महात्माँ, जी क्यों देख रहे हो व्यर्थ।।
अभी कृपा कर देते हम पर, अभी देख लेते हमको।
मंगल आवे ना भी आवे, वृथा देर होगी तुमको।।

मंगल ही को बतलायेंगे, चलते बने अकड़ करके।
देख रहे थे साधू जन सब, जितने थे आश्रम भरके।।
इस विवाद के देर बाद, बोली इक माई जी आके।
बड़ा बुरा है यह साधू तुम, सावधान रहना इससे।।
कोई उपद्रव ना कर बैठे, थे इसके ऐसे ही भाव।
बुद्धिमत्ता कोसों भी नंहि थी, जैसे हो सर्वथा अभाव।।
यही ठीक समझा हमने बस, इससे पहले ही चलदो।
साथ छोड़ दो अब सबका बस, बल्के त्याग यहीं करदो।।
तज रक्खा था कुछ दिन से, हमने फलिहार अहार भी।
रहते थे तब ही से हम बस, केवल जल आधार ही।।
बीत चुके थे कितने ही दिन, इस प्रकार के लंघन में।
लंघन से कमज़ोरी कितनी, ही आ जाती है तन में।।
उठ न खड़ा हो कोइ उपद्रव, हमने उठ प्रस्थान किया।
हम को जाता लख सन्यासी, ने भी मनमें ठान लिया।।
साथ साथ चल दिया हमारे, अपने पूरे साथ सहित।
हमने सोचा अब अवश्य, होना है अपना कुछ अनहित।।
उपद्रवी तो है ही यह अब, कोइ उपद्रव होना है।
हमने अपनी चाल बढ़ादी, भुगतेंगे जो होना है।।
जो बोया काटेंगे अब तो, डरना ही है अब काहेका।
पर बच सकते बचलो, भुगतें यदि सर आन पड़ा।।
हमने खान पान निज तज के, मरना ठान लिया ही था।
जब मरने पै उतर आए तो, फिर आगे डर काहे का।।
आठ रोज़ के भूके थे हम, केवल जल ही था आधार।
जाने किस कोने से शक्ती, उदय हुई इकसाथ अपार।।
लेकर चली हमें तेज़ी से, पड़ने लगे फूल से पैर।
पीछे छोड़ दिया सब ही को, क्या बैरी क्या उसका बैर।।
पेंतिस मील यात्रा उस दिन, जल के बल पर कर डाली।
जल की थैली भर लेते बस, अन की ख़ाली की ख़ाली।।
पेट पींठ तक जा पहुँचा था, आँखें धंसी हुई भीतर।
गाल कुचे थे भीतर मुँह में, औ कमान सी बनी कमर।।
बाँध लिया करते थे अपनी, गठरी हम अपने हाथों।
किसी पेड़ का लिये सहारा, धरी रहा करती रातों।।
धूँप लगा करती तब खुलती, वरन् पड़ी है बंधी हुई।
नींद न आती हमें किसी क्षण, रहती हमसे भगी हुई।।
चार रोज़ लम्बी यात्रा के, बाद पहुँच गए बाला जी।

मंदिर में हम कहीं न जाते, दर्शन इच्छा भस्म हुई।।
रात कटी बाला जी प्रातः, वहाँ से भी प्रस्थान किया।
पाप नाशनी जा पहुँचे, गंगा तट पर विश्राम किया।।
नग्न अंग थे वस्त्र हीन, कपड़े का नाम निशान नहीं।
बस्ती में जाने लायक हम, इस कारण बिलकुल रहे नहीं।।
जिस हालत में वह रक्खे, उसमें ही रहना ठीक लगा।
भाग्य बिचारे को बहुतेरा, देखा हमने जगा जगा।।
किन्तु न करवट ली उसने इक, कुम्भ करण से परे हुवा।
हम भी बीत चुके पर उसका, अब तक ना परभात हुआ।।
अब तो ठौर खोजते थे जिस, पर अपना प्राणाँत करें।
मरण लालसा जाग उठी, इस चोले को अब शान्त करें।।
नहीं रहेंगे अब इस जग में, जहाँ न परमात्माँ आभास।
जहाँ न रहते हों परमातम, किसका करें मिलन अभ्यास।।
देव दानवों की दुनियां है, किसका यहाँ सहारा लें।
किसे सोंपदें अपने को, सर्वस्व सर्मपण किसे करें।।
देख चुके जग जगन्नाथ को, भी जाकर के देख लिया।
घुटने फिरे तुड़ाते नाहक, धक्कों का परशाद मिला।।
बैठ गये हम कमर लगाकर, मिल गई इक पाषाण शिला।
अब मर कर ही उठें यहाँ से, मनमें हमने धार लिया।।
अर्द्ध रात्रि उपरान्त हमारे, पास महात्माँ इक आया।
जिसने निज ठठरी की गठरी, खुलवाकर यों समझाया।।

"आश्रमात् आश्रम गच्छेत्"

आप ग़लत संकल्प लिये हैं, इसका समय नहीं है अब।
इसकी शोभा उसी वक्त है, समय आयगा इसका जब।।
पहले ब्रहाचर्य आश्रम है, तत्पश्चात् गृहस्थ आश्रम।
वानप्रस्त आश्रम के पीछे, आता है सन्यास आश्रम।।
वक्त वक्त का करना अच्छा, वक्त वक्त की बातें ठीक।
कभी वक्त शहनाई का है, कभी घोंस रण की निरभीक।।
नई कली के लिये चाहना, असमय में ही पूर्ण विकास।
क्या है नहीं अप्राकृत और, असंगत उससे ऐसी आस।।
प्रथम मिलन में ही क्या समुचित, हो जाता संकोच विनाश।
क्या परमात्माँ इतना सस्ता, है जो आवे यों ही हाथ।।
निर्णय बदल गया सुनते ही, उनका महत्वपूर्ण वक्तव्य।

ठीक लगीं उनकी बातें सब, जँचा हमें अपना कर्तव्य।।
अगर आपकी राय यही है, सुबह चले जाऐंगे हम।
अब सत् समझ गये हम क्या है, पालन करें यही अब हम।।
देखो यहाँ न ठहरो कोई, नहीं ठहरता यहाँ कभी।
मेरी सम्मति में तुम यहाँ से, चले जाओ बस शीघ्र अभी।।
कोइ तुम्हें डर लगता है क्या, हमने कहा नहीं महाराज।
कभी नहीं डर लगता हमको, हमें बराबर है दिन रात।।
कर प्रणाम उनको हम उठ लिए, बाला जी वापिस आये।
वन पर्वत आ गये लाँघते, प्रातः बाला जी पाये।।
मठ के बाहर एक वृक्ष के, नींचे आसन लगा लिया।
बैठ गये घुटनों में सर दे, दुनिया से मुँह छिपा लिया।।
वही रात थी जिसकी हमें, चुनौती दी संन्यासी ने।
किया इशारा था मंगल था, उपद्रवी अभिलाषी ने।।
सर अपना घुटनों में था निज, बीत चुकी थी अर्ध निशा।
अधी रात उतर ली होगी, हमको कुछ घबराट हुवा।।
सुमरन किया इष्ट अपने का, जपते जपते रात गई।
बैठे रहे उसी मुद्रा में, जब तक पूर्ण प्रभात हुई।।
उदय हुआ जिस समय उजाला, साधुओं ने देखा हमको।
देख हमारी हालत कुछ, आश्र्चय्य हुआ साधूजन को।।
कौन भेष के साधू हो तुम, प्रश्न किया हमसे कुछ ने।
हम साधू नंहि के बाबा जी, उत्तर दिया उन्हें हमने।।
बद क़िस्मत से सिर्फ़ ब्राह्मण, ही हैं और नहीं हैं कुछ।
धक्के खाते फिरते हैं भइ, लीला में उसकी अद्भुत।।
गुरू नहीं कर पाये अब तक, करमहीन निकले इतने।
विचर रहे उद्दण्ड इसी से, बँधे नही हैं घूटे से।।
बड़े प्रसन्न हुवे सब साधू, सत्य बात सुनकर अपनी।
लगें हमारी तारीफ़ें, करने सब साधू संन्यासी।।
मठाधीश जी भगवान दास, मठ से बाहर को आये।
बात पूछते फिरे सभी की, सब के बाद यहाँ आये।।
जहाँ धरा था अपना पिंजर, वृक्ष सहारा था जिसका।
पेट चिपक रह गया कमर से, जैसे दम निकला इसका।।
मुंह बन गया घौंसला सा इक, केवल आने जाने को।
स्वांस पक्षि आता जाता बस, बना न जैसे खाने को।।
उठ तो हम सकते ही नंहि थे, लटके थे धागे तनपर।
पूर्ण दिगम्बर बने पड़े थे, था दारिद्र हमारे पर।।

आकर खड़े हुवे वे सन्मुख, देखा हमें आँख भर के।
बड़े ग़ौर से देख दाख कर, इस प्रकार बोले हमसे।।
चलो ब्रह्मचारी मंदिर, बाला जी का दर्शन करना।
सदभाओं को पाकर हमने, शुरू किया पीछे चलना।।
साथ चल दिये जभी हम, अन्दर पहुँच गये जिस वक्त।
पींठ थप थपा कर मिठास के, शब्दों में बोले हे भक्त।।
आप यहाँ ठहरो तुमको हम, सारी सुविधाऐं देंगे।
जिस अहार फलिहार आदि की, इच्छा हो वह ही देंगे।।
नहीं बनाया शिष्य अभी तक, आप अगर ऐसा चाहो।
तो हम तुम को शिष्य बनालें, फेर बहुत ही अच्छा हो।।
इस प्रकार आग्रह पर उनके, उत्तर दिया अजी महाराज।
कृपा आपकी इतनी ही, काफ़ी है जितनी की है आज।।
आप हमारी बात पूछली, क्या इतनी ना काफ़ी है।
शिष्य योग्य हम नहीं आपके, इसकी तो बस माफ़ी है।।
भार सहन यह हो न पाएगा, संचालन में हैं असमर्थ।
शिष्य बने भी काम चला ना, सिद्ध हुवे हम आगे व्यर्थ।।
मन है डाँवा डोल हमारा, चित्त दुनी से उचटा है।
खोज रहे हम अन्य किसी को, अभी उसी की इच्छा है।।
कृपा मात्र काफ़ी है भगवन, ज्यों की त्यों यदि बनी रही।
तत्पश्चात उन्हें झुक करके, सादर एक प्रणाम करी।।
इतना कहकर बाहर आये, बैठ गये निज आसन पर।
जिस प्रकार बैठा करते थे, निज घुटनों में सर रखकर।।
भेज दिया फलिहार हमें कुछ, मठाधीश जी ने मठ से।
जो आदेश मिला था हमको, उसी रात गंगा तट से।।
समय समय पर काम उचित है, फल अहार स्वीकार लिया।
पांच आम लेकर हमने, उनमें से उनका पान किया।।
नियम पाँच फल ले लेने का, उस दिन से आरम्भ हुआ।
अगर मिला तो इक ख़रबूजा, पा लेते यह नियम हुआ।।
उसी वृक्ष के नींचे उस दिन, रहे और विश्राम किया।
गुरूवार को तृप्ति तीर्थ को, उठ करके प्रस्थान किया।।
वहाँ तृप्ति में जब आये तो, वही माइ मिल गई हमें।
बाल्टियर में मिली हमें जो, संन्यासी के बारे में।।
प्रणामादि उपरान्त माइ से, पूछा हमने माता जी।
कहाँ साथ छूटा उनसे, हैं प्रसन्न भी वे सन्यासी।।
माई बोली सुनते ही, उनका तो चोला शान्त हुवा।

बारह बजे ठीक मंगल को, हैज़े से प्रांणान्त हुवा।।
चले गये परलोक यात्रा, करते करते बेचारे।
उनको ही समाध दिलवाकर, कल आये हैं हम सारे।।

उस माई की बात सुन, बड़ा हुवा अफसोस।
जानें कैसे कर्म का, मिला उसे परितोष।।

सब लाचार यहाँ आ करके, चारा नहीं किसी का भी।
कर्म काण्ड पर बंधी हुई है, परमेश्वर की यह सृष्टी।।

'आठवीं लहर'
'श्री बाला जी धाम'

बाला जी की मान प्रतिष्ठा, इस प्रदेश में काफ़ी है।
वैसे है इक राज्य तृप्ति जो, बाला जी से नीचे है।।
एक टेकरी के ऊपर है, बाला जी का मठ स्थित।
ऊचाई दस मील घूमकर, जाती है बाला जी तक।।
नीचे से पौड़ी पौड़ी, होकर के यात्री जाते हैं।
बाला जी विख्यात हुवे, कब से यह कथा सुनाते हैं।।
नामक हाथीराम महात्माँ, ने तप किया टेकरी पर।
एक वृक्ष के पत्तों पर ही, था उनका जीवन निरभर।।
अन्य आहार न करते कोई, एक वृक्ष के ही पत्ते।
खाकर मस्त रहा करते थे, थे अपने प्रंण के पक्के।।
तृप्ती के राजा ही करते, सभी व्यवस्था मंदिर की।
सब कुछ था आधीन उन्हीं के, सम्पत्ति थी सारी उनकी।।
संचालन का भार धाम का, राजा के हाथों में था।
हाथी राम जहाँ रहते वह, बड़ा भयानक सा वन था।।
होकर मुग्ध भक्ति पर उनकी, एक बार नट नागर श्याम।
बाल रूप घर कर आ खेले, जहाँ रहते थे हाथी राम।।
बाल मोहिनी छवि जब देखी, हाथी राम न रह पाये।
उठ करके अपने आसन से, उस बालक के ढिंग आये।।
निकट पहुँच जब छवि अवलोकी, तो चुटियल हुवे हाथी राम।
बुद्धी ज्ञान हवा हो गए सब, हुवा हृदय का काम तमाम।।
तब की तो पूछो ही मत जब, तोतली लीला शुरू हुई।
सराबोर करती हुइ मीठी, शिशु क्रीड़ा आरम्भ हुई।।
भूल गये उन क्रीड़ाओं में, भक्त पूछना उनका नाम।
किस प्रकार तुम मुझ तक आये, कौन पिता क्या तेरा ग्राम।।
बाल रूप पर मोहित होकर, लगे खेलने उनके साथ।
हाथी राम स्वयं भी उनसे, करने लगे तोतली बात।।
हाथी राम हुवे तन्मय शिशु, लीला का करके रस पान।
खेले ख़ूब मस्त हो करके, दोनों भक्त और भगवान।।
किन्तु भक्त अनभिग्य रूप से, वास्तवो में है यह कौन।
जब आता आनंद हृदय में, ज्ञान शक्ति हो जातीं मौन।।
चार रोज़ तक नित्य निरंतर, शिशु लीला आनंद लिया।
कृत्य कृत्य कर दिया भक्त को, हाथी राम कृतार्थ किया।।

चौथे दिन भगवान भक्त से, बोले आप महात्मा जी।
पड़े हुवे हो छिपे हुवे क्यों, इस गहराई में बनकी।।
किस तलाश में हो क्या इच्छा, है हमको भी बतलादो।
किस दुख से घर त्याग आए हो, क्या गड़बड़ है जतलादो।।
बाबा बोले सुनते ही क्या, इच्छा होती भई हम को।
पड़े पड़े ऐकान्त बास में, याद किया करते उसको।।
नित्य देखते रहते हैं छवि, अलग पड़े निज प्यारे की।
नंद नंदन आनंद कंद श्री, श्री ब्रज चंद्र दुलारे की।।
अपने पास रहा करता है, नंद नंदनी का छोरा।
मस्त याद में रहते उसकी, भला चाहते उससे क्या।।
अगले दिन फिर बाल रूप ने, बाबा से यही पूछ लिया।
क्रीड़ा व्यस्त महात्मा जी से, बालक ने फिर प्रश्न किया।।
पड़े हुवे हो निरजन वन में, कारण नहीं बाताते हो।
गुप्त भेद है इसमें कोई, जिसको आप छिपाते हो।।
सानुरोध आग्रह जब देखा, बार बार उस बालक का।
हाथी राम प्यार सा करके, बोले तू क्यों पूछ रहा।।
क्या दिलवादेगा हम को कुछ, भगके गोदी उठा लिया।
दिलवाना है तो ला दिलवा, राज तृप्ति के राजा का।।
पूछ नन्हे से मुँह को, रोज़ थकाये लेता है।
दिलवा भी सकता है बस या, पूछ पूछ ही लेता है।।
कहा तोतली भाषा में, उस बाल रूप छवि ने उनको।
इच्छा अगर यही है बाबा, जाओ राज मिले तुमको।।
खेल खेल में विदा हुवे, इक दम श्री कृष्ण चन्द्र महाराज।
बातों बातों में दे गए, बाबा जी को तृप्ती को राज।।
स्वप्न दिया जाकर रात्री में, तृप्ति धाम के राजा को।
काल निकट आ पहुँचा तेरा, सूचित करते हैं तुमको।।
आठ रोज के अन्दर अन्दर, तू अवश्य मर जायेगा।
तेरा राज्य पाट सारा यह, यहीं धरा रह जायेगा।।
करने को अंत्येष्ट क्रिया तक, तेरे कोइ संतान नहीं।
अवधि पूर्ण हो चुकी तुम्हारी, आठ रोज की जान रही।।
केवल सूचनार्थ तेरे को, स्वप्न बीच मैं आया हूँ।
अंत सुधर जाये जो तेरा, चेत कराने आया हूँ।।
नामक हाथी राम महात्माँ, ऊपर इसी टेकरी पर।
राज पाट अपना यह सारा, सोंप देओ उसको जाकर।।
धर्माचारी होने से वो, राज चलायेंगे अच्छा।

दाह कर्म तेरे उनके ही, हाथों हों यह है इच्छा।।
यदि सुधारना चाहो निज को, सौंप राज्य अपने हाथों।
वरन बहुत पछतायेगा तू, समय गया बातों बातों।।
राजा की खुल गई पट्ट से, आँख नींद से जाग गया।
लगा सोचने निज भविष्य को, यह क्या अपने साथ हुवा।।
निश्चय किया यही उत्तम है, जो कुछ देखा सपने में।
जिसने हमको चेत किया है, उसे प्रेम है अपने में।।
कहा न मानें यदि हम उनका, जो भविष्य वाँणी में था।
कर्म धर्म सब बिगड़ जायेगा, जीवन सारा जाए व्रथा।।
प्रातः ही उठकरके राजा, ऊपर गया टेकरी पर।
हाथी राम महात्माँ के, दर्शन पाये उसने जाकर।।
तत्पश्चात महात्माँ जी का, राजा ने पूछा शुभ नाम।
उत्तर दिया महात्माँ ने, मुझको कहते हैं हाथी राम।।
हाथी राम आप हो भी या, है केवल बस नामहि नाम।।
रूक न पाए थे राजा कहकर, उत्तर दिया नहीं हैं भी।
जब हाथी बनकर दिखलाओ, हमको भी विश्वास तभी।।
ऐसा कर दिखलादेंगे यदि, एक बात मंजूर करो।
लीद उठानी पड़े हमारी, तुमको खुद स्वीकार करो।।
राजा ने यह शर्त महात्माँ, की स्वीकारी खुश होकर।
लीद उठावें अपने हाथों, दर्शन दो हाथी बनकर।।
हाथी राम महात्माँ बोले, तो फिर प्रातः आ जाना।
लीद उठाने के साधन का, इन्तज़ाम करते लाना।।
इतना सुन प्रणाम कर उनको, राजा ने प्रस्थान किया।
प्रातः फिर दर्शन करने को, उस सरूप के पहुँच गया।।
जिधर दृष्टि पहुँची राजा की, मीलों लीद पड़ी पाई।
राजा डरा लीद जब देखी, बुद्धि उसकी चकराई।।
एक वर्ष तक भी इतनी को, तू तो उठा न पायेगा।
अगले दिन फिर इतनी को, तू तो उठा न पावे मर जायेगा।।
हार हुई अपने वचनों में, जीते आप महात्माँ जी।
चरण गहे दर्शन पाते ही, शरणागत हुए जाते ही।।
रज को उठा तभी आश्रम की, राज तिलक कर दिया स्वयं।
राजा अब से तुम तृप्ति के, नहीं रहे हैं अब से हम।।
हो समस्त वै भव अधिकारी, स्वयं सोपता हूँ मैं आज।
स्वामी सभी प्रजा के अब, तृप्ति को समझो अपना राज।।

मैं हूँ सिर्फ़ चार छः दिन का, कुछ घड़िया बाक़ी हैं शेष।
इसी वास्ते सोंप रहा हूँ, हाथ आपके सभी प्रदेश।।
सब उत्तर दायित्व आप ही, पर है इसका अब महाराज।
हमतो उऋण हुवे अब इससे, सोंप दिया सब तुमको आज।।
हाथी राम महात्माँ को जब, वै भव राज्य हुवा उपलब्ध।
बाल रूप इक दम याद आया, भनके कान तोतले शब्द।।
खेल खेल में राज्य मांग कर, मैंने क्या अपराध किया।
था विरक्त निरद्वन्द भक्त मैं, अब यह बोझा लाद दिया।।
छलिया छलकर खेल खेल में, ठग कर ले गया हाथों हाथ।
ठगा गया मैं अनजाना, बाला जी तुमसे बातों बात।।
हा बाला जी, हा बाला जी, कूक मार कर हाथी राम।
विखल हो उठे विरह अग्नि से, ले ले कर बाला जी नाम।।
हाथी राम भक्त बहुतेरा, बाला बाला चिल्लाया।
किन्तु मोहिनी छवि बाला जी, की फिर देख नहीं पाया।।
राज्य भार सब केलि कला का, चिन्ह मात्र कर छोड़ गये।
मोह न मोहन तुम मे किंचित, इकदम रिश्ता तोड़ गये।।
राज्य तिलक की रस्म अदा हुइ, गद्दी पर पधारा उनको।
आदर दिया प्रजा ने सारी, हाथी राम महात्माँ को।।
चार रोज़ के बाद स्वयं, राजा ने चोला छोड़ दिया।
संस्कार अंत्येष्ट क्रिया का, भक्त राज ने आप किया।।
उसी टेकरी पर बाला जी, का इक मंदिर बनवाया।
साथ साथ इक मठ अपना भी, हाथी जी ने चिनवाया।।
बाला जी की मान प्रतिष्ठा, केवल इस घटना से है।
श्रद्धा बड़ी विकट लोगों में, बड़ा मर्तबा इनका है।।
लेकिन हम न घुसे मंदिर में, हृदय हमारा जख्मी था।
चोट लगी जो जगन्नाथ में, रहता हरदम जख़्म हरा था।।

बाला जी से भी हुवा, आगे निज प्रस्थान।
सदगुरू की इच्छा फ़कत, फ़कत उन्हीं का ध्यान।।

महा लक्ष्मी मंदिर पहुँचे, था मंदिर वह बड़ा विशाल।
लंगर जहाँ खुले रहते थे, पूरे करते सभी सवाल।।
साधू और महात्माओं को, सुविधाऐं मिलती सारी।
दवा गोलियाँ भी मिलती थीं, अगर किसी को बीमारी।।
छोड़ छाड़ इसको भी पीछे, अपन होंज पिट जा पहुँचे।

मिले जुले इक जगह बहुत से, संत महात्माँ बैठे थे।।
उन्हें देखकर पास पहुँच गये, तो अपना सत्कार हुआ।
देकर हमें इशारा हाथों, का उन सबने भगा दिया।।
हाथों से संकेत मिले, इकदम से कितने ही हमको।
था मतलब स्पष्ट सभी, चिल्लाये हमको हटने को।।
एक साथ आदर इतनों से, पाया तो स्वीकार किया।
ऐसे भाव देखकर उनके, मैं हट करके बैठ गया।।
थोड़ी देर बाद इक साधू, खड़ा हुवा आकर आगे।
ऐसी दशा देखकर अपनी, फटकारा हमको आके।।
शरम नहीं आती क्या तुमको, इस प्रकार नंगे फिरते।
घर से निकल पड़े साधू बन, डूब कहीं क्यों नहीं मरते।।
इतने सेठ पड़े हैं जिनकी, गिनती तलक न हो पाती।
तुमसे एक लंगोटी उनसे, जाकर मांगी नंहि जाती।।
हमें डाट फटकार लगाते, चले गये बड़ बड़ करते।
एक शब्द भी उनके आगे, अपने राम नहीं बोले।।
पर मन ही मन लगा बोलने, जिसकी ख़ातिर घूँम रहा।
आँखों वाला है वह तो क्या, उसको नंहि दिखता होगा।।
उसकी ऐसी ही इच्छा, होगी जो घुमा रहा है यों।
स्वयं न दे जब तक नंहि पहनें, किसी से जाके माँगे क्यों।।
उचित यही समझा अपने ने, और जगह बैठे जाकर।
जब दीखेंगे नहीं किसी को, कहे कौन किसको आकर।।
चले गये बाज़ार खंडर सा, पड़ा हुवा था इक स्थान।
दरवाजा वरवाजा कुछ नंहि, मंदिर हो जैसे हनुमान।।
जँची मूरती भी स्थापित, जैसे वीराने में मोर।
अस्त व्यस्त औ जीर्ण क्षींण सा, नजर पड़ा हमको चहुँ ओर।।
कमर लगा जा बैठे हम भी, उस उलूक सी शाला में।
भांप लिया लेकिन अपने को, इक दुकान से लाला ने।।
थोड़ी देर बाद लाला जी, बोले आकर के हम से।
क्यों जी तुम यां क्यों बैठे हो, चलो उठो भागो यहाँ से।।
ठहरो और कहीं जाकर के, जहाँ तुम्हारा हो स्थान।
भाइ हमारी जगह कहाँ है, अपनी जान न याँ पहचान।।
कहाँ चले जायें लाला जी, किसके द्वारे पड़े जाकर।
अपना कोइ नहीं है बाबा, किरपा करो हमारे पर।।
तब तो कृपा करी लाला ने, चले गये बड़ बड़ करते।
किन्तु एक घंटे के पीछे, लाला जी फिर आ धमके।।

लगे भगाने फिर आ करके, गये नहीं क्या अभी कहीं।
यह तुम जैसों के पड़ने का, भाग जाओ स्थान नहीं।।
जगह ठहरने की नंहि है ये, कहीं जाओ माँगो खाओ।
रात काट लेने दो हमको, लाला तुम मत घबराओ।।
कुछ लेते तो नहीं आपसे, हमें तंग फिर क्यों करते।
कहा चले जाऐ अब बोलो, सोचो जरा कृपा करके।।
लाला बुरड़ बुरड़ सी करते, चले गये ऐंठे ऐंठे।
घोंस धास देकर भगने की, फिर दुकान पर जा बैठे।।
जब बाज़ार बंद होने का, वक्त हुवा लाला आया।
कुछ परिवर्तन सा था अब कै, जो आकर के दर्शाया।।
बाबा जी दुकान में आओ, वहीं ठहर जाना अब आप।
जाना नहीं कहीं हमको अब, मना कर दिया हमने साफ़।।
क्या लेना हमको दुकान में, क्या लेना हैं यहां हमें।
प्रातः उठकर चले जायेंगे, लाला रक्खो क्षमाँ हमें।।
चिंता कुछ मत करो हमारी, ठीक ठाक बैठे हैं हम।
आप बिना आराम रहोगे, क्षमाँ करो गलती भगवन।।
हमने जो अप शब्द कहे वह, थी बाबा जी अपनी भूल।
आप महात्माँ हो बाबा जो, हम हैं सिर्फ़ चरन की धूल।।
क्षमा करो ग़लती थी अपनी,अब दुकान ही में रहना।
वहाँ तुम्हें आराम मिलेगा, मान जाओ बाबा कहना।।
पैर पकड़ सौ मिन्नत करके, साथ साथ ले गया लिवा।
माना नहीं चिपट कर रह गया, बहुतेरा ही मना किया।।
कपड़े की दुकान थी उसकी, आसन बिछा दिया इकसाथ।
बैठ गये हम जब जा करके, बोला हमें जोड़कर हाथ।।
कृप्या आप लंगोटी ले लें, हमने कहा ठीक हैं हम।
जैसे हैं रहने दो हमको, लाला करो न हमको तंग।।
उसकी इच्छा जिस प्रकार हो, उस ही में रहना है ठीक।
दख़ल न दो उसकी इच्छा में, उस ही में रहते निरभीक।।
बोला सेठ नहीं बाबा जी, यह तो बात मान ही लो।
बड़ी कृपा होगी तुम हमसे, एक लंगोटी ले ही लो।।
अपनी जगह फकीरी अच्छी, अपनी जगह भेष होता।
बाबा जी नाता होता, दोनों में चोली दामन सा।।
जितना बड़ा बताओ कपड़ा, अभी फाड़कर देता हूँ।
मगर लंगोटी आवश्यक है, विनय पूर्वक कहता हूँ।।
लाला तो अपनी धुन में था, पर विचार में हम भी थे।

सोच रहे थे मन ही मन में, व्यौहारों पर बनिये के।।
घंटे भर पहले तो धक्के, देने पर था तुला हुवा।
अब उदारता क्यों है इसमें, दाता क्यों है बना हुवा।।
कहीं उन्हीं की इच्छा है क्या, बनिये से दिलवाने की।
बनिया चोट कभी खाने, वाला नंहि होता आने की।।
यह तो बाहर भी दुकान के, नहीं बैठने देता था।
भाग जाओ क्यों बैठे हो यहाँ, इस प्रकार से कहता था।।
निश्चय है आदेश उन्हीं का, उन ही ने उकसाया है।
इसी वास्ते बनिया अपने, पास भाग कर आया है।।
दिला रहे हैं वे ही इससे, तो फिर लेलो झण्डूदत्त।
तन ढकने को कपड़ा लेकर, आई पी किरपा इस वक्त।।
अगर यही इच्छा है तेरी, हम लाला जी से बोले।
इक बालिश्त फाड़कर कपड़ा, हमें लंगोटी का दे दे।।
उसने झटसे फाड़ फूड़के, हमें लंगोटी पकड़ादी।
बोला बनिया एक अंगोछा, और चाहिये बाबा जी।।
क्या करना है हमें अंगोछा, उसकी नहीं हमें दरकार।
थाली वाला कपड़ा अपना, है अवश्य बिलकुल बेकार।।
जब निकाल दिखलाई हमने, कपड़े की अपनी थाली।
जो अब वास्तवों में छलनी, रह गई सूराख़ों वाली।।
बीच हुआ फटकर ग़ायब सा, बनिये को आश्चर्य हुआ।
क्या बाबा इस कपड़े से, अब तक थाली का काम लिया।।
मैं तुमको इक थाली लाकर, देता हूँ इसको छोड़ो।
हम बोले लाला जी हमको, कृप्या बोझा मत जोड़ो।।
आप बराबर इस कपड़े के, हमें वस्त्र ही दे देवें।
थाली का जंजाल बाँधने, से तो हमें क्षमाँ देवें।।
फाड़ दिया इक वस्त्र सेठ ने, अन्दाज़न इक हाथ बड़ा।
जो चावल वावल इत्यादी, पकाने के लिये काफ़ी था।।
तिसपर भी लाला नंहि माना, इच्छा प्रगट करी अपनी।
आवश्यकता एक चीज़ की, तुम्हें और रहती होगी।।
एक चदरिया और फाड़दूँ, मना न करना बाबा जी।
हाथ जोड़ विनती करता हूँ, इसे मान ही लेना जी।।
सुनकर कहा सेठ से हमने, बस अब और कृपा रक्खो।
आवश्यकता जो थी मिट गई, हम पै भाइ दया रक्खो।।
लाला बोला एक चदरिया, तो अवश्य दूँगा महाराज।
चाहे आप अस्वीकारें भी, हो जाना चाहें नाराज़।।

कहते ही दो चादर उसने, फाड़ीं तीन तीन गज़ की।
फाड़ फूड़ कर मेरे आगे, हाथ जोड़ करके रख दी।।
बोला इक कम्बल ले लो अब, फिर हम कुछ नंहि बोलेंगे।
क़सम कहो तो खालें तुमको, फिर हम कुछ भी नंहि देंगे।।
बहुत आग्रह पर उसके, हमने कम्बल भी स्वीकारा।
जो सब में हल्का हो देदो, उसने हल्का सा तारा।।
वक्त पड़े तो ओढ़ बिछा, दोनों कामों में आ जावे।
और रास्ते का बोझा भी, जो बनकर ना रह जावे।।
आज हमारा दीवाना पन, लुप्त हुआ लाला द्वारा।
लगने लगे एक साधू से, भेष साधुओं का धारा।।
सुबह हौज़ पिट से चल करके, पक्षि तीर्थ पर जा पहुँचे।
जहाँ जटायू रावण ने जब, सिया चुराई मारे थे।।
मंदिर बना हुआ था उसका, एक टेकरी के ऊपर।
पहुँच गये चंगुल पिट आगे, पक्षि तीर्थ से हम चलकर।।
पटकशिला जा पहुँचे हम, जिस जगह राम का मंदिर है।
जहाँ राम ठहरे थे कुछ दिन, मंदिर याद उन्हीं की है।।
पटकशिला से पम्पेश्वर है, जहाँ महाशिव मंदिर एक।
नदी तुंग भद्रा बहती है, करती हुई किलोल अनेक।।
है प्रवाह उसका अति तीखा, बड़ा स्वच्छ जल है उसका।
पम्पा नामक एक सरोवर, भी है श्री पम्पेश्वर का।।
बड़ा गहन बन है पम्पेश्वर, महादेव के चारों ओर।
मुख्य द्वार हर दम बंद रहता, खुलता था दरवाज़ा चोर।।
जानवरों का भय हर दम ही, रहता था दिन रात वहां।
दरवाज़ा बंद कर लेते थे, जो भी अन्दर घुसा जहां।।
रात बिताई उस मंदिर में, जब उठकर प्रातः देखा।
तो समक्ष हमको अपने इक, ऊँचा पर्वत नज़र पड़ा।।
पूछा तो ऋषि मुख बतलाया, जिसमें बाली के ड़र से।
भग करके सुग्रीव बहुत दिन, छिपे रहे मारे डर के।।
खड़ा एक दम और घने, वन से आच्छादित था पर्वत।
गुथें हुवे थे वृक्षापस में, धूँप न जा सकती भू तक।।
पूछा इक मंदिर था उसपर, जो मंतग का बतलाया।
मंदिर नहीं बल्कि आश्रम है, हमें एक ने समझाया।।
किशकिंधा कुछ दूर नहीं है, निकट श्री पम्मेश्वर से।
सभी जाने जाने के पीछे, द्वन्द किया मन ने हमसे।।
चलो सैंर कर आवें चलकर, ऋषि मंतग आश्रम की आज।

आश्रम दिखता है प्रत्यक्ष, जैसे हो इस पर्वत का ताज।।
दूर दूर ही के दर्शन से, उर विरकृता उपजी जाए।
वहाँ पहुँच कर यदि दर्शन हो, तो जानें बस क्या हो जाए।।
चलो जानने की इच्छा से, मार्ग और दूरी उसकी।
जब पूछा तो लगे साधु जन, सब के सब करने हाँसी।।
अनायास हंस करके बोला, आप जायेंगे आश्रम में।
तुम ज़रूर जाओ बाबा जी, ताकत दिखती है तुम में।।
जहाँ आज तक गया न कोई, गया तो वापिस नहीं हुआ।
अव्वल तो पहुँचा नंहि ऊपर, रस्ते में ही काम हुआ।।
अपनी ओर मुखाक्रति करके,खिल खिलाट की हंसी हंसा।।
तुम ज़रूर जाओगे ऊपर, बड़े जोर से पुनः हंसा।
हंसी व्यँग सी सुनकर उनकी, हम आश्रम से निकल पड़े।
जिधर बुद्धि ने मार्ग बताया, उसी दिशा को धिकल पड़े।।
विकट चढ़ाई थी पर्वत की, इकदम खड़ी नाम का ढाल।
अगर बीच से फिसले कोई, तो बस पहुँच जाए पाताल।।
वृक्षालिंगन किये हुवे थे, आपस में थे गुथे हुवे।
जंगल था गुँजान भयानक, हिंस्र जंतु थे छिपे हुवे।।
पड़ी हुई थी जानवरों की, पगडण्डी वन में अनगिन।।
उन्हीं मार्गों से होते हुये, बढ़े गये हम भी पल छिन।
थोड़ी देर मार्गों पर चलते, थोड़ी देर बिना रस्ते।
कहीं खुला मिल जाता रस्ता, कहीं निकलते फंस फंस के।।
तुके और बे तुके मार्ग, पल में विलीन पल में पाते।
दस दस गज उपरान्त और ही, मार्ग ढूँडने पड़ जाते।।
कहीं सघनता बड़ी भयानक, कहीं अस्थियों के पिंजर।
शेरों की माँदों के आगे, पड़े हुवे मिलते अकसर।।
शेर और गुलदार जानवर, थे जंगल में कसरत से।
दिन में भी खूँख़ार दरिन्दे, अपनी धुन में रहते थे।।
भय से किसी समय भी ख़ाली, जंगल को समझो ही मत।
पथिक पहुँच जावे मंजिल तक, बहुत बड़ी समझो क़िस्मत।।
जिस प्रकार घूंमा करते हैं, शहरों में फेरी वाले।
इसी तरह फिरते रहते हैं, जंगल में धौले काले।।
लेकिन हमें मिला नंहि कोई, उनके गली मौहल्लों में।
भय न मौत का सीध नाक की, बढ़े गये हम भी ऊपर।।
महा प्रभू की अनुकम्पा से, पहुँच गये ऊपर आखिर।
अब आश्रम दृष्टी में आया, ऊपर एक चोंतरे के।।

लगे ढूड़ने रस्ता ऊपर, काहम घूंम घूंम करके।।
मगर मार्ग बिलकुल नंहि पाया, थी दीवार क़िले जैसी।
चढ़े जानवर ऊपर कैसे, उनकी ऐसी की तैसी।।
चारों ओर घूमकर आख़िर, यह अंदाज़ लगाया फिर।
हिंस्र जंतु ऊपर न पहुँचें, मार्ग न छोड़ा इस ख़ातिर।।
मार्ग न रखना बुद्धि मत्ता, ही की बात नजर आई।
जानवरों की बहुतायत से, पौड़ी यों नंहि बनवाई।।
जिसने आश्रम को बनवाया, पौड़ी भी बनवा देता।
अगर जंगली जानवरों से, टक्कर रोज़ कौन लेता।।
पहरा हर दम का रह जाता, विघ्न रहा करता हर दम।
चैन न लेने देते हिंसक, जीव जन्तु बन के कम्बख्त।।
एक जगह दो इक पत्थर को, देख दाख कर हमें जँचा।
ऊपर को आने जाने का, एक जगह कुछ चिन्ह मिला।।
उसी जगह से जड़ें पकड़ कर, चढ़ ही गये घिसरा घिसरा।
देखा तो था इक चबूतरा, चौखूँटा औ खुला हुवा।।
वह दीवार नहीं थी बल्के, कटी हुई थी इक चट्टान।
पर्वत की चोटी तराश कर, समतल कर रखा मैदान।।
उसके ऊपर आश्रम की, बुनियाद बाद में डाली है।
आश्रम के बाहर चबूतरे, की सब भूमी खाली है।।
तबियत फड़क गई जाते ही, छटा देखकर आश्रम की।
इक विचित्र सी हालत हो गई, दर्शन करते ही मन की।।
चारों ओर भयंकर प्रहरी, पर्वत की उत्तुंग शिखा।
इससे उत्तम तप करने का, और भला स्थान कहाँ।।
किसकी है मजाल आ जावे, ध्यान भंग करने दुनियाँ।
स्वर्ग धरा पर उतरा सा कुछ, द्रष्टी गोचर हुवा वहाँ।।
अलग थलग इस झूँट जगत से, विषयों का चिन्हमात्र नहीं।
धन्य धन्य स्मृति मंतग की, तुझमें मिथ्या वाद नहीं।।
छटा देखकर तेरी अब भी, मन हिलोर लेने लगता।
लगता था यह ऋष्टि मंतग, मानो अब भी इसमें रहता।।
सुंदर स्वच्छ पड़ा था बाहर, तिनका नहीं एक ऊपर।
जैसे अभी झाड़ कोइ निमटा, हो कोई साधू इस पर।।
लता और झाड़ी जंगल की, बनी खड़ी थी किले समान।
फल फूलों ने लता वृक्ष के, फूंकी सुंदरता में जान।।
द्रश्य देखकर मन मोहक, उनसे मिलने का चाव हुआ।
किस प्रकार के होंगे वे, जिनके घर से यह भाव हुआ।।

है विरकृता का प्रतीक जिस, जगह उन्हों का वासा था।
हृदय मचल उट्ठा दर्शन को, क्योंकि बेचारा प्यासा था।।
ठीक मध्य में उस चबूतरे, के था छोटा सा तालाब।
जिसमें बरसाती पानी, ऐकत्रित होता अपने आप।।
बड़ा स्वच्छ निरमल जल उसमें, जब देखा हमने सोचा।
सर्व प्रथम स्नान आदि से, निमट जाओ प्रगटी इच्छा।।
दर्श पर्श पश्चात हुवा, करते पहले होता स्नान।
जो पवित्र होकर दर्शन, करने जावें है बुद्धीमान।।
बैठ पाल पर मैंने भर भर, कर लोटे स्नान किया।
लगा लंगोटी ओढ़ चदरिया, दर्शन को तैयार हुआ।।
हर प्रकार से मन अपना दृढ़, अंदर हैं यह ऋषी ज़रूर।
आ ही लिये शरण जब उनकी, दर्शन लाभ नहीं अब दूर।।
धीरे धीरे कदम बढ़ाते, हम आश्रम की ओर बढ़े।
तीन खण्ड थे उस आश्रम के, प्रथम खण्ड़ में पहुँच गये।।
बड़ा साफ़ सुथरा पाया वह, किसी वस्तु का नाम नहीं।
झाडू एक पड़ी पाई बस, और चीज का नाम नहीं।।
खण्ड दूसरे में जब पहुँचे, धूना एक लगा पाया।
निकट एक आसन भी देखा, धूने से धूँआ आया।।
मन ने जान लिया निश्चय ही, कोई यहाँ महात्माँ हैं।
दर्शन भी अवश्य होंगे अब, यहीं कहीं वह बैठे हैं।।
थोड़े ओर बढ़े आगे जब, एक ताक़ में मिला चिराग।
तेल और बत्तीं दोंनों ही, पड़े पाए दीपक के साथ।।
बत्ती का मुँह काला भी था, रात जला ज्यों दीप अवश्य।
इसी जगह है ऋषी कहीं पर, ढूड़ोगे तो मिले अवश्य।।
खण्ड तीसरे में जा करके, देखा वस्तु विहीन मिला।
सिर्फ़ एक कोने में थोड़ी, लकड़ी का इक ढ़ेर मिला।।
बस इसके अतिरिक्त और कुछ, अपने को ना नज़र पड़ा।
लगा सोचने मैं आश्रम में, होकर के इक ओर खड़ा।।
पुरूष हीन आश्रम नंहि लगता,महा पुरूष छिप गयें कहाँ।
जगह ढूँडली इक इक हमने, पहुँची द्रष्टी जहाँ जहाँ।।
एक तरह संषय उपजा के, दर्शन क्यों नंहि हुवे हमें।
या दर्शन के पात्र नहीं हम, दर्शन यों नंहि हुवे हमें।।
महापुरूष तो यहीं कहीं है, हम ही नहीं योग्य उनके।
हमें देख कर लोप हुवे है, उठा हमारे में संषय।।
इसी सोच में हम बाहर को, निकल आए वाँ से तत्काल।

बैठ गये पत्थर पर बाहर, मन में विकट उठा भूचाल।।
वृथा रहा क्या आना अपना, दर्शन लाभ न होगा क्या।
कंद मूल फल आदिक लेने, तो साधू नंहि चला गया।।
कभी टहलने लग जाता मैं, कभी बैठता पत्थर पर।
कभी टिप्पणी करने लगता, महा पुरूष के कृत्यों पर।।
शंका और उठी इक मन में, जिसने हिला दिया क्षण में।
क्या कुपात्र हो झण्डु दत्त तुम, जो दर्शन नंहि हुवे तुम्हें।।
ऋषी लोग भी जब दर्शन, देने से हमको झिझकेंगे।
तो पूर्ण परातम हमको, दर्शन किस प्रकार देंगे।।
लगी रही दीपक सी मन में, उठता कभी बैठ जाता।
कभी प्रतीक्षा औ स्वागत हित, दौड़ दौड़ नींचे आता।।
शायद कंद मूल और फल लेने, चले गये हों वनकी ओर।
इन्हीं विचारों की हल चल में, बैठ गया निश्चय इक ओर।।
था प्रवाह गहरा विचार का, कल्पनाऐं उट्ठीं निरमूल।
जड़वत निश्चल बैठ गया मैं, डूब गया उसमें स्थूल।।
अगम प्रश्न जाग्रत हुवे हममें, धारा वही विचारों की।
निकल पड़ा सूक्षम अपना, खोजी बनकर के सारों की।।
जग का जगदाधार और फिर, उसका भी आधार कहाँ।
मिल भी जाऐंगे या यों ही, जीवन सारा जाए बथा।।
ऐसी ही विचार धारा के, बवंडरों ने घेर लिया।
बहुत देर के बाद कहीं, मैं जाकर उनसे मुक्त हुआ।।
देखा सूर्य देव अस्ताचल, के अति निकट लगे पाये।
और भयानक अंधकार मय, वन पर्वत होते आये।।
अगर महात्माँ दर्शन देते, तो टिकना था ठीक यहाँ।
जब हम उनके योग्य नहीं, तो यहाँ अपना निर्वाह कहाँ।।
चलो वहीं उस जगह जाहाँ पर, वास किया था पिछली रात।
यह विचार आते ही मन में, उठ कर चल दिये हम इक साथ।।
अंतिम बार निहारा आश्रम, औ हमने परनाम किया।
तत्पश्चात् वहाँ से नींचे, को अपना प्रस्थान हुआ।।
किन्तु शब्द आया आश्रम से, जैसे कोई बोलता हो।
पदचापों की ध्वनि भी आई, जैसे कोई डोलता हो।।
मनमें एक ख़ुशी सी उपजी, क्यों के मन का था दावा।
अब अद्रश्य हों चाहे आश्रम, में अवश्य ही हैं बाबा।।
किसी गुप्त रस्ते से अंदर, ही अंदर आ गए हों अब।
होते ही संकल्प पूर्णतः, पैर मुझे ले चले उधर।।

जिधर मिलन की मनो कामना, पूरन होती आइ नज़र।
पुनः आश्रम में पहुँचे हम, फिर से किया तलाश उन्हें।
ऋषी मंतग तो दूर रहे पर, मिली न उनकी ख़ाक हमें।।
तब कुपात्र हम जँचे स्वयं को, नफ़रत हुई हमें हमपर।
बनो पात्र झंडूदत पहले, तब किरपा होगी तुमपर।।

बड़ी करी हमने अपने पर लानत और फटकार।
जब ऐसे भी छिपें आपसे तो तुमको धिक्कार।।

विवश मुड़े नींचे चलने को, दोबारा परनाम किया।
उस पवित्र प्राचीन भूमि से, हृदयंगम कर धार लिया।।
पम्पेशवर के आश्रम का ही, अब तो अपना लक्ष हुआ।
मैं चबूतरे से ज्यों त्यों कर, आख़िर नींचे उतर गया।।
ज्यों ही नज़र पड़ी आगे तो, एक जानवर सा दीखा।
बहुत बड़ा स्थूल रंग से, नज़र आ रहा चितकबरा।।
देखते हि झिझका मैं इकदम, हृदय गती हो गई दुगनी।
झंडू दत अब किसी तरह भी, जान नहीं बचती अपनी।।
किन्तु अचल सा दीखा जब, तो इक भ्रम सा हुआ हमें।
चार पैर तो दीख पर, सिर ग़ायब सा लगा हमें।।
क्या कारण जो अचल पड़ा है, चल फिर नहीं रहा हैं क्यों।
जान जाँए जिस से कुछ कारण, बढ़े अगाड़ी को हम यों।।
निकट बहुत ही पहुँच जब, कारण ज्ञात हुआ हमको।
यह गाय पड़ी है कोई, हिंसक मार गया इसको।।
गये दूसरी ओर तो उसका, सिर भी दबा हुआ पाया।
दुम की तरफ़ फाड़ रक्खी थी, बहता रूधिर नज़र आया।।
मार्ग पेट तक कर रक्खा था, पेट भाड़ सा खुला पड़ा।
पतनाले की तरह खून, अंदर से आता था निकला।।
और ग़ौर से देखा तो थे, साँस अभी बाक़ी उसमें।
इक दम दया भाव और करूणा, जाग्रत हो उट्ठी मुझमें।।
किसी जानवर ने गऊ माता, ऐसे देकर मारी थी।
गरदन दबकर धड़के नींचे, रह गई थी बेचारी की।।
मैंने ज़ोर किया बहुतेरा,गर्दन नींचे से निकले।
पर बेचारी के दम मेरे, हाथों हाथों में निकले।।
देखा जब दयनीय द्रश्य यह, रोमाँचित हो उठा शरीर।
बरबस निकल पड़ा निज मुख से, गऊ माता तेरी तक़दीर।।

पम्पेश्वर का मार्ग सम्भाला, पहले रस्ते से होकर।
तेज हीन होता जाता था, पल पल बाद अधिक दिनकर।।
अंधकार भागा आता था, इस जगपर छा जाने को।
अकुला रहे भटों में अपने, निश्चर खाने दाने को।।
हमने अपनी चाल बढ़ादी, भागे चले आये नींचे।
थोड़ा अंधकार हो पाया, था मंदिर में जा पहुँचे।।
हमें देखते ही साधूजन, बोले हमसे आकर के।
आप महात्माँ जी आ गए क्या, ऊपर से दर्शन करके।।
सुनते ही उनकी हम बोले, आ तो लिये महात्मां जी।
जानां किन्तु व्यर्थ ही समझो, दर्शन उनके हुऐ नहीं।।
मंदिर के महंत जी भी यह, बातें सनते आ पहुँचें।
सुनकर बात चीत यह अपनी, कुछ खिसिया सी कर बोले।।
आप झूँट कहते हो बिलकुल, ऊपर नहीं गये हैं आप।
अपने कहने पर महंत जी, को नंहि हुआ तनिक विश्वास।।
हमने कहा महंत जी तुमसे, झूँट बोल क्या लेना है।
क्या इनाम तुम लिये खड़े हो, जो अपने को देना है।।
अपने पर विश्वास करो मत करो, हानि क्या है हमको।
जो कुछ पूछा अक्षर अक्षर, सत्य बताया है तुमको।।
परिक्षार्थ बोले महंत जी, यदि तुम वहाँ गये हो तो।
चिन्ह बताओ हमें वहाँ के, तब जानेंगे पहुँचे हो।।
हमने पूर्ण बनावट उसकी, और चोंतरे का सब हाल।
किस प्रकार चढ़ते हैं ऊपर, मध्य चोंतरे के है ताल।।
साथ साथ यह भी बतलाया, वहीं पास ही में इक गाय।
चितकबरे से हुलिया की है, जिसका हाल न चर्चा जाय।।
खाई पड़ी थी पीछे से सब, रक्तपात था बुरी तरह।
अपने आगे ही दम तोड़ा, छोड़ आए हम उसी तरह।।
मरने का वृतान्त जब मेंने, गऊ माता का बतलाया।
तो महंत जी के चेहरे पर, झट पीलापन सा आया।।
यह हुलिया तो तुम अपनी ही, गय्या की बतलाते हो।
हमने कहा आपकी है तो, अपनी को देखो भालो।।
शंकर शंकर फिरे कूकते, पर भ्रम रहा हमारे पर।
शायद हमने झूँट कहा है, देखी बाट सवेरे तक।।
गाय न आई बाट देखते, जब उनको परभात हुआ।
तब बेचारे महंत जी को, अपने पै विश्वास हुआ।।
साँयकाल को हम प्रशाद तो, बिलकुल लेते ही नंहि थे।

हनूमान जी का इक मठ था, उस दिन उसमें जा बैठे।।
कम्बल का आसन था नींचे, और चदरिया ओढ़े थे।
कनपटियों के आजू बाजू, लगे हुवे निज गोड़े थे।।
आँखें मिंची रहा करती बस, नींद हमें आती कब थी।
यह ही था अभ्यास हमारा, बीत गई इसमें अवधी।।
मंथन करते रहते बैठे, कल्पनाओं के सागर का।
रतन खोजते रहते उसमें, मार मार पल पल गोता।।
तन समिधा को देता फिरता, आहुतियाँ इस लालच से।
रतन हाथ आजावे लेकिन, रह जाते कर मलमल के।।
उलझा रहता इस विचार में, रात बीत जाती यों ही।
एक यही आसन था अपना, अभ्यासी थे इस के ही।।
अर्धरात्रि उपरान्त आज फिर, अपने साथ हुवा ऐसा।
हाथ हमारा पकड़ किसी ने, बड़े ज़ोर से धर ऐंठा।।
आँखें आज लगीं चिरती, बल पूर्वक कोई खोल रहा।
खुलती गईं आँख ज्यों ज्यों, त्यों त्यों हमें उजियाला चमका।।
जैसे सूरज निकल चुका हो, इस प्रकार का लगा हमें।
हरिक वस्तु स्पष्ट रूप से, पूरी जँचने लगी हमें।।
इक विशाल आकृत्ति सामने, छायावत् हो गई खड़ी।
जब स्थिर हो गई सामने, उसपर अपनी द्रष्टि पड़ी।
केवल रूप रेख सी थी बस, नाम नाम का था आकार।।
छूने में आ नंहि सकते थे, कहने कहने के साकार।
बाँह मरोड़े करता था जो, अवसर अवसर पर अपनी।।
चेत कराया करता था जो, इस प्रकार से हमें कभी।।
बोला हनूमान जी हैं ये, सादर इन्हें प्रणाम करो।
बल पराक्रम के दाता हैं, उठ करके सन्मान करो।।
ये सहायता देंगे तुमको, भक्त इन्हें हृदयस्थ करो।
हमने कहा अलक्षित बंधू, कृप्या हमको माँफ़ करो।।
उत्तर इस प्रकार का देके, बैठ गये मुँह नींचा कर।
दिव्य पुरूष बोला अपने से, बाँहों को झटके देकर।।
हनूमान जी खड़े हुवे हैं, तुम प्रणाम ताक नंहि करते।
शिष्टाचार नहीं है यह है, बुरी बात यों नंहि करते।।
उन्हें देख कर मैं बोला, भइ हनूमान हैं होने दो।
क्या मतलब इनसे अपने को, हम को बैठे रहने दो।।
क्यों सहायता लेंगे इनसे, अटक रहा क्या ऐसा काम।
तेंतिस कोटि देवता हैं यहाँ, किस किस को हम करें प्रणाँम।।

हमें नहीं करवाना कुछ भी, अपना काम निंभा लेंगे।
हमें ज़रूरत हैं जिसकी, उसको हम खुद ही पा लेंगे।।
यह सर कहीं नहीं झुकता अब, बिला वजह मत तंग करो।
यह तो अपने को हि झुकेगा, जाओ ध्यान मत भंग करो।।
दिव्य पुरूष सकुचाये से कुछ, फुस्फुसाए निज कानों में।
हनूमान जी काम आएगे, बड़े तुम्हारे कामों में।।
इन्हें ग्रहण करलो अपने में, मान जाओ अपना कहना।
साथ रहेंगे सदा आपके, मान जाओ अपना कहना।।
बहुत ज़िद्द की दिव्य पुरूष ने, हमको जब मजबूर किया।
हनूमान थे जिधर उधर से, पीछे को मुँह फेर लिया।।
जिससे वह आकृत्ति सामने, की ना हमको नज़र पड़े।
जब देखा तो हनूमान जी, उधर पहुँच जा हुवे खड़े।।
अब तो चलने लगे होट भी, ज्यों कहते हों कुछ हनुमान।
लगे हमें तब बड़े भयंकर, शब्द न आते थे कुछ कान।।
फेर लिया फिर से हमने मुँह, दिशा तीसरी को झट से।
किन्तु उधर भी आन खड़े हुए, हनूमान फ़ौरन् खट से।।
जब हमने हनुमान इधर भी, खड़े हुऐ फिर देख लिया।
सोचा झण्डूदत्त आज तू, जंजालों ने घेर लिया।।
उठ बैठे इक साथ हाथ में, ले लोटा कम्बल अपना।

'नौवीं लहर'

तुम अब यहाँ न टिकने दो, कहकर शुरू किया चलना।।
रात काटनी थी सो भाई, तुम न काटने देओ यहाँ।
टिक क्या गये आपके मठ में, वक्त काटना मौत किया।।
गये द्वार पर जब हम मठ के, रस्ता रोक लिया आकर।
ग्रहण इन्हें क्यों नंहि कर लेते, दिव्यपुरूष बोला आकर।।
रामचंद्र जी की सब मुश्किल, सुलझी थीं इनके द्वारा।
इनको मान जाओ अपनालो, काम सुधर जावे सारा।।
जंगल और बयाबानों में, विचरा करते हो हर वक्त।
आवश्यकता क़दम क़दम पर, तुम्हें मदद की रहती सख़्त।।
इन्हें अगर अपना ही लो तो, हर्ज बताओ क्या होगा।
रक्षा करें साथ रहकरके, जिससे तुम्हें सुख्ख होगा।।
धिर से गये राह रूकने पर, परवश से हो गये खड़े।
झण्डूदत्त आज चक्कर में, बेढब इनके आन फंसे।।
वैसे दिव्य पुरूष अपने, अनहित का कभी न सिद्ध हुआ।
दर्शन कई बार उन ही की, कृपा द्रष्टि से हमें हुआ।।
जब है इतना गहन आग्रह, तो फिर चुप्प लगा जाओ।
तो फिर कहदो हनूमान जी, निज चोले में आ जाओ।।
मैं इनका स्वागत करता हूँ, करलो तुम जैसे चाहो।
मैं बोला यदि आप इसी में, खुश हैं तो फिर आ जाओ।।
शब्द समाप्त हुवे जैसे ही, आकृत्ती भी हुई समाप्त।
घुल सी गई वायु में इकदम, निज शरीर में हो गई व्याप्त।।
ऐसा लगा हमें अपने में, जैसे कोई सरकता हो।
भय भयभीत हुआ अंदर से, बाहर निकल भागता हो।।
अंदर उतर गये जब अपने, शक्ती का संचार हुआ।
भय लवलेष रहा नहिं अंदर, सारा जलकर क्षार हुआ।।

विग्रह में अपने हुआ, हनूमान का वास।
डर फिर काहे का रहा, शक्ती हो जब पास।।

इस घटना के बाद यात्रा, फिर अपनी आरम्भ हुई।
चाल तेज़ हो गई हमारी, औ थकने का काम नहीं।।
रात और दिन बड़े भयानक, बन पर्वत से गुज़रे हम।
भय का बीज नाश सा हो गया, कभी नहीं डरते थे हम।।

सफ़र और दर सफ़र गुज़रते, शिव काँची हम जा पहुँचे।।
शिव काँची से विष्णु काँची,हम तेज़ी से जा पहुँचे।
चले सिलम्बर महादेव को, रंग नाँथ उसके पश्चात्।
अलग़रजी होकर रामेश्वर, जा पहुँचे हम उसके बाद।।
इसके बाद कील भद्रा और, अन्य जंगलों से गुज़रे।
मंज़िल दर मंज़िल चल चलकर, इक दिन बम्बई जा पहुँचे।।
भोलेश्वर दो माह बिताकर, चले द्वारिका अपने राम।
पुरी द्वारिका से चल करके, कुछ दिन अपन रूके रतलाम।।
दावद और गोदरा से, उज्जैन और अजमेर गये।
पुष्कर कर स्नान एक दिन, साथ ख़ैरियत घर पहुँचे।।
दो वर्षों उपरान्त पहुँच कर, अपने घर वाले देखे।

क्या लेके हम गये थे और क्या लेके आए।
परखन हारा ही नहीं को काको बतलाए।।

स्वागत कभी हुवा न होवै, जग के बीच भगोरों का।
इतना भी नंहि किया किसी ने, जितना होता ढोरों का।।
सभी सगे सम्बंधी हमसे, नाखुश और नाराज़ रहे।
सब कुछ हुआ साथ भी रहे पर, जीवन में ना स्वाद रहे।।
नौ वर्षों तक रहे जूड़ में, ग्राम जड़ौदा से बाहर।
घर से था सम्बंध बहुत कम, कभी कभी हम जाते घर।।
सत्य धर्म इक सभा बनाई, जुड़ती सिर्फ़ आठवें रोज़।
सभी ग्राम बंधू आते थे, देते थे सब ही सहयोग।।
चर्चा सिर्फ़ सत्य पर होती, भजन कीर्तन और सत्संग।
सम्प्रदाय ना मज़हब कोई, नहीं किसी से कुछ संबंध।।
मस्त रहा करते अपने में, लोगों पर कुछ पड़ा प्रभाव।
रखने लगे बहुत से सज्जन, अपने से कुछ प्रेम लगाव।।
इधर हमारे पक्के साथी, हनूमान औ दिव्य पुरूष।
सदा साथ रहते प्रसन्न चित, हर प्रकार से हमसे खुश।।
उलझन अगर कोई आजाती, झट से सुलझाते इकदम।
कभी कभी तो किसी विषय पर, उनसे बातें करते हम।।
कठिन पश्न करता यदि कोई, अपनी समझ न जब आता।
तो यथार्थ उत्तर फ़ौरन ही, उनसे हमको मिल जाता।।
श्रोता गण आवाक् रह जाते, सुनकर हम से प्रश्नोत्तर।
इस प्रकार निज धर्म सभा का, उठा और ऊपर स्तर।।

कभी कभी बाहर भी जाते, हरिद्वार आदिक में हम।
तीर्थ आदि स्थानों में भी, रहे विचरते काफ़ी दिन।।
होते गये लीन अपने में, दिव्य पुरूष साधन के साथ।
सम हो गये हमारे अंदर, लाली ज्यों मंहदी के पात।।
पर घायल जैसी गति अपनी, रहते सदा लोचते से।
चला हुवा सा रहता मन कुछ, हर दम यही सोचते थे।।
लाभ हुवा क्या घर छोड़े का, हैं तो रीते के रीते।
आयु क्षींण होती जाती हैं, स्वांस जा रहे हैं बीते।।
कब सच्चा सरूप दीखेगा, कब प्रपंच का होगा बाध।
कब वह सुदिन समय शुभ होगा, कब सुख होगा मुझे अगाध।।
कब गुरू चरणों की रज को मैं, निज मस्तक पर धारूँगा।
काम क्रोध लोभादि बैरियों, को कब हठ से मारूँगा।।
कब सब के आधार एक, भूमा सुख का मुँह दीखेगा।
कब मन सब भेदों में नित, अभेद देखना सीखेगा।।
कब साधन के प्रखर तेज से, सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय विमुख हो प्रभु की, विमल भक्ति को पायेगा।।
कब प्रति बिम्ब बिम्ब होगा कब, नहीं रहेगा चित आभास।
निजानन्द निर्मल अज अवमव, में कब होगा नित्य निवास।।
फूट जाए वो आँखे जिनसे, बंधा अश्रु का तारा नहीं।
विनश जाए वो हृदय पलक में, जिसमें प्रीतम प्यार नहीं।।
जानें क्यों सब कुछ उतरा, उतरासा हमको लगता है।
किसी अलख वस्तु को पाने, को अब हृदय तरसता है।।
वे पूरे मैं एक अधूरा, यही एक है लाचारी।
कहाँ जाँऊ तुमको पाने को, मेरी तो गति भी हारी।।
घूंमा फिरा मगर क्या हासिल, हूँ तो ख़ाली का ख़ाली।
जिधर घूंमकर देखी दुनियाँ, दीखी काली की काली।।
कोई वस्तु न अच्छी लगती, कोई जगह न भाती है।
रह रह कर अंदर अब जानें, किसकी याद सताती है।।
जिसको प्यास न लगती हो, मृग तृष्णा का दुख क्या जाने।
फटी बिवाई कभी न जिसके, पीर पराई क्यों माने।।
खान पान से रूची हमारी, इक दम हटती चली गयी।
और हमारी तबियत घर से, बस फटती ही चली गयी।।
मन उचाट फिर हुवा हमारा, हमने सबको बतलाया।
बुद्धि दास ग्रहणी इत्यादिक को, बिठलाकर के समझाया।।
हमें घूमने की इच्छा है, कृप्या हमें आज्ञा दो।

कुछ दिन जैसे निंभे निभालो, सब मिल हम पर कृपा करो।।
बात बहुत जितनी हो पाई, बहुत कहीं समझाने की।
किन्तु हमारे मन में बिल्कुल, चाह ने वापिस आने की।।
कलावती शान्ती दो बच्ची, सोमदत्त आदिक जन्मे।
मरी शान्ती ओमदत्त बस, बच्चे तीन साथ छोड़े।।

'दसवीं लहर'

सम्वत उन्निस सौ अठहत्तर, में फिर चले छोड़कर घर।
रूका न ज़्यादा गया गांव में, छोड़े सब प्रभु के ऊपर।।

'दूसरी परिक्रमाँ'

चले दूसरी बार फिर तज अपना घरबार।
न्यौछावर करने चले अपने को इसबार।।

नहीं लौटके वापिस आना, करके पुष्ट चले मन को।
वहीं कहीं मर खप जाऐंगे, नहीं लौटना अब हमको।।
कर प्रणाम सादर सब ही को, कर अंतिम सब के दीदार।
मातृ भूमि से विमुख हुवे हम, अपना और हाल इस बार।।
जहाँ जहाँ को प्रथम गये थे, उसी मार्ग को फिर पकड़ा।
पहली परिक्रमा का अपने, ऊपर काफ़ी असर पड़ा।।
चले घूमते और घामते, हिमआँचल आदिक पहुँचे।
और राज बंदरी इत्यादिक, दखन हैदराबाद गये।।
जगन्नाथ द्वारा में जाकर, कुछ दिन तक विश्राम किया।
एक मारवाड़ी से कुछ दिन,लगातार संत्संग हुवा।।
आठ रोज़ के बाद सेठ से, लेकर विदा चले आगे।
शनः शनः पग यात्रा करते, ताण्डूर पहुँचे जाके।।
इक महंत जी मिले वहाँ जो, गुलबर्गा जाने को थे।
हैदराबाद के थे वैसे वे, हम पर बड़े प्रसन्न हुवे।।
साथ लिवा ले गये वहाँ से, हमको वे अपने स्थान।
जोदी नद्दी के संगम पर, स्थित था स्थान महान।।
मुचकंदा संकट मोचन दो, नदियाँ मिलतीं संगम में।
ईसा मूसा नाम पुकारे, जाते इनकी यवनों में।।
बड़ी कृपा की महंत ने, गुलबर्गा के अपने ऊपर।
देकर के आ़र्चाय्य भेष, स्थान छोड़ बैठे हम पर।।
कार्य्य भार सौंपा सब हमको, सभी व्यवस्था हम करते।
साधन योग मनन गीता का, साथ साथ करते रहते।।
सिर्फ़ आध घंटे सोते हम, चिंतन में रहते अनुरक्त।
इस प्रकार की दिनचर्य्या में, ढाइ साल का बीता वक्त।।

अपने काल बीच मंदिर की, बद इन्तज़ामी नष्ट हुई।
साथ साथ कुछ बढ़ी आय भी, धन का दुर्उपयोग नहीं।।
आदर औ सत्कार यथावत्, महात्माओं ने वहा पाया।
धन बर्तन वस्त्रादिक जिसने, मांगा उसको दिलवाया।।
मौका कभी शिकायत का, आने ही नहीं दिया हमने।
लिखवाया इक रोज विरासत, नामा हमें महंत जी ने।।
हम इस झंझंट को अपने सिर, लेना नहीं चाहते थे।
पर महंत जी गादी पर, हमको बिठलाना चाहते थे।।

सुनो रे सत के बनजारे, एक बात कहूं समझाई।
या फन्द बाजी रची माया की, तामें सब कोई रहिया उरझाई।।
लोके लाज मर्यादा छोड़ी, तब ज्ञान पदवी पाई।
एक आग ज्यो छोटी बुझाई, त्यों दूजी मोटी लगाई।।
कोट सेवक करो नाम निकालो, इष्ट चलाओ बड़ाई।
सेवा करो सतगुरू कहलाओ, पर अलख न देखे लखाई।।
अब छोड़ो रे मान गुमान को, एही खाड़ बड़ी भाई।
एक डारी ज्यों दूजी भी डारो, जलाय देओ चतुराई।।

उमर हुजूरी पहुँचे लेकर, काग़ज़ के संग अपने को।
हाकिम के सन्मुख जाकरके, रजिस्ट्री करवाने को।।
दैव योग से उस दिन छुंट्टी थी, सुनवाई हुई नहीं।
लौट आए हम वापिस यों ही, यों की त्यों ही बात रहीं।।
धन्यवाद भेजा परमात्मां, को हम बड़े प्रसन्न हुवे।
चाह रहे थे जो देना हमको, प्रातः वापिस सौंप दिये।।
रखकर के सब ही कुछ आगे, कर प्रणाम छुट्टी माँगी।
कुछ मत पूछों महंत जी ने, किस प्रकार मंजूर करी।।

धन्यवाद प्रभु को दिया, हमने बारम्बार।
भली मुक्ति दी आपने, हमको प्रांणांधार।।

कमली और लंगोटी अचला, लेकर भाग पड़े अपना।
बस अपना श्रंगार यही था, अपनी इतनी सी दुनिया।।
ताण्डूर होकर शोला पुर, नाप धरी कुछ दिन में ही।
ठहरे जाकर इक मंदिर था, हनुमान का पंच मुखी।।
यहाँ साधुओं में बस केवल, मौज लिया करते थे हम।

साधनाए करते रहते थे, उस अतीत की हम हरदम।।
शोलापुर से चलकर के हम, पण्डर पुर में जा पहुँचे।
चंन्द्र भान का था सुरम्य तट, राम बाग़ में जा ठहरे।।
बिता दिये दो मास यहीं पर, वही निंयम रक्खा अपना।
साठ रोज पश्चात् यहाँ से, शुरू किया हमने चलना।।
डौन और मनमाड़ आदि, कल्याँण मार्ग से हो करके।
पहुँच गये बम्बई बाल, केश्वर में हम ठहरे जाके।।
दो ही माह यहाँ भी ठहरे, गये न आसन छोड़ कहीं।
प्रभु चर्चा हर वक्त यहाँ भी, मूर्तियों से रहती थी।।
एक महात्माँ की संगति से, उठा पुनः अपना आसन।
हमें गोमती द्वारका जी की, लगी चुटपुटी और लगन।।
बाइ जानकी के जहाज पर, बैठ द्वारका जा उतरे।
तीर गौमती एक महात्मा, की कुटिया पर जा ठहरे।।
कुछ दिन के पश्चात् वहाँ से, बेठ द्वारिका पहुँचे हम।
वहाँ एक नरसिंह मंदिर था, उसमें जाकर ठहरे हम।।
गये द्वारका धाम सुबह जब, दर्शन करने हम मिलकर।
सत्रह आने कर राजा का, देना पड़ता था जाकर।।
खड़े हुवे दर्शक गंण को, दो लाइन में हमने पाया।
हमने कारण पूछा तो वह, इस प्रकार का बतलाया।।
यहाँ प्रथा है कर देने की, पहले वह दाखिल कर दो।
उसके बाद छाप चंदन की, लगवा कर दर्शन कर लो।।
पक्की छाप अगर लगवालो, तो जब तक वह चिन्ह रहे।
तब तक रोक न सकता कोई, दर्शन उसे अवश्य मिले।।
अपने साथी पर पैसे थे, उसने हमें सचेत किया।
आप न घबराओं पैसे हैं, मैं ही दाखिल कर दूँगा।।
नही महात्माँ जी हम तुमसे, पैसे कभी नहीं लेंगे।
जब हम बे पैसे वाले हैं, दर्शन यों ही कर लेंगे।।
खड़ी हुई थी लैन लगी इक, जो बे पैसे वालों की।
ख़ैर मनाते थे बेचारे, दर्श दिलाने वालों की।।
सब फ़कीर फुकरा बैठे, रटते थे राधे राधेश्याम।
हम भी जा बैठे उन ही में, रटने लगे श्याम का नाम।।
एक बड़ौदे का अफ़सर, दर्शन करने को जब आया।
तो इक कोलाहल सा उसके, साथ साथ मचता आया।।
अजी हमें दर्शन करवादो, दर्शन करवादो महाराज।
किन्तु नहीं सुनता था कोई, उन बेचारों की आवाज।।

कोई गिड़गिड़ाता फिरता, पैरों को पकड़ रहा कोई।
कोई दुआ देता फिरता था, कर जोड़े फिरता कोई।।
किन्तु न सुनने वाला कोई, हमने जब ये जांच लिया।
तो फिर सुना सुना अफसर को, हमने बकना शुरू किया।।
क्या लोगे ऐसे दर्शन में, क्यों करवाते हो अपमान।
क्या तुम समझ न पाऐ अब भी, याँ हैं पैसे के भगवान।।
जाओ पहले भिक्षा माँगो, तत्पश्चात् यहाँ आना।
करो इकट्ठे पैसे पहले, सब सत्रह सत्रह आना।।
पैसे का भगवान न बातें, करता है कंगालों से।
यहां भाई बातें होती हैं, केवल पैसे वालों से।।
राधेश्याम अगर भजना हैं, तो जंगल में बैठ भजो।
यहाँ नियम ऐसा है पहले, पैसे दो तो दर्शन लो।।
भनक कान पहुँची अफसर के, आकर के बोला हमसे।
अभी आप क्या बोल रहे थे, सुना रहे थे यह किससे।।
सुनते ही उनसे हम बोले, यह है वह ख़ड़िया पलटन।
जिसकी कोई न सुनने वाला, इनको कहते थे भगवन्।।
पड़े पड़े प्रातः से जिनको, सांय काल हो जाता है।
आखिर को उठकर बेचारा, विवश चला ही जाता है।।
सत्रह आने तीन रोज़ में,भी ये मांग न सकते हैं।
इसके मायने साफ़ यही है, दर्शन नंहि कर सकते हैं।।

हुइ चेतना सी इक अंदर, अफ़सर के सुनकर अपनी।
कर्मचारियों और प्रबंधक, से जाकर के कहा जभी।।
जब इन कंगालों के पल्ले, फूटी कौड़ी एक नहीं।
तुम्हें कहाँ से लाकर देंगे, दे दो आज्ञा इनको भी।।
तभी छाप चंदन की लेकर, आया एक निकट अपने।
इस पूरी लाइन के उसने, हम ही बस लीड़र समझे।।
क्यों कि हमीं ने शोर मचाया, था उस लाइन में ज़्यादा।
अपने ही शब्दों से अफ़सर, किया दर्श पर अमादा।।
जब वह छाप लगाने आया, हमने उसको रोक दिया।
अपने नहीं लगाना चंदन छाप, प्रबन्धक जी कृप्या।।
अगर लगानी है तो पक्की, छाप हमारे लगवा दो।
एक महीना ठहरेंगे हम, या बस हमको क्षमा करो।।
पता नहीं क्या सोच साचके, अपने पक्की छपवादी।
बाकी जो थे लाइन में, सब कै चंदन की लगवादी।।
क्रम से दर्शन मिले सभी को, हमने भी दर्शन पाये।

जब तक बेठ द्वारका ठहरे, दर्शन के लिए नित आये।।
चले यहाँ से भी आगे को, दानापुरी अहमदाबाद।
राजकोट होते हुवे सूरत, जा पहुँचे हम इसके बाद।।
कुछ दिन सूरत ठहर ठार कर, नासिक पंच वटी पहुँचे।
सारी राह जंगली ब्रंदा, के हमने चावल भक्षे।।
राम कुटी विश्राम किया,कुछ रोज तपोवन रह करके।
ओझड़ औ चांदौर गये फिर, तत्पश्चात रिडिंग पहुँचे।
अमर नेर ढुलिया होते हुए, सोन गिरी में जा पहुँचे।।
एक व्यक्ति ने हमें सोन गिरी, मैं कुछ ऐसा ज्ञात किया।
बड़े उच्च है एक महात्माँ, जिनका हमको पता दिया।।
उनके साथ राम मंदिर में, हम भी ठहर गये जाकर।
प्रभा युक्त थे वास्तव में, धन्य हुवे दर्शन पाकर।।
वह स्थान भयानक भी था, थे शमशान निकट ही में।
साथ साथ रमणीय बहुत था, ठहरे बस हम उस ही में।।
ठहरे यहीं सुनिश्चित होकर, खाना स्वयं बनाते थे।
बैठक रोज आठ घंटे की, हो निरद्वन्द लगाते थे।।
बढ़ा हुवा अभ्यास बहुत था, और अधिक ताई पर था।
ध्यान लीन हर इक क्षण रहता, कभी कभी ही हटता था।।
हो जाती अकसर अचेतना, कभी कभी लुढ़के पाते।
हाथ पैर हो करके उल्टे, बहुधा नींचे दब जाते।।
ऊंगली टूटी सी हो गई थी, पलक वामनी खाऐ से।
जूऐं झड़ने लगीं मुण्ड से, पिंजर बने बनाये थे।
जहाँ हुवें ध्यानस्थ पड़े के, पड़े वहीं रह जाते हम।।
करवट भी नंहि ले पाते थे, मुर्दे से पड़ जाते हम।
क्यों कि स्वांस चलना थम जाता, नब्ज़ आदि पड़ती मद्धम।।
एक रोज मंदिर में थे हम, सन्मुख थी प्रतिमाँ श्री राम।
ध्यान हुवा अंतरमुख इतना, वायू होने लगी अपान।।
सुध न रही कुछ हमें बाह्रय की, मानो चोला छूट गया।
देख अवस्था ऐसी अपनी, दर्शक गण में शोर मचा।।
चारों ओर इकट्ठे हो गए, अपने आ आ करके लोग।
छा सा गया इक दम सारे, मंदिर पर इक भारी सोग।।
समाचार पहुँचा सारे में, मरा पड़ा है एक फ़कीर।
उसको अजल मजल करवादो, उठवा दो यह मृतक शरीर।।
चंदा हुवा गली कूँचे से, किया कफ़न काठी तैयार।
होने लगे ऐकत्रित बन्दे, आ पहुँचे लकड़ी के भार।।

भारी भीड़ जमाँ हो गइ थी, एक व्यक्ति आया पश्चात।
जिसे देखकर सारे हट गये, उसने देखा अपना हाथ।।
पूर्ण निरीक्षण किया हमारा, समझे योग अवस्था है।
बोले किसने कहा मृतक है, जो कहता है बकता है।।
अच्छा सब हट जाओ यहाँ से, भेजा इक घर को अपने।
जो झोली आया लेकर इक, दिया हमें कुछ उसमें से।।
जल गुलाब का छिड़का मुँह पर, जिसने हम चैतन्य कियें।
लोगों ने जब हमें निहारां, जीवित लखकर सन्न हुवे।।
सब ऐकत्रित हो गए फिर से, हमें होश आने के बाद।
उस आदर्श पुरूष से अपना, आँख आँख में हुवा मिलाप।।
देखा अन्दर तक टटोल कर, पूर्ण लिया परिचय अपना।
बड़ी भीड़ उमड़ी ऊपर को, हरिक चाहता था सुनना।।
बोले अच्छा सोमेश्वर में, ठहरे आप पहुँच करके।
जगह बहुत उत्तम है तुमको, देखो ज़रा पहुँच करके।।
सोमेश्वर इक शिव मंदिर है, डेढ़ मील की दूरी है।
जिसकी छटा बहुत सुँदर है, अपने पन में पूरी है।।
आठ पहाड़ों के घेरे में, देवालय है घिरा हुवा।
योग्य आपके है वह मंदिर, हर द्रष्टी से नपा तुला।।
महा पुरूष की इस प्रकार की, वांणी सब ही सुनते थे।
दया भाव दर्शा कर मेरे, ऊपर कुछ सज्जन बोले।।
इन्हें वहाँ क्यों भेज रहे हो, इन पर दया करो महाराज।
आप जानते तो हैं सारी, क्या है छिपा वहाँ का राज।।
सभी जानते उस मंदिर को, उसकी चर्चा है सबमें।
उसमें प्रेत आत्मा रहती, है विख्यात नगर भर में।।
कोई पुजारी और महात्माँ, जब उसमें टिक नंहि पाता।
तो फिर इनको वहाँ न भेजो, अपनी समझ नहीं आता।।
जिनकी रक्षा पर वे खुद हों, उनको कभी न कुछ होता।
मरने वाले ही मरते हैं, उन ही को सब कुछ होता।।
हमें सान्तवना देकर बोले, श्री स्वामी नारायण दास।
प्रातः ही हम मिला करेंगे, जाकर सदा तुम्हारे पास।।
ब्रह्म वाक्य से सुनकर उनके, मुँह से उठ प्रस्थान किया।
कहे मुताबिक महा पुरूष ने, जाकर हमको दर्श दिया।।
नित्य कर्म से निवृत होकर, रोजाना आया करते।
रसा स्वाद वांणी का उनकी, हम प्रति दिन पाया करते।।
चढ़ा हुआ अभ्यास हमारा, कम सा होना शुरू हुवा।

जो हम ध्यान किया करते थे, कौन दिशा को क्षींण हुवा।।
परिर्वतन ऐसा आया कुछ, लगा बदलने अपना ध्यान।
और और से हो गए हम कुछ, और और सा हो गया ज्ञान।।
परिर्वतन विचार में ऐसा, आया और बात हो गइ।
हम अब लगे और ही बनने, बातें पिछली सब खो गइ।।
मन में थी पहले हि विमुखता, इस संसारी सागर से।
पर अब निश्चयता सी आई, ढंग और हो गए मन के।।
कुछ दिन के पश्चात उन्होंने, कुछ ऐसा व्यौहार किया।
क्या बताए कुछ कहा न जाता, कितना हमको प्यार किया।।
उनके इस दुलार ने हम पर, वह जादू का काम किया।
संजीवन बूटी सी देकर, आतम को आराम दिया।।
मौजों के दरवाजे खुल गए, हवा और ही बह निकली।
उपवन मेरा हुवा कुछ ऐसा, खिली हृदय की कली कली।।
फूलों में ढ़ककर प्रशाद औ, गजरे पुष्प हार लाते।
अपने हाथों हमें खिलाकर, हार व गजरे पहनाते।।
हम न रहे वो भ्रम न रहे वो, और हुआ कुछ अपना हाल।
आठों पहर नजर आने, लगे पिया के हमें जमाल।।
पलक उठाते गर ऊपर को, लगता बोझ उठा रहे हैं।
कहा न जाता क्या देते हैं, क्या हम उनसे पा रहे हैं।।
आँखें खुलने लगीं हमारी, आगे पीछे का चमका।
आज और कल और हुआ, परिवर्तन हम में प्रतिदिन का।।
चार माह पीपल के नीचे, उस मंदिर में हम ठहरे।
बड़े बड़े आनन्द आए, उस जगह हमें गहरे गहरे।।
आ सोते थे सर्प बगल में, कभी कभी आसन पर ही।
देते जब संकेत हाथ से, भग जाते वे सर्प तभी।।
साथ समझने लगे उन्हें हम, जब हरदम रहते वे साथ।
व्यक्ति बहुत कम जाते हम तक, रहता उन संग हास विलास।।
पड़े रहा करते थे केवल, उस पीपल के नीचे ही।
एक रोज रात्री में हमको, इस प्रकार आवाज़ लगी।।
महाराज, महाराज, महाराज जी।
हम आवाज़ सुना करते थे, पर हम बोले नहीं कभी।
तीन रोज तक इसी तरह से, हमको नित आवाज लगी।।
आधी रात बाद चौथे दिन, क्रम से फिर हमको टेरा।
महाराज, महाराज, महाराज जी।
हमें क्रोध सा आया इकदम, उसी दिशा को मुँह करके।

क्रोध भरे तीखे शब्दों में, इस प्रकार उससे बोले।।
कहो कौन हो क्या इच्छा हैं, कह दो जो कुछ कहना है।
कैसे कष्ट किया है आओ, दे दो जो कुछ देना है।।
इस प्रकार से सुन कर हमसे, फिर वे चुप हुवे ऐसे।
बोले कभी न फिर आइन्दा, लक़वा मार गया जैसे।।
हमने महाराज जी से भी, इस घटना को नहीं कहा।
कुछ दिन के पश्चात मगर, खुद ही हमको आदेश मिला।।
आप शहर ही मैं आ जाओ, है नजदीक एक स्थान।
बस्ती के ही निकट बहुत ही, कुछ दिन यहीं करो विश्राम।।
आटा सीदा आसानी से, पहुँचाया जा सकता है।
और हमें भी आना जाना, अधिक सुलभ हो सकता है।।
हम उनका आदेश प्राप्त कर, दो नदियों के संगम में।
एक खेत सा खाली पाया, आसन लगा लिया उसमें।।
सुविधा अधिक हुई अब उनको, आने लगे सवेरे और।
समय बढ़ा सत्संग आदि में, बुद्धि हुई अपनी कुछ और।।
इक विचित्र सी हालत पैदा, करी यहाँ की चर्चा ने।
हममें भ्रम लवलेष न छोड़ा, उनकी ज्ञानी वार्ता ने।।
रहने लगे अधिक अंतरमुख, कभी ध्यान आता संसार।
जगत हुवा विस्मृत सा हमको, हुवा शिथिल सा निज आकार।।
कान न सुन पाते बाहर का, आँखें देख न पाती थीं।
रसना रस लेना सब भूली, मन में कुछ कुछ आती थी।।
प्रश्न कोइ कुछ यदि कर देता, उत्तर कुछ का कुछ देते।
एक अटपटी हालत हो गई, लोग हमें पागल कहते।।
कहना कुछ हम और चाहते, मगर कहा जाता कुछ और।
क्या बतलायें क्या हो गये हम, विचल गये सारे तिल तौर।।
गुरू महाराज निरन्तर सत्संग, रूपी पिला रहे हाला।
जिसके फलस्वरूप अंतस्तल, बना हमारा मतवाला।।
उत्तेजित हो उठे एक दम, हृदय हुवा चित्रित गुरू रूप।
खुद सा गया हृदय के अंदर, ज्यों का त्यों सदगुरू सरूप।।
सन्मुख अगर न होते यद्यपि, तो कुछ भी परवाह नहीं।
थिर रहता गुरू रूप हृदय में, गये न जैसे अन्य कहीं।।
यदि कुछ समाधान चाहा तो, कर लेते थे निस्संकोच।
साक्षात उत्तर मिलता था, गुरू मूरत से हमको बेरोक।।
मानो सन्मुख ही बैठे हों, समझाते हो अपने को।
साक्षात स्थापित पाते, अपने में गुरू मूरत को।।

वाँणी से जो भी कह देते, शत प्रतिशत होता वह ठीक।
जिस प्रकार होना होता था, कार्य कोई सब जाता दीख।।
उर स्थित सदगुरू सरूप से, नित्य छिड़ा रहता सत्संग।
परम धाम आदिक विषयों पर, जारी रहते सदा प्रसंग।।
यथा प्रश्न उत्तर हम पाते, इच्छित दिखलाते स्थान।
सदगुरू की पसरी अपने पर, इस प्रकार की कृपा महान।।
नम्र निवेदन किया एक दिन, हमने सदगुरू चरनों में।
महराज जी कृपा आपकी, नहीं आती है वरनन में।।
हम जैसे इक तुच्छ दास को, बख्शी इतनी कृपा प्रभो।
जब जो पूछा उत्तर देते, जब जो चाहा दिखला दो।।
बतला रहे दिखाते सब कुछ, किया आपने हमें निहाल।
ख़ाली कोठा पूरा कर, कंगाल बनाया माला माल।।
क्या आँकू मैं मोल आपकी, एक कृपा की किनकी का।
बार सहस्त्रों वारू सृष्टी, मोल न पूरा होने का।।
बख्शी जब इतनी कृपाऐं तो, एक और दे दो प्रभुदान।
डाल लेओ आसन अंतर में, सदा सदा को कृपा निधान।।
आभारी मैं रहूँ आपका, करो अनुग्रह इतना और।
तुम्हें बहुत है मुझसे भगवन्, मगर नहीं है मुझको और।।
उत्तर दिया श्री सदगुरू ने, चिंता क्यों करते भइय्या।
रहता तो हूँ सदा हृदय में, कभी न तुमसे अलग रहा।।
पकड़ लिये पग हमने बढ़कर, चरण थाम हम बैठ गये।
देख आग्रह इस प्रकार का, पहले कुछ क्षण मौन रहे।।
फिर बोले धीरे से अच्छा, बैठ जाओ सिद्धासन से।
पालन किया हुक्म हमने वह, बैठ गये हम जाकर के।।
करने लगे पान गुरू मूरत, पी गए अंदर छवि उनकी।
कुछ क्षण के उपरान्त हमारे, अन्दर इक शक्ती उतरी।।
जो जाती हुइ ज्ञात हुई कुछ, अच्छी तरह हुई महसूस।
जिसका असर पड़ा जाते ही, जैसे भरी किसी ने कूक।।
उत्तेजित हो उठा एक दम, भारी एक प्रभाव पड़ा।
बड़ी विकट तबदीली आई, जिसको मैं ना झेल सका।।
ऐसा आया इक परिवर्तन, लक्षण बनने लगे अजीब।
मूल्य आँकते नहीं किसी का, धनी कोई हो कोई ग़रीब।।
अगर व्यक्ति है कोई प्रतिष्ठित, जंचता हमको कींट समान।
अपना मन तिल भर नंहि करता, उसका आदर औ सन्मान।।
अगर प्रश्न कर्ता यदि मेरे, उत्तर से संतुष्ट नहीं।

वाद विवाद लगा करने यदि, चाँटा देते मार वहीं।।
जाने किसके वशी भूत, आवेष क्रोध का जग उठता।
तर्क विर्तक किया जिसने भी, बस वो पिट कर ही उठता।।
चाहे कितना बड़ा प्रश्न हो, पर उत्तर दो शब्दों का।
लक्षण ऐसे बने हमारे, उस विशेष शक्ति द्वारा।।

'बारवहीं लहर'

आठ पहर चौसठ घड़ी, सदगुरू की आगोश।
रहे न हम आपे में तबसे, जब से उतरा जोश।।

एक बार एक अध्यापक ने, हमसे आकर प्रश्न किया।
वैसे था वह आर्चाय्य मगर, उत्तर अपना नंहि समझा।।
हमने दो शब्दों में उत्तर, देकर उसको समझाया।
क्यों कि हमारा था स्वभाव यह, पर वह समझ नहीं पाया।।
लगा तर्क करने हमसे वह, लगा दिखाने विद्वत्ता।
हमें क्रोध की आइ लहर सी, किन्तु क्रोध तब तक रोका।।
जब तक समझ नहीं पाया वह, रहा उसे मैं समझता।
लगा कहलवाने मैं उस ही, की जबान से वह व्याख्या।।
घूंम घाम कर जब वह आया, अपने ही उन शब्दों पर।
लगा बोलने मेरी वाणी, तब चाँटा मारा मुंह पर।।
खाते ही चाँटा अध्यापक, आसन से हो गया खड़ा।
और हमारे कटु व्यौहारों, पर उसको अफ़सोस हुवा।।
आइ ग्लानि हमको भी अपनी, इस बेहूदा हरकत पर।
लेकिन हम मजबूर स्वयँ थे, थी सवार शक्ती हम पर।।
अध्यापक बोला पिट करके, तुम तो लगे मारने भी।
यही बात है तो आइन्दा, आयेंगे हम नहीं कभी।।
अच्छा मत आना तो जाओ, हमने दिया उसे उत्तर।
चला गया अध्यापक इक दम, कुछ अपने से खिसया कर।।
तीन रोज़ बीते जब उसको, आना जाना बंद हुआ।
अमानुष्यता पर अपनी हमको, भी कुछ कुछ दुःख हुआ।।
पास गये हम श्री सदगुरू के, किस्सा उनको बतलाया।
अमुक मास्टर तीन रोज़ से, निज कुटिया पर नंहि आया।।
यहाँ न आऊँ अब भविष्य में, एक शपथ ली है उसने।
अच्छा मत आना तो जाओ, उत्तर दिया उसे हमने।।
आज हमारी इक इच्छा है, कृप्या वह पूरी करदो।
भागा चला आए अध्यापक, स्वयं यहा ऐसा कर दो।।
सिर्फ़ आज आ जावे बस वो, चाहे रूके सदा को फिर।
तो फिर आ जायेगा चिंता, ही क्या है आखिर उसकी।।
संध्या समय कुटी के सन्मुख, नित आसन बिछ जाते थे।
बंधे हुए से नियम पूर्वक, सतसंगी जन आते थे।।

दिन था वह उस रोज़ पेठ का, दिवस आठवें भरती थी।
सोन गिरी की जनता हफ़्ते, का राशन ले लेती थी।।
जो भरती कुटिया के सन्मुख, संध्या काल निकट आया।
लेने को सामान आवश्यक, अध्यापक घर से आया।।
किन्तु पेंठ में आते ही वह, भूल गया लेना सामान।
लगी उचाटी एक हृदय में, देखा जब उसने स्थान।।
चला ओर खिंचकर कुटिया की, द्वारे आकर हुवा खड़ा।
रूका द्वार पर जब अध्यापक, अपने को भी नज़र पड़ा।।
हमने किया इशारा सदगुरू, को अध्यापक आ पहुँचा।
पर है असमन्जस्य अभी कुछ, द्वारे पर ही है ठिठका।।
बोले गुरू महाराज देखते, रहो आप बस चुप बैठे।
जो घर से द्वारे तक आया, अंदर आवे नंहि कैसे।।
खड़ा रहा कुछ देर और, अध्यापक अपने द्वारे पर।
किन्तु बढ़े फिर कदम विवश ही, अध्यापक जी के अंदर।।
देख लिया जब आ ही पहुँचा, स्वागतार्थ फिर बोले हम।
बैठ जाओ आजाओ शायद, भूल गये तुम अपना प्रंण।।
कोई बात नहीं मास्टर जी, भूल चूक हो जाती हैं।
प्रतिज्ञाऐं कितनी ही जीवन, में विस्मृत हो जाती हैं।।
व्यंग हमारा सुन अध्यापक, बोला महाराज जी अब।
आता था मैं एक बार ही, बार बार आऊँगा अब।।
हर फेरे मारा करना पर, आना बंद नहीं होगा।
हाथ आप ही के दुख्खेंगे, बंदे का क्या बिगड़ेगा।।
हमने कहा मास्टर जी से, शान्त चित्त होकर सुनना।
जो हम पूछें सोच साचकर, जंचे तो उत्तर दे देना।।
अध्यापक बोला सुनकर के, पूछो हम देंगे उत्तर।
हम बोले अध्यापक से तो, सुनना ज़रा ध्यान देकर।।
आप पढ़ाते हो लड़कों को, अगर एक लड़का उनमें।
सबक याद ना होने पर, पिट कर यदि जा बैठे घर में।।
क्या क्षति पहुँची उससे तुमको, क्या पहुँची विद्यालय को।
क्या बिगड़ेगा अध्यापक का, कृप्या इसका उत्तर दो।।
कुछ नंहि में उत्तर देकर के, अध्यापक ख़ामोश हुआ।
हमने भी फिर इस प्रकार से, उनसे कहना शुरू किया।।
अगर भूल से आगए हो अब, तो भविष्य में मत आना।
इधर भूल कर रूख मत करना, जाओ अगर होवे जाना।।
मौन हुआ इकदम अध्यापक, बोला क्षमाँ चाहते हैं।

हम ही ग़लती पर थे भगवन, आप यथार्थ ताड़ते हैं।।
आदर और सन्मान हमारा, बहुत किया इसके पश्चात्।
अक्सर ऐसे काण्ड हमारे, से होते रहते दिन रात।।
नहीं चाहते थे हम लेकिन, अनायास घट जाते थे।
है स्वभाव ही ऐसा इनका, लोग समझ सब जाते थे।।

घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।
ऐसे बानक बन गये, बैठी ऐसी विद्ध।।

यही कहावत आन उपस्थित, हुई हमारे मध्य वहाँ।
लगी मान्यता होने अपनी, काफ़ी से भी अधिक वहाँ।।
सदगुरू को अपनी बस्ती का, जान लोग करते अनुमान।
यह तो हम ही में से है इक, हुई नहीं उनकी पहचान।।
है हक्की सूरत सदगुरू की, शुद्धाति शुद्ध सत्य का रूप।
छिपी हुई थी बात सभी से, सदी तेरवीं का है रूप।।
हैं अध्यक्ष क़ायमी के ये, इस से सब अनभिज्ञ रहे।
थी अंतिम छवि प्राणनाथ की, इससे सभी अनभिज्ञ रहे।
मान न दे पाये ता कारण, संग रहकर भी जुदा रहे।।
काम ठठेरे का करते थे, था यह पेट बोझ व्यवसाय।
भार ग्रहस्थी चलती थी यों, होती थी इस ही से आय।।
हम में कुछ विशेषता समझी, लगी ख्याति अपने होने।
पहुँचा हुआ महात्माँ हमको, लगी समझने सब नगरी।।
हारी बीमारी औ संकट, पड़ने पर आते नर नार।
जो हम कहते या दे देते, ठीक उतरता सभी प्रकार।।
संकट ग्रस्तों को जो कहते, संकट उससे हट जाता।
भश्मी या विभूति देने पर, रोगी चंगा हो जाता।।
इस प्रकार से हमें मान्यता, नागरिकों ने दी अत्यन्त।
जिसे समझते थे हम बाधा, बाधा भी कैसी बे अंत।।
उनके आन जान से हमको, विघ्न बहुत ही होता था।
हरदम कोई खड़ा ही रहता, भजन भंग यों होता था।।
एक रोज़ आकर इक व्यक्ति, सोन गिरी का मेरे पास।
लगा श्री सदगुरू जी के प्रति, करने निंदनीय बकवास।।
मतलब था बुराइ से उनकी, सो उसने आरम्भ करी।
उसकी जब बकवास सुनी यह, हमने उसको मना करी।।
भाइ यहाँ ऐसा मत बोले, निंदा करना ठीक नहीं।

किंतु रहा बकता ही फिर भी, मानो अपनी नहीं सुनी।।
बार बार हमने वह रोका, पर वह व्यक्ति नहीं माना।
बस हमने आवश्यक समझा, उसका वाँ से उठ जाना।।
हमने कहा उसे उठ जाने, को लेकिन वह नहीं उठा।
कहने लगा चाहे मर जाऊ, पर याँ से नंहि उठने का।।
जब इतना उद्दण्ड बना वह, अपने मुँह से निकल पड़ा।
मरना तो है ही तुझकोपर, जाकर अपने घर मरना।।
जैसे तैसे उसे उठाया, जब पहुँचा अपने घर।
मरणा सन्न अवस्था हो गइ, जाते ही उसकी घर पर।।
नब्ज़ वब्ज़ इत्यादि छूट गइ, आँखें पहुँच गई कप्पाल।
दम दरूद कुछ रहा न अंदर, बड़े तंग से दीखे हाल।।
घर पर पड़ा पीटना इकदम, हाय राम यह क्या बीती।
रिश्तेदार पड़ौसी आदिक, भाग आए सुनकर उसकी।
कोइ ऊपरी ब्याधा कोइ, भड़की वायु बताता था।।
नशा कोई विष कोई बताता, रोग कोई समझाता था।।
लेकिन एक व्यक्ति यों बोला, यह तो अभी वहाँ पर था।
जहा महात्माँ सीता रामी, रहता है वहाँ बैठा था।।
सीतारामी नाम हमारा, पड़ा सिर्फ़ उस घटना से।
जब हम पड़े मिले मुर्दा से, सीता रामी मंदिर में।।
तब ही से सब सीता रामी, बाबा हमको कह उट्ठे।
नाम हमारा बना यही बस, हम भी बोला करते थे।।
छिड़ी हमारे ऊपर चर्चा, उस ही ने कुछ किया इसे।
सुन कर के इतनी घर वाले, पास हमारे दौड़ पड़े।।
पैरों पर गिर पड़े हमारे, क्या अपराध हुवा उससे।
मरणासन्न अवस्था को क्यों, पहुँचाया महाराज उसे।।
उसकी तो हालत ख़राब है, किरपा कर दो चल करके।
क्या हो गया महात्माँ उसको, जाते ही घर पर याँ से।।
अच्छा बिच्छा बैठा था यहाँ, निकट आपके अभी अभी।
नब्ज़ छूट गइ उसकी तो अब, महाराज घर जाते ही।।
सुन ली हर प्रकार की बातें, जब उन लोगों की हमने।
बोले भइय्या हम क्या जानें, यह तो गुरू देव जानें।।
या बस वही जानता होगा, हमको कुछ मालूम नहीं।
बिना बात हम क्या बतलादें, गुरू देव पर जाओ वहीं।।
बड़ी मिन्नतें की अपने घर, साथ लिवा ले जाने को।
चाह रहे थे घर ले जाना, कृपा द्रष्टि करवाने को।।

हमने कहा अकेले अपना, जाना ना मुमकिन समझो।
अगर चलें गुरू देव साथ तो, जाना फिर सम्भव समझो।।
जब तक साथ न लाओ उनको, चलने को मत कहो हमें।
यदि वे चलें वहाँ तो हम भी, साथ साथ चल सकते हैं।।
बड़ी प्रार्थनाओं के पीछे, गुरू देव तय्यार हुवे।
जब हमने वे जाते देखे, हम भी उनके साथ हुवे।।
दी विभुती जाते ही अपनी, गुरू देव ने बटुवे से।
हुई अवस्था ठीक तत्क्षण, उस विभूति के देने से।।
छूटी जब अस्वस्थ अवस्था, होश हुवा जिस समय उसे।
पैरों पर गिर पड़ा भाग कर, लिपटा सदगुरू चरनों से।।
हम बोले उससे समझे कुछ, जिसकी निंदा करते थे।
उस ही की किरपा से बेटा, प्राँण आपके आज बचे।।
रोने लगा हमारी सुनकर, दम न मार, पाया आगे।
ख़बरदार आइन्दा के लिए, ऐसे मत बकना आगे।।

कोई न कोई आकर हमको, करता रहता तंग।
बाधा पड़ती भजन हमारा, होता इससे भंग।।

एक और आ धमका इक दिन, बोला आते ही हमसे।
आज हमारी इच्छा है कुछ, चमत्कार देखें तुमसे।।
हमने कहा भाई हम साधू, चमत्कार से क्या मतलब।
प्रश्न आपका बड़ा असंगत, और बहुत ही है बेढ़ब।।
चमत्कार की यदि इच्छा है, तो मैं कहता हूँ जाओ।
किसी तांत्रिक विद्यावाले, के नज़दीक चले जाओ।।
या कुछ चमत्कार स्याने भी, दिखला सकते हैं तुमको।
ऐसी विद्याओं से कुछ भी, मतलब नहीं भाइ हमको।।
बातें करते बड़ी बड़ी पर, चमत्कार के नाम सिफ़र।
चमत्कार क्या और दिखावें, बिल्ऐवज़ तेरे आकर।।
दुनियांदारों को बहकाना, फुसलाना ही आता है।
करामात पल्ले नंहि तो फिर, कहो तुम्हें क्या आता है।।
नाम बड़े औ दर्शन छोटे, क्या है सिर्फ़ ढ़ोंग है पास।
मार दिया तुम जैसों ने ही, इस दुनियाँ का सत्यानाश।।
उस दिन तो कह सुनकर उसको, हमने वहाँ से उठा दिया।
नंद लाल यहाँ यों मत भोंको, चलो उठो औ भगा दिया।।
रूका न लेकिन आना उसका, जब भी उसको वक्त मिला।

मगज़ मारने को हमसे बस, नंदलाल आ ही धमका।।
बिना पैर सिर की बातों को, घंटों बकता रहता था।
जब आता जब चमत्कार की, माँगें करता रहता था।।
हमने काफ़ी रोज़ टलाया, पर वह मान नहीं पाया।
तो हमने मजबूर एक दिन, श्री सदगुरू को बतलाया।।
नंद लाल महाराज रोज़ दिक़, करता है हमको आकर।
चमत्कार दिखलादों कोई, कहता रहता है आकर।।
रोज़ टालता रहता हूँ मैं, पर वह बाज नहीं आता।
समझाता हूँ रोज उसे पर, उसकी समझ नहीं आता।।
अब जो आज्ञा हो बतलादो, गुरू देव बोले सुनकर।
कल जब नन्दलाल आ जावे, तो कहना यों समझाकर।।
परसों दिख जावेगा बच्चा, चमत्कार यों कह देना।
मनो कामना पूरी होगी, संदेशा यह दे देना।।
अगले दिन जब आया वह तो, हम बोले भइय्या नंदलाल।
चमत्कार देखोगे ही क्या, या कर बैठे उसकी टाल।।
बोला नंदलाल बातें ही, बातें हैं तुम पै केवल।
यदि होता तो दिखला देता, तुम में नहीं कोइ भी बल।।
हम बोले तो अच्छा कल को, सावधान होकर रहना।
चमत्कार आवेगा कल को, साक्षात् दर्शन करना।।
मनो कामना पूर्ण आपकी, परमात्माँ कल करदेंगे।
चमत्कार नंदलाल तुम्हें कल, घर पर ही दर्शन देंगे।।
अब अधीर मत होना भइया, मनो कामना पूर्ण हुई।
प्रबल लालसा थी भाई सो, कल अब कोई दूर नहीं।।
चला गया नंदलाल वहाँ से, जभी हमारे सुनकर बोल।
उसने शायद सुन रखा था, चमत्कार है कोई मख़ौल।।
अगले दिन नंद लाल महाशय, बैठे थे घर के अंदर।
कमर लगी थी एक भींत से, गिरी एक दम से ऊपर।।
थी छोटी दीवार मगर, काफ़ी थी नंद लाल जी को।
हडडी पसली की दुरूस्त सब, तोड़ फ़ोड़ कर के उनको।।
चारों ओर मचा बावैला, भगदड़ मच गइ लोगों में।
नंद लाल दब गया भींत के, नींचे दौड़े सुन सुन के।।
जैसे तैसे आदमियों ने, बाहर उसे निकाल लिया।
चिंताजनक मगर हालत थी, जैसे अब प्रणान्त हुवा।।
चारों ओर उड़ी अफ़वाहें, नंदलाल दब कर मर गये।
कुछ उसके घर के संबंधी, अपनी कुटिया पर पहुँचे।।

बाद्य किया घर ले चलने को, पर हमने इंकार किया।
जब तक गुरू महाराज न जावें, हमसे आकर मत कहना।।
उनके बिना अन्य के द्वारे, जायेंगे हम नहीं कभी।
सुन कर के गुरू जी को लेने, उन में से भग गये तभी।।
ऐकत्रित हम दोनों को कर, चले साथ ही ले करके।
हमने नंद लाल को देखा, उसके घर पर जा करके।।
इतना होश उसे बाक़ी थी, ताके हमको पहचाने।
हमें देखते ही वह इक दम, लगा जोर से डकराने।।
मुझे मॉंफ़ जल्दी कर दो, क्यों के मैं जाने वाला हूँ।
और आपका हूँ अपराधी, सज़ा भुगतने वाला हूँ।।
नंद लाल अब नंहि बचने का, कृपा करो प्रभु कृपा करो।
कह दो तुम्हें माफ़ करते हैं, बस इतना अहसान करो।।
बोले गुरू महाराज अरे भइ, नंद लाल क्यों जाते हो।
इतने तुम हताश क्यों हो गए, मरूँ मरूँ चिल्लाते हो।।
चमत्कार तो अभी बहुत हैं, उनको कौन सम्भालेगा।
तुम यदि चले गये तो उनको, कोइ न देखे भालेगा।।
व्यर्थ जाँएगे वे बेचारे, क़दरदान था तू ही एक।
तू ही चला गया तो उन पर, क्या बीतेगी यह तो देख।।
कहते ही गुरूदेव एक दम, खड़े हुवे घर चलने को।
किन्तु आग्रह नंदलाल से, की हमको रूकवाने को।।
महाराज ठहरो बस जब तक, जब तक निज प्रांणान्त न हो।
यह शरीर अपना विषयों का, भगवन जब तक शान्त न हो।।
हो सकता है मिले शान्ति कुछ, महात्माओं के होने पर।
अंतिम बार दरश कर लूंगा, यहाँ आपके रहने पर।।
अभी न मरने देंगे तुमको, बोले गुरू महाराज पुनः।
दी विभूति अपने बटुवे से, गुरू देव ने उसे अतः।।
ठीक हुवा उसका शरीर तो, पर बुद्धी पर हुवा असर।
बुद्धि रहां करती बैकुण्ठ, वासियों की सी आठ पहर।।
देव व्रत्ति अंदर जग उट्ठी, दान पुन्न रहता हर वक्त।
इक विरक्त सी हालत हो गइ, जंचने लगा एक दम भक्त।।
भर भर घड़े दूध कुटिया पर, भिजवाता रहता नंदलाल।
वस्त्र अन्न आदिक बटवाता, रहता जो मिलता कंगाल।।
इस मंदिर में अन्न भेज दो, उस मंदिर में भेजो दाल।
इस आश्रम में चावल भेजो, ऐसे बने श्री नंदलाल।।
फ़लाँ महात्माँ को जिमवादो, फ़लाँ फ़लाँ को दे दो दान।

इस प्रकार की व्रत्ती उसकी, एक माह तक चली निदान।।
साधारण से स्तर का घर, सहे कहाँ से इतना भार।
घर वाले उसकी वृत्ती से, थक करके हो गए लाचार।।
उसके इस उदार भावों से, तंग बने घर वाले अब।
घर में भूनी भाँग न छोड़ी, ख़ाली करके छोड़ा सब।।
लुटा दिया अपने हाथों से, उड़ा दिया सब राख समान।
दान वीर बन बैठे इकदम, नंद लाल जी कृपा निधान।।
नंद लाल के घर वालों ने, करी प्रार्थना जा करके।
महाराज जी क्षमाँ करो अब, तो उसको किरपा करके।।
उजड़ गया घर सारा उसका, दिया दान का ऐसा रोग।
घर में अन्न न बरतन बस्तर, हंसते सोन गिरी के लोग।।
अब तो मेहेर फेर दो अपनी, अब तो करो महात्माँ माँफ़।
अगर कोइ ग़लती है उसकी, उसे थूक दे मन से आप।।
हम ये बातें श्री सदगुरू के, कानों में कह कर आये।
सुनकर इस प्रकार की गाथा, सदगुरू साहिब मुस्काये।।
हमसे उनसे कह कर के झट, नंद लाल को बुलवाया।
उसका इक सुफ़ारशी उसको, अपने साथ लिवा लाया।।
देख उसे श्री सद गुरू बोले, चित्त प्रसन्न भी है नंदलाल।
सुना है अब तो दान पुन्न में, कर रक्खा है बड़ा कमाल।।
भोग भोग रहे हो धरती पर, अब बैकुण्ठ निवासी का।
चमत्कार की मन में इच्छा, अभी और बाक़ी है क्या।।
बोला नंहि नंदलाल काठ सा, बना सामने खड़ा रहा।
करूणा कर उसपर सदगुरू ने, फिर उसको प्रसाद दिया।।
साधारण हो गई अवस्था, उस विभूति निधि से इकदम।
नंद लाल फिर कभी न बोला, मारा नहीं सामने दम।।

छत्र छाँए हम पर सदगुरू की, जिसमें रहते मस्त।
साक्षात पूर्णाति पूर्ण थे, थे सदगुरू सिद्धस्थ।।

जहा झोंपड़ी थी अपनी, उसका मालिक था एक किसान।
थोड़ी जगह मांग सदगुरू ने, बनवाया अपना स्थान।।
भजनों बजनों आदि कर्म के, लिये हमें वह काफ़ी थी।
निकट रहूँ हरदम मैं उनके, यह सदगुरू की इच्छा थी।।
कभी व्यवस्था खाने वाने, की नंहि करनी पड़ी हमें।
हर आवश्यक वस्तु समय पर, मिलती थी तय्यार हमें।।

बना बनाया खाना पाता, पाता बना बनाया साग।
धूना निज चैतन्य मिला, करता था मिलती उसमें आग।।
दीपक तक जलता मिलता था, जानें कौन किया करता।
पका पकाया बना बनाया, हर सामान धरा मिलता।।
मस्त भजन में रहते हम तो, हर प्रकार की मौज रहीं।
सदगुरू की कृपाओं से अपने, पास न रहती कोइ कमी।।
उसी खेत का मालिक इक दिन, आ बैठा अपने नज़दीक।
पहले तो आते ही उसने, पूछी हमसे दुख तकलीफ़।।
फिर आरम्भ किया यों कहना, महाराज जी इक दिन मैं।
फंसा बड़े चक्कर में आके, बतलाता हूँ आज तुम्हें।।
आप महात्माँ हो यदि तुमसे, भेद छिपाऐं उचित नहीं।
कह देना उत्तम है तुमसे, कोई छिपानी ठीक नहीं।।
यहाँ प्रेत रहता है कोई, सत्य बताता हूँ महाराज।
बहुत रोज़ से मनमें थी सो, कहता हूँ मैं तुमसे आज।।
इसी खेत में जिसमें तुम हो, लगा खड़ा था मक्का से।
फेरा फटका चला मारने, मैं इक दिन अपने घर से।।
कोई जानवर तो नंहि इसमें, अर्ध रात्रि थी जब आया।
कोई तोड़ रहा ज्यों कुकड़ी, शब्द कान ऐसा आया।।
बाड़ नागफन चारों खूँटों, सोचा कोई घुसा जैसे।
पशु तो जा नंहि सकता अंदर, यह मनुष्य ही है वैसे।।
आज नहीं छोड़ूँगा इसको, बिन पकड़े मैंने सोचा।
और लट्ठ ले हाथ महात्माँ, जी मैं बस अंदर पहुँचा।।
ज़्यादा धिनका खेत नहीं था, सारे में फिर गया तुरंत।
नहीं चोर ना कोई आहट, मिली महात्माँ जी उस वक्त।।
कोने कोने पेड़ पेड़ पर, फिर जाने के बाद मुझे।
जब कोई नंहि पाया तो फिर, बड़ा ताज्जुब हुआ मुझे।।
डूबा हुआ उन्हीं फ़िकरातों मैं बाहर मैं जब आया।
बिल्कुल उसी तरह का आहट, मेरे कानों फिर आया।।
हिम्मत सी कर घुसा फेर मैं, पर परिणाम रहा वो ही।
लागा सोचने बाहर आकर, उन चोरों की चालाकी।।
बाहर तो प्रतीत होता है, पर अलोप होता अंदर।
चोर नहीं है साधारण यह, है यह कोई बड़ा चतुर।।
पहले जैसा हाल हुवा फिर, भागा फिरता हो कोई।
हमें लगा स्पष्ट कि कुकड़ी, तोड़ता फिरता हो कोई।।
ले लाठी घुस गया खेत में, मैं इस बार सोचकरके।

अबकी बार न छोडूँगा मैं, जो है इसको बिन पकड़े।।
भाग भाग कर लगा खोजने, लेकिन चोर नहीं पाया।
जँचा और ही फिर अपने को, सर फिर भय सा चढ़ आया।।
भय बढ़ता ही चला गया फिर, भय से मैं बेहोश हुआ।
गिरा खेत में ही उस भय से, इतना भय का कोप हुआ।।
किस प्रकार पहुँचा अपने घर, कौन उठा ले गया मुझे।
ऐसा ताप चढ़ा के मुश्किल, से ही अपने प्राँण बचे।।
कुछ दिन के पश्चात् सुनी जब, उससे उसकी अपबीती।
एक रोज़ हमने भी हूँ हूँ, जैसी इक आवाज़ सुनी।।
हूँ हूँ के अतिरिक्त और कुछ, समझ नहीं आया हमको।
ध्यान भंग सा हुआ हमारा, नज़र न आया अपने को।।
उसी दिशा को लालटैन ले, निकल पड़े हम कुटिया से।
आगे आगे शब्द चला और, पीछे पीछे हम उसके।।
शब्द शब्द चलता दिखता बस, व्यक्ति न दिखता था कोई।
जान लिया यह प्रेत आत्माँ, है अवश्य ही आज कोई।।
चले गये हम पीछा करते, गया खेत से बाहर जब।
तो हम उसी दिशा से बोले, ख़बरदार मत आना अब।।
इस प्रकार बाहर कर उसको, कुटिया पर वापिस आया।
जब तक वहाँ रहे दोबारा, प्रेत आत्माँ नंहि आया।।

कहाँ तलक गिनावाए हम क्या क्या बीती संग।
ऐसों ऐसों से होता था, भजन हमारा भंग।।

एक बार बीती कुछ ऐसी, पासा जिसने बदल दिया।
कारण बने कार्य होने के, बड़ा अटपटा कार्य हुआ।।
एक बीमारी निज गुरू भाई, की पत्नी को हुई ऐसी।
बड़ी भयंकर हालत करदी, उस बीमारी ने उसकी।।
चिंता जनक अवस्था हो गई, जब घर में बेचारी की।
ख़बर श्री सदगुरू को आकर, उसकी बीमारी की दी।।
मंशा था इलाज करवाओ, या ख़ुद करो कोई तदबीर।
हमने कहा श्री सदगुरू से, के अपने भाई की वीर।।
बहुत सख़्त बीमार पड़ी है, उसे देख लो चलकर के।
गुरू वाक्य को ब्रह्म वाक्य हम, मन में समझा करते थे।।
बोले सदगुरू चिंता क्या, सब ठीक ठाक हो जायेगी।
बीमारी वीमारी जो है, आप चली सब जायेगी।।

परमात्माँ के वचन समझ के, हम आगे नंहि बोल सके।
जो कहते वे हो जाता था, सुनकर हम ख़ामोश रहे।।
अपना निश्चय बड़ा प्रबल था, क्यों न होए जो गुरू कहदें।
जो कहदें हो जायेगा फिर, चिंता क्यों बेकार करें।।
किन्तु अवस्था गई बिगड़ती, गुरू भाई की पतनी की।
हालत बद से बदतर हो गइ, शनः शनः बेचारी की।।
सब हमसे कहते आकर के, अजी कहो अपने गुरू से।
खुद उनके घर बीमारी है, क्यों न देखने घर जाते।।
औरों को संजीवन देते, फिरते रहते हैं हर वक्त।
अपने घर का ध्यान नहीं कुछ, जब बीमारी इतनी सख़्त।।
नम्र निवेदन श्री सदगुरू से, हमने तत्पश्चात् किया।
अब अवश्य चलकर घर देखो, सदगुरू को मजबूर किया।।
बार बार कहने पर अपने, श्री सदगुरू लाचार हुवे।
किसी तरह से चलने को घर, आख़िर वे तय्यार हुवे।।
साथ साथ हम भी थे उनके, हम दोनों जब घर पहुँचे।
देख दाख कर हालत उसकी, इस प्रकार सदगुरू बोले।।
मर्ज़ इसे कुछ भी तो नंहि है, क्या होता यदि मर जाती।
देकर के संजीवन इसको, फिर जिंदा कर ली जाती।।
पड़ी हुई है ठीक ठाक ये, किसी बात की फ़िकर नहीं।
देकर सान्त्वनाऐं सी सब को, सदगुरू वापिस गये वहीं।।
क्षण उपरान्त सूचना पहुँची, उसका तो प्राँणान्त हुवा।
सुनकर के संदेश शीघ्र ही, मैं सदगुरू के ढिंग पहुँचा।।
सुनते ही घर चले एक दम, पहुँच गये हम दोनों साथ।
श्री सदगुरू ने देखा जाकर, अपनी पुत्र वधू का हाथ।।
मृत शरीर पाया अबला का, बोले तो चिंता क्या है।
जीवित इसे करेंगे हमने, तुम्हें वचन दे रक्खा है।।
पर होगी शमशान पहुँच कर, जल्दी से तय्यार करो।
दाह कर्म की सामिग्री सब, लेकर इसके साथ चलो।।
रोते और पीटते सब ही, ले उसको शमशान चले।
ज़िंदा होगा शव मरघट में, तमाशबीन बहु साथ चले।।
नर नारी जानें कितने थे, किन्तु ताज्जुब था सब में।
हम भी स्वयं भ्रमित ही से थे, वचन दिया है सदगुरू ने।।
शव अवश्य ज़िंदा होवेगा, जो कहदेते होता है।
निकल गई जो भी ज़बान से, ज्यों का त्यों सब होता है।।
जीवन दान मिलेगा क्यों नंहि, शव मरघट में जब टेका।

तो लोगों ने आग्रह की, द्रष्टी से सदगुरू को देखा।।
प्रार्थनाऐं की जन समूह ने, महाराज जीवित करदो।
बोले हाँ हाँ कयों नंहि इसको, ज़रा चिता पर तो धरदो।।
जीवित कैसे नंहि होवेगी, लोगों ने अनुकरण किया।
और मृतक को विधी पूर्वक, झट्ट चिता पर टेक दिया।।
गुरू देव ने किया इशारा, आग और देदो इसको।
संस्कार सम्पन्न हुवा वह, अगनी भी देदी उसको।।
रहे देखते फटी आँख से, जन समूह सब इसका अंत।
जानें कैसे जीवित होगी, सब कहते, जानै भगवंत।।
ताक रहे सब ही उनका मुँह, देखें अब क्या होता है।
किस प्रकार इन लपटों में से, मुर्दा जीवित होता है।।
धू धू करके उठी धधकती, भीषण शव से ज्वाला।
लपट गगन को उठीं भड़क कर, ले इक साथ उछाला।।
भस्माभूत हुवा शव जिसदम, घर की ओर चले गुरू देव।
मगर मार्ग में कहते पाये, चिरंजीव अब रहो सदैव।।
चले गये सब मन सा मारे, अपने अपने घर की ओर।
गुरू महाराज गये अपने, स्थान और हम अपनी ओर।।
उस दिन हमें लगा भय इतना, मौत न कर सकती भयभीत।
सदगुरू साहिब से डर इतना, लगा हो जैसे मौत समीप।।
यही अवस्था रही कई दिन, सदगुरू ने हमें भाँप लिया।
इस कारण वश रम जाने का, कुछ दिन को आदेश दिया।।
आज्ञा शिरोधार्य श्री सदगुरू, करें उलंघन कहाँ मजाल।
छोड़ दिया कुटिया को हमने, साथ हुकुम के ही तत्काल।।
पड़े रहे कुछ दिन पत्थर पर, सोन गिरी से बचकर के।
दिया हमें सदगुरू ने जो कुछ, उसका रस लेते रहते।।

महिमाँ कैसे वरनूँ इनकी है जिभ्या लाचार।
साक्षात् श्री पार ब्रह्म हैं परमधाम सरकार।।

जिस पत्थर पर बैठे जाकर, है वो टेकरी छोटी सी।
रूप गुफ़ा जैसा था उसका, हमने वहीं तपस्या की।।
एक सड़क पड़ती थी सन्मुख, मोटर बहु आते जाते।
उनकी चोंद मारती हमको, भंग ध्यान निज कर जाते।।
बड़ा कष्ट होता था हमको, हमने मना किया उनको।
आप यहाँ से जब गुज़रें कर, लिया करो गुल बत्ती को।।

जने जने को कहते थे पर, कौन सुने बातें अपनी।
सड़क आपकी है क्या बाबा, सब की यह आवाज़ सुनी।।
सहन किया बहुतेरा हमने, पर पी पी नक्कारों में।
घुल मिल कर ही रह जाती है, पहुँच न सकती कानों में।।
बैठे थे इक रोज़ ध्यान में, मस्त मौज में थे अपनी।
आया इक अंग्रेज़ कार से, तेज़ रोशनी थी उसकी।।
पड़ी आँख पर आकर जिसदम, गुरू महाराज़ शब्द निकला।
बंद रोशनी हुई उधर झट, मोटर डाइनमो बिगड़ा।।
आती गई मोटरें सब में, कुछ कुछ होता चला गया।
सरक न पाई आगे कोई, यत्न सभी ने बहुत किया।।
बंद होती जिस वक्त रोशनी, मजबूरी रूकना पड़ता।
मोटर चले भला फिर कैसे, जिसका डाइनमो बिगड़ा।।
हुई इकट्ठी दसियों आकर, मर्ज़ हुआ सब ही में एक।
बड़ा ताज्जुब हुआ सभी को, सोचा है क्या बात विशेष।।
कुछ रोज़ाना वाले भी थे, इक चालक बोला उनसे।
मुझे रोग आ गया समझ में, सनमुख एक महात्मां है।।
बहुत बार रोका है उसने, चलो रोशनी बंद करके।
पर हमने नहीं सुनी उन्हीं की, यह लीला उन ही की है।।
जो अंग्रेज़ प्रथम आया था, सभी कार पर थे उसकी।
जुटे ठीक करने में ड्राईवर, लेकिन जब यह बात सुनी।।
बोल पड़े इक साथ और भी, रोका तो हमको भी था।
ग़ौर न की लेकिन हमने कुछ, बस है उन ही की लीला ।।
आए इकट्ठे होकर हम तक, महाराज जी क्षमा करो।
जान बूझ का ग़लती की है, इस ग़लती पर माँफ़ करो।।
बोर्ड लगाये देते हैं, आईंदा जो भी गुज़रेगा।
पहले बंद करेगा बत्ती, सर भी संग झुकायेगा।।
माँफ़ करो इस वक्त पादरी, साहब भी बोला हमसे।
किया इशारा उन्हें हाथ का, माँफ़ किया सब भाग गये।।
हुकमी बोर्ड लगा उस दिनसे, पड़ी न फिर लाईट हम पै।
कुछ दिन के पश्चात् वहाँ से, हम आगे को निकल पड़े।।
किन्तु रोशनी सदा सदा को, चलते रहे बंद करके।
मानो के क़ानून बना हो, जाते वहाँ से रूक रूक के।।

हम तो चले गये पर अपनी पुजी वहाँ चट्टान।
सभी मुसाफ़िर आते जाते, करने लगे प्रणाम।।

कुछ दिन के पश्चात् सतपड़ा, मालाओं से होकर के।
नदी तापती के तट स्थित, शहर मुड़ावद जा पहुँचे।।
कपिलेश्वर का मंदिर था इक, आसन उसमें लगा लिया।
नदी तापती और पाँजरा, संगम लेती थीं उस जा।।
बसा हुआ है शहर मड़ावद, इसी पाँजरा के ऊपर।
ख़ुश्क पड़ी थीं दोनों नदियाँ, पर संगम था अति सुंदर।।
पड़ गए हम दोनों नदियों के, उसी सुहावन संगम पर।
आने जाने लगे लोग भी, हमको पड़ा हुआ पाकर।।
पात्रों में पिचकी सी लुटिया, आसन को पृथ्वी माता।
बब्क छुटी रहती थी अपनी, बकते जो भी मन आता।।
हालत अर्ध पागलों जैसी, दाढ़ी मूंछ केश सब एक।
गुथ गुथ उलझ गये आपस में, हो गए मिल सब ऐकम एक।।
हालत फिरते लिये अटपटी, कुछ का कुछ भोंके जाते।
लोग अवस्था देख हमारी, पागल हमें समझ जाते।।
बातों में थी पूर्ण सत्यता, जो कहते वह हो जाता।
थे स्थित गुरू देव हृदय में, सिर्फ़ सत्य यों होता था।।
बैठे जहाँ वहीं बैठे हैं, चिंता का कुछ काम नहीं।
पावन दर्शन होते रहते, आठ पहर ज्यों के त्यों ही।।
जो बोला वह मैं नंहि बोला, अंदर वे बोला करते।
वचन श्री मुख के होते जो, मुख से निकला करते।।
थे निमित्त से केवल हम तो, थे सदगुरू कर्ता धरता।
अपना चोला तो केवल बस, फिरता था धक्के खाता।।
कुछ ठहरे हम संगम पर, आने लगे शहर के व्यक्ति।
गाड़ी छुटी रहा करती थी, अपनी बक बक की हर वक्त।।
न तो ज्ञान चर्चा कह सकते, ना कोइ भक्ति पक्ष की बात।
गहरे में उतरे रहते हम, विषय छिड़ा रहता अज्ञात।।
लोग समझ नंहि पाते उसको, लक्ष न कर पाते संकेत।
पर जानें क्यों आ आ करके, करने लगे अपन से हेत।।
बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति शहर के, आने लगे हमारे पास।
जाने क्या देखा अपने में, कैसे हुआ उन्हें विश्वास।।
सर्व श्रेष्ठ इक व्यक्ति मुड़ावद, जिसको सब पटेल कहते।
अपने बारे में सुन सुनकर, इक दिन वे भी आ पहुँचे।।
उन्हीं दिनों चौदस के मेले, के भरने का दिन भी था।
सदा पाँजरा की रेती में, यह मेला भरता आया।।
इक विशाल तय्यारी उस, मेले की जब आरम्भ हुई।

इन्तज़ाम जब देखा हमने, तो हम को भी ज्ञात हुई।।
व्यक्ति प्रतिष्ठित शहर मुड़ावद, जब आया अपने नज़दीक।
हमने उत्तम व्यक्ति जानकर, देनी चाही उसको सीख।।
बोले हम पटेल जी यदि तुम, मान जाओ इक अपनी बात।
तो कुछ कहने की इच्छा है, हित की है रक्खो विश्वास।।
आप योग्य समझे हैं हमने, यों हम तुम से कहते हैं।
क्या सेवा है योग्य हमारे, सर आँखों पर लेते हैं।।
दो शब्दों में बात ख़त्म, करते हुऐ हम बोले उससे।
जा तो अब के यहाँ पाँजरा, में मेला मत भरने दे।।
अन्य कहीं भरवादे चाहे, सुन करके पटेल बोला।
महाराज क्या बतलाऐं यह, सदा यहीं भरता आया।।
यही एक स्थान नियत है, इसका हटना मुश्किल है।
मुझ इकले की बात नहीं है, यह तो कुल पबलिक की है।।
दो दिन के पश्चात् वहाँ, डेरा आ पहुँचा थाने का।
अपना आसन हटवाकर, आदेश हुआ लगवाने का।।
हमें वहाँ से हट जाने को, कहा सिपाही लोगों ने।
थोड़ी दूर अलग हटकरके, आसन लगा लिया हमने।।
थानेदार साहब का डेरा, लग कर के जब खड़ा हुआ।
हम पहुँचे जिस समय दरोग़ा, डेरे में था पड़ा हुआ।।
वही अकेला था डेरे में, बोला हमें देख करके।
साँई साहब क्या ख़्वाहिश है, बैठ जाओ यहाँ आ करके।।
क्या खाना वाना लोगे कुछ, हमने झट इन्कार किया।
उसने कईबार खाने का, अपने से इसरार किया।।
बोला तो तकलीफ़ और क्या, है साँई साहब बोलो।
हमें पता तो चले आप क्या, चाह रहे मुँह तो खोलो।।
हमने कहा आपसे हम कुछ, कहने आये हैं इस वक्त।
ज़िम्मेदार व्यक्ति मेले के, तुम ही केवल हो ऐ भक्त।।
उसने हमें इजाज़त देदी, कहें आप जो कहना हो।
हमने कहा दरोगा जी यह, मेला यहाँ न भरवाओ।।
अपने बसकी बात नहीं है, थानेदार साहब बोले।
<u>यह जाने कब से भरता, आया है इसी जगह बोले।।</u>
अभी नहीं बिगड़ा कुछ इसका, हैं अब तक दस बीस दुकान।
अन्य जगह जा सकता है यह, चाहें अगर आप श्रीमान्।।
उसने पहले जैसा उत्तर, देकर हमको टरकाया।
मैं उसका उत्तर सनकरके, वापिस आसन पर आया।।

नद्दी के दोनों बाजू पर, इन्तज़ाम दो रहते थे।
उसी रात दूजी बाजू के, प्रबंधकों पै हम पहुँचे।।
वही माँग की हमने जाकर, पर उत्तर कोरा पाया।
चेत कराकर मैं उनको भी, वापिस विवश लौट आया।।
मेला भरने लगा ज़ोर से, रेती में लग गये बज़ार।
दूकानों गाड़ी आदिक का, होता नंहि था कोइ शुमार।।
डेरे तान तान रेती में, व्यक्ति हज़ारों आन पड़े।
नदी पाँजरा के दोनों ही, बाजू थे इक साथ खड़े।।
कहीं कहीं ढालू था थोड़ा, जिससे मेला आता था।
और पेट में नदी पाँजरा, के आकर भर जाता था।।
दोनों ओर कगारें ऊँची, फाँट बड़ा चौड़ा उसका।
पर उन दिनों ख़ुश्क रहती थी, पानी बूंद न रहता था।।
सच पूछो तो लोग वहाँ के, बारिश ही से थे अनजान।
चादर तर हो जावे जिससे, यह थी वर्षा वहाँ महान।।
पड़ी रहा करती थीं नदियाँ, इस कारण से सूखी सब।
पर इस साल न जाने कैसे, मेला भरा बड़ा बेढब।।
मेला जब भर गया पूर्णतः, चौदस की रात्री आई।
अर्ध रात्रि उपरान्त ऊपरी, दिशा से एक ध्वनी आई।।
जैसे कहीं शंख बोला हो, सुना हज़ारों ने उसको।
और विचार भी किया शंख पर, अर्ध रात्रि में बोला क्यों।।
शंखनाद विश्राम काल में, क्या कारण हो सकता है।
किसी देव की आरती वारती, पर ही बोला करता है।।।
साधारण सी बात जानकर, दिया न कोई ध्यान विशेष।
क्या होने आ पहुँचा सर पर, जिससे चले न कोई पेश।।
ठीक एक घंटे के पीछे, नद्दी में आया तूफ़ान।
उमड़ आइ जल राशि कहीं से, जैसे हाँडी बीच उफान।।
चली उफन कर नद्दी ऐसी, मेला सारा लिया लपेट।
भरा पड़ा था नदी पाँजरा, का मानव से छकवाँ पेट।।
कुछ हिसाब नंहि सामानों का, कुछ हिसाब नंहि जानों का।
कुछ नंहि जानवरों का, क्या हिसाब इन्सानों का।।
उठा साथ पानी के सब कुछ, लमहे भर में ले ली रेड़।
सब पदार्थ बह गये एक दम, मिनिट लगी मुश्किल से डेढ़।।
त्राहि त्राहि का उठा शोर इक, जिधर लखो थीं की चींख पुकार।
लाखों की सम्पत्ति मिनिट में, करली जल ने धारों धार।।
ना वर्षा की आशंका कुछ, नहीं बाँध का कहीं गुमान।

पृथ्वी सी फट गई एकदम, फट गए ज्यों पर्वत पाषाँण।।
प्रलय उपस्थित हुआ कहाँ से, एक पहेली बनी समक्ष।
जान हजारों की जो कर गई, आकर एक मिनिट में भक्ष।।
नहीं निकलने दिया किसी को, बाहर ऊँची ढाँगों ने।
चीतकार जब उठे एक दम, आया मेरे कानों में।।
हम उठकरके चले वहाँ से,पहुँचे पास दरोगा के।
शब्द हमारे कड़कदार थे, जाते ही उससे बोले।।
यही आपका इन्तजाम है, यही नौकरी है तेरी।
बता कौन से गण्डे पर, ठुकरादी थीं बातें मेरी।।
हाथ जोड़ कर बोला साँई, क्या कहदें हम कुदरत को।
अब तो आप ठीक हो बाबा, चाहे जो कहलो हमको।।
तुमको चेत कराया नंहि क्या, जो बनते हो अब निर्दोश।
तुम भी इसी तरह यदि बहते, तब तुमको आती कुछ होश।।
नक्कारों की चोबों में, पी पी की कौन सुने आवाज़।
धौंस जहाँ बजती रहती हों, कोइ न सुनता छोटा साज़।।
हमको तो पागल समझा, होगा क्यों रे ओ थानेदार।
पागल भी अव्वल दर्जे का, खुद को समझा था हुशियार।।
बता कौन इतनी जानों का, ज़िम्मेदार बनेगा अब।
सर नींचा क्यों किये खड़ा है, उत्तर क्यों नंहि देता अब।।
लाखों की सम्पत्ति मिनिट में, तेंने ज़ायल करवादी।
चेत कराने पर भी पबलिक, नाहक़ तेंने मरवादी।।
उत्तर नहीं दिया कुछ उसने, सूंघ गया हो जैसे साँप।
रौद्र रूप मेले का लखकर, थानेदार रहा था काँप।।
छोड़ गये स्थान तभी हम, घुस गये गहन जंगलों में।
पर्वत जंगल चले लाँघते, इकचित हो अपनी धुन में।।
जिस को होश नहीं बाहर का, मार्ग कौन खोजे उसका।
सीध नाक की चलता वह तो, रक्षक उसका परमात्माँ।।

इश्क में डूबा सो डूबा और गया।
इश्क जिसका जैसा वैसा बन गया।।

चार पाँच दिन चलने के, पश्चात् गाँव इक हाथ आया।
करो यहीं विश्राम हमारे, हमारे मन में कुछ ऐसा आया।।
लगा लिया आसन बाहर ही, पेड़ तले उस बस्ती के।
कुछ अजीब से ही मकान, उस बस्ती के हमको दीखे।।

पंद्रह सोलह फुट ऊँचे, बाड़ों के बड बड़े थे घेर।
पैने काँटों के झाड़ों से, छपे पड़े थे चारों फेर।।
दर झाड़ों के घर झाड़ों के, झाड़ों की ही दीवारें।
सारा गाँव झाड़ सा लगता, जिधर जिधर द्रष्टी डालें।।
हमें देखकर एक व्यक्ति उन, ग्रामीणों में से आया।
और हमारे पास आनकर, उसने हमको समझाया।।
बाबा जी तुम यहाँ न ठहरो, यहाँ शेर आ जाता है।
रोज़ यहाँ के ग्रामीणों को, आकर तंग बनाता है।।
आप घेर में ठहरें अंदर, बाड़े में विश्राम करो।
हमने कहा भाई तुम जाओ, जाके अपना काम करो।।
हमसे क्या कहना है उसने, क्या मतलब बेचारे का।
हम पै कुछ सामान नहीं है, उसके चारे वारे का।।
आप पड़ें बेफ़िकर हमारी, चिंता कोई मत करना।
हमें तंग नंहि करता कोई, फ़िकर हमारी मत रखना।।
सीधा साधा उत्तर हमसे, पाकर वो ख़ामोश हुआ।
बिना कहे कुछ तब तो वह, अपने सन्मुख से चला गया।।
पुनः शाम को फिर आया, आकर खाने के लिये कहा।
हम रात्री को नहीं जीमते, हमने उस से मना किया।।
वह फिर भी इक पाव दूध, इन्कार किया पर ले आया।
हमने पी पा करके उसको, अपना धूना सिलगाया।।
बैठ गये ध्यानस्त पेड़ के, नींचे हम निज भाओं में।
अर्ध रात्री उपरान्त खलबली, मची वहाँ की गायों के।।
नथनों से नाकों के फूँ फूँ की फुँकारें आती थीं।
ज़ोर ज़ोर से मिलकर गऊऐं, एक साथ रंभाती थीं।।
उसी आदमी ने फ़ौरन, बाड़े का फिर फाटक खोला।
शेर आ चुका है बाबा, अंदर आजाओ यों बोला।।
हमने पहले जैसा उत्तर, देकर के ख़ामोश किया।
उसने हमसे सीधा उत्तर, पाकर फाटक बंद किया।।
क्षण उपरान्त सिंह आकर, धूने से बचकर खड़ा हुआ।
ताका किया देर तक हमको, आख़िर वापिस लौट गया।।
घंटे दो घंटे के भीतर,मची खलबली फिर अंदर।
हमें बुलाने को उसने, बाड़ा खोला फिर घबराकर।।
रहा टेरता हमको वह पर, हम बिलकुल ख़ामोश रहे।
आकर लौटा नंहि जब तक, बन राज गायों में शोर रहे।।
लौटा कई बार आ आकर, सिंह वहाँ से हो लाचार।

हाथ लगन कुछ हुई न उसको, पौ फट आई आख़िरकार।।
प्रातः ही वह व्यक्ति आनकर, निकट हमारे यों बोला।
और प्रभावित सा हो हमसे, हाथ जोड़ कर मुँह खोला।।
बचवादी इक गाय आपने, रात हमारी बाबा जी।
कृपा आपने की हमने तो, तुम्हें उठाना चाहा भी।।
यह जो सिंघ रात आया था, नियम पूर्वक आता है।
कूद काद बाड़े में से, इक गाय रोज़ ले जाता है।।
उपस्थिती से रात आपकी, हिम्मत नहीं पड़ी उसकी।
तीन बार आ आ कर लौटा, किरपा सिर्फ़ आपकी थी।।
आप यहीं स्थाई रूप से, ठहरें तो अति किरपा हो।
ख़र्च आपका मेरे ज़िम्मे, बाबा जी चाहे जो हो।।
किन्तु न जावें आप यहाँ से, हम पर बड़ी कृपा होवे।
आप यहाँ ठहरें तो नगरी, कम से कम सुख से सोवे।।
हमने कहा मौज है अपनी, जहाँ चाहा विश्राम किया।
जब जी उचटा उठा कमलिया, हमने अपना मार्ग लिया।।
अपने राम किसी के नौकर, या कोई पहरेदार नहीं।
सिर्फ़ एक के चाकर हैं हम, और हमारा यार नहीं।।
उठा कमलिया उसी रोज़, हमने वहाँ से प्रस्थान किया।
घने पर्वतों और जंगलों, का उठकरके मार्ग लिया।।
कई रोज़ जंगल ही जंगल, मार्ग चले गए तै करते।
आख़िर एक ग्राम फिर आया, उसके अंदर जा पहुँचे।।
आसन लगा गाँव की जड़ में,बैठे ही थे जाकर के।
रोने की आवाज़ कान में, पड़ी हमारे आकर के।।

एक व्यक्ति था खड़ा पास ही, हमने उससे पूछ लिया।
क्यों भाई यह कौन रो रहा, उसने हमें जवाब दिया।।
बाबा जी इक औरत है यह, था जवान बेटा इसका।
उसे साँप ने काट लिया है, अभी यहीं है पड़ा हुआ।।
देख रहे हैं सब आ जाकर, बाबा जी तुम भी देखो।
विधवा है बेचारी उसके, बेटे पै कुछ कृपा करो।।
इक लौता बेटा है उसका, नहीं आसरा कोई दूजा।
सारे जीवन दुखी रहेगी, चल कर बाबा करो कृपा।।
सौ आते यहाँ सौ जाते यहाँ, सरोकार क्या अपने से।
हम जा करके क्या कर लेंगे, बच्चा हमको रहने दे।।
किन्तु चिपट सा गया हमें वो, हमने बहुत किया इंकार।
चलना पड़ा साथ में उनके, आख़िर हमको हो लाचार।।

जब उस घर में जा पहुँचे हम, हमें देखकर उसकी माँ।
आ चिपटी अपने पैरों से, बहुतेरा हमने झिड़का।।
करने लगी रूदन पड़ करके, क्षमाँ इसे करदो भगवन।
साक्षात् भगवान आप हो, दे दो प्रभो इसे जीवन।।
मेरा सिर्फ़ आसरा यह ही, जग में कोई नहीं अपना।
हमने करी प्रार्थना उससे, देवी तुमसे करी मना।।
हम क्या कर सकते हैं इसमें, काल नहीं बसका अपने।
छोड़ो पैर हमें मत लिपटो, छोड़े नहीं पैर उसने।।
माँफ़ करो पग तब छोडूँगी, तुममें हैं सारी सामर्थ।
हैं भगवान आज घर मेरे, मेरी बात नहीं है व्यर्थ।।
या फिर साथ साथ बेटे के,मेरी भी भेजो अर्थी।
पैर तभी छोडूँगी जब, मंजूर करो मेरी अर्ज़ी।।
छोड़े पैर न जब बुढ़िया ने, चक्कर में मैं फंसा खड़ा।
श्री सदगुरू महाराज करेंगे, किरपा मुँह से निकल पड़ा।।
नहीं उठााना सूर्य उदय तक, जल प्रवाह भी मत करना।
गुरू महाराज ठीक कर देंगे, श्रद्धा चरणों में रखना।।
लेकर वचन पैर छूटे तब, हम छुटकर बाहर आये।
गये नहीं हम जहाँ टिके थे, बिलकुल वहाँ न रूक पाये।।
उसी समय चल दिये वहाँ से, रूकना ठीक नहीं समझा।
सारी रात सफ़र करते रहे, दूर पहुँच कर दिन निकला।।

निकला तीर कमान से नहीं लौटता अब।
हुकुम हाथ से छुट गया भली करेंगे रब।।

मुर्दा अगर कहीं होता है, जगते रहते उसके पास।
सोते नहीं पड़ौसी तक भी, बनता वातावरण उदास।।
चार बजे लोगों ने सोचा, बैठे बैठे थक गए जब।
करो तयारी अजल मजल की, मुर्दा ले चलना है अब।।
छूने दिया न उसकी माँ ने, जब तक सूर्य न निकलेगा।
पड़ा यहीं रहने दूंगी मैं, मुझे नहीं छूने देना।।
काफ़ी किया आग्रह सबने, पागल है क्या बुढ़िया तू।
मुर्दे हुवे कभी क्या जीवित, ले चलने दे हमको तू।।
पानी बन गया गर शरीर का, कोइ न अवेगा फिर पास।
बुढ़िया बोली चले जाओ तुम, मुझ को है उनपर विश्वास।।
बच्चा ठीक होयगा मेरा, ना भी हुवा तुम्हें फिर क्या।

अपने का मैं आप करूँगी, तुम सब पास नहीं आना।।
लोग चले गए वापिस कहते, देखें जब होगा ज़िंदा।
दो ढाई घंटे के पीछे, जब आकर सूरज निकला।।
तो लड़के ने आँखें खोलीं, उठते ही पानी माँगा।
शोर मचा ज़िंदा होते ही, गाँव देखने को भागा।।
अपनी ढूँढ़ मची इक दम फिर, फिरा ढूँढ़ता जना जना।
लेकिन हमें कहाँ मिलना था, चाहा ही नंहि जब रूकना।।

अन हौनी हम से हुई भली करें श्री राज।
चाहे जो परिणाम हो सरे बिगाने काज।।

कई रोज़ जंगल ही जंगल, मार्ग चले गए तै करते।
आख़िर कार शीरपुर थी इक, बस्ती उसमें जा पहुँचे।।
आबादी नंहि भाती हमको, अंदर घुसते ही नंहि थे।
और मांगने की प्रकर्ति औ, अपने कुछ स्वभाव नंहि थे।।
दिल इतना निर्भय था अपना, हो कोई अपने आगे।
चाहे महा राजा हो बातें, बिना झिझक करते जाके।।
जब से गुरू महाराज हमारे, उर में बैठे थे आकर।
क्या बतलाऐं क्या हो गए हम, उन्हें हृदय में बिठलाकर।।
जैसे हम कितने ही संग है, ऐसा हमें लगा करता।
इकले कभी न रहते थे हम, बीज नाश समझो डर का।।
चढ़े हुवे हैं मानो हम कंहि, पर्वत सी ऊचाई पर।
मानव छोटे लगते जब हम, द्रष्टि पात करते उन पर।।
साथ साथ दुर्बल भी लगते, चाहे हाथी हो आगे।
हमसे लोग लगे डरने कुछ, निज स्वभाव ऐसा पाके।।
ग्राम शीर पुर कस्बा सा था, घने जंगलों में आबाद।
जंगलात की कोठी भी इक, बनी हुई थी उसके पास।।
उसमें रेन्जर औ फ़ौरैस्टर, आदि निरिक्षक रहते थे।
मुसलमान अफ़सर था उनका, जिसे फ़ौरैस्टर कहते थे।।
हम अपने दीवाने पन में, स्वयं खोल कोठी का द्वार।
बिना इज़ाजत लिए किसे से, घुस गये अंदर आख़िर।।
देख हमें आता अफ़सर ने, पूछा अंदर क्यों आये।
हमने कहा मौज है अपनी, यों ही करी चले आये।।
तुम्हें देखकर चाहा हमने, बातें औ सत्संग करें।
हमें औलिया समझा उसने, सोच लिया झट चुप्प रहें।।

थी उद्दण्ड अवस्था अपनी, हिचक और भय लेष नहीं।
जो जी में आता बक देते, जो मन आया कहा वहीं।।
उसने हमें बिठाने के लिए, आसन घर से मंगवाया।
बिछवाकर आसन अफ़सर ने, सादर हमको बिठलाया।।
बैठ गये हम जब आसन पर, पूछा क्या कुछ खाना है।
सर को हिला दिया हमने, बोले कुछ भी नंहि पाना है।।
सत्य अगर पूछो तो उल्टा, तुम्हें खिलाने आये हैं।
जो रूहानी ग़िज़ा जीमते, तुम्हें चखाने आये हैं।।
उनके साथ मित्र भी था इक, वो भी बैठा था ख़ामोश।
भाव बने अपने कहने के, उतरा कुछ कहने का जोश।।
मुसलिम विषय पकड़के हमने, जब कहना आरम्भ किया।
झूम उठे मुसलिम प्रसंग पर, ऐसा उसने दंग किया।।
अश अश करने लगे मुसलमाँ, हिन्दू के मुँह उनकी बात।
रग़वत हुई उन्हें सुनने में, सुनने लगे सभी इक साथ।।
बातें थी सब ही चोटी की, चुटियल कर देने वाली।
हुवे प्रभावित वे सब के सब, बक बक ही नंहि थी ख़ाली।।
लगे ज़िक्र करने आपस में, मुसलमान सारे मिलकर।
निस्संदेह इल्म पूरा है, कैसे बतलाऐं काफ़िर।।
घूम रहे ऐसे क्यों जानें, विद्वत्ता का पार नहीं।
साधू है पहुँचा हुवा कोई, जिसका वार न पार कहीं।।
हम सत्संग के बाद घास पर, बिन आसन ही लेट गये।
वे बेचारे वस्त्र खाट, आदिक बिछवाते हुवे फिरे।।
बहुत आग्रह किया उन्होंने, पर हमने नंहि मानी एक।
लेट गये निर्द्वन्द घास पर, मना करी सेवा प्रत्येक।।
रहा मुड़ावद की यात्रा पर, इक तेली भी अपने साथ।
हमें वहाँ ठहरा हुवा सुनकर, मिलने आया अपने पास।।
तेल बेचने वाला नंहि, बल्के इक जाति कहाती है।
उस प्रदेश में तेली नामक, जाति अलग कहलाती है।।
उस तेली के साथ एक, बच्चा भी लगा चला आया।
बैठ गये आकर के दोनों, कुछ चर्चा भी चलवाया।।
इसके बाद वो बोला हमसे, कहीं घूंम आवें आवो।
हमने भी अनुमति दे दी, ले चलो जहाँ की इच्छा हो।।
पहुँचे जब बाजार में उसने, हमें खिलाना चाहा कुछ।
हमने जब इंकार किया, उपजा उसे बड़ा ही दुख।।
डबडबाई सी आँखें हो गई, हो गया भक्त रूलासा सा।

मैं प्रशाद लाऊँगा केवल, लेना चाहे ज़रा सा सा।।
इतना कह कर चला गया वो, और ज़लेबी ले आया।
इच्छा प्रबल देखकर उसकी, हमने उसको स्वीकारा।।
किन्तु जलेबी पर चिपका हुवा,पाया कुछ काला काला।
देख अधिक मात्रा में उनको, हमने अपने लब खोले।
भाई ये तुम क्या ले आये, इस प्रकार उससे बोले।।
देख मक्खियाँ उसमें उसने, हमें जीमने से रोका।
हम बोले अब तो जीमेंगे, ऐसा अब नंहि होने का।।
तुम दुकान से भोग समझकर, क्रय करके जब ले लाये।
उस प्रशाद को तुम ही बोलो, फिर हम कैसे नंहि खाऐं।।
इतना कहकर उन जलेबियों, का खाना आरम्भ किया।
खाता हमें देखकर उसने, भी खाना प्रारम्भ किया।।
बोला जब तुम खा सकते हो, मैं क्यों कर नंहि खाऊँगा।
आप नहीं फेंकेंगे तो फिर, मैं भी फेंक न पाऊँगा।।
खा पी कर भोजन मक्खी का, जब हम कोठी में आयें।
तो वह अफ़सर हमसे बोला, बाबा कुछ खा भी आये।।
हम बोले हाँ खा तो आये, पर हमने है विष खाया।
अपनी राज नुँमा बातों को, अफ़सर समझ नहीं पाया।।
जब स्पष्ट किया हमने सब, तब वो कहीं समझ पाया।
उस तेली के व्यौहारों पर, उसको बड़ा क्रोध आया।।
बाद एक घंटे के अपने, पेट में गड़बड़ शुरू हुई।
जब देखी बे कली हमारी, उस अफ़सर को फ़िकर हुई।।
उसने दवा गोलियों से, अपना इलाज करना चाहा।
इनसे ठीक नहीं होंगे हम, हमने उनको बतलाया।।
हमने कहा आप यदि हमको, ठीक चाहते हो करना।
तो गाँजे की चिलम पिला दो, और अधिक कुछ मत करना।।
चिलम नई मंगवा गाँजे की, उस अफ़सर ने भरवायी।
हमने आग्रह किया एक का, पर उसने दो पिलवाई।।
पीते ही हम चिलम एक दम, स्वस्थ हुवे पीते ही साथ।
किन्तु चिलम जो पीते थे हम, लगी हुई थी अब भी हाथ।।
खेंचा अंतिम कश जोरों का, धुँआ बाहर जब निकला।
जो मक्खी खाई थी ड़ारा, वह उड़कर बाहर निकला।।
जब देखीं उड़ती हुई सबने, महाराज यह क्या लीला।
हम बोले बस रहो देखते, यह है मुक्ती की क्रीड़ा।।
बड़े कृपालू हैं श्री सदगुरू, उनकी लीला अपरम्पार।

उन्हें समझना बड़ा कठिन है, उनका कोई पार न वार।।

किये हुवे को भोगना, पड़ता ही हर हाल।
या केवल सदगुरू कृपा, करती उसे बहाल।।

जाने किस प्रकार सदगुरू को, मेरे प्रति मालूम हुवा।
मुझे बुलाने ग्राम शीर पुर, अपना लड़का भेज दिया।।
दाह क्रिया जिसकी पतनी की, मैंने ही करवायी थी।
आज शक्ल देखी मैंने, उस अपने सदगुरू भाई की।।
उठकर कण्ठ लगा आदर से, प्रेम पूर्वक बिठलाया।
याद किया तुमको सदगुरू ने, यह भाई ने बतलाया।।
पाते ही आदेश गुरू का, हमने उठ प्रस्थान किया।
तीन चार दिन की मंजिल में, श्री चरणों में पहुँच गया।।
बार बार पग चूम नमन कर, साष्टांग्ग प्रणाम किया।
में नंहि कह सकता के कैसा, हमको आशीर्वाद मिला।।
मुखाकृति थी और तरह की, जिसे देख भय लगता था।
भय का वातावरण छोण कर, ही मैं उस दम भागा था।।
बैठो इधर सामने आकर, सदगुरू का आदेश हुवा।
मैं सन्मुख जा पहुँचा उनके, मुह नीचा कर बैठ गया।।
इतना बड़ा हो गया अब तू, लगा जिलाने मुर्दों को।
दख़ल लगा देंने कुदरत में, क्या समझा है उत्तर दो।।
बीच निकल गइ मेरे सुनकर, बैठा रहा किन्तु खामोश।
किस मुँह से मैं बोलू सन्मुख, कैसे कहूँ कि हूँ निर्दोश।।
उसकी जगह कौन जाऐगा, फिर बोले सदगुरू महाराज।
जिसको तेंने रोक लिया है, पूरा कर वह खाना आज।।
बता कौन जाऐगा अब वहाँ, उसकी जगह पूर्ण करवा।
या कुछ खेल समझ रक्खा है, जिसको चाहा दिया जिला।।
कौन जाएगा उत्तर दे अब, मेरे मुँह से निकला मैं।
और कौन है बिलऐवज़ को, भेजो उसकी जगह हमें।।
किये हुवे को कौन भरेगा, हमने किया भरेंगे हम।
तो फिर इधर देख चलने की, तय्यारी कर ले इकदम।।
लगा हुक्म हमको मरने का, उठ गये शीघ्र हुक्म के साथ।
किया स्वच्छ स्थान लीप कर, कुशा बिछाई उस पर आप।।
कर स्नान आए मरने को, चरन लिये सदगुरू आकर।
चरण ध्यान में लेकर अपने, लेटे आसन पर जाकर।।

यह ले कफ़न शब्द के संग ही, ऊपर चादर आन पड़ी।
हमने उठा संवर उसको, सर से पैर तक ओढ़ी।।
लेट गये आँखें बंद करके, श्री सदगुरू का ध्यान लगा।
सरहाने आसन सद गुरू का, चरनों में मेरा चोला।।
रम गये हम अपने ख़याल में, ज्ञात नहीं क्या हमें किया।
कुछ क्षण में आई अ चेतना, बाहर ज्ञान समाप्त हुवा।।
कितनी देर रही यह हालत, कुछ अनुमान नहीं इसका।
लेकिन आँख खुली जब अपनी, तो अजीब ही था नक्शा।।
श्री सदगुरू की जगह राज जी, मुस्काते बैठे बैठे।
दी आवाज रतन अब उट्ठो, हम चोला ले उठ बैठे।।
हुवा यहाँ क्या अब से पहले, अपने को कुछ ज्ञात नहीं।
लिपट गये श्री राज चरण से, चारू चरण में झुकी जंमीं।।
सावधान हो रतन बाई सुन, जो चोला तुमको बख़्शा।
झण्डू दत्त परातम भेजा, इसमें तुम्हें प्रविष्ठ किया।।
इस चोले में बैठ कायमी, की लीला करनी है अब।
अभी उतरते हैं हम तुम पै, बैठो सावधान हो अब।।
फ़ौरन् ही सुन शब्दों को, बैठ गये आसन लेकर।
इक प्रकाश सा उतरा जैसे, कोटि सूर्य उतरे अंदर।।
अगला पिछला ज्ञान हुवा सब, समझ आइ सारी लीला।
दुख का खेल खिला है क्योंकर, इसका सारा राज़ मिला।।
अगले रोज़ घटी इक घटना, श्री सदगुरू का वह लड़का।
जिसकी धर्म पत्नि मर गइ थी, अनायास ही धाम गया।।
बड़ा एक धक्का सा पहुँचा, पूछो मत जो दुख्ख हुवा।
लखते के लखते ही रह गये, पक्षी ने प्रस्थान किया।।
दाह पुष्प आदिक कर्मों से, दिवस तीसरे जब निपटे।
श्वेत वस्त्र आदिक लाकर, सदगुरू ने हमें प्रदान किये।।
धोती ज़ोड़ा और अँगरखा, पगड़ी और कमण्डल एक।
चदरी देकर कहा कफ़न है, समझो इसको अपना भेष।।
प्रथम नमन कर उन वस्त्रों को, हमने अंग लिये वे धार।
पहने हुऐ देख कर हमको, सदगुरू पुलकित हुवे अपार।।
मंत्र तारतम दिया साथ ही, बिठला आसन पर हमको।
शरण लिये हम बड़े हर्ष से, बख़्शा सब कुछ ही हमको।।
जो प्रसाद आशीर्वाद का, दिया हमें श्री सदगुरू ने।
कुछ समझे कुछ समझ न पाये, कोशिश बहुत करी हमने।।
पर मतलब हम जान गये सब, जो श्री मुख वचनों में था।

अतुलित धन पर हाथ पकड़कर, जैसे आज दिया बिठला।।
सर्व शिरोमणि घोषित जैसे, किया जँचा हमको ऐसा।
जिस धन पर बिठलाया तुमको, धन नंहि है ऐसा वैसा।।
श्री सदगुरू आशीर्वाद, रूपी धन हमको देकर दान।
गदगद और प्रफुल्लित बेहद, द्रष्टि पड़े हमको श्रीमान।।
बिखरी पड़ती थी मुस्काहट, खिला जा रहा था मुखड़ा।
यह उनके भावों से लगता, था है उनको हर्ष बड़ा।।
हम अपनी क्या कहे बताई, नंहि जाती हमसे वह बात।
बस इतना जाने द्रढ़ता से, पकड़ा श्री सदगुरू ने हाथ।।
दो के एक बने इक पल में, बाहर भीतर एक समान।
उनमें मैं मेरे में सदगुरू, द्वैत हुवा अद्वैत महान।।

इस प्रकार की सम्पदा, कर सदगुरू से प्राप्त।
शक्ती अपने बीच में, जंची हमें पर्याप्त।।

जहाँ मौज हो जाओ विचरो, इस प्रकार आदेश दिया।
श्री मुख से आज्ञा पाते ही, गुरू ग्रह से प्रस्थान किया।।

'तीसरी परिक्रमाँ'

भेष और आशीर्वाद के, पाते ही हम बदल गये।
इक विचित्र सी हाल हो गइ, कह नंहि सकते क्या हो गये।।
कुछ जवार भाटे से अंदर, उठने लगे तरंगों के।
और ख़ैल के ख़ैल खयालों, रंगों और उमंगों के।।
जिसकी रौ में यदि बक छूटती, तो रूकना दूभर होता।
समझ न पाते लोंग हमारी, उठ उठ भग जाते श्रोता।।
हमें ड़ाक गाड़ी सम्बोधन, करने लगे जगत के लोग।
और बहुत से तो कहते थे, इस साधू को है कुछ रोग।।
मौन अगर हैं तो ऐसे हैं, जैसे हों मोनी बाबा।
बोले तो ऐसे बोले ज्यों, विश्व विजय बीड़ा बाबा।।
अकथनीय हालत रहती निज, उदय अस्त रहते उन्माद।
अंदर ही अंदर पलकों के, जानें क्या मिलता था स्वाद।।
मस्त सैर में रहते प्रति पल, रत्न जड़ित सुख पालों पर।
लटा पीन रहते हम हर दम, अपने निजी ख़यालों पर।।
श्रवण बंद से थे बाहर से, आँख बंद थी चमड़े की।
पग पहिये से घूंमा करते, भार लिये तन छकड़े की।।
ज्ञान बहुत कम रहता हमको, जगह कौन सी हैं इस वक्त।
नज़रों पर दुनियाँ दारी की, कुलफ़ ढका रहता था सख़्त।।
पहुचे खुड़खुड़ेश्वर से हम, सौन गिरी से चल करके।
नदी तापती के तट पर शिव, मंदिर था उसमें ठहरे।।
बड़ी भयंकर गहराई थी, नदी तापती की उस ठौर।
जैसे किसी खोल में बहती, ऐसे थे उसके ढंग डौर।।
जल लेने जाते तो मीलों, का आना जाना होता।
पांच महीने वही खुड़खुड़ेश्वर, मंदिर में अपना बीता।।
जगह महात्माओं के ही, रहने लायक थी निस्संदेह।
जहाँ आत्माँ मन पावन हो, साथ साथ पावन हो देह।।
एक व्यक्ति के संकेतों पर, पहुँचे हम उस मंदिर में।
बड़ा सिद्ध बाबा रहता है, बतलाया उस व्यक्ति ने।।
उन संकेतों पर हम पहुँचे, दर्शन पाये महात्माँ के।
थे विख्यात् ब्रह्मचारी कर, रामा नन्द नाम के थे।।
नंगला फूल ग्राम मेरठ के, निकट वहाँ के थे वासी।
जन्म नाम शंकर उनका, थे उच्च कोटि के अभ्यासी।।

जाते ही प्रणाम की हमने, इक विनम्र उत्तर आया।
और एक आसन ला करके, मेरे नीचे बिछवाया।।
हमें दक्षिणी पंडित जाना, भेष हमारा जब देखा।
हाथ कमण्डल पाग मुँड़ पर, अचला धोती पहने था।।
आदर मान हमें देकर के, एक निवेदन की हमसे।
खाना हम करलें खा लोगे, या तुम स्वयं बनाओगे।।
इस प्रकार की सुनकर उनसे, मैंने कही महात्माँ जी।
एक महात्माँ एक महात्माँ, से यों पूछे उचित नहीं।।
जग छोड़ा तन भस्म रमाई, फक्कर बने फ़खर के साथ।
शुद्धी और अशुद्धी की हम, रहे छेड़ते फिर भी बात।।
गौड़ों में भी गौड़ तलाशे, थोपो मेंत यह आपस में।
आप बनायें हम खायेंगे, छूत छात क्या है इसमें।।
बैठ गये हम एक वृक्ष से, अपनी कमर लगा करके।
मस्त मौज में अपनी हो गये, उचित जगह को पाकरके।।
भोजन जब बन चुका महात्माँ, जी ने दी हमको आवाज।
भोजन तो तय्यार हो चुका, जीम जाओ आकर महाराज।।
हम रसोइ तक पहुँचे उठकर, बैठ गये भू पर जाकर।
एक पात्र में सारा भोजन, निज सन्मुख रक्खा लाकर।।
अन्य पात्र भोजन का हमने, रामा नंद का नंहि पाया।
तो हमने आवाज़ लगाई, वापिस उसको बुलवाया।।
क्या कारण है थाल आपने, अपना कोई नहीं पंरसा।
रामानंद मौन हो गये सुन, भेद न खोला अंदर का।।
मौन देखकर हमने उनको, प्रश्न दुबारा करडाला।
थोड़ी देर मौन रहकर फिर, उत्तर के लिये मुंह खोला।।
महाराज खाना तुम खाओ, मैं तो जीम न पाऊँगा।
मेरी एक प्रतिज्ञा है आमरण, अन्न नंहि खाऊँगा।।
जिस व्रत के सत्रह दिन पूरे, हो भी चुके हमारे आज।
हमने कहा आपने हम से, पहले क्यों नंहि खोला राज़।।
पहले हमें बता देते तुम, के हमको यह इल्लत है।
तो हम भूखे रह सकते थे, हम तो यह आदत है।।
सत्रह दिन के मरे हुवे से, भोजन कभी न बनवाते।
मुर्दे के खाने से तो, बेहतर था भूके रह जाते।।
मरे हुवों के हाथों का मैं, भोजन खाता नंहि फिरता।
मुझे पता नंहि था मुर्दे हो, तुमको ज़िंदा समझा था।।
शीघ्र उठालो जो कुछ परसा, है तुमने मेरे सन्मुख।

घृँणा युक्त हो करके मैंने, घुमा लिया थाली से मुख।।
हम कुछ कुछ बकते जाते थे, कहते जाते थे उससे।
ले जाओ भोजन वोजन ये, और कहें हम क्या तुझसे।।
हम मंदिर के भ्रम में आ गए, थे है के है देवस्थान।
पर अब हमको पता लगा, स्थान नहीं है, है शमशान।।
अपनी रूखी औ चुटियल सी, बातों को सुन रामानंद।
रहा देखता हत्यारा सा, अंतर में था बेहद द्वन्द।।
सोच रहा था क्या होवे अब, यदि यह चला गया भूका।
तो अनर्थ हो जावे बेढ़ब, उपजी उसके उर चिन्ता।।
गया अतिथि भूका द्वारे से, किसको मुँह दिखलाऊँगा।
पुण्यादिक तो जाँए भाड़ में, सीधा यमपुर जाऊँगा।।
अपनी बक बक ही सुनकर के, उसके मन को चोट लगी।
अर्थ लगा करके बातों का, उसने परशादी खाली।।
अपना पेट बोझ हमने भी, जीम लिया उसको लखकर।
और प्रतिज्ञा का कारण, पूछा उससे रोटी खाकर।।
पेट घड़ा सा दिखलाकर, बोला कारण यह है इसका।
तिल्ली से मजबूर हुआ हूँ, कारण बना प्रतिज्ञा का।।
पेट घड़ा सा लखकर के हम, लगे पूछने फिर उससे।
महाराज यह तो बतलाओ, तिल्ली हुई तुम्हें कैसे।।
कुछ सकुचा सी कर वे बोले, महाराज क्या बतलाऊँ।
कच्चा चिट्ठा है जीवन का, कैसे तुमको समझाऊँ।।
हम छाया सिद्धी कर बैठे, नदी तापती के जल में।
छाया को चेली करने की, इच्छा थी अपने मन में।।
बीता करती जल में अपनी, खड़े खड़े ही सारी रात।
काफ़ी दिन के बाद एक दिन, घटना घटी हमारे साथ।।
अंदर ही अंदर उस जल के, पैर लगे अपने बंधने।
बाँध लिया नींचे से ऊपर, तक हमको इक अजगर ने।।
सिद्धी तो सम्पूर्ण हुई पर, जकड़े गए अजगर द्वारा।
युक्ति मुक्ति की की पर उसने, हमें पाल पै दे मारा।।
क्या बीती अपने पर आगे, कौन उठा लाया हमको।
हम अचेत हो गए थे पूरे, ज्ञात नहीं आगे हमको।।
उसी रोज़ से तिल्ली का यह, रोग हमें आरम्भ हुआ।
बढ़ते बढ़ते पेट घड़ा सा, बढ़ा रोग अक्षम्य हुआ।।
सिद्धी करो चाहे जैसी संग, एक रोग तो आता है।
साथ साथ सिद्धी के वह भी, रोग रहे ही जाता है।।

लाभ नहीं सिद्धी का इतना, जितना रोग सताता है।
कष्ट सहन नंहि होता जिवड़ा, मरूँ मरूँ चिल्लाता है।।
इस कारण वश महाराज, मैंने मरना उत्तम जाना।
ब्रत आमरण इसी कारण था, तुमने मगर बुरा माना।।
आख़िर बुरा भला कहकर के, वह व्रत तुड़वा ही डाला।
दुख है ही यहाँ भाग में अपने, है आगे भी मुँह काला।।
छाया पुरूष सिद्ध करने से, थे पदार्थ सारे उपलब्ध।
मैं भगवन् पहचान लिया, करता हूँ पशु पक्षी के शब्द।।
पर जब स्वास्थ ठीक नहीं रहता, क्या करने उपलब्ध पदार्थ।
सिद्धी से तो ऐश करी जातीं, उसमें होता है स्वार्थ।।
मानव ठीक ठाक होने पर, ही तो व्यंजन खाता है।
खाने पीने और पहनने, का आनंद उठाता है।।
स्वास्थ अगर पल्ले नंहि उसके, तो सिद्धी का फिर क्या मोल।
उसको तो ऐसे जानो बस, जैसे एक ढोल की पोल।।
इतने में इक वैद्यराज भी, औषधि ले कुछ आ पहुँचा।
प्रणामदि उपरान्त वैद्य से, इस प्रकार हमने पूछा।।
वैद्यराज इनका इलाज क्या, आप लिये हैं हाथों में।
उसने हाँ कहकर स्वीकारा, औषधि थी ही हाथों में।।

दवा गोलियाँ मामूली सी, रहती हैं कुछ अपने पास।
उन ही से इनका इलाज, जारी कर रक्खा है महाराज।।
फिर क्यों ठीक नहीं होते ये, समझें भी यह क्यों है रोग।
कब से तुम इलाज करते हो, भोग रहे थे कब से भोग।।
भौंचक्का सा होकर बोला, वैद्य हमारे प्रश्नों पर।
कुछ सकुचाया सा हो करके, दिया हमें उसने उत्तर।।
झूँठ नहीं बोलूँगा तुमसे, यह मैं समझ नहीं पाया।
रोग हुवा उत्पन्न कहाँ से, किन कमियों ने जन्माया।।
यदि इतना तक जान न पाये, इसका जन्म कहाँ से है।
तो इलाज भी क्या करलोगे, यह तो बात व्रथा सी है।।
भाग गया वह वैद्य वहाँ से, अपनी शीशी लेकर के।
इस प्रकार की सुनके हमसे, देखा नंहि पीछे फिरके।।
रामानंद को दस्त बहुत, आया करते थे तिल्ली से।
मरण बरत था इसी लिये वह, तंग हुवा था दस्तों से।।
अपनी इस प्रकार की सुनकर, रामानंद ख़ामोश रहा।
शायद ये इलाज कर सकते, हैं उसको संतोष रहा।।
जाते हुवे वैद्य को रामा, नंद ने योंही नंहि रोका।

ये इलाज तिल्ली का शायद, कर सकते हैं यह सोचा।।
रामानंद सिद्ध तो थे ही, साथ साथ विद्वत्ता भी।
इल्म और अध्यन पूर्ण था, कमी नहीं थी कोई भी।।
जाने के पश्चात् वैद्य के, लगे पूछने निज परिचय।
महाराज यह तो बतलादो, आप कहाँ से आये हैं।।
जन्म भूमि है कहाँ आपकी, औ शरीर यह किसका है।
सुनकर प्रश्न शुरू हो गए हम, जो इक अपनी आदत है।।
ऊपर हाथ उठाकर हमने, अपनी डाँक शुरू करदी।
हम तो बड़ी दूर से चलकर, आये हैं यहाँ पंडित जी।।
चले आए दुख ग्रसित प्राँणियों, को लखकर इस दुनियाँ में।
सोचा चलो विचारों का, चल करके कुछ उद्धार करें।।
छुटकारा पा जाँए अगर इस, दुनियाँ से तो अच्छा है।
दुनियाँ यह कल्याँण प्राप्त, करले अपनी यह इच्छा है।।
इस प्रकार की डाँक छोड़दी, हमने अंधा धुंध अपनी।
सुनकर जब कुछ समझ न आया, घबराये रामा नंद जी।।
यह तो कोई सिड़ी है शायद, या पागल आ टकराया।
तंग करेगा हमें हमेशा, उसने हमको धमकाया।।
एक डाट देकरके उसने, हमको चुप करना चाहा।
बोला बस बकवास बंद कर, क्या यह अंड बंड गाया।।
हम उसकी सुन करके बोले, कुछ पहचान कौन हैं देख।
पर तेरी तो फूटी हुई हैं, दीख रहा है केवल भेष।।
तुम केवल मल के कीड़े हो, जीव सृष्टि हो मामूली।
तुम हरगिज़ पहचान न सकते, हो अंदर ख़ाली ख़ूली।।
जिसको ज्ञान स्वयं अपना नंहि, क्या जानेगा औरों को।
बात बड़ों की क्या जानो तुम, क्या जानो तिल तौरों को।।
जाने क्या क्या रहे भौंकते, हम अपनी उस रौ के साथ।
पर बेचारे रामानंद को, बात एक भी लगी न हाथ।।
पिंड किस तरह छूटे इससे, इतनी बात सोचता था।
आ लिपटा दीवाना कोई, कैसे छुटे खोजता था।।
कौतूहल तो था अवश्य यह, पागल विप्र भेष में क्यों।
रामा नंद तंग आकर के, इक दिन हमसे बोला यों।।
चले जाओ अब आप यहाँ से, करके कृपा हमारे पै।
हम ने भी विनम्र होकर के, उत्तर दिया इशारे पै।।
भाव उदय होने से पहले, चले गये होते महाराज।
आवश्यकता ही नंहि पड़ती, तुम्हें हमें कहने की आज।।

किन्तु आपकी आज्ञा का, अब हमें उलंघन करना है।
ठीक अवस्था न हो आपकी, तब तक यहीं ठहरना है।।
जब तक ठीक न हो पाओ तुम, या तुम चोला छोड़ न दो।
तब तक टाले नहीं टलेंगे, जब तक रिश्ता तोड़ न दें।।
या तो ठीक करेंगे तुम को, या चोला छुड़वायेंगे।
अगर टूटनी है तुड़वावें, जुड़नी है जुड़वाऐंगे।।
आप हमें मारें भी चाहे, हम सहर्ष सब सहलेंगे।
हालत नंहि है ठीक आपकी, कुछ कहलो सब झेलेंगे।।
थे जब तक हम अलग आपसे, चाहे तुम जीते मरते।
पर अब आन लगे हम तुमसे, छोड़ जाँए तुमको किसपै।।
इधर आपका जीवन दाता, वैद्य हमारी बातों पै।
भाग गया बोलो फिर कैसे, जा सकते हैं हम यहाँ से।।
अब उत्तर दायित्व आपका, निर्भर है केवल हमपर।
कार्य भार सेवा वेवा का, जाँए छोड़ कर अब किसपर।।
रामानंद हमारी बातों, पर कुछ था चिड़ा हुआ सा था।
पर अपनी यथार्थ बातों को, सुनकरके ख़ामोश हुआ।।
अब हमने दो चार रोज़ के, भीतर ही अपना श्रंगार।
कोइ किसी को कोइ किसी को, बाँट दिया सब आख़िरकार।।
वैसे थे निधि रूप वस्त्र वे, था प्रशाद गुरू हाथों का।
पर हमने जंजाल जानकर, सारा इक दम बाँट दिया।।
भूषण वही पुराना अपना, नग्न लंगोटी रक्खी एक।
रामा नंद चकित सा हो गया, जब देखा उसने ये भेष।।
लगा सोचने हो सकता है, स्वयं हमीं ग़लती पर हैं।
यह तो और मामला है कुछ, कोई उच्च महात्माँ है।।
रामानंद ढला स्तर से, झुकने लगा हमारी ओर।
हमने भी सत्संग आदि में, पकड़ा उसको पूरे तौर।।
जो भी विषय पकड़ लेते हम, खोल 2 पट रख देते।
अर्थ, अर्थ पै अर्थ, अर्थ का, अर्थ तुरंत कर रखदेते।।
जगह जौनसी का भी वर्णन, हम करने को लग जाते।
अंग अंग न्यारे न्यारे ज्यों, पुस्तक से हों बतलाते।।
दरवाज़े दालान खूंटिया, थमले, आले रोशनदान।
अलग अलग गिन गिन बतलाते, परमधाम का हर सामान।।
वार्ताओं का रस लेने लग, गया हमारी रामानंद।
फूट पड़ी श्रद्धा अपने में, फीके पड़े हृदय के द्वन्द।।
रामानंद संयमी था ही, साथ साथ साधक विद्वान।

पढ़ा, पढ़ा करता है जल्दी, पकड़ा करते जल्द महान।।
पल में पलटा खा जाता है, सार सामने जब आता।।
इल्म इल्म को सर करता है, उलझा हुआ सुलझ जाता।
पूर्व लक्ष से रामा नंद की, श्रद्धा ने खाया पलटा।।
आतम पक्षी रस का इच्छुक, मुड़ करके वापिस आया।
छोड़ छाड़ कर उन गलियों को, जिनका वह अनुयायी था।।
आकर के आकृष्ट हुई, अपने ऊपर उसकी श्रद्धा।
चलती रहीं ज्ञान चर्चाऐं, आतम होती गई विशुद्ध।।
जंग गया घुटता मानस का, मंजती चली गई दुर्बुद्ध।।
सिद्धी जो की थी छाया की, गई एकदम होती लुप्त।
भ्रम की शाखें गिरी धरन पर, कटी जड़ें जब उसकी गुप्त।।
पंद्रह दिन के अंदर अंदर, तिल्ली का तो अंत हुआ।
रामानंद की आखें खुलगईं, दुश्मन का जब अंत हुआ।।
प्रगति देखकर दिन प्रतिदिन की, कटे देखकर दुख से फंद।
जाँच लिया बच गया, नहीं, मरने का अब यह रामानंद।।
हमने कमली और कमण्डल, उठा लिये निज चलने को।
पहुँच गये रामानंद जी के, पास आज्ञा लेने को।।
कर प्रणाम उनसे हम बोले, हमने तुम्हें महात्माँ जी।
कष्ट बहुत पहुँचाया अब तक, सुख पहुँचाया नहीं कभी।।
हमने अपने ढीट पने का, पूरा परिचय दिया तुम्हें।
किया उलंघन आदेशों का, दुखी बहुत ही किया तुम्हें।।
तुम जैसे सिद्धात्माओं पर, निज व्यौहार उचित नंहि था।
आज उन्हीं उद्दण्डताओं पर, भगवन् करना हमें क्षमाँ।।
हम तो तुम्हें न भूल सकेंगे, याद रहेंगे प्रिय व्यौहार।
ऋण उऋण न हो पाऐंगे, लदा रहेगा हम पर भार।।
अच्छा अब प्रणाम लो अपनी, क्षमाँ, आज हम जाते हैं।
र्दुव्यौहारों पर माँफ़ी दो, भगवन् आज्ञा चाहते हैं।।
रहा खड़ा का खड़ा देखता, रामानंद हमारे को।
मुँह अवाक् सा रह गया उसका, लखकर गवन हमारे को।।
छलक उठा जल स्नेह नेत्र में, रूँधा कण्ठ उनका इकदम।
कुछ खिसियाऐ से सकुचाकर, बोले हमसे रामानंद।।
सच्च अगर पूछो तो भगवान्, शठता तो मैंने की है।
क्षमाँ आपसे मैं चाहूँगा, ठेस तुम्हें मैंने दी है।।
जब तक मैं व्यक्तित्व आपका, जान न पाया हे महाराज।
तब तक रहे अनादर करते, सिद्ध हुवा शठ मैं ही आज।।

वास्तवो में व्यक्ति हमीं हैं, क्षमाँ आपसे पाने की।
चोट लगी जब सुनी आपसे, भगवन् हमने जाने की।।
जीवन दान हमें जो देवे, यों ही सहज चला जावे।
है पाहन इन्सान नहीं वह, बिछुड़न कैसे सह पावे।।
आप चले गए अगर यहाँ से, असह होयगा यह आघात।
बड़ी आपकी कृपा होए यदि, मानें एक हमारी बात।।
वर्षा ऋतु तो यहीं बितादें, फिर चौमासे के उपरान्त।
साथ आपके घूँमूँ मैं भी, इस भारत के सारे प्राँत।।
महाराज यह अभिलाषा है, छोड़ूँ नहीं आपका साथ।
स्वीकारो तो बड़ी कृपा हो, भगवन् है यह अंतिम बात।।
अधिक आग्रह देखा जब, हमने रहना स्वीकार लिया।
रामानंद जी गदगद हो गए, की प्रणाम सत्कार दिया।।

जहाँ हों गुंण ग्राहक वहीं समझो अपना ठाम।
धोबी बसके क्या करे जहाँ नंगों का ग्राम।।

नियम पूर्वक वहाँ हमारा, फिर सत्संग आरम्भ हुआ।
लोगों का ऐकत्रित होना, शनः शनः प्रारम्भ हुआ।।
आने लगे बहुत मात्रा में, कमखेड़ी के प्रेमी लोग।
दिन प्रति दिन सत्संग में वृद्धी, निसदिन बंटते मोहन भोग।।
अपना भी अभ्यास बोलने, का हर रोज़ प्रगति पर था।
इक पटेल के हाथों में था, इन्तज़ाम उस मंदिर का।।
जो कमखेड़ी का सुयोग्य औ, व्यक्ति प्रतिष्ठित कहलाता।
उस मंदिर का पूर्ण रूप से, सब अधिकार उसी पर था।।
उसकी आज्ञा बिना महात्माँ, वहाँ नहीं टिक सकता था।
जिससे असंतुष्ट वो होता, तभी भगा भी देता था।।
उसका ग्रामीणों के कहने, पर आना आरम्भ हुआ।
किन्तु हमें गाढ़ी द्रष्टी से, आकर ताका करता था।।
एक रोज़ हम उस पटेल से, बोले आओ तुम्हें महाराज।
जो स्थान देखना चाहो, सैर करादें उसकी आज।।
ऊपर हाथ उठाकर बोले, बोलो नूर बाग़ दिखालाँए।
या श्री परधाम की यमुना, जी के तट की सैर कराँए।।
कितनी मस्त तरंगों में, मदमाती बहती रहती हैं।
मानों प्रीतम ख़ुश हों जिससे, चाल बदलती रहती हैं।।
वहाँ खड़ा था इक गाँझे का, पेड़ कहा वह दिखलाकर।

देखो छटा ज्ञान बल्ली की, झूंम रही हैं लहराकर।।
न्यारी ही शोभा है इसकी, देखो ज़रा निकट जाकर।
धन्य धन्य होगे पटेल जी, इसकी गंध आप पाकर।।
हमने एक पेड़ गाँझे का, बो रक्खा था आँगन में।
जो अंदर ही था मंदिर के, बक गये आनन फ़ानन में।।
हमने जो कुछ बका बकाया, सोचा उसने यह क्या स्वाँग।
बोल उठे इक दम पटेल जी, अपनी सुनकर ऊट पटाँग।।
वहाँ जुर्म समझा जाता है, पेड़ लगाना गाँझे का।
अगर लगा भी ले कोई तो, डर रहता था थाने का।।
हमने तो सब बाग़ बगीचे, परमधाम के देख लिये।
जहाँ जहाँ की सैर कराई, द्रश्य सभी कुछ देख लिये।।
थानेदार आएगा कल को, उसको भी दिखलादेना।
उसी बेग लहजे में बोले, क्यों नंहि साथ लिवालाना।।
भला उसे हम क्यों न दिखावें, जिसे चाहो तुम दिखवाना।
अन्य मित्र अफ़सर हो कोई, उसको भी लेते आना।
दिखलाना है काम हमारा, तुम पटेल मत घबराना।।
जिसको तुम दिखलाना चाहो, बेखटके संग ले आना।।
खिसिया गया हमारा उत्तर, पाकर के पटेल इकदम।
राह लगा उठकरके घर की, आगे एक न मारा दम।।
लेकर थानेदार साहब को, अगले दिन फिर आ पहुँचा।
गिरफ़्तार करवाने वाले, लहजे में आकर बोला।।
बाबा जी वे बाग़ बगीचे, कहाँ हैं अब फिर दिखलादो।
थानेदार साहब आये हैं, इन्हें भी दर्शन करवादो।।
हम भी बड़े हर्ष से उत्तर, देकर बोले आ जाओ।
इनको क्यों नंहि दिखलायेंगे, पहले इनको बिठलाओ।।
जो पग प्यादे, पैर उठाकर, दर्शन हित आ सकते हैं।
भला ये कैसे हो सकता है, वे वंचित रह सकते हैं।।
थानेदार साहब मुसलिम थे, हमने उन्हें देख करके।
कहा आप नज़दीक हमारे, कृप्या बैठो आकरके।।
बोलो किसकी सैर चाहते, हो, देखोगे क्या जबरूत।
या लाहूत देखने की ख्वाहिश है, या देखो हाहूत।।
नूरे तजल्ला देखोगे या, देखोंगे तुम नूर जमाल।
आवे ज़मज़म पीओगे या, न्हाओगे तुम क़ौसर ताल।।
अश्के जम जम चक्खोगे तुम, या घूमोगे कौसर ताल।।
मिलना अगर चाहते हो, मिलवादें तुम से अशराफ़ील।

या चाहो तो वहाँ ले चलें, जहाँ रहते हैं इजराईल।।
अच्छा ज़रा ग़ौर से देखो, वह है नूर बाग़ अपना।
अमर फलों की रविशों पर भी, ध्यान ज़रा देते रहना।।
वर्णन नहीं किया जा सकता, थानेदार साहब इनका।
पर पटेल जी की रहमत से, दर्शन कर रहे हो इनका।।
वह देखो बारीक नज़र से, रविश ज्ञान बल्ली की भी।
जिसका दर्शन बिना कृपा के, हो नंहि सकता तुम्हें कभी।।
उसी पेड़ की ओर इशारा, हमने अपना फेर लिया।
जो पटेल साहब को हमने, पहले दिन दिखलाया था।।
जिसको हमने अपने हाथों, मंदिर में था आरोपा।
उसी पेड़ को थानेदार, साहब को हमने दिखलाया।।
हम पहचान न पाये उसको, थानेदार वही है क्या।
जिसको हमने नदी पाँजरा, के मेले पर डपटा था।।
बाढ़ पीड़ितों को दिखलाकर, बोले थे औ थानेदार।
बतला इतनी जानें खपंगई, कौन बनेगा ज़िम्मेदार।।
वही दरोगा हो करके, तबदील मुड़ावद से आया।
उस ही को बहका बहका कर, वह पटेल यहाँ ले आया।।
हम पिछान नंहि पाये उसको, उसने हमको जाँच लिया।
यह फ़कीर वह ही है उसने, प्रथम नज़र में भाँप लिया।।
जुटे हुवे थे हम अपनी, बक बक में पूरे दर्जे से।
इकदम थानेदार बीच में, हमें रोक करके बोले।।
बस बस काफ़ी देख चुके अब, बाग़ बग़ीचे साँई जी।
हम बोले सारे थोड़े ही, दिखलायें हैं तुम्हें अभी।।
अभी हमारे परमधाम का, बड़ा अंग सब बाक़ी है।
थानेदार चरण पर झुककर, बोला अब यह काफ़ी है।।
हरिक पंद्रवे दिन दर्शन को, साँई साहब आऊँगा।
धीरे धीरे जो दिखलाओ, सभी देखता जाऊँगा।।
नज़र गुज़ारी दस रूपयों की, चलते समय दरोगा ने।
कहा ख़र्च से तंग मत रहना, और ज़रूरत हो देवें।।
हमने कहा दरोग़ा जी, क्या करें बताओ हम इनका।
हमें ज़रूरत ही नंहि पड़ती, बोझा क्यों लाधा धनका।।
उसने बोसा लिया क़दम का, हमने आशीर्वाद दिया।
देखा देखी उस पटेल ने, आज हमारा चरण लिया।।
विदा हुवे दोनों सज्जन, हमको नत्मस्तक हो करके।
श्रद्धा और बढ़ी सत्संगी, जन में उनको लखकरके।।

जब कि तापती अपने पूरे, जल स्तर पर आ जाती।
तो सत्संगी जन की टोली, तैर तैर कर बार जाती।।
लगा लगा छाती से तारन, ख़ुद तो वे आते ही थे।
पर कुछ खान पान आदिक भी, अपने संग में लाते थे।।
बंधे हमारे प्रेम पाश में, चसका ऐसा लगा उन्हें।
भरी तापती में को आते, भय न रहा जैसे उनमें।।
कभी हमें भी निज तारन पर, तैराकर ले जाते थे।
कभी किसी कै कभी किसी कै, भोजन आदि कराते थे।।
चतुरमास बीता जब सारा, तो चलने की ठहराई।
वह सत्संगी जंन की टोली, जाना सुनकर अकुलाई।।
उन सबने ले जाना चाहा, हमको अपने गांवों में।
विदा वहीं से देंगे तुमको, जंचा हमें यह भाओं में।।
कह भी उठा एक उनमें से, जाना जहाँ चाहोगे तुम।
वहीं छोड़कर के आवेंगे, गाड़ी में बिठला के हम।।
थीं दो पार्टियां गावों में, कलह आपसी के कास।
अलग थलग रहते थे सारे, वैमनस्यता के कारण।।
ऐडू नामक इक पटेल था, बड़ा व्यक्ति उस बस्ती का।
कभी न पहुँचा हम तक मिलने, वजह पार्टी बाजी का।।
उसे महात्माओं से नफ़रत, नहीं बल्कि मजबूरी थी।
दोंनो पार्टियाँ तकड़ी थीं, बल्के पूरी पूरी थीं।।
जाते ही गांवों में अपनी, खेंचा तान शुरू हो हुई।
अपने अपने घर ले जाना, चाहा ज़िद्द शुरू हो गई।।
बात एक की एक काटता, अपने घर ले जाने को।
हम बोले लखकर यह उनसे, झगड़े को निपटाने को।।
बस ऐडू पटेल ही के घर, ठहरेंगे हम अन्य नहीं।
बिना बुलाये ही जा पहुँचे, कहते ही यह बात तभी।।
दिया हृदय से स्वागत इकदम, जब उसने देखा हमको।
ग्रामीणों से उच्च कोटि का, आदर मान दिया हमको।।
बड़ा आदमी तो था ही वो, शिष्टाचार जानता था।
व्यक्ति अधिकतर उस बस्ती का, उसकी बात मानता था।।
किया हमें आंमत्रित उसने, आप जीम कर जायेंगे।
जब तक जीम न लोगे भगवन्, आप न जाने पायेंगे।।
एक दूसरे के घर अनबन, से कोई जाता नंहि था।
किन्तु आज अपने कारण, उनका आना आरम्भ हुवा।।
धीरे धीरे व्यक्ति बहुत, जा पहुँचे उनकी बैठक पर।

ऐडू ने सबको बिठलाया, आदर से आसन देकर।।
ऐडू ने हमसे बस्ती का, सारा झगड़ा बतलाया।
बैठ नहीं सकते हम मिलकर, किस्सा सारा समझाया।।
पार्टियों के चक्कर मिलकर, हमें बैठने नंहि देते।
क्या बतलाएें महाराज, मजबूर हैं हम इस कारन से।।
व्यक्ति गाँव के सब बैठे थे, उसने कहा सुना कर के।
वैमनस्यता सुनकर उनकी, बोले हम समझाकर के।।
ऐडू जी तुम बड़े व्यक्ति हो, देगी तुम्हें क्षमा शोभा।
सहन शीलता गहने पर कुछ, दर्जा ऊँचा ही होगा।।
छोटे तो उत्पात किया ही, करते हैं है स्वाभाविक।
परम्परा चलती आई है, इसी ढंग से प्रार्कतिक।।
बीती हुई कभी मत सोचो, जो सोचो बस आगे की।
किया आपने यदि ऐसा ही तो, कीर्ति आपकी जागेगी।।
अब तो जो कुछ हुवा बिसारो, भूल जाओ पिछला चिट्ठा।
अब तो जो आगे करना है, ध्यान करो केवल उसका।।
आप खिलाना चाह रहे हो, यदि भोजन हमको अपना।
तो जो कुछ हम तुम्हें बतावें, उस प्रकार करना होगा।।
सर्व सम्मिलित भोजन बनाओ, आप लोग मिल गांवों का।
पूरा गांव एक चूल्हे पर, आज यहाँ यदि जीमेगा।।
तब हम यहाँ जीम सकते हैं, वरना हमको जाने दो।
मार्ग हमारा कोइ न रोके, इस भोजन से क्षमां करो।।
सुन कर के ऐडू पटेल ने, अपनी तो स्वीकृति दे दी।
मैं तो बड़ा प्रसन्न हूँ इससे, बोले इक दम ऐडू जी।।
मंगवा कर पटेल ने दो सौ, रूपये ड़ाल दिये सन्मुख।
बोला यदि कम समझो इनको, तो मैं दूंगा और अधिक।।
श्रद्धा सहित भाइ सब पैसा, अपना ऐकत्रित कर लो।
बाक़ी देख दाख लूँगा मैं, लंगर को आरम्भ करो।।
अतः प्रीति भोजन आयोजन, प्रेम सहित सम्पन्न हुवा।
व्यक्ति हुवा प्रत्येक प्रफुल्लित, सब झगड़ों का अन्त हुवा।।
गले एक के इक मिल मिलके, स्वागत करते आपस में।
लेष रहा नंहि भेद भाव का, स्वाहा हुवा एक क्षण में।।
जीम जाम कर व्यक्ति गांव के, हमसे बोले हे महाराज।
जब से गांव बसा होगा यह, एक जगह बैठे हैं आज।।
कभी नहीं जीमें हम ऐसे, कभी न पाया यह आनन्द।
देखा सुना न हमने ऐसे, काट दिये सारों के फंद।।

सब प्रताप इन चरनों का है, अच्छी लीला दिखलाई।
क्षण पहले जो कठिन शत्रु थे, क्षण में बने भाइ भाई।।
काया पलट गई क्षण भर में, वातावरण बदल ड़ाला।
भली पिलाई भगवन् तुमने, ऐक मेकता की हाला।।
आज ग्राम के कंण कंण में, भर दिया आपने प्रेमानन्द।
कलह आपसी खोया ऐसा, मेटा भाई भाइ का द्वन्द।।
बीज फूट का सर्वनाश कर, के पल भर में दिखलाया।
अहो भाग्य हम ग्रामीणों के, चरण आपका अपनाया।।
अगले रोज़ छलकती अंखियों, से अभिवादन किया हमें।
सारा गांव गया सरहद तक, नज़र भेट भी दिया हमें।।
लेकर चले चार घोड़े, ताँगों में प्रेमी जन हमको।
सोंप दिया ले जाकर हमको, अगले गांवों वालों को।।
इस प्रकार अगले गांवों ने, अगले गाओं पहुँचाया।
उसने उससे आगे सोंपा, कई रोज़ यों चलवाया।।
चार रोज़ के बाद उन्हों से, क्षमां स्वयं हमने मांगी।
बड़े कठिन आग्रह पर उन सब, लोगों ने वह स्वीकारी।।
जब हम उन प्रेमी लोगों से, क्षमां मांग कर के निमटे।
रामानंद हमारे साथी, इस प्रकार हमसे बोले।।
बोलो किधर चलोगे भगवन्, हमने उत्तर दिया उन्हें।
जहाँ तुम्हारी इच्छा होवे, उसी ओर ले चलो हमें।।
हम पीछे हैं भाई आपके, हमको कुछ भी ख़बर नंहि।
हम तो बने बनाये पागल, हैं बाहर का पता नहीं।।
लक्ष्य न रहता कोइ हमारा, कहाँ चले सुध नंहि रहती।
उस ही की हाँ कर देते हैं, जो जिसने जैसे कहदी।।
आँख मिचे रहने से हरदम, दिखता भी थोड़ा ही है।
कोइ और ही मार्ग बताता, हुवा हमें तो चलता है।।
रामानंद सोच कर बोला, चलो चलें कलकत्ते को।
एक सेठ ने कलकत्ते में, बुलवाया भी है हमको।।
हमने झट से स्वीकृति दे दी, यात्रा का आरम्भ हुवा।
पांव पिया दे कलकत्ते की, जानिब रामानन्द हुवा।।
हम भी पीछे पीछे हो लिए, चले कई दिन इसी प्रकार।
कई रोज यात्रा करके, मुड़वारे पहुँचे आख़िरकार।।
पर वह जगह ठीक सी नंहि थी, साँई खेड़ी जा पहुँचे।
जहाँ तीन सौ वर्ष आयु के, एक महात्मा रहते थे।।
नाम केशवा नंद था उनका, परम हंस करके विख्यात।

नम्न रहा करते शरीर से, ऐसा था उनका अभ्यास।।
श्वेत पलक पड़ गये आखों के, बोली समझ न आती थी।
पर दर्शन को जनता उनके, बड़े भाव से जाती थी।।
बूढ़ा हो कोइ कितना ही, सबको लौंड़ा कहते थे।
बंदर का सा मुँह बन जाता, जब वे बोला करते थे।।
खलड़ी लटक गई थी चुड़कर, बैठे रहते अध लेटे।
स्वयं नहीं उठ सकते थे वे, और उठाते तब उठते।।
उन्हीं दिनों इक बड़े आदमी, की लड़की पहुँची उस ठौर।
तभी विलायत से आइ थी, मेमों के से थे ढंग डौर।।
परम हंस जी ने देखा जब, उस लड़की को खड़े हुवे।
देकर के संकेत हाथ का, यहाँ आओ यह कहा उसे।।
बैठी जब वह निकट आनकर, लगे फेरने सर पर हाथ।
उसके बाद बाँहों औ मुँह पर, जैसे कर रहे हो कुछ ज्ञात।।
अर्ध नग्न से फ़ैशन में थी, जगह जगह पौडर लाली।
देख रहे थे मेकप उसका, कितनी है फ़ैशन वाली।।
वह लड़की को तनिक न भाया, तभी भड़क कर खड़ी हुई।
कुछ कुछ कहती हुई वहाँ से, घर की जानिब दौड़ पड़ी।।
घर जाकर के उसने अपने, एक शिकायत सी कर दी।
भ्रष्ट आचरण हैं उन सबके, बना बना कुछ कुछ कह दी।।
योग्य नहीं हैं वे दरशन के, परमहंस जिनको कहते।
कान पिता के भरे पहुँच कर, बात कही सब रो रो के।।
बाप बहुत बिगड़ा सुन करके, बड़ा आदमी तो था ही।
परम हंस जी को आश्रम से, बाहर करवा दूँ सोची।।
वहीं कलक्टर का डेरा था, दौरे पर था वह उस वक्त।
उसने करी शिकायत जाकर, था अंग्रेज बहुत ही सख़्त।।
अडडा है गुण्ड़ों का यहाँ इक, आवश्यक है उठ जाना।
उल्टा सीधा भरा साहब को, साहब ने भी सच जाना।।
बोला वेल हम खुद देखेंगे, अतः आशरम पर पहुँचा।
परम हंस जी की गादी के, सन्मुख जाकर खड़ा हुवा।।
वर्ष तीन सौ के मानव पर, नजरें पहली बार पड़ीं।
साथ सेठ था उसने भी, द्रष्टी उन पर डाली गाढ़ी।।
ना प्रणाम ना वंदन कोई, देख रहा था खड़ा खड़ा।
जो सर पर था टोप साहब के, परमहंस ने मांग लिया।।
दिया साहब ने खुद उतार कर, परम हंस जी ने लेकर।
मूत दिया उसकी टोपी में, अपनी टाँगों में देकर।।

मूत मात कर दिया हाथ में, इक के लो सिर पर रख दो।
बड़े चकित थे लोग सभी ही, लख उनकी करतूतों को।।
थी तौहीन एक अफ़सर की, वह भी एक कलक्टर की।
जो छोटे अफ़सर थे संग में, उन सब की त्यौरी बदली।।
हाल सेठ का तो पूछो मत, दीखे उसको मन चीते।
बोला जिलाधीश से देखा, हम तुमसे जो कहते थे।।
अपनी आंखों देख लिया खुद, इनके डण्डे लगा लगा।
अभी भगाओ इस आश्रम से, यहाँ नहीं रहने देना।।
टोप हाथ में था जिसके अब, गया कलक्टर के वह पास।
और साथ ही बड़े अदब से, किया साहब के सर पर हाथ।।
फूल चमेली झड़े टोप से, ठीक कलक्टर के सर पर।
महक उठी इक साथ गंध वहा, वातावरण हो गया तर।।
मानो स्वागत किया साहब का, दात तले आइ अंगुली।
द्रश्य जिसे भी मिला दर्श को, वाह वाह मुँह से निकली।।
जीवित मरा सेठ तो जैसे, देखा साहब ने उसको।
डाट सेठ को पड़ीं फेर तो, इनको गुण्डा कहते हो।।
साबित है तुम खुद गुण्डे हो, औरों को बतलाते हो।
जो ज़ाहिर है साफ़ एक दम, तौहमत उन्हें लगाते हो।।
इन्हें कभी भी अगर कोइ, तकलीफ़ हुई तो तुम जानो।
बुरी तरह मैं पेश आऊंगा, इनको आप ख़ुदा मानो।।
परमहंस जी को सलाम कर, वापिस चला गया साहब।
घटी वहाँ यह ऐसी लीला, चकित हुवे सब ही बेढ़ब।।
परम हंस जी पर अति श्रद्धा, उसके बाद बनी सबकी।
न भी पूजता था जो उनको, उसको भी इच्छा उपजी।।

चमत्कार को देखकर, करती दुनी सलाम।
हो सन्मुख परमात्माँ, कोई नहीं पहचान।।

ठहर वहर के पास उन्हों के, कुछ दिन के पश्चात चले।
पैदल कभी कभी वाहन पर, तिरवैनी पहुँचे जाके।।
पार उतर कर के तिरवैनी, मीलों दूर चले गए हम।
एक महात्माँ की कुटिया को, लख कर बोले रामानंद।।
यहीं ठहर जाओ भगवन अब, टेक दिया कहकर सामान।
रात रात ही ठहरे हम उस, कुटिया पर बनकर मेहमान।।
थोड़े से समपर्क मात्र से, रामा नंद उस बाबा पर।

पूछो मत बस लड्डू हो गये, उसके एक इशारे यह।।
उसने पूछा तुम रेलों में, कैसे आते जाते हो।
बिन पैसे ही चलते हो या, पैसे भी भुगताते हो।।
रामा नंद बोल उट्ठा हम, तो बिन पैसे चलते हैं।
वह फकीर बोला इक दम से, कैसे आप महात्मा हैं।।
अपना खर्च चला पाओ क्या, ऐसा हुनर नहीं आता।
हमको देखो बड़े ठाट से, जाते जब मौका आता।।
क्या कंगले से बने घूमते, यह भी कोइ फ़कीरी है।
अरे फ़कीरी सच पूछो तो, सबसे बड़ी अमीरी है।।
रामानंद चकित सा होकर, लगा पूछने हे महाराज।
आप कहा से लाते हो धन, हमें भी बतला दो महाराजं।।
धन अपनी चुटकी में रहता, वह फकीर बोला हमसे।
कह तो गया मुझे जब देखा, तो फिर चुप्प हुवा झट से।।
रामानंद जानने का, इच्छुक था ऐसी बातों का।
धन चुटकी में इकदम इनके, ऐसे कहाँ से आ जाता।।
रामा नंद लगा सेवा करने, चुट कला बता दें ये।
हम से बोला युक्ति सीख ले, हर्ज कौन सा हैं इसमें।।
आवश्यकता पड़ने पर धन, कर तो लिया करेंगे प्राप्त।
हम बोले रामानंद से गुरू, की हालत तो देखे आप।।
दग्धा पड़ा है चमड़ा इसका, जली पड़ी है सारी खाल।
क्या अपना भी ओ रामा नंद, करवाना है ऐसा हाल।।
इससे बुरा हाल हावेगा, तेरा चाहे लिखवाले।
बिना लक्ष्मी के ही रह ले, लाँडा ही रह कर खाले।।
सावधान करवाया बहुत, रामानंद नहीं माना।
बात न अच्छी लगी हमारी, उत्तम समझा धन पाना।।
उसने अलग ओट में जाकर, रामानंद को बुलवाया।
ताँबे का सोना कर देते, है हम उसने जतलाया।।
फिर क्या था रामानंद जी की, बाँछे खिल गइ सुनते ही।
जुटे प्राप्त करने को नुक़ता, बाबा जी के साथ तभी।।
हमसे रामा नंद जी अक्सर, कहते रहते थे भगवन।
अब चिंता काहे की करनी, पल्ले होगा धन ही धन।।
अजी ठाट से चला करेंगे, धन जब पल्ले में होगा।
उच्च कोटि के लगें महात्माँ, क्यों कि भेष उत्तम होगा।।
होता है सर्वदा निरादर, ऐसी फटी अवस्था में।
अपनी गिनती हुवा करेगी, आगे सिद्ध महात्माँ में।।

हमने कहा सीखले भइया, पर आगे पछतायेगा।
बात हमारी याद रहे यह, कहीं नहीं रह पायेगा।।
पीछे भी तू सिद्ध बना था, व्रत आमरण तक पहुँचा।
अब धन की इच्छा जागी है, जा जिंदा नंहि रहने का।।
जब भी कभी देखता हमको, वह बाबा कटु द्रष्टी से।
जैसे कुछ बिगाड़ रहे हों हम, लखता था हमको ऐसे।।
जब रहस्य की बातें करनी, होती थी रामा नंद से।
कह उठता हमसे ओ फक्कड, भिक्षा लाओ जाकरके।।
रोका रामानंद ने उसको, भिक्षा को हम जायेंगे।
हम इनसे भिक्षा विक्षा का, काम नहीं करवायेंगे।।
रामानंद को अलग बुलाया, हमने कुछ समझाने को।
भिक्षा कभी करी तो थी नंहि, पर रोको मत जाने को।।
आज देख लें यह भी करके, अपनी बात बिगाड़ो मत।
जो कुछ सीख सकते हो, सीखो हमको रोको मत।।
हमने इक पगडण्डी पकड़ी, एक गांव में जा पहुँचे।
पहले तो सारी नगरी के, हमने चक्कर धर काटे।।
फिरे घूमते पूर्ण गांव में, खोज रहे थे हम लकड़ी।
इक बढ़ई के घर पर आखिर, हमको लकड़ी नज़र पड़ी।।
खड़े हुवे चुप चाप वहाँ हम, खाती ने हमको देखा।
महाराज जी क्या इच्छा है, बतलाओ हमसे बोला।।
हमने कहा भाइ लकड़ी की, हमको आवश्यकता है।
आप छाँट लो खुद इसमें से, जैसी तुमको इच्छा है।।
हमने दो लकड़ी चट्टे से, बाहर रख ली ला कर के।
उस बढ़ई ने इक लड़के को, फ़ौरन कहा बुला करके।।
जाओ महात्माँ जी की लकड़ी, धूने पर रख कर आओ।
महाराज जी इस लड़के को, साथ लिवा कर ले जाओ।।
हमने एक टोकरा उपलों, का भी उससे माँग लिया।
उसने कहते ही अंदर से, लाकर हमको पेश किया।।
दो लड़के सामान उठाकर, पहुँचे जिसदम धूने पर।
तो वह साधू लगा देखने, हमको विस्मित सा होकर।।
क्यों कि स्वयं भिक्षा करके जब, लाता था साधू लकड़ी।
तो सारी की सारी लकड़ी, खुद के सर पर होती थी।।
अगले दिन रामा नंद से वह, साधू इस प्रकार बोला।
सोना बनवाना है तो, तांबा लाकर देना होगा।।
रामा नंद के पास अचवनी, थी सो उसने पकड़ा दी।

बोला गोपी ताल चलो, क्यों के वहाँ बूटी मिल जाती।।
वहाँ काम नंहि बना तो कस्बे, पहुँचे तांबा गलवाने।
लेकिन स्र्वणकार चोरी, छिप्पे बनने पर नंहि माने।।
बोले अगर की मिया अपने, सन्मुख आप बनाओगे।
तब तो हम भी लगें साथ में, ताम्बा तभी गलायेंगे।।
वे चोरी चोरी करते थे, अतः लौट आये वापिस।
कई रोज गुरू चेले दोंनों, ने आपस में की फुसफुस।।
रामानंद को हर प्रकार से, फ़ांस लिया निज फंदे में।
उसकी बुद्धी लगी रहा, करती थी उस ही धंधे में।।
धर्म कर्म काफूर हुवे सब, सोते स्वर्ण जागते स्वर्ण।
स्वर्ण बने जैसे भी हो चाहे, शेष रहा बस यह ही धर्म।।
ऐसे मुग्ध हुवे रामानंद, जले भूने से साधू पर।
लाड़ों में आकर पकड़ा दी, कमली साफा औ चादर।।
एक रोज देखा तो साधू, आसन से गायब पाये।
सोता हुवा छोड़ गये सबको, ढूंड़ा खोज नहीं पाये।।
हमने कहा कहो रामा नन्द, गुरू तो छोड़ गये मजधार।
अब जीवन यापन कैसे, होवेगा है कोई उपचार।।
रामानंद सर धुनता रह गया, शब्द न निकला मुँह से एक।
सांप निकल गया अपने रस्ते, रहा पीटता उसकी रेख।।

पूछो मत बस क्या हुवा, रामानंद का हाल।
अपने वस्त्रों का उसे, आया बड़ा मलाल।।

विदा हुवे हम उस स्थल से, मिरजा पुर में जा पहुँचे।
कर कुछ दिन विश्राम वहाँ पर, बैज नाथ जी जा पहुँचे।।
तपो भूमि थी चार मील पर, जो विरक्तता उपजाती।
मन विशुद्ध होता था उसमें, लीन आत्माँ हो जाती।।
वहीं पहुँच कर ठहरे कुछ दिन, बस घटी नंहि कोइ विशेष।
आख़िरकार एक दिन वह भी, छोड़ा हमने पुण्य प्रदेश।।
देव गिरी नामक इक साधू, हमें मार्ग में ओर मिला।
वह भी प्रेम पगी प्रतिमाँ थी, विचर रहा था वह इकला।।
चलते चलते तीर नरवदा, हम तीनों जन आ पहुँचे।
नामक खेड़ी घाट आश्रम, था एक उसमें जा पहुँचे।।
एक भयानक जंगल लगता, था आश्रम के चारों ओर।
जीव जंतु अनगिन रहते थे, उसमें जिनका ओर न छोर।।

स्वामी चंद्र शेखरा नंद जी, महाराज उस आश्रम के।
व्यक्ति जगत में परमहंस, करके वे माने जाते थे।।
रहते थे विदेह स्वामी जी, यदा कदा दिख भी जाते।
चरण पादुकाओं की आहट, सब सुनते जब वे आते।।
उनका पेट घड़ा सा लटका, रहता था जंघा के मध्य।
प्रतिमा थी प्रभाव शाली अति, हर प्रकार से थी समृद्ध।।
उनकी प्रभा चर्तुदिश बिखरी, सी पाई जाती सर्वत्र।
परम हंस जी का यश उज्वल, गाते रहते उनके भक्त।।
महा पुरूष का बास जंचा, करता था हर दम आश्रम में।
उन्हीं दिनों ठहरे हुऐ थे इक, बान–प्रस्थी आश्रम में।।

शंकर राव नाम था उनका, उनका लड़का भी था साथ।
था जवान पट्ठा आयू में, नामक ओंकारेश्वर नाँथ।।
माई जो थीं साथ बड़ी, पति भक्ता थीं अपने पति की।
सर्व प्रथम गुरू, माता ही, मानी जाती हैं संतति की।।
सती साध्वी माता थीं सुत, भी था अति आज्ञाकारी।
पत्नी शंकर राव बड़ी, श्रद्धालू ढंग की थी नारी।।
ठहरे जाकर ठीक बराबर, ही उनके हम जा करके।
जब हम लगे बनाने भोजन, तो वह बोली आ करके।।
आप कष्ट क्यों करते हो, भोजन तो हमीं बना देंगे।
जिस प्रकार का चाहोगे, महाराज बनाकर लादेंगे।।
अपना नित्य बनाती ही हूँ, तुम लोगों का और सही।
उसने अपनी एक न मानी, बहुत उसे इन्कार करी।।
सीदा मिल जाता आश्रम से, भोजन सती बनाती थी।
बड़े शुद्ध भावों से हमको, भोजन बना खिलाती थी।।
बाहर और भीतर दोंनों ही, पावन थे उस देवी के।
लक्षण सारे विद्यमान थे, जो होते प्रभु प्रेमी के।।
जो जैसा होता है उसके, वैसे ही सब लगते हैं।
कव्वे भी हंसों को अपने, से बदतर ही गिनते हैं।।
कभी भँवर में भ्रम भी अपने, मानव को लेता है खेंच।
भ्रम वश सीधी दीवारों में, लगने लग जाते है रेंच।।
आखें चुँधिया भी जाती हैं, बहु प्रकाश में चमड़े की।
तब खुलती हैं, जब जूती, पड़ती हैं सर पर चमड़े की।।
एक रोज़ भोजन बनवाकर, सारे जीम रहे थे हम।
थी तल्लीन जिमाने में वह, देवी हम सब को भोजन।।
शंकर राव कहीं बाहर से, तभी आश्रम में आया।

उसने अपनी धर्मपत्नि को, सब की सेवा में पाया।।
तो झुँझला गया देखकर, अंदर जा बैठा चुपचाप।
भोजन आदि परस कर हमको, देवी पहुँची उसके पास।।
नम्र भाव में बोली पति से, आओ आप भी खालेओ।
तो वह रूखेपन से बोला, उनही लोगों को दे ओ।।
सेवा करो महात्माओं की, जाओ जीमाओ उन ही को।
हम को भूक नहीं है भागो, जाओ खिलाओ उन ही को।।
पाकर इक असभ्य सा उत्तर, वो बेचारी लौट पड़ी।
किन्तु क्षणिक उपरांत बात के, देवी फिर समीप पहुँची।।
आग्रह किया पुनः खाने का, पर उत्तर तीक्षण पाया।
उस देवी के ऊपर शंकर, राव क्रुद्ध हो गर्माया।।
जाओ करो सेवा उन ही की, उन ही से रक्खो मतलब।
उन ही की होकर अब रहना, ख़बरदार यहां आई अब।।
वह साध्वी अवाक् सी रहगई, सुन करके पति का आरोप।
फिर देवी इक शब्द न बोली, जाग उठा उसमें भी रोष।।
उसने ओंकारेश्वर को तो, खिला दिया खाना लाकर।
किन्तु स्वयं किनका नंहि जीमीं, लगी भजन करने जाकर।।
झाँझ उठाली उसने जाकर, रटने लगी प्रभू का नाम।
ज़ोर ज़ोर से लगी कीर्तन, करने ले ले प्रभु का नाम।।
शंकर राव क्रुद्ध तो था ही, भूत चढ़ा था सर उसके।
उसी दशा में उस देवी को, लगा मारने जाकर के।।
अन कहनी कह डालीं अन गिन, चढ़ा मूढ़ को क्रोधावेष।
लगा मारने बे दर्दी से, खेंचे फिरा पकड़ कर केश।।
मन में और लिये बैठी है, हमें भक्ति दिखलाती है।
राम नाम की ओट कल मुँही, पाप छिपाना चाहती है।।
खेंचे फिरा पकड़ कर चुटिया, झाँझ फेंकदी हाथों से।
बे दर्दी से करी पिटाई, उसने घूँसे लातों से।।
सुनकर शोर आश्रम वासी, भागे उसे छुड़ाने को।
जिसने सुना मारना उसका, भागा तुरंत बचाने को।।
ओंकारेश्वर भी आ पहुँचा, सुनकर मार पीट माँ की।
सभी इकट्ठे होगए जाकर, जितने थे आश्रम वासी।।
शंकर राव पुत्र से बोला, ओंकारेश इधर आओ।
हमें हमारे रूपये और, हमारा बिस्तर दे जाओ।।
तुम अपनी जनिब से मर गए, हम मर गए तुम लोगों से।
कहीं जहन्नुम में जाओ तुम, हमें नहीं मतलब तुमसे।।

बोला ओंकारेश पिता जी, वह तो एक धरोहर है।
उसे आप जब चाहें ले लें, उसमें हमें उज़र कब है।।
आधा, पौना, पूरा, जितना, चाहो लो, इन्कार नहीं।
वह धन पैदा किया आपने, अपना कुछ अधिकार नहीं।।
लेकिन परिस्तिथी को सोचो, रूक जाऐं जाने से आप।
अनुचित उचित सभी आती हैं, सह लेंगे घर में चुप चाप।।
हमें छोड़कर चले गये यदि, तो हमपर क्या बीतेगी।
दुनियाँ जानें क्या क्या कहकर, हम लोगों पर थूकेगी।।
शंकर राव क्रोध के वश था, रोका किन्तु नहीं माना।
जिसने भी समझाया उसको, उसने जाना ही ठाना।।
ज़िद्द पिता की बेहद लखकर, बिस्तर रूपये ले आया।
जितना रूपया पास अमानत, सारा लाकर पकड़ाया।।
शंकर राव सती साध्वी, पतनी को रोती छोड़ गये।
सर ऐसा चाण्ड़ाल चढ़ा, बे सोचे रिश्ता तोड़ गये।।
परम हंस स्वर्गीय आठ दिन, पूर्व स्वप्न में आये थे।
शंकर राव उन्होंने अपने, वचनों से समझाऐ थे।।
थे स्वर्गीय किन्तु सूक्षम बपु, से स्वामी जी रहते थे।
औ विदेह होकर निज आश्रम, में वे विचरा करते थे।।
आठ रोज़ पहले घटना से, शंकर राव सचेत किया।
परम हंस जी ने सपने में, उनको यह आदेश दिया।।
भजन करो निर्द्वन्द आप, मैं तुमसे दूर नहीं रहता।
अपने पास समझ़ना मुझको, कोई चिंता मत करना।।
पुत्र तुम्हारा ओंकारेश्वर, बड़ा योग्य बन जायेगा।
एक रो़ज़ यह बड़ा महात्मा, बन कर यश फैलायेगा।।
सिर्फ़ एक सप्ताह बाद ही, शंकर राव विचल बैठा।
सर भूत कहाँ से जाने, उनके आकर चढ़ बैठा।।
मार कूट कर भ्रम वश अपनी, पतनी को भी छोड़ भगा।
भ्रम में परख न पाया पागल, कौन शत्रु है कौन सगा।।
अस्ताचल के निकट सूर्य था, शंकर राव चला जिस वक्त।
डेढ़ मील पर स्टेशन था, मार्ग भंय कर था औ सख्त।।
बड़ा सघन वन स्टेशन तक, दिन तक में मिल जाते शेर।
दिन के छिपा छिपी मत पूछो, क्या बीते जब हो अंधेर।।
शंकर राव मध्य स्टेशन, के जब पहुँचा घबराया।
क्यों कि अचानक पीछे से, उनको इक ऐसा शब्दाया।।
ठैर कौन जाता है भागा, शंकर राव मुड़ा पीछे।

देखा तो कोई भी नंहिं था, कहने वाले नंहि दीखे।।
इतने में कुछ पड़ा खट्ट से, उसके सर पै आकर के।
शंकार राव खट्ट होते ही, पड़ा धरन में जाकर के।।
पुनः शब्द आया क्यों रे ओ, तुझ को होश नहीं आया।
अभी एक सप्ताह न बीता, सपने में था समझाया।।
हर प्रकार संतुष्ट किया था, तुझे चेत कराया मूर्ख।
भक्त बनेगा तेरा लड़का, इतना तक समझाया धूर्त।।
अंग लगी नंहि तेरे लेकिन, बाज़ नहीं आया कमबख़्त।
शब्द खत्म होते ही इकदम, हुई खोपड़ी पर फिर खट्ट।।
पड़ने लगीं खटाखट फिर तो, जो करवट आती आगे।
बिस्तर फेंक भूमि पर शंकर, फिरे वहाँ भागे भागे।।
कभी कमर पर कभी खोपड़ी, कभी चूतड़ों पर आती।
दिखता न था मारने वाला, पर खंड़ाम बजती जाती।।
चला जायगा क्या तू लाँछन, देके एक महात्माँ को।
खाल खेंच लूँगा मैं तेरी, दिया दाग़ पुण्यात्माँ को।।
चलो क्षमाँ मांगो चल करके, वापिस लौटो आश्रम को।
जब तक क्षमाँ न माँगो उनसे, छोडूँगा नंहि मैं तुमको।।
चीख़ रहा था पड़ा भूमि पर, शंकर राव चोट खाया।
चलो एक दम वापिस आश्रम, कड़कदार फिर शब्दाया।।
साथ साथ ही लात कमर में, लगी जोर से शंकर के।
शंकर राव तभी आश्रम को, मुडें बिस्तरा ले करके।।
इधर पत्नि का हाल बुरा था, रो रो टेर रही पति को।
पेट पीटती आपा धुनती, देख देख निज अवगति को।।
इतने बुरे लाँछन को लख, निज साथी बोले हमसे।
महाराज जी उचित यही है, चुपके से चल दो यहाँ से।।
हमने कहा अरे दुर्बद्धो, दाग़ कहाँ ले जायेंगे।
जिसने भेंट किया यह हमको, उसे सोंप कर जायेंगे।।
इतने में वह माइ हमारे, पास आइ रोती धोती।
अश्रु पूंछकर चरण लिये, और इस प्रकार आकर बोली।।
देख रहे हो आप हमारी, हालत क्या निज बीत रही।
फिर भी आप नहीं कुछ करते, कसर कौन सी शेष रही।।
आठ रोज ही पहले आके, परम हंस जी ने उनको।
चेत कराया था सपने में, निष्कंटक हो भजन करो।।
हमें दूर मत समझो खुद से, पास हमें समझो अपने।
पर क्या पत्थर पड़े अक़ल पर, समझाया आश्रम भरने।।

चले गये तजकर हम सबको, भ्रम ने ऐसा भ्रमित किया।
जो अपने थे जनम जनम के, अपने हाथों दाग़ दिया।।
करें भरोसा अब हम किसका, तुम ही बतलाओ महाराज।
अपने भी बन गये पराये, कोइ न दिखता अपना आज।।
हमने दुख़ी देकर उसको, कहा शान्त अब हो जाओ।
दुनियाँ स्वयं तमाशा है इक, जो गुज़रे देखे जाओ।।
परम हंस ने चेत कराया, तब तो यह परिणाम हुवा।
श्रद्धा शून्य व्यक्ति के संग में, तुम्हीं कहो क्या जाए किया।।
अगर आपका कथन ठीक है, चेत कराया था उसको।
तो देवी तुम घबराओ मत, भेजें परम हंस जी को।।
अभी आए जाते हैं तेरे, पति देवी घबराओ नहीं।
भजन किये जाओ प्रीतम का, बैठी बैठी आप यहीं।।
एक घड़ी पीछे देखा, बिस्तर है उसके कंधे पर।
एक शराबी सी हालत में, चले आ रहे हैं अंदर।।
डाँवा डोल अवस्था में है, गति है उसकी बे ढंगी।
मार मार कर जैसे उसको, बना दिया होवे भंगी।।
परम हंस जी की समाधि के, जब सन्मुख हुवे शंकरराव।
ऐसा पटका परम हंस ने, जैसे पहलवान ने दांव।।
शब्द हुवा इक दम धड़ाम से, निकली बड़े जोर की चींख़।
देखा जब सबने जाकर के, पड़ा हुवा था आँखें मींच।।
लड़का और पत्नि हम सब जन, पहुँचे उसे देखते ही।
पर अचेत पाया वह हमको, उठा लिया झट जाते ही।।
जंघा पर सर रखकर उसकी, पतनी बैठ गई उसका।
होश जल्द हो जावे जिससे, करने लगे हवा ववा।।
थोड़ी देर बाद उसको कुछ, होश आना आरम्भ हुवा।
आँख फाड़कर इधर उधर को, उसने लखना शुरू किया।।
तो पतनी बोली प्रीतम से, हमें आज यों लगता है।
परम हंस जी के दर्शन, तुमको हो गए यह जंचता है।।
शंकर राव शब्द सुन करके, बोला धीमे से स्वर में।
दर्शन कैसे बल्कि कहो यों, मार लगाई है हममें।।
लड़के को पुकार कर बोला, ओंकारेश कहाँ हो तुम।
लड़का बोला अजी पिताजी, सन्मुख ही हूँ करो हुकुम।।
बेटा अगर पैर में जूता, हो तो मेरे आकर मार।
इसी योग्य है बाप तुम्हारा, मारो इसको बे अख़्तयार।।
हुकुम समझ या इसको सेवा, बेटा बड़ा नींच हूँ मैं।

बड़ी हानि पहुँची है मुझसे, तुम लोगों की इज्ज़त में।।
लगा देखने पैर पतनी के, तेरे पै यदि जूता हो।
तो तू ही किरपा कर इतनी, मेरे इस सर में मारो।।
मेरे जैसा अधम नींच, पाखण्डी अन्य नहीं होगा।
जितना काम किया नींचा, उतना भुगतान नहीं होगा।।
पश्चात्ताप रहा करता वह, घण्टों बैठा इसी प्रकार।
मुश्किल से उठकर आने को, हुवा वहाँ से वह तय्यार।।
जो कालिख सौगात मिली थी, जब उसने वापिस ले ली।
और किये कर्मों पर अपने, माफ़ी वाफ़ी जब ले ली।।
देव गिरी रामानंद से हम, बोले अब हो लो तय्यार।
अब अपनी पगडण्डी पकड़ो, मंजिल पर हो लो असवार।।
झोली कम्बल उठा वहाँ से, फिर हमने प्रस्थान किया।
दरभंगा की ओर चलेंगे, हमने मन में ठान लिया।।
शुक्र गुजार बहुत सदगुरू के, करी कृपा हम पर।
इज्ज़त से चल दिये वहां से, निज झोली लेकर।।
चले लाँघते पर्वत जंगल, नदी नर्बदा की घाटी।
कुछ दिन चल कर ओंकारेश्वर, की हमने मंजिल काटी।।
ओंकारेश्वर महादेव जहाँ, राज्य वहाँ मीलों का था।
रामानंद लगा कहने, ठहरेंगे हम बोलें, अच्छा।।
स्वर्ण पत्र था ओंकारेश्वर, महा देव पर चढ़ा हुवा।
ख़ैर उसी मंदिर पर अपना, हमने आसन लगा लिया।।
अगले दिन रामा नंद बोला, चलो किला देखेंगे आज।
भील राज करते है यहाँ पर, चलो देख आवे महाराज।।
हमने कहा क़िले का क्या, देखें देखो तो राजा को।
जिसके दर्शन वर्शन से कुछ, हासिल होवे अपने को।।
पत्थर से सर मारे से तो, कुछ भी प्राप्त न होवेगा।
चेतन सत्ता के दर्शन से, ही कुछ हासिल होवेगा।।
परमात्माँ की इक विशेष, शक्ती होती राजा में व्याप्त।
एक पंथ दो काज सेरंगे, दर्शन हों ओ हो कुछ प्राप्त।।
ठीक लगी रामानंद को यह, महाराज जी ठीक कहा।
वही किला भी होगा उसका, राजा भी उसमें होगा।।
फिर क्या था रामानंद हमको, जुटा नीति बतलाने को।
राजा से इस तरह मिलेंगे, युक्ति चला समझाने को।।
कभी बताता पत्र लिखो इक, द्वार पाल को देवेंगे।
द्वार पाल राजा को देगा, इस प्रकार मिल लेवेंगे।।

कभी बताता द्वार पाल की, कृपा अगर हमपै होवे।
दर्शन तभी सुलभ होवेंगे, राजा से मिलना होवे।।
सुनते रहे युक्तियाँ उनकी, अपना दिल तो था निर्भीक।
हमें कोइ भी युक्ती उसकी, अपने मन को लगी न ठीक।।
राजा शब्द हमारे मन को, कुछ महत्व नहीं देता था।
बल्कि एक साधारण सा ही, शब्द हमें वह लगता था।।
हम बोले रामा नंद जी से, आप व्रथा घबराते हैं।
साथ हमारे चलकर देखो, कैसे तुम्हें मिलाते हैं।।
राज महल के मुख्य द्वार पर, जब अपना जमघट पहुँचा।
तो हमको इक द्वार पाल ने, देखा औ आकर रोका।।
आप कहाँ जाते हो आगे, उसने हमसे प्रश्न किया।
हम बोले राजा से मिलने, उत्तर यह बेख़ौफ़ दिया।।
बोला पीछे हटो यहाँ से, राजा यहाँ नहीं रहता।
चला हमारी ओर वचन वो, इस प्रकार हमको कहता।।
हम बोले क्या गद्दी यहाँ की, सूनी पड़ी हुई है भाइ।
अपनी बातें सुनकर उसकी, आँखों में सुरखी सी आइ।।
कहीं गद्दियाँ सूनी रहती, हैं उसने हमको डपटा।
उसपर हैं युवराज आज कल, इतना कहकर चुप्प हुआ।।
हम रामानंद की जानिब को, मुंह करके उससे बोले।
राजा तो यह नहीं बताते, राज कुँवर हैं गद्दी पर।।
बात चीत तो क्या होंगी, पर चलो उन्हीं के पास चलो।
राजा आगर नहीं हैं तो फिर, राज कुँवर ही से मिल लो।।
हम चलने को जिसदम सारे, अंदर को तय्यार हुवे।
जान गया वह द्वारपाल कि, ये रोके नंहि रूकने के।।
बोला देखो वे तलवारें, लटक रही हैं राजा की।
दर्शन उनके करजाओ अब, समझो उनको राजा ही।।
हमने उसकी बातें सुनकर, बड़े ज़ोर का व्यंग कसा।
कैसी बातें करते हो तुम, दर्शन करलें लोहे का।।
क्या हम दर्शन करते फिरते, हैं लोहे का ओ दरबान।
राजा को तू क्या समझे है, चमड़े का ही है इन्सान।।
केवल तेरे समझे से क्या, परमात्माँ बन जायेगा।
या हमसे परमात्माँ करके, राजा को पुजवायेगा।।
नाम बड़े और दरशन छोटे, बड़े बोल तो मत बोलो।
बातें करो होश की हमसे, अमृत में विष मत घोलो।।
क्या तलवारें तेरे राजा, ही ने रक्खी हैं जग में।

तू शायद यह समझ रहा है, कभी राजा नंहि मिला हमें।।
ज़ोर ज़ोर से जब मैं बोला, ढला सिपाही स्तर से।
डाक छुटी देखी जब अपनी, तो नवकर बोला हमसे।।
ग़लती हुई हमारे से प्रभु, अब कृप्या ख़ामोश रहो।
दर्शन अभी मिलेंगे उनके, कृप्या थोड़े खड़े रहो।।
राज कुँवर स्नान आदि से निब्रत होकर आऐंगे।
एक महल से निकलेंगे, और दूजे में को जायेंगे।।
आप तभी दर्शन कर लेना, हम बोले यदि ऐसा है।
हमें यहाँ से दर्शन करवा, ने की तेरी इच्छा है।।
तो हमको सूचित कर देना, पाँच मिनट पहले उनसे।
अच्छा कहकर चला गया वो, पहरे पर दरवाज़े के।।
होकर के बेफ़िक्र बैठ गए, हम अपने स्थानों पर।
सूचित कर ही देगा अब यह, हमें भरोस हुआ उसपर।।
जल्दी जल्दी धीमे स्वर में, द्वारपाल बोला पश्चात्।
अरे खड़े हो अरे खड़े हो, कहने लगा हमें इस भांत।।
हम उसका मुँह तकते रह गए, जाने अब क्या बकता है।
जानें किस कारण वश हमको, खड़ा यहाँ से करता है।।
राज कुँवर जिसद्वारे से, बाहर को अने वाला था।
हम लोगों का लक्ष एक दम, द्वार पाल की ओर हुआ।।
इतने में युवराज निकलकर, जा भी चुके अन्य घर में।
द्वार पाल अब क्या कहता है, हम थे इसी प्रतीक्षा में।।
राज कुँवर के अंदर जाते ही, वह द्वार पाल अपने।
सिर हो गया हमारे आकर, लगा हमें कुछ कुछ बकने।।
तुमने किया निरादर अपने, श्री युवराज बहादुर का।
उसने आपे से बाहर हो, करके हम सबको घुड़का।।
क्यों नंहि खड़े हुवे तुम अपने, संकेतों पर उत्तर दो।
जल्द खड़े हो जाओ सब, क्या कहा नहीं हमने तुमको।।
जान बूझकर राज कुँवर का, तुम सबने अपमान किया।
बिला वजह ही अपने सर पर, चढ़ा वो, हमने जान लिया।।
इसे पड़ेगा हमें रोकना, अपनी बकता जाता है।
हमें जानकर के भिखमंगे, सर पर चढ़ता चाहता है।।
हम बोले ख़ामोश रहो अब, कहा था सूचित कर देना।
पाँच मिनिट पहले आने से, सावधान हमें कर देना।।
तुमने हमें बताया क्यों नंहि, पहले इसका उत्तर दो।
आदर करते या कि निरादर, कम से कम अजमाता तो।।

किन्तु जानकर तेंने अपने, साथ ध्रस्टता की है ये।
और हमीं को दोषी ठहरा, कर करता है अबे तबे।।
रामा नंद चलो इस पागल, के मुँह हरगिज मत लगना।
जिस राजा के द्वारपाल, ऐसे हों उससे नंहि मिलना।।
हमने बेअदबी की है, इस पागल के राजा के साथ।
हम बाहर को चले ज़ोर से, कहकर उसको ऐसी बात।।
राज महल से जाकर बाहर, हम इक पत्थर पर बैठे।
द्वार पाल द्वारे पै हमने, छोड़ दिये ऐंठे ऐंठे।।
राज कुँवर ने भी सुन ली थीं, अपनी द्वार पाल की बात।
अतः महल में राजकुँवर ने, बुलवाये वे हाथों हाथ।।
किस आज्ञा से डाट रहा था, महात्माओं को द्वारे पर।
चाह रहा क्या धूल उछल, वाना कमबख़्त हमारे पर।।
जब बाहर आये हम तेंने, कैसे कहा खड़े हो जाओ।
किस कारण अपमान हुआ, हम लोगों का हमसे बतलाओ।।
मस्तक हमें झुकाना चाहिये, या उनसे झुकवाऐंगे।
करना चहिये हमें या हम, उनसे सत्कार कराऐंगे।।
पाँच मिनिट पहले सूचित, करने को जब तुमसे बोले।
तो तुमने उनको सूचित क्यों, नहीं किया बतला, क्यों बे।।
अपनी ख़ता डाटता उनको, जाओ उन्हें आदर से लाओ।
वरना इसकी सज़ा मिलेगी, यह भी बात समझते जाओ।।
द्वार पाल भागा हुआ अपने, पास वहीं पहुँचा उस ठौर।
आपस में बातें हम तीनों, कर रहे बैठे जिस ठौर।।
आते ही बोला वह हमसे, अजी महात्माँ जी तुम को।
राज कुँवर ने याद किया है, बुला रहे हैं तीनों को।।
चेहरे को देखा जब उसके, सत्ता छिनी हुई सी थी।
मुँह पर आब नहीं थी उसके, आभा पिटी हुई सी थी।।
हमने समझ लिया कहते ही, बोले, गई हमारी मौज।
जिस रौ में हम जा पहुँचे थे, बेटा राम उड़ी वह मौज।।
अब तेरा युवराज स्वयं भी, लेने आवै तौ नंहि जाँए।
क्यों बे अदबों में जा करके, अपनी बेअदबी करवाँए।।
मुलजुम नहीं आपके कोई, चोरी हमने करी नहीं।
ना हम उसकी कोइ रिआया, हमें न जाना जाओ कहीं।।
अपनी मौज गये थे भइया, अपनी मौज चले आये।
जाओ यहाँ से क्यों करते हो, अपने संग झाँए झाँऐ।।
चला गया हथप्रभ सा होकर, द्वारपाल वह आखिर कार।

पेश चली नंहि जब हम कुछ, लौट गया होकर लाचार।।
एक और आया अंदर से, उसने बतलाई सब बात।
कँवर साहब सुन रहे थे सारी, जो कुछ हुआ तुम्हारे साथ।।
इसे डाटकर के भेजा था, उन्हें अदब से वापिस लाओ।
वरना इसकी सज़ा मिलेगी, यह भी बात समझते जाओ।।
हम सब चले आए उठकर के, ठहरे थे जिस मंदिर में।
निज मस्ती में रहे कई दिन, मंदिर ओंकारेश्वर में।।

मौजों में रहते सदा थी सदगुरू की देन।
पधरे रहते थे हिये गुरू ऐन के ऐन।।

कुछ दिन और वहाँ ठहरे हम, तत्पश्चात् चले आगे।
बड़े दिनों के बाद एक दिन, दरभंगा पहुँचे जाके।।
वहाँ एक आश्रम में ठहरे, था स्थान बड़ा रमणींक।
हर प्रकार की सुविधा थी हर, द्रष्टिकोंण से था वो ठीक।।
रामानंद को एक रोज़ वहाँ, भिक्षा करने की सूझी।
यहाँ नगर में भिक्षा की, जावे उसने हमसे बूझी।।
हमें हमेशा जल्दी सूझा, करती थी बोले उससे।
सौ द्वारे टक्कर मारोगे, क्या हासिल होगा उससे।।
अलख जगाते डोलो घर घर, सौ दरवाज़े झाँकोगे।
तब कंहि भिक्षा हाथ लगे जब, ख़ाक छटाँको फाँकोगे।।
अरे एक दरवाज़ा माँगो, और तृप्त होकर उड्डो।
जीमो और दक्षणाँ भी लो, ऐसा दरवाज़ा ढूँडो।।
रामानंद ने पूछा हम से, ऐसा द्वारा है किसका।
उत्तर दिया उसे हमने, भाई ऐसा है राजा का।।
आइ समझ में उसके सुनकर, तीनों ने प्रस्थान किया।
राज द्वार पर अपना जमघट, अलख जगाने जा पहुँचा।।
अफ़सर लोग महाराजा के, हम लोगों को नज़र पड़े।
कुछ पौड़ी चढ़कर ब्राँडा था, जिसमें थे सब खड़े हुवे।।
रामानंद तिलक छापों की, रखता था बेहद भरमार।
टीप टाप और माला वाला, पहना करता बड़ा सँवार।।
हम भूतनाँथ बाबा थे, कौन डालता हमको घास।
अपने फ़ैशन नहीं बदलता, बेढंगे हम बारो मास।।
हमने भिक्षा करने के लिए, रामानंद तैनात किया।
आज भार तीनों पेटों का, तेरे सर है सोंप दिया।।

रामा चढ़ा पौड़ी पर, हम नींचे हो गये खड़े।
उन लोगों को ऊपर आते, रामानंद जी नज़र पड़े।।
इक अफ़सर बोला उनमें से, जब ये ऊपर पहुँच गये।
लहजा कड़कदार था उसका, क्यों क्या है कैसे आये।।
रामाँनंद बोला हम भिक्षा, करने आये हैं महाराज।
निकली थी डरपीली सी कुछ, उस बेचारे की आवाज़।।
कैसी भिक्षा, क्या है भिक्षा, क्या मतलब है भिक्षा का।
टुटे से मूढ़े पर तब तक, रामानंद था बैठ चुका।।
बैठा का बैठा ही रह गया, सुनकर भिक्षा का मतलब।
एक व्यंग सा उस अफ़सर का, आया अपने कानों तक।।
दे न सका उत्तर रामानंद, सुनकर उससे ऐसी बात।
अफ़सर ने दौहराया फिक़रा, कई बार नचका कर हाथ।।
रामानंद तो सह गए उसकी, पर हम सहन न कर पाये।
वहाँ हमें बारह बीघे में, भी अंकुर नंहि दिख पाये।।
हम नीचे से ही बोले भइ, सुनते भी हो रामानंद।
तुमने जीवन कहाँ बिताया, तुम तो रहे अंध के अंध।।
महाराज क्या जाने भिक्षा, किस चिड़िया को कहते हैं।
राज प्रशादों में तो भाई, सेवक गंण ही रहते हैं।।
तुमने बड़ी सख़्त गलती की, इनसे भिक्षा जा माँगी।
इनसे झाड़ू मांगी होती, जो जाते ही मिल जाती।।
प्रातः से संध्या तक इनके, आँगन में झाड़ू देते।
संध्या को गिड़गिड़ा माँगते, तब ये इक रोटी देते।।
ये बेचारे भिक्षा को क्या, जानें कैसी होती है।
तुमने पहले परखा होता, पत्थर है या मोती है।।
सुनकर इतनी बात हमारी, लाल हुई अफ़सर की आंख।
<u>उठा उछलकर कुर्सी से झट, लगी भड़कने उसकी साँस।।</u>
कम्पन सा आ गया शब्द में, गुस्से से निकली आवाज़।
बड़े जोर से उस अफ़सर ने, सेवक गण को दी आवाज़।।
इन्हें निकालो बाहर इक दम, देखो कौन घुसे है ये।
धक्के देकर के निकाल दो, बाहर इनको अंदर से।।
दौड़ पड़े सौइयों इक दम से, जब उसने यों शोर किया।
और हमें आकर उन सबने, चौ तरफा से घेर लिया।।
कांप उठा रामा नंद उनकी, जब ऐसी लीला देखी।
लगा सोचने जानें अब हम, लोगों पर क्या बीतेगी।।
जब अफ़सर रूक ही नंहि पाया, गया जोर में भरता ही।

इन्हें निकालो इन्हें निकालो, रहा शोर यों करता ही।।
हम तो फिर ही रहे निकले, तुम क्या हमें भगावोगे।
हम ख़ुद को खाये फिरते हैं, तुम क्या हमको खाओगे।।
बाहर कर भी दिया हमें गर, तब भी गिने जाँए निकले।
चाहे शहर से बाहर कर दो, तब भी गिने जाँए निकले।।
अंदर निकले बाहर निकले, यहाँ भी निकले खड़े हैं हम।
कहीं हमें ले चल दुनियां में, निकले गिने जायेंगे हम।।
जान मार दोगे गर अपनी, मिले परातम से जाके।
निकले गिने जायेंगे तब तक, जब तक बीच हैं दुनियां के।।
तड़प उठा गुस्से में आकर, जब हमसे यह वचन सुना।
लगा काँपने गुस्से में वह, क्रोधावेष हुवा दुगना।।
हम उसका आवेष देखकर, बोले रामानंद चलो।
ये क्या बाहर हमें करेंगे, भाइ यहाँ से खुद निकलो।।
शुद्र नदी भरी चलि अतुराई, जिमि थोड़े धन खल बौराई।
बूंद अघात सहे गिरि कैसे, खल के वचन संत सहें जैसे।।
चौपाई कहके रामानंद, से हम बोले रामानंद।
चलो यहाँ से हमको तो अब, मार रही इनमें दुर्गंध।।
तुम्हें अगर इनकी सेवा, आदिक पर भिक्षा हो मंजूर।
तो आ जाना हम जाते हैं, हमें नहीं है यह मंजूर।।
हम औ देव गिरी दोनों ही, बाहर निकल आए कहकर।
पर रामानंद साथ न आया, बैठा रहा वहीं सुन कर।।
ख़ूब तमाशा देखा अपना, प्रजा जनों ने आकर के।
इक दुकान ख़ाली सी थी, हम बैठे उस पर जा करके।।
करनी थी प्रतीक्षा क्यों के, रामानंद के आने तक।
बैठ न पाये प्रजा जनों का, वहां आ गया इक जमघट।।
देखा था व्यौहार हमारे, साथ उन्होंने राजा का।
हर इक के दिल में अपने प्रति, एक अनौखी थी श्रद्धा।।
जोड़ जोड़ कर हाथ हमारे, से कहना आरम्भ किया।
खेंचा तान हमें ले जाने, को घर का प्रारम्भ हुवा।।
कोई अपने घर को कहता, कोइ कहता अपने को।
लेकिन हम तय्यार नहीं थे, कहीं किसी के जाने को।।
कोइ लड़ो मत आपस में, हम भूखे नंहि हैं भूते हैं।
यह ब्यत जानो हम दुनियाँ के, टुकड़े चुगते फिरते हैं।।
ले आये पकवान मिठाई, कुछ सज्जन हम लोगों को।
हमने कुत्तों की जानिब, संकेत किया इनको दे दो।।

जो भूके हैं उन्हे खिलाओ, हम तो छके हवये हैं भाइ।
छके हुवे को अगर छकाया, क्या हासिल कुछ समझे भाइ।।
चले आए जब हम बाहर तो, समझ आइ कुछ अफ़सर को।
दुर्व्यौहारों पर अफ़सर को, ग्लानि स्वयं आई खुद को।।
जंचा उसे आपा जैसे, इसने अमृत विष कर ड़ाला।
कोई भारी पाप वाप, याके अनर्थ हो कर ड़ाला।।
रामानंद वहीं था तब तक, उससे कहा महात्माँ जी।
पता नहीं उस समय हमारे, से क्यों ऐसी ख़ाता हुई।।
कैसे हुई धृष्टता हमसे, पता नहीं अच्छा जाओ।
क्यों कि आपके साथी हैं वे, वापिस उन्हें लिवा लाओ।।
रामानंद लगा कहने वे, मेरे कहे न आयेंगे।
अच्छा आटा सीदा उनका, जितना चाहो ले जाओ।
हमसे सीदा भी नंहि लेंगे, आप स्वयं ही दे आओ।।
सौदा अगर नहीं लेते तो, ले जाओ इक इक रूपया।
रामा नंद पुनः बोला तुम, हमको कुछ मत दो कृप्या।।
स्वयं आप बुलवालो उनको, अपने सेवक गण के हाथ।
सत्य समझना अपनी तो, मानेंगे नहीं एक भी बात।।
तभी उन्होंने इक सेवक को, बुलवा कर आदेश दिया।
बाहर से उन महात्माओं को, बुला लाओ यह हुक्म दिया।।
हम दुकान पर बैठे मिल गए, उस सिपाइ को जाते ही।
उसने हम दोनों से जाकर, इस प्रकार की बात कही।।
हाथ जोड़ कर किया निवेदन, कहने लगा महात्माँ जी।
उप सामन्त महाराजा के, बुलवाते हैं तुम्हें वहीं।।
क्यों रे क्या हैं चोर तुम्हारे, क्यों बुलवाता है सामंत।
मार आए या उठा लाए कुछ, सूली देगा क्या सामंत।।
दाता नहीं विधाता वह नंहि, कौन बला है यह सामंत।
हम क्या जानें किस बनमानुष, को कहते हो तुम सामंत।।
भाग यहाँ से हम नंहि जाते, हमसे ज़्यादा सर मत मार।
करले अपना जो जी चाहे, ले आ जो चाहे हथियार।।
अजी आपके साथी भी तो,वहीं विराजे हैं महाराज।
उन ही ने तुम को बुलवाया, है शायद कुछ होगा कांज।।

वह अपना साथी क्यों होता, क्या मतलब अपना उससे।
वह अपना कर्तव्य कर रहा, हम अपना करते फिरते।।
जाओ हमारा कोइ न साथी, कोइ न सम्बंधी अपना।
बंधन में सामन्त तुम्हारा, होगा हम नंहि कह देना।।

चला गया चुप चाप सिपाही, अपना उत्तर पाकर के।
कुछ क्षंण बाद हमें रामानंद, भी मिल गया वहाँ आकर के।।
परखा नृप दर भंगा को भी, देख चुके ऊँची दुकान।
देख लिये व्यंजन चख कर सब, पर निकले फीके पकवान।।

मास घौंसले चील के, ना मुमकिन सी बात।
नीरस में रस खोजते, तृष्णा फिरें बुझात।।

अतः वहाँ से भी हम सबने, उठ करके के प्रस्थान किया।
अपना इक दिन साधू तेकड़ा, आख़िर कलकत्ते पहुँचा।।
मौमिन पुर से वर्दमान, महा राजा की कोठी के पास।
महा देव तालाब नाम से, कलकत्ते में है विख्यात।।
कलकत्ता जन नित्य कर्म, आदिक करने वहाँ आता है।
बड़ा नीर निर्मल है उसका, आलम रोज़ नहाता है।।
तीर ताल के एक चौतंरा, हमें पड़ा ख़ाली पाया।
हमने अपना आसन जाते, ही उस ही पर लगवाया।।
बड़ा कर्म काण्डीवी जन उस, जगह नहाने को आता।
इक अटूट से जन समूह का, लगा रहा करता तांता।।
धीरे धीरे जन मुमुक्ष कुछ, अपने निकट लगे आने।
हम फक्कड़ थे नंग धड़ंगे, क्यों श्रद्धा उपजी अपने।।
सेठ लक्ष्मी नारायण था, कलकत्ते का व्यक्ति विशेष।
बड़ा दयालू औ भावुक था, उस मानव का ह्रदय प्रदेश।।
नित्य क्रम आदिक से निवृत, होने वे नित आते थे।
दैव योग वश वे अपने ही, आगे रोज़ नहाते थे।।
गीता पाठ किया करते थे, घंटों जल में खड़े खड़े।
आते बहुत सवेरा लेकिन, निपटा करते सूर्य चढ़े।।
न्हा धो चुके एक दिन जब वे, औ चलने का वक्ताया।
तो हमने करकी झोली, देकर के उनको बुलवाया।।
हमने प्रश्न किया उनसे तुम, जल में यह क्या करते हो।
क्या पुस्तक है जिसको तुम यों, जल में आकर पढ़ते हो।।
अजी महात्माँ जी गीता का, पाठ किया करते हैं हम।
इसे पठन करने का हमने, बना लिया है एक नियम।।
हमने प्रश्न किया दोबारा, बात आपकी अच्छी है।
तुमने खुद ही पढ़ी अभी तक, या यह कभी सुनी भी है।।
हाथ जोड़ कर बोले ना जी, सुनी किसी से नहीं कभी।

ना हमने सुनने की भगवन, किसी अन्य से कोशिश की।।
केवल पढ़ ही लेता हूँ बस, धर्म समझ कर के अपना।
हमने कहा सेठ पढ़ने से, मतलब हल नंहि होने का।।
जो रहस्य गर्भित है इसमें, स्वयं समझ नंहि पावोगे।
जब तक सुलझे हुवे पुरूष से, भेद नहीं खुलवाओगे।।
आप सेठ जी क्या जाने यह, कृष्ण कौन है गीता का।
करी बाल लीला किसने, किसने महाभारत जीता था।।
इसमें भेद छिपे है जितने, जान न पाओ खुद पढ़कर।
जब तक खोलें नहीं आप को, पता तभी होगा सुनकर।।
भेदों का भेदी जाने बस, गर भेदी होवे पूरा।
वरन हजारों मिले ख़ाक में, पढ़ पढ़ गींता को शूरा।।
अपनी बातें सुनी सेठ ने, उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।
सत्संग में आने लग गए नित, इतना उन पर असर पड़ा।।
कहने लगे सेठ जी इक दिन, हाथ जोड़कर के हमसे।
जितनी मूर्ति आपके संग है, जीमेंगी मेरे अब से।।
जब तक आप यहाँ ठहरेंगे, सब प्रबन्ध मेरा होगा।
अन्य जीमने नहीं जाओगे, ऐसा अब नंहि होने का।।
हमने कहा सेठ जी हम तो, साधू हैं कुछ पता नहीं।
ना जाने क्षंण में हम कितने, हो जाए कुछ ज्ञात नहीं।।
गिन कर तुमको क्या बतलायें, अपनी नहीं कोइ तादाद।
तिस पर समय मकर संक्राती, गिन उसको ले हो इक आध।।
गंगा सागर के मेले का, वक्त निकट आ पहुँचा था।
जो सागर के अंदर टापू, में सालाना भरता था।।
जहाँ कपिल ने महिप सगर के, भस्म किये सुत साठ हज़ार।
उसका ही मेला भरता था, बड़े जोर का सागर पार।।
सुनकर उत्तर दिया सेठ ने, फिर क्या चिंता है महाराज।
चाहे जितने हों ऐकत्रित, जीमेंगे सब मेरे आज।।
हमने भी स्वीकृति दे दी फिर, चले गये इसके पश्चात्।
इंतजाम लंगर आदिक का,किया उन्होंने हाथों हाथ।।
बढ़ते गये महात्मा ज्यों ज्यों, बढ़ता गया रसद भी और।
जिधर बिना मांगे मिलता हो, भला जगह क्यों खोजें और।।
ले ले करके आड़ हमारी, पड़ने लगे महात्माँ जन।
क्यों कि सुना करते थे जब वे, क्षेत्र खुला इनके कारन।।
जहाँ सुगमता से खाने को, मिल जाता हो दो वक्ती।
वहाँ कभी खाने वालों की, सोचो कमी न हो सकती।।

वहाँ मार वाड़ी जन अक्सर, आये करते थे ज़्यादा।
किन्तु हमारे ऊपर उनकी, लेष मात्र नंहि थी श्रद्धा।।
मांगी लाल एक सज्जन नित, न्हाने को वहाँ आता था।
था वह मारवाड़ का वासी, भजन वजन कर जाता था।।
अपने सत्संग में जाने क्यों, एक रोज वह आ बैठा।
सुनता रहा बड़ा चित्त देकर, कुछ क्षण तो बैठा बैठा।।
किन्तु बाद में बहुतेरे ही, वाद विवाद किये हमसे।
हम भी यथा प्रश्न उत्तर, संतुष्टी का दे देते थे।।
वह उत्तर जिस उत्तर से फिर, शंका ही ना शेष रहे।
मांगी लाल लिये थे जितना, सारा सौदा बेच गये।।
आखिर श्रद्धा उपजी उर में, नित आना आरम्भ किया।
मांगी लाल मारवाड़ी वह, अपना चेला पूर्ण हुवा।।
फिर हमने वे रहस्य खोले, आँखें चली गई खुलती।
काली और कलूटी प्रतिमाँ, मन की चली गयी धुलती।।
ज्ञान नाड़ियों में इक दम से, बैरागी संचार हुवा।
कोसों मोह भगा हो जैसे, ऐसा माँगी लाल हुआ।।
पहने था इक स्वर्ण अंगूठी, झट निकाल फेंकी जल में।
जाग गई वैराग्य भावना, बल शाली बन कर मन में।।
उसका यह नुकसान देखकर, अपने को महसूस हुआ।
हमने सोचा अपने कारण, इसका यह नुकसान हुआ।।
बड़ी अधिक मात्रा में ग़ोते, ख़ोर फिरा करते थे वाँ।
हमने दो ग़ोते ख़ोरों को, बुलवाकर उनसे पूछा।।
मुंदरी यदि दोगे निकालके, दो रूपया इनआम मिले।
अपनी सुनते ही वे दोनों, इकदम जलमें कूदपड़े।।
जगह दिखा ही दी थी उनको, जहाँ गिरी जाकर मुंदरी।
उन ग़ोते ख़ोरों ने वो, मुंदरी निकलकर के दे दी।।
हमने सेठ लक्षमी नारा, यण से रूपये दिलवाये।
माँगी लाल अंगूठी वापिस, पहना कर घर भिजवाये।।
पर वैराग्य भाव उनमें प्रति, दिवस प्रगति पर दिखते थे।
हालत ठीक होयगी उसकी, लक्षण नज़र न आते थे।।
एक रोज़ उसके लक्षण को, देख समझ उसकी पतनी।
अपनी व्यथा सुनाने अपने, पास वहीं वह आ पहुँची।।
महाराज उसकी हालत तो, तुमने अब ऐसी करदी।
हम को भी बतलादो आगे, अपनी हालत क्या होगी।।
लेना था वैराग्य इसे यदि, तो फिर ब्रद्ध अवस्था में।

इसने शादी क्यों की हमसें, यह उत्तर दिलवाओ हमें।।
इन्तज़ाम मैं करवाके ही, तुम से अपना जाऊंगी।
या इसको जैसा था वैसा, करवाके ले जाऊंगी।।
इसको कुछ भी नहीं हुआ है, देवी तुम मत घबराओ।
कहीं नहीं जावेगा यह, बेफ़िक्र आप घर को जाओ।।
आवै जावै कहीं नहीं यह, तुम हमपर विश्वास करो।
कहीं न जाने देंगे इसको, तुम निश्चित घर वास करो।।
मारवाड़ियों ने देखा जब, कितना बदला माँगी लाल।
तो प्रचार सा होने लग गया, उनमें अपने प्रति तत्काल।।
मारवाड़ियों का आना आरम्भ, हुआ फिर अपने पास।
बड़ी जाग्रति आई उनमें, अपने प्रति उपजा विश्वास।।
भक्ति भाव और जागरूकता, जँचने लगी हमें उनमें।
अपनी चर्चा फैल गई उन, दिनों नगर के जन जन में।।
एक महात्माँ जहाँ मार वाड़ी, जन सारे जाते थे।
बड़े सिद्ध बाबा कलकत्ते, में वे माने जाते थे।।
टूटा जब सत्संग वहाँ का, बंद हुवे जाने वहाँ लोग।
हुआ बहुत व्याकुल वह बाबा, पड़ा एक दम उनमें सोग।।
माँगी लाल बुलाया उसने, सिद्धी का दिखलाया जौंम।
तैंने सभा बिगाड़ी मेरी, देखूँगा मैं तेरा ढोंग।।
चिंता मत कर मैं तेरे उस, सदगुरू को भी देखूँगा।
करामात उनके पल्ले में, क्या है बेटा परखूँगा।।
एक घाट गुरू चेले ना, तारे तो कुछ भी काम नहीं।
नाकों चने चबाये नंहि तो, जा मेरा भी नाम नहीं।।

तत्पश्चात् निकट अपने भी, आए परिक्षा लेने को।
साधनाओं का बल दिखलाने, और हमें धमकाने को।।
बाबा से मशहूरी अपनी, बिलकुल सहन न हो पाई।
उसे युक्ति हमसे लड़पड़ने, की ही बस उत्तम भाई।।
सोचा शास्त्रार्थ करके मैं, पल में उसे पछाडूँगा।
ज्ञान बेल को न दूँ फैलने, जड़ से उसे उखाडूँगा।।
हमसे पूछा कौन पंथ हैं, बाबा ने आते ही साथ।
शिष्टाचार न कोई तरीका, शुरू किया उसने अपवद।।
भ्रकुटी अदल बदल कर बोला, कौ गुरू है बतलाओ।
हमने किया इशारा रामा, नंद को इनको बिठलाओ।।
सिद्धनांथ जी ने आते ही, हमें ज़ोर से ललकार।
औ प्रश्नों का अपने सर पर, एक बौम्ब सा दे मारा।।

ढंग सभी बेढंगा उनका, रसना देखो तो रूखी।
अंतस्थल में भरी ईर्षा, भावुकता सूखी सूखी।।
अन्य जगह जाओ तो पहले, शिष्टाचार बताता है।
उत्तम है परनाम दण्डवत्, करना, यह मानवता है।।
शत्रु पक्ष चाहे हो सन्मुख, पर अभिवादन है अनिवार्य।
हर मज़हब बतलाता है यह, हर पंथी का है यह कार्य।।
सिद्धनाँथ जी आते ही, इकदम से हमपर टूट पड़े।
जिभ्या से प्रश्नोत्तर के, अनगिन फ़व्वारे छूट पड़े।।
हमने उत्तर दिया सिद्ध को, हम हैं जी आपा पंथी।
आप गुरू हैं आप शिष्य हैं, चर्चाऐं अपने घर की।।
और पूछिये क्या इच्छा है, ताकि तुम्हें संतुष्ट करें।
पर अपने को और क्रोध को, अपने में सीमित रक्खें।।
अपने संग वह सिद्धनाँथ, इतनी सुनकर के अकड़ पड़ा।
एक विषय अटपटा पकड़के, फिर वह हमसे बहस पड़ा।।
बड़े खरे हमने भी उत्तर, बाबा जी को पकड़ाये।
जिनको सुनकर के वे इकदम, आपे से बाहर आये।।
थी प्रकृति अपनी कुछ ऐसी, यथा प्रश्न उत्तर देते।
जैसा भाव कोई संग लाता, उसी भाव की गा देते।।
हम से बोला समझ लिया, हमने तू कितना ज्ञानी है।
होशियार रहना तुझ में, देखूँगा कितना पानी है।।
बैठे तो हैं अभी देखलो, हम बोले उससे इकदम।
निर्णय ये सत्संगी जन भी, कर लेंगे कुछ कम से कम।।
भागा अपनी सुनकर के, इस प्रकार वहाँ से बाबा।
जैसे हमको ज़मींदोज़, जाते ही इकदम कर देगा।।
माना नहीं रात्री में उसने, बहुत डराया माँगी लाल।
छोड़ दिया उसने अपनी, सिद्धि का इक उसपर जंजाल।।
बैठा रहा रात भर माँगी, उसे डराया कुछ ऐसा।
दिखलाया उसको द्वारे पर, इस प्रकार का इक भैंसा।।
सर ग़ायब है धड़ से उसका, फ़र्श ख़ून से भरा हुआ।
ज्यों दरवाज़े में वह भैंसा, फंसा खड़ा है मरा हुवा।।
उसे द्रश्य यह दिखा स्वप्न में, डर कर आँख खुली उसकी।
किन्तु द्रश्य वह रहा दीखता, उसकी आँखों को फिर भी।।
डर से चींख़ तलक नंहि निकली, बेचारे की सारी रात।
जैसे तैसे कटी रात वह, सूरज निकला हुई प्रभात।।
जब उसकी पत्नी उसके ढिंग, पहुँची तो उसने पूछा।

कहाँ को होकर के आई तुम, कैसे मिला तुम्हें रस्ता।।
बोली क्यों रास्ते में क्या है, यही एक तो है रास्ता।
माँगी बोला दिखता नंहि क्या, इसमें भैंसा फंसा खड़ा।।
बड़े अचम्भे से में आकर, पतनी ने मुड़कर देखा।
ख़ाली पाया द्वारा उसने, उसे न कुछ भी नज़र पड़ा।।
बोली क्या कह रहे हो तुम यह, मेरी समझ नहीं आता।
भैंसा कहाँ खड़ा है इसमें, ख़ाली पड़ा है दरवाज़ा।।
उसका यह संदेह दूर, करने को पत्नी फिर पहुँची।
ख़ाली पड़ा हुवा है देखो, द्वारे में जाकर बोली।।
था भयभीत बहुत ही माँगी, घरवाली ने समझाया।
यहाँ कोइ नंहि भैंसा वैसा, हाथ पकड़के दिखलाया।।
भय का भूत भगा मुश्किल से, बाहर आये माँगी लाल।
पहुँचे अपने पास सुनाने, इस घटना को वे तत्काल।।
सुनकर के माँगी की बीतक, हमने उसको शान्त किया।
तुम तो तुम उसने तो भाई, हमको भी भयभीत किया।।
जितनी उसके पास शक्ति थी, उसने अपनी अजमाली।
झुक जाती जनता इतनी ही, बातों पै भोली भाली।।
छोटी छोटी साधनाओं से, भय दिखलाते रहते हैं।
डरा डराकर अपना उल्लू, सीधा करते रहते हैं।।
ये बिगाड़ सकते ही नंहि कुछ, किसी भाइ का किसी प्रकार।
क्यों कि दिखावे की होती हैं, यह साधनाऐं बिलकुल निस्सार।।
अपना बनाए रहते हैं ये, लोग दिखाकर डर ऐसे।
कच्चे पिल्ले डर जाते हैं, जा चरनों में गिर पड़ते।।
अधिक और कुछ नंहि कह सकता, दावा है ये माँगी लाल।
दिखा चुका जितना बेचारे, के पल्ले था रात कमाल।।
माँगी लाल समझ कर हमसे, पहुँचा बाबा जी के पास।
जाकर बोला करामात क्या, इतनी ही थी तेरे पास।।
करामात जो रात दिखाई, थी वह तो बेकार रही।
सच्च अगर हमसे पूछे तो, उसमें तेरी हार रही।।
अधिक और इससे हो कुछ, तो उसको आज दिखा देना।
क़सम तुझे अपनी करनी में, कसर कहीं मत रख लेना।।
जितना सौदा था पल्ले में, तेरा देख लिया वह रात।
शेष और सिद्धी हो जो भी, उसको भी दिखलादे आज।।
सुनकर बोल न निकला उसका, माँगी लाल चला आया।
बड़े ठाठ से सोए रात को, भय नज़दीक नहीं आया।।

सिद्धनाँथ के पास में सेवक रहा न एक।
दौड़ पड़े सब इधर ही शक्ती देख विशेष।।

माना नहीं सिद्ध वह फिर भी, इक नाँगे को भड़काया।
बदला लिया जाय जो भी हो, उसको हमसे भिड़वाया।।
भक्त जनों के साथ एक दिन, हम आसन पर बैठे थे।
किसी विषय पर चर्चा वर्चा, सी हम बैठे कर रहे थे।।
इक नागा बाबा आया वहाँ, आकर के बोला हमसे।
तुमने आसन यहाँ लगाया, बोलो किसकी आज्ञा से।।
यह चबूतरा अपना है, हम, इस पर बैठा करते हैं।
है स्थान पुराना अपना, इसको सभी जानते हैं।।
था यहाँ कौन पूछते जिससे, हम बोले नागा जी से।
अच्छा तो यह उठा मिले अब, नागा फिर बोले हम से।।
हमने फिर उत्तर पकड़ाया, उठता तो नंहि अब यहाँ से।
अपने हाथ फेंकना हो तो, जब मरज़ी हो आ जाना।
अगर फेंकना अब चाहो तो, आओ फेंक कर ही जाना।।
उठा मिले बस उठा मिले, बक बक सी करता चला गया।
किन्तु शाम को दिन छिपने से, पहले पहले फिर आया।।
नहीं उठाया आसन तुमने, बोले नागा जी हमसे।
आओ पधारो नागा जी हम, इस प्रकार बोले उससे।।
अपना ही समझो यह आसन, अन्य किसी को मत जानो।
आसन और हमें नागा जी, दोनों को अपना मानो।।
आओ पधारो, हम आसन से, थोड़ा नींचे खिसक गये।
किन्तु नहीं आये नागा जी, हम पर ज़्यादा बिगड़ गये।।
खिसक लिये कहते हुवे हमसे,कल को आसन उठा मिले।
वरना ठीक न होगा कल को, साथ तुम्हारे क्या समझे।।
रूके नहीं पल भर को फिर वे, चले गये कहते कहते।
आसन यहाँ न पावे कल को, वरना ठीक नहीं होगा।।
हमने फिर भी कहा वही, यह अपने आप न उठने का।

गये चले गाते अपनी ही नागा जी महाराज।
फिर सत्संग जारी हुआ भक्त बहुत थे आज।।

आने लगे एक बाबू भी, कलकत्ते के अपने पास।
उसी वक्त बोले वे हमसे, अपनी भी सुनलो कुछ आज।।

मुझ को बीस रूपये रोज़ाना, का इक रोग लगा टेढ़ा।
गर इलाज हो पास आपके, किरपा हमपर कीजेगा।।
हम बोले उन बाबू जी से, यह तो रोग अजीब सुना।
शारीरिक तो रोग सुने हैं, पर रूपयों का आज सुना।।
ज़रा खोलकर समझाओ तो, हम भी रोग समझ लेवें।
क्या अनुमति दे अपनी इसमें, जब तक समझ नहीं लेवें।।
बोला इक थेटर आया है, जिसमें प्रति दिन जाता हूँ।
पंद्रह रूपये तो टिकिट है उसका, पाँच रूपये खा जाता हूँ।।
और जागता तीन बजे तक, दो घंटे मिलता आराम।
आँख टूल्हती रहतीं दिनभर, लेष नहीं होता फिर काम।।
बोलो कैसे निभे रोज़ यह, नहीं मानता मन अपना।
हम बोले उस बाबू जी से, भाई आज यहाँ आ जाना।।
स्वाँग तमाशे कभी कभी तो, हम भी करवा लेते हैं।
अपना बे पैसे का है, उससे मन बहला लेते हैं।।
आज तमाशा यहीं देखना, दिन छिपने तक आ जाना।
ये रूपये हम बचवा देंगे, पर आना यहाँ रोज़ाना।।
क्यों कि पर्व गंगा सागर का, नेड़े ही था लगा हुआ।
इस कारण से इक जमाव सा, था वाँ साधु महात्माँ का।।
साँय काल को भक्त और, साधू जन सब ऐकत्रित थे।
सत्संग जारी था अपना, आनंद सभी जन ले रहे थे।।
अक्यात वह नागा आया, जिसे देखते ही हमने।
आसन छोड़ दिया थोड़ा सा, और कहा उससे हमने।।
बैठो आओ पधारो नागा, पर वो बोला आते ही।
उठा मिले आसन तुम से यह, बोला था क्यों उठा नहीं।।
यह भी साथ साथ कह गए थे, कल ऐसा यदि नहीं हुआ।
तो फिर सोच समझ रखना बस, तेरे साथ बुरा होगा।।
हम बोले नागा जी आसन, तो अब ख़ुद नंहि उठने का।
आप स्वयं अपने हाथों से, गर उठाओ उठ जायेगा।।
आप फेंकदो हम उठकरके, तभी चले भी जायेंगे।
जिन हाथों ने इसे बिछाया, अब वे नहीं उठायेंगे।।
नागा बातें करता करता, आसन पै ही आ पधारा।
पधरा नहीं बल्के यों कहिये, एक क़िसम से आ पसरा।।
सारा आसन हथियाने के, लिये पसर गये नागा जी।
उसके ऐसे भाव देखकर, नीचे सरक गये हम भी।।
अपनी विजय जानकर नागा, लेटे से होकर बैठे।

जीता जैसे कोइ मोरचा, लगते थे ऐंठे ऐंठे।।
ख़त्म हुवा जिस वक्त पसरना, फैल चुके पूरे नागा।
पास कान के मुँह करके मैं, इस प्रकार उससे बोला।।
अगर पियो तो चिलम बनावें, बोला हां क्यों नंहि भर लाओ।
बनी हुई या सादा बोला, बनी हुई का दम लगवाओ।।
हमने इत्र लगा कर अपने, नुस्ख़े की तय्यार करी।
ख़ूब सुगंधी देकर उसको, हमने अपने आप भरी।।
बड़े तरीक़े से भर करके, नागा जी को लायें चिलम।
और थमा कर हाथों में, बोले लो पियो लगाओ दम।।
नागा जी बोले हमसे नंहि, पहले तुम ही शुरू करो।
हम बोले नंहि पहले तुम, क्यों के तुम साक्षात शिव हो।।
भला आप से पहले हम, पीलें यह कैसे मुमकिन है।
खेंचो प्रेम पूर्वक खेचों, आज दम कशी का दिन है।।
नागा जी ने चिलम थाम ली, दम लेने फिर शुरू किये।
खेंच खेंच लम्बे लम्बे दम, नागा इक दम मुग्ध हुवे।।
नागा की दाढ़ी को हमने, इत्र फुलेल लगाये फिर।
जिसकी लपटों में नागा जी, लहर लहर लहराये फिर।।
विषधर भी सुगन्ध पाकर,फुंकार मारना तज देता।
बड़े बड़े फनियर ढल जाते, मंत्र मुग्ध सा कर देता।।
हाथ फेर कर दाढ़ी पर, नागा जी बोले ओ हो हो।
यह है असली मौज आज तो, छक छक के ले लेने दो।।
मर गइ ढाढ़ी राख चाटती, धूल धूसरित बेचारी।
आज मिली है मौज असल, फिरती थी यह मारी मारी।।
चिलम हो चुकी थी ठँडी, हम बोले और पियोगे क्या।
नागा जी इक दम खुश होकर, हमसे बोले भइ बाबा।।
कर दो आज हमें तर पूरा, मस्त बना दो मौजों में।
कसर न रह जाये कुछ बाक़ी, बाबा लोगों क़सम तुम्हें।।
लाये फिर हम चिलम डाटकर, उसी तरह की बनी हुई।
बड़े प्रेम से लाके हमने, नागा जी को पकड़ा दी।।
नागा बोले शुरू करो हम, बोले यह नंहि होने की।
भला आपसे पहले हम, पी सकते हैं क्या नागाजी।।
जब समर्थ बैठे हों आगे, छोटे दम कैसे मारें।
इसमें है अपमान आपका, हमें शरम से मत मारें।।
प्रथम चिलम में ही नागा के, धरती अम्बर एक बनें।
दूजी चिलम उड़ा कर नागा, जी पूर्णाति पूर्ण बने।।

एक फुरैरी और इत्र की, की हमने दाढ़ी की भेंट।
मत पूछो नागा क्या बन गये, नागा जी बस बन गये ढेढ।।
लुक्क उठा के हटे चिलम से, तो उनको ख़ुश्बू आई।
उबल पड़े नागा जी फिर तो, ओ हो आज कहाँ है भाई।।
आप अखाड़े में हैं अपने, हम बोले नागा जी से।
वाह वाह आनंद आपका, क्या कहना बोले हमसे।।
हमने कभी नहीं देखा था, भाइ तुम्हारा सा आनंद।
हम तो सड़ते रहे राख में, अब तक पशुओं का मानिंद।।
नागा जी तिरशूल बजाकर, नाचा गाया करते थे।
उन्हें मौज में लखकर के हम, इस प्रकार उनसे बोले।।
लोग आपके शिव ताण्डव के, नागा जी अभिलाषी हैं।
दर्शन चाह रहे ताण्डव का, जो साधू सन्यासी हैं।।
बिखर उठे नागा जी फिर तो, गज़ पर ताल लगी लगने।
बैठे बैठे लगे नाचने, उछल उछल अपनी धुन में।।
जहा नाचना शुरू किया था, थोड़ी देर वहीं फड़के।
इसके बाद सरकने लग गये, नागा जी बल चूतड़ के।।
थिरकन उनकी बड़ी विहंगम, ताल लखो तो बेताली।
अंग अंग का नाच निराला, राग छिड़ी गूगों वाली।।
दे दे मार रहे चूतड़ को, वे चबूतरे के ऊपर।
राग रागनी ऐसी जानो, जैसे रोता हो कूकर।।
सस्त हुवे अपनी मस्ती में, बेसुध हो ऐसे नाचे।
उस चबूतरे के नींचे, इक दम धड़ाम से जा पहुँचे।।
पड़े पड़े ही रह गये नाचते, नाच न रूकने में आया।
वहाँ पत्थरों की नोकों ने, छील धरी उनकी काया।।
नागा घायल हुवे वहाँ जब, लोग लगे कहने हमसे।
शान्त करो महाराज इसे नंहि, मर जायेगा छिल छिल के।।
हम बोले नागा जी अब इस, ताण्डव को अपने रोको।
औ चबूतरे पर आकर के, शान्त चित्त होकर बैठो।।
नागा जी सुन कर उठ बैठे, चढ़े चबूतरे के ऊपर।
पर आसन पर नंहि बैठे इस, बार पधारे कुछ हटकर।।
हमने कहा बराबर बैठो, पर नागा अब नंहिं आया।
बोला यहीं ठीक हूँ भगवन, ज्यों आपे में शरमाया।।
मुझ से चूक हुई थी पहले, मैंने तुमको तंग किया।
आप उच्च हैं हमसे भगवन्, ज्यह अब हमने जान लिया।।
हम बोले नागा जी यदि अब, हुक्म आप कहे हम उठ जायें।

स्वयं उठा लेंगे आसन अब, हुकुम आप यदि दे जायें।।
हाथ जोड़कर क्षमा माँग ली, बोला क्षंण की संगति में।
जो आनंद दिखाया हमको, मिला न अब तक जीवन में।।
अपनी तुलना करूँ आपसे, महा राजजी है मिथ्या।
आप आप हैं हम हम ही हैं, भला आपसे तुलना क्या।।

श्री सदगुरू की मेहर ने, नागा कर दिये ठीक।
इज्जत से बैठे रहे, आसन पर निरभीक।।

गंगा सागर के मेले का, पर्व निकट आ पहुँचा था।
सेठ लक्ष्मी नारायण यों, आकर के हमसे बोला था।।
महाराज जी बोलो कितनी, मूर्तियों के टिकिट कटें।
जितनी मूर्तियां हो अपनी, गिन कर सारी बतलादें।।
हमने कहा सेठ जी अपना, साथ बहुत हैगा इस वक्त।
साधु सन्यासी बैरागी, और प्रवाही सब हैं भक्त।।
आप कृपा रक्खें टिकिटों की, अपने आप खरीदेंगे।
जिसको जाना है मेले पर, हर हालत में पहुचेंगे।।
सेठ लगा कहने स्वामी जी, आप फ़िकर कुछ मत कीजे।
यात्रियों को गंगा सागर, के केवल बतला दीजे।।
हमने कहा अभी ठहरो, तो इस जहाज को जाने दो।
जो अपने पैसे से जावे, उन सब को छट जाने दो।।
नत्मस्तक होकर लक्ष्मी, नारायण तो फिर चले गये।
काफ़ी मूर्तियां अपने, पैसों से स्वयं सवार हुवे।।
उस जहाज के छुट जाने के, बाद सेठ जी फिर आये।
वही प्रश्न पहले वाला ही, सेठ पुनः करते पाये।।
इस जहाज को भी जाने दो, उसके बाद बतायेंगे।
स्वयं आप गिन लेना फिर, जितने बाकी बच जायेंगे।।
तीन जहाजों को कह कह के, हमने उनसे छुटवाया।
हर जहाज पर सेठ हमारी, अनुमति लेने को आया।।
महा राज जी कब जाओगे, पूछ रहे पल पल साधू।
भाइ हमारी कुछ मत पूछो, जाँऊ जाँऊ न भी जाऊ।।
यह सुन करके साधू जन सब, बैठ बैठ कर चले गये।
सतरह लोग हमारे ऊपर, पड़े हुवे बाकी रह गये।।
छोड़ दिया जिन मूर्तियों ने, आपा मेरे ही ऊपर।
जब तुम ही नंहि जावोगे तो, वहाँ करेंगे क्या जाकर।।

जहाँ आप हैं वहीं रहेंगे, जाना नंहि कंहि छोड़ तुम्हें।
मौज यहीं लेंगे संगति की, क्या मिलना है वहाँ हमें।।
हमने जान लिया बस अपने, पक्के साथी इतने हैं।
हमने कहा सेठ जी से अब, गिन लो हमको कितने हैं।।
जितने हों गिन करके उनके,टिकिट विकिट अब कटवादो।
जो प्रबन्ध हो सेठ आपके, आज्ञा है अब करवा दो।।
दस रूपया फ्री मूर्ति टिकिट था, टिकिट सत्तरह कटवाये।
बड़े भाव से सादर हमको, वे मेले लेकर आये।।
क्षेत्र खोल दिया आकर उसने, जो चाहे भोजन जीमें।
तीन रोज़ तक अपना सब कुछ, ख़र्चा किया सेठ जी ने।।
बड़े विकट प्रश्नोत्तर होते, रहे वहाँ सत्संग चले।
बड़े धुरंधर विद्वानों ने, आकर उसमें भाग लिये।।
सभा लगी गंगा सागर के, मेले पर अपनी भारी।
सुनने को सत्संग बहुत, ऐकत्रित होते नर नारी।।
सेठ लक्ष्मी नारायण पर, अपना बड़ा प्रभाव पड़ा।
दिन दूना औ़ रात चौगना, भक्ति भाव का रंग चढ़ा।।
आँखें तो काफ़ी खुल गइ थीं, पहले ही सत्संगों में।
लेकिन और खुली मेले के, वाद विवाद प्रसंगों में।।
सेवाऐ दी वहाँ सेठ ने, बड़े भाव से खड़े खड़े।
दिवस तीसरे कलकत्ते को, फिर हम वापिस लौट पड़े।।
रही हाज़री उनकी पक्की, दोनों समय हमारे पास।
सेठ लक्ष्मी नारायण को, हुवा अटल हम पर विश्वास।।
कुछ ही दिन बीते थे हमको, गंगा सागर से आये।
कलकत्ते में शौहरत हो गई, सत्संगी बढ़ते आये।।
एक रोज़ इक ठाकुर अपने, सत्संग को सुनने आये।
सुनते रहे प्रेम से तब तक, जब तक वचन समाप्त हुवे।।
होते ही समाप्त सत्संग के, बैठा आकर अपने पास।
हाथ जोड़ कर बोला हमसे, करने लगा हृदय की बात।।
महा राज जी हमको भी क्या, अपने संग लगा लोगे।
क्या अपने पावन चरणों में, कुछ स्थान हमें दोगे।।
हमने कहा गृहस्थी भाई, सुनकर के कल्याण करें।
लाभ इसी में है गृहस्थी का, ठाकुर जी विश्वास करें।।
उसने आग्रह किया बहुत ही, पर हमने स्वीकृति नंहि दी।
रहे गिड़गिड़ाते घंटों ही, अपने आगे ठाकुर जी।।
थोड़ी देर दुपहरी में हम, सो से जाया करते थे।

बैठा पाया एक महात्माँ, जब हम सो कर के उट्ठे।।
घोटम घोट चेष्टा उसकी, दाढ़ी मूँछ सफ़ा मैदान।
दण्ड कमण्डल पास न कोई, तन पर एक लंगोटी जान।।
कौन दिशा से आए महात्माँ, हमने पूछा उठते ही।
हाथ जोड़ कर हो विनम्र सा, उसने हमसे बतलाई।।
महाराज मैं कहाँ महात्माँ, मैं तो वह ही ठाकुर हूँ।
लेट फिरा चरण में अपने, कहा तुम्हारा सेवक हूँ।।
आश्चर्य की रही न सीमाँ, सर मुँह घोटम घोट हुआ।
बिना बनाये बिना मंत्र के, भला शिष्य ये आ पहुँचा।।
हमने पूछा यह तुमने क्या, किया बिना सोचे समझे।
जब हमने इन्कार किया था, तो तुम क्यों मुंड कर आये।।
अभी नाई से मुँडवाये हैं, इन्हें मुंडा ही रहने दो।
इतनी और कृपा करदो अब, हमें शरण ही में ले लो।।
सेवा में ही रहने दो, महाराज आप अब सेवक को।
हम अवाक् से रह गए उसके, सुनकर ऐसे आग्रह को।।
उसकी पतनी ने जब ऐसी, उसकी लीला सुन पाई।
तो वह इक दम भागी भागी, अपने पास वहीं आई।।
लगी एक ऊधम उतारने, बक बक ज्यों आरम्भ हुई।
बिला वजह ही भीड़ हमारे, आगे आ ऐकत्र हुई।।
हमने देखा जब झंझट, जो देवी जी ने रच डाला।
हम बोले यह काम तुम्हारे, पति ने ख़ुद ही कर डाला।।
हमें किसी भी क़ीमत पर, तेरे पति की दरकार नहीं।
व्रथा किसी को बहकाने को, अपना कारोबार नहीं।।
अपना काम कोइ भी इसके, आने पर नंहि चल सकता।
और न इसके आने पर कुछ, कार्य हमारा रूक सकता।।
तू लेजा अपने को अपने, साथ यहाँ मत गुँजारै।
यहाँ महात्माओं में देवी, कृप्या ऊधम मत तारै।।
वाद विवाद हुवे ठाकुर, ठकुरानी का फिर द्वन्द हुवा।
बड़े फजीते हुवे वहाँ, अच्छा ख़ासा शठ संग हुवा।।
लेतो गई साथ अपने, ठाकुर को ठकुरानी उस वक्त।
लेकिन रूका नहीं वह उससे, आया करता दोनों वक्त।।
सिर्फ़ एक इच्छा रहती थी, यही ही पूछा करता था।
आप यहाँ से कब जाओगे, प्रश्न यही करता रहता।।
अपना जाना सदा छिपाते, रहते थे हम ठाकुर से।
जो जी में आ जाता उल्टा, सीधा उत्तर दे देते।।

कुछ दिन बाद वहाँ से चलने, की हमने ठहरा ही दी।
बड़ा आग्रह किया रोकने, का तय्यारी कर ही ली।।
फैल गई यह बात सभी में, महाराज जी जाते हैं।
रोक रहे हैं प्रेमी जन पर, रूकने में नंहि आते हैं।।
बढ़ा प्रमियों का ताँता, वापिस जाया करते रोते।
कूक निकल जाती कुछ की, कुछ अश्रु बहाते चल देते।।
आख़िर दिन आया चलने का, जमाँ हुवे सब सुंदर साथ।
चला बिठाने हमें, रेल में, कलकत्ते का अपना साथ।।
नैन छलक रहे थे सब ही के, कण्ठ भरे थे सब के।
ह्रदय बहे जाते थे गल गल, चहरे सब ढलके ढलके।।
बात न कर सकता था कोई, उर भर भर कर आ जाता।
जैसे मय्यत के संग हो सब, द्रश्य नज़र ऐसा आता।।
स्टेशन पर भीड़ ग़जब की, ज्यों सागर हो ठाठों में।
ज्यों प्रचण्ड हो उड्डी नदी, पसरी घाटों बाटों में।।
हारों उपहारों से हमको, सब ही ने सन्मान दिया।
विखल ह्रदय से जन समूह ने, आख़िर हमको विदा किया।।
लगे बैठने जब हम अंदर, तो ठहरो की ध्वनि आई।
देखा तो ठकुरानी है जो, भीड़ चीरती हुइ आई।।
आते ही बवकारी हम पर, मेरा मर्द कहाँ है जी।
या तो करो हवाले मेरे, नंहि जाने नंहि देने की।।
बोलो कहाँ छिपा रक्खा है, मेरे ठाकुर को तुमने।
क्या चरित्र दिखलाती हो यह, उत्तर दिया उसे हमने।।
तेरा मर्द हमारे संग क्यों, होता पगली यह बतला।
क्यों झूंठा तूफान लगाती, है यदि साथ नहीं निकला।।
तो फिर अपनी सजा सोच ले, झूंठे लम्पट का अंजाम।
तेरे पति के ले जाने पर, क्या सँवरेगा अपना काम।।
लपक झपक करके देवी झट, डब्बे के अंदर पहुँची।
अनायास डब्बे के बाहर, सबने चींख़ पुकार सुनी।।
कहाँ मुझे जाता है छोड़े, छिपकर बेईमान बता।
यदि फ़कीर अच्छे लगते थे, तो क्यों मुझसे ब्याह रचा।।
हाथ पकड़ कर लगी खेंचने, बड़े जोर का शोर मचा।
हमने जब देखा ठाकुर को, तो इक दम आश्चर्य हुवा।।
हम लजाए उसको लख करके, बस स्त्री बोली हमसे।
कहाँ लिए जाते हो तुम, मेरे पति को बहका करके।।
तुम तो जब अनजान बने थे, क्या नीयत है बतलाओ।

आदमियों को लगी टेरने, अरे कोई जल्दी आओ।।
वह था छिपा सीट की नीचें, लेट रहा था छिपा हुवा।
वहाँ किसी को भी ता कारण, ठाकुर का ना पता चला।।
निकट गये ठाकुर के इकदम, हम जाकर उससे बोले।
क्यों ठाकुर यह क्या हरकत है, इस प्रकार तुम कहाँ चले।।
हाथ जोड़कर बोला हमसे, महाराज जी मत छोड़ो।
साथ लगा रहने दो अब इन, चरनों के मुँह मत मोड़ो।।
हमने कहा उतर जाओ, वह बोला कहाँ चला जाऊँ।
तरस खाओ इतना हम पै, जो चरनों में ही रह पाऊँ।।
क्या रक्खा है इस दुनियां में, जो कुछ है इन चरनों में।
दुख्खों का भण्ड़ार दीखती, दुनियाँ मत ना तजो हमें।।
दया करो मेरे ऊपर अब, नाथ मुझे धक्का मत दो।
मुझे शरण में नाथ चरण की, रहने दो बस रहने दो।।
दुनियाँ प्रभु खाए जाती है, निंगल जायेगी सारे को।
हमने बड़े तरीक़ों से, समझाया उस बेचारे को।।
क्यों कि रेल छुटने वाली थी, उधर रूदन थे औरत के।
हमने देव गिरी को बोला, कुछ निगाह तिरछी करके।।
देवगिरी इसको उतार दो, ड़ब्बे से इक दम नींचे।
देव गिरी ऐसे कामों में, बड़े निपुण थे जा पहुँचे।।
उसे डपट कर कहा एक दम, अच्छा अब नींचे उतरो।
वरना हम धक्के देकर के, कर देंगे नींचे तुम को।।
बहुत हो चुकी पहले अपनी, औरत से जाकर निमटो।
छुटकारे के बाद साधू, सन्यासी से आकर लिपटो।।
खेंच खेंच कर बड़े जोर से, ठाकुर को उसने तारा।
नींचे से भी भाग भाग कर, चढ़ता था वह दोबारा।।
रोता था डकरा डकरा कर, मुझे छोड़ के मत जाओ।
हाथ जोड़ता हूँ स्वामी जी, मुझ पै जरा दया खाओ।।
हमने सान्त्वना दी फिर, भाई जल्दी ही आऐंगे।
सत्य समझना अब कै तुमको, साथ लिवा ले जाऐंगे।।
इन्तजाम अब के चक्कर तक, अपने घर का कर लेना।
बड़े शौक से साथ हमारे, अब के फेरे चल देना।।
गाड़ी लगी सरकने इतने, लोगों ने जयकार किया।
डब्बे पर फूलों का सबने, एक साथ ही वार किया।।
भीगे भीगे डबडबाए से, और टपकते नैंनों को।
छोड़ आए रोते स्टेशन, पर अपने परवानों को।।

हृदय विदारक द्रश्य देख यह, हमको भी रोमान्च हुआ।
अपने जब छूटे अपने से, टुकड़े टुकड़े हृदय हुवा।।

बूँदों से नदियाँ बनी, नदियों से सागर भर गये।
चोट बिछुड़न की, लगी ऐसी कि हम भी मर गये।।

आए मुजफ्फर पुर कलकत्ते, से हम चलने के पश्चात्।
उसके बाद गये मुतिहारी, केवल रूके एक ही रात।।
सीता मढ़ी जनक पुर पहुँचे, उसके बाद गये रूखसौल।
पशु पति नांथ नाम से मेले, का आयोजन था नैपाल।।
ख़ाबर मिली जैसे ही हमको, चलने के सामान हुवे।
पशु पति के मेले की ख़ातिर, तीनों के प्रस्थान हुवे।।
कई दिनों की यात्रा करके, इक दिन जा पहुँचे नैपाल।
लेकिन वहाँ पहुँचकर देखा, बेढ़ब भीड़ बुरा था हाल।।
कहीं खड़े होने तक को भी, मेले में स्थान नहीं।
थक थक चूर चूर थे टाँगों, में बिल्कूल भी जान नहीं।।
चारों तरफ घूम कर देखा, जगह न पाई टिकने को।
औ शरीर की यह हालत थी, जैसे हो अब गिरने को।।
साधू ही साधू दिखता था, जहाँ नज़र जाती अपनी।
आलम फैला हुवा पड़ा था, जगह न थी तिल रखने की।।
केवल एक जगह ख़ाली थी, जहाँ बैठते नृप नैपाल।
उसके चारों ओर खड़ी थी, ऊँची बल्ली की दिवाल।।
राजा के अतिरिक्त अन्य को, आज्ञा वहाँ न घुसने की।
फिर कैसे मिल जाये इजाज़त, उसमें भला ठहरने की।।
हम धक्के खाते फिर रहे थे, इक मखौल में बोला साध।
जगह आपके लिए पड़ी है, ख़ाली वह देखो महाराज।।
मर तो लिये हि थे हम थककर, बोले हम भइ देवगिरी।
चलो वहीं ठहरेंगे चल कर, भुगतेंगे जो गुज़रेगी।।
फाँद फूँद कर हम तीनों बल्ली, हाते में जाकर बैठे।
दो प्यादे कुछ देर बाद, दौड़े आए ऐंठे ऐंठे।।
आप यहाँ ठहरोगे क्या, हम बोले भइया क्या कहदें।
जगह न मिलने के कारण, कुछ देर यहाँ आ बैठे हैं।।
आप जगह बतलादोंगे तो, देर न होगी उठने में।
हम तो मजबूरी बैठे हैं, दम न रहा जब घुटने में।।
वे तो चले गये सुनकरके, अन्य और दो आये फिर।

ऐसे लगते थे वे जैसे, हों सिपाहियों पै अफ़सर।।
आकर प्रश्न किया पहला सा, आप यहीं ठहरेंगे क्या।
थक कर बैठ गये हैं बाबा, ठहरे तो हम नहीं यहाँ।।
पशुपति का दरबार देखने, आये हैं यदि देख सकें।
क्यों कि यहाँ लाले पड़ रहे हैं, जगह बैठने तक की के।।
ज़िद तो हमें किसी से है नंहि, जगह बतादें हमको आप।
दण्ड कमण्डल उठा तत्क्षण, चल देंगे उठकर चुप चाप।।
उत्तर बिना दिये कुछ हमको, चले गये दोनों सुनकर।
बार तीसरी उनसे भी दो, बड़े और आये अफ़सर।।
चिन्न्ह अफ़सरी उन लोगों के, कंधों पर थे लगे हुवे।
उच्च कोटि की वर्दी में वे, अफ़सर गंण थे सजे हुवे।।
महाराज क्या आप यहीं, ठहरेंगे वे बोले आकर।
हम बोले दो दफ़ा बतातो, चुके आपको समझा कर।।
जगह बैठने तक को नंहि जब, मिली व थककर चूर हुवे।
बैठ गये थक कर आख़िर, क्या करते जब मजबूर हुवे।।
जगह आपकी उठा नहीं ली, बोलो कहाँ चले जावें।
जगह बतादो साहब हमको, ताकि अभी हम उठ जावें।।
वे बोले कितने साधू हो, हमने कहा तीन हैं हम।
अच्छा आप यहीं ठहरो, विश्राम करो तीनों ही तुम।।
इनको रसद यहीं पहुँचाओ, प्यादों को आदेश दिये।
तत्पश्चात् आज्ञा देकर, दोनों अफ़सर चले गये।।

फिर तो अच्छी तरह फैल गए, हम तीनों जन के आसन।
जो मखौल कर रहे थे साधू, हमें देखके हुई चुभन।।
लगे ख़ुशामद करने अब वे, महाराज किरपा करके।
आप हमें भी वहीं बुलालो, बड़ी दया होगी हम पै।।
यहाँ प्राँण निकले जाते हैं, इस महान धिचपिच के बीच।
हमने उन्हें इजाज़त देदी, आ सकते हैं आप समीप।।
हमसे पूछ पूछ कर साधू, काफ़ी पहुँच गये नज़दीक।
बड़े मौज से रात बिताई, हम सब लोगों ने निर्भीक।।
अगले दिन ही पर्व दिवस था, सो वह भी आरम्भ हुआ।
स्वयं दान बाँटा करते, मिलकर महारानी महाराजा।।
महाराज नैपाल चंद्रशम, शेर जंग गद्दी पर थे।
आप पाँच सरकार नाम से, भी सम्बोधन होते थे।।
बाद पर्व के साधु महात्माँ, को राजा ने दान दिया।
रानी राजा दोनों ने ही, मिलकर सब को विदा किया।।

बरतन, कम्बल, वस्त्र रूपय्या, जो माँगा जिसने उनसे।
वह सहर्ष उसको बरताया, महाराज ने निज कर से।।
सब के बाद हमारा नम्बर, आया तो हम भी पहुँचे।
आप कहाँ से आये हैं, महाराज, महाराजा बोले।।
कलकत्ते से इधर आए हैं, यहाँ से मेरठ जायेंगे।
महाराज बोले जो इच्छा, हो बोलो, दिलवायेंगे।।
हम बोले थी हमको इच्छा, सिर्फ़ आपके दर्शन की।
महाराज सो पाये हमने, इच्छा कोई नहीं बाक़ी।।
सेवक को आज्ञा दी फ़ौरन्, इनको दो रूपया दे दो।
हम बोले महाराज करेंगे क्या, रूपयों का ले करके।।
ना कुछ कभी ज़रूरत पड़ती, ना हम पास इन्हें रखते।
हमें आपकी दर्शन इच्छा, थी महाराजा मुद्दत से।।
महाराज बोले अच्छा इन, तीनों मूर्तियों का ध्यान।
रक्खा जायेगा तब तक, जब तक हैं सीमा के दरम्यान।।
हम तीनों के नाम रजिस्टर, में राजा ने चढ़वाये।
तत्पश्चात् विदा लेकर के, हम अपने रास्ते धाये।।
सुल्फ़ा गाँझा काफ़ी मंदा, वहाँ प्राप्त हो जाता था।
थोड़ा बहुत वहाँ से पीने, वाला ले भी आता था।।

किसी साधु के पास पाव था, और किसी पै दो पव्वा।
थोड़ा बहुत सभी के पल्ले, बंधा हुवा था दुब कव्वा।।
हम भी दो तोले अंदाज़न, गाँझा लिये हुवे थे साथ।
यह अपने सदगुरू साहिब ने, बख्शी थी हमको सौगात।।
इसे ज्ञान बल्ली कहकरके, सदा पुकारा करते थे।
चित्त एक हो जाता इससे, यह बतलाया करते थे।।
ज्ञान पूर्ण सीमापर इसके, ज़रिये से हो जाता है।
होकर के साकार लक्ष्य, इकदम सन्मुख आ जाता है।।
सैर किया करते इस ही के, बल से परमधाम की रोज़।
करते रहते इस ही के, भीतर बैठे पीतम की खोज।।
चलें बैठकर जिस मोटर में, गाँझा था सब ही के पास।
सरहद पर नैपाल राज्य की, चौकी आती थी इक ख़ास।।
जहाँ तलाशी होती सब की, रोक रोक हर मोटर को।
नंगा झाड़ा लेकर के तब, जाने देते थे घर को।।
काफ़ी मोटर खड़ी हुई थीं, जब अपनी मोटर पहुँची।
जब हम पहुँचे तो सिपाहियों, ने अपनी मोटर रोकी।।
सब की लेते थे तलाशियाँ, मोटर के अंदर जा कर।

झट उतार लेते थे नींचे, पल्ले में गाँझा पाकर।।
और जेल खाने को इकदम, उसे हाँक देते तत्काल।
डरे हुवे बैठे थे अंदर, लोग देखकर ऐसा हाल।।
एक सिपाही अपनी में भी, घुसा तलाशी लेने को।
जने जने से उसने अंदर, कहा तलाशी देने को।।
तीन चार के बाद हमारे, निकट तलाशी को आया।
हमसे कहा तलाशी दे दो, हमने सब कुछ दिखलाया।।
कुछ सामान न रखते थे हम, सिर्फ़ एक बटुवा था पास।
उसने उसे देखने की, ख़ातिर फैलाया अपना हाथ।।
बोला इसमें क्या है बाबा, हमने कहा ज्ञान बल्ली।
वह बोला यह क्या होता है, हमको ज़रा दिखादो जी।।
हमने वह गाँझा निकालकर, उसके कर में पकड़ाया।
इसे ज्ञान बल्ली कहते हैं, हमने उसको बतलाया।।
इसी ज्ञान बल्ली की ख़ातिर, घूंम रहे हैं हम सारे।
अपने बाद टटोले उसने मोटर, में न्यारे न्यारे।।
सब पै थोड़ा थोड़ा निकला, फिर बोला बोलो महाराज।
अब क्या करें आपके संग हम, तुम्हें उतरना होगा आज।।
कहीं ले चलो हमको हम, इकदम उस से ऐसे बोले।
जहाँ जाँयेगे वहीं मौज है, कहीं नहीं बच्चे रोते।।
साधू होके भी भय खाया, क्या साधू पन है उसका।
साधू जो होता हर हालत, मैं वह ख़ुश ही ख़ुश रहता।।
उसने कुछ सोचा सुनकरके, बोला अच्छा जी महाराज।
एक शर्त पर छोड़ सकूँगा, अगर दुआ दें मुझ को आप।।
वरना सब पकड़े जाओगे, जेल भुगत सकते हो सब।
यह मोटर छुड़वा सकता हूँ, अगर दुआ दो मुझको अब।।
हम बोले यदि यह इच्छा है, तो फिर हम सब मिलकर के।
दुआ हृदय से देंगे सब, पर मोटर छुड़वादो पहले।।
छुड़वाने से पहले कुछ नंहि, मिल सकता यह ध्यान रहे।
पहले जँचादो के हम, सारे साधू छूट गये।।
अच्छा कहकर खड़ा रहा वो, वहाँ और अफ़सर भी थे।
जब आये अपनी मोटर पर, इसे और देखो बोले।।
तो वह बाबू बोला साहब, इसको देख चुका हूँ मैं।
कुछ भी नहीं मिला मोटर की, साहब मुझे तलाशी मैं।।
अफ़सर लोग चले गए सुनकर, बोला वह इसके पश्चात्।
अब तो मुझे दुआ दे दो सब, रखकर मेरे सर पर हाथ।।

हम बोले सब साधु जनों से, भाई इसे दो सब आशीष।
आशीर्वाद दिया सब ही ने, मन से अपने विस्वेबीस।।
जीवन में तुम सुखी रहोगे, होय तरक्की सरविस में।
सब ने सर पर हाथ फिराया, मोटर चलदी इतने में।।
भारत की सरहद पर आकर, मोटर को हमने छोड़ा।
अब हमने आरम्भ करी फिर, अपनी वही पैदल यात्रा।।
मैदानों में लगे विचरने, पर्वत छोड़ दिये पीछे।
मन में धुकड़ पुकड़ कुछ उपजी, अपने प्रति रामा नंद के।।
जैसे कहीं हमें मरवा या, पिटवा देंगे ये महाराज।
चाह रहे पीछा छुट जाये, हमसे रामानंद महाराज।।
पता नंहि कब किस गति में, पड़वादें यह भय रहता था।
कई दिनों से रामानंद कुछ, उखड़ा उखड़ा रहता था।।
अतः एक दिन कह ही बैठे, हम से रामानंद महाराज।
अन्य कहीं अब विचरेंगे अब, हमें आज्ञा देदो आज।।
विदा हुवे रामानंद हम से, देव गिरी रहे अपने साथ।
नदी कुट कुटा के तट पर हम, ठहरे कई दिनों के बाद।।
सिर्फ़ एक मंज़िल बाक़ी, लखनऊ रहा वहाँ से आगे।
ठहरे हम उस ही नद्दी पर, थे हम बड़े थके माँदे।।

थकन उतारी राह की किया वहाँ विश्राम।
उस नद्दी के तीर ही बसा हुआ था ग्राम।।

वहाँ एक ठाकुर साहिब, जो वृद्ध आयु के थे काफ़ी।
ग्रहस्थ भोगने में उनके, कुछ शेष रहा नंहि था बाक़ी।।
आकर लगे प्रार्थना करने, महाराज यदि किरपा हो।
तो इस सेवक को भी अपनी, संगति में कुछ दिन रखलो।।
हमने कहा आज्ञा लेकर, घर की तब रह सकते हो।
जब तक घर से नहीं छुटोगे, हरगिज़ नंहि रह सकते हो।।
वह बोला तो अभी आज्ञा, घर की लेकर आता हूँ।
काम नहीं कुछ भी देरी का, अभी बिस्तरा लाता हूँ।।
चला गया घर ठाकुर कहकर, साँयकाल तक आ पहुँचा।
जब आया घर से तो उसकी, एक बग़ल में बिस्तर था।।
अपना था प्रोग्राम रेल से, चलने का प्रातः आगे।
अगले दिन ले ले आसन, स्टेशन की जानिब भागे।।
चले जा रहे थे स्टेशन, सड़क सड़क हम तीनों जब।

कुछ ही दूर रहा होगा, हम तीनों से स्टेशन तब।।
उस ठाकुर की बुढ़िया मिल गइ, बाट जोहती थी बैठी।
लड़के को भी साथ लिये थी, हमें देखकर उठ बैठी।।
हम आगे थे ठाकुर पीछे, इकदम बोला ग़ज़ब हुआ।
महाराज बुढ़िया बैठी है, अपना सत्यानाश हुआ।।
हम बोले तो हम क्या जानें, अपने मल को आप समेट।
हम से तो कहता था आज्ञा, लेली है अब क्या है देख।।
ठाकुर बोला थी तो यों ही, जब हम आगे से गुज़रे।
बुढ़िया उठी भड़क कर इकदम, कहाँ जा रहा है क्यों रे।।
मुझे कहाँ छोड़े जाता है, तू तो बना महात्माँ जी।
कुछ मेरा भी ध्यान किया यहाँ, मेरे संग क्या बीतेगी।।
उनको लड़ते छोड़ वहीं, दोनों हम पहुँचे स्टेशन।
गाड़ी आने में देरी थी, जाके बिछा लिये आ सन।।
घंटों बाद झगड़ झगड़ाकर, अपने पास वहीं पहुँचे।
लड़का उसका समझदार था, जाकर के हम से बोले।।
अजी पिता जी को मेरे, महाराज आप ही समझादें।
हम बोले बोलो तेरे, बुड्ढे को हम क्या बतलादें।।
उसने साथ हमारे चलने, की हम से आज्ञा चाही।
हमने कहा आप पहले, घर से आज्ञा ले लो भाई।।
घर वाले राज़ी होवें यदि, तो तुम इन्तज़ाम करलो।
वरना साथ हमारे जाने, का ठाकुर जी नाम न लो।।
उमर ठीक थी बात कोइ नंहि, हमने आज्ञा दे दी थी।
भगवत भजन इसी आयू में, करते हैं अक्सर भाई।।
लेकिन भइया मुझे आपके, घर में शान्ति नहीं दिखती।
काम वही उत्तम होता है, जिसको सम्मति बतलाती।।
जिसका पुत्र योग्य हो करके, धन भी ख़ूब कमाता हो।
उसका पिता तीर्थ यात्रा तक, करने जा नंहि पाता हो।।
बात बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण है, सुख्ख मिला संतति से।
वृद्ध अवस्था में भी जो ना, निकल सके इस ग्रहस्ती से।।
लड़का बोला महाराज जी, मैं बाधा नंहि डाल रहा।
आप हमारी माँ को समझा, दो तो यह अच्छा होता।।
हम बोले बुढ़िया से माता, तुम को क्या आपत्ती है।
इस बूढ्ढे से काम आपको, लेना क्या अब बाक़ी है।।
बुढ़िया बोली कोइ काम नंहि, पर घर से क्यों जाते हैं।
परमात्माँ का नाम अगर, लेना है घर ले सकते हैं।।

हम बोले जो लोग यात्रा, करते हैं क्या पागल हैं।
घर छोड़े और पैदल घूमें, उनमें बुद्धी नहीं है क्या।।
मन पवित्र होता यात्रा से, तीर्थों में जाकर आसक्त।
महात्माओं के दर्शन करके, पापी भी बन जाते भक्त।।
शक्ति नाम लेने की घर घर, भ्रमण करे से आती है।
लिपटी हुई आत्माँ वरना, माया में रह जाती है।।
तुम अब रोड़ा क्यों बनती हो, इसके रस्ते में माता।
ग्रहस्थी तक ही तो था इनका, और आपका यह नाता।।
अब तक ठीक चलाई ग्रहस्ती, अब पर लोक सँवरने दो।
इनको आगे की ख़ातिर भी, माता जी कुछ करने दो।।
बनते नहीं महात्माँ ऐसे, इतना हल्का काम नहीं।
घबराओ मत घूम धामकर, आन मिलेंगे तुम्हें यहीं।।
इन्हें महात्माँ खा न जाँएगे, तुम इससे बे ख़ौफ़ रहो।
इनको अब अपनी इच्छा, पूरी करने को ख़ुद कहदो।।
अपने वचन श्रवण करते ही, बुढ़िया माता शान्त हुई।
पाँच रूपय्ये देकर उनको, ख़र्चे के आज्ञा देदी।।
माँ बेटे दोनों प्रणाम कर, के अपने से विदा हुवे।
हम भी बैठ रेल में तीनों, आख़िर अपनी राह लगे।।

मेरठ आकर रेल से नींचे रक्खा पैर।
हेर हमारा आ गया चलेंगे करते सैर।।

सड़क चढ़े जाकर रौहटे की, निकल चले पैदल पैदल।
दिन छिपने से पहले पहले, बाड़म तक नापी मंज़िल।।
संध्या काल निकट काफ़ी था, जब गुज़रे उस गाँवों से।
तो हमसे कुछ भक्त मार्ग ही, मैं थे आकर के बोले।।
बाबा लोगों यहीं ठहर लो, क्या यह नहीं आपका गाँव।
हम भी कुछ सेवा करलें जब, आ ही गये आपके पाँव।।
सुन कर नम्र निवेदन उनका, हमने टेक लिये आसन।
आ आ करके लगे बैठने, अपने पास बहुत सज्जन।।
चिलम पियोगे क्या बाबा जी, एक लगा कहने हमसे।
हाँ भाई पीते तो हैं, झट, भाग पड़ा इक इकदम से।।
चिलम लगे पीने जब, हमसे, लगे पूछने वे सट्टा।
हम बोले हम नहीं जानते, क्या होता सट्टा बट्टा।।
हम तो वक्त काटते फिरते, भइया नहीं कहीं के पीर।

ये हैं काम सिद्ध लोगों के, सट्टे वाले नहीं फ़कीर।।
काफ़ी देर मग़ज़ पच्ची की, पूछे गए सब सट्टे बाज।
विदा हुवे जब नज़र न आये, उन्हें सँवरते अपने काज।।
रह बैठे हमीं अकेले, उड़ गए सारे पत्ता तोड़।
माल बताते तो उनके थे, वरना भाग गये सब छोड़।।
किसका टिकना किसे टिकाना, ग्राहक अपना था ही कौन।
उठा कमण्डल और कमलिया, चले वहाँ से उठकर मौन।।
अगले गाँव टिके फिर जाकर, बाड़म में हम टिके नहीं।
वहीं रात काटी जा करके, रटते रटते धनी धनी।।

प्रातः उठ करके चले, पकड़ी अपनी राह।
आन मजाहिद पुर रूके, दर्शन की थी चाह।।

ठाकुर देव गिरी को संग ले, जब मजादपुर आ पहुँचे।
इक चबूतरा पटवारी का, था हम उसपै जा बैठे।।
कोई इधर से कोइ उधर से, आते और निकल जाते।
बात न पूछी वहाँ किसी ने, दिखते सब आते जाते।।
बोले देव गिरी जी हमसे, आज्ञा हो सिलगालें आग।
उपले मगर चाहियें पहले, पहले भिक्षा की है बात।।
कली राम इक व्यक्ति वहाँ का, आता था बोले महाराज।
देव गिरी तुम इससे माँगो, यह कर देगा तेरे काज।।
उसे रोक कर कहा उन्होंने, वो ले गया विटौड़े पर।
दो लेकर जब चले महात्माँ, उसने कहा टोकरा भर।।
कह दो तो हम वहीं डालदें, देव गिरी ने मना किया।
ज़्यादा हमें नहीं लेने हैं, बस दो ही का हुकुम दिया।।
चिलम विलम पीते रहे अपनी, रात बिताई वहीं पड़े।
किन्तु गाँव के किसी व्यक्ति ने, रोटी के लिए नंहि पूछे।।
राज वाहे में न्हाये प्रातः, औ अपना नित नेंय किया।
एक पात्र में रख प्रशाद कुछ, देवगिरी के हाथ दिया।।
उपले लाये आप जहाँ से, उस घर में देकर आओ।
जो भी तुमको मिले वहाँ पर, उस ही को पकड़ा आओ।।
देव गिरी जी गये वहाँ पर, कली राम की बहन जहाँ।
माई लो परशाद, महात्माँ, इस प्रकार जाकर बोला।।
देवी ने इन्कार किया झट, महात्माओं का नंहि खाते।
उल्टा इन्हें खिलाते हैं हम, उनका भोजन नंहि पाते।।

देव गिरी झट उल्टे लौटे, महाराज को बतलाया।
देवी ने इन्कार किया है, देना चाहा नंहि पाया।।
साथ साथ परसंदी भी थी, एक वहाँ पर थी चौपाल।
देव गिरी जब उल्टा लौटा, तो उसको कुछ हुआ ख़याल।।
क्यों लाया परशाद महात्माँ, क्या कारण जो देता था।
ऐसे तो लाता नंहि कोई, इसमें क्या है भेद छिपा।।
खड़ी हुई परसंदी आकर, देख रही थी खड़ी खड़ी।
हम चबूतरे पर बैठे थे, उसकी हमपै नज़र पड़ी।।
कर रही थी कोशिष के जानूँ, क्यों लेकर पहुँचा परशाद।
जीवन नम्बरदार वहाँ से, गुज़र रहा था पूछी बात।।
परसंदी क्यों खड़ी हुई है, वो बोली ये बाबा जी।
देने को परसाद गये थे, घर पर मेरे चाचा जी।।
सो इनको पहचान रही हूँ, कोई हमारे क्यों जाता।
अन्य महात्माँ कोई क्यों, परसाद हमारे भिजवाता।।
हो ना हो झण्डू हो चाचा, देवगिरी ने इतने में।
किया आँख का उसे इशारा, समझ लिया जो देवी ने।।
बड़ी भक्त थी अपनी देवी, श्रद्धा की सूरत साक्षात्।
रोने लगी ख़ुशी के मारे, महाराज हैं हो गए ज्ञात।।
लगा ठट्ठ गावों वालों का, सुना आगमन जब अपना।
छोटा और बड़ा गाँवों का, हम तक पहुँचा जना जना।।
था बूआ का गाँव हमारी, बचपन यहीं कटा अपना।
हर इक से थी प्रेम मोहब्बत, था घर से ज़्यादा अपना।।
भानी और रतन दोनों ही, अपने प्रेमी थे पिछले।
भागे चले आए दोनों सुन, आकर हमसे गले मिले।।
थे बूआ के पूत भाई वे, नाते में लगते अपने।
उनके यहाँ ब्याह था कोई, रोक लिया हमको आके।।
उसी रोज़ था मंढा ब्याह का, ठहरा दिया चौहानों में।
वक्त जीमने का जब आया, बुलवाया उस वक्त हमें।।
पहुँचे सभी जीमने उस घर, मंगत के मन उट्ठा भाव।
झण्डू फिरा जीमता सब कै, चौके में क्यों कर ले जाऊँ।।
पंडित सभी इकट्ठे होंगे, भ्रष्ट सभी का हो ईमान।
बोल न बैठे कोई पंडित, सभी तरह के हैं इन्सान।।
नज़रें बता रही थीं जैसे, कर डाला हमने अपमान।
रिश्तेदारों के सन्मुख, बैठेंगे होगी नींची शान।।
पल्ले क्या है एक लंगोटा,मान मर्तबा घटा दिया।।

हैं मामा फूफी के भाई, क्यों कर सबसे जाए कहा।
चौका बिगड़ जायगा अपना, घर में हम जिसदम पहुँचे।
एक खोर थी वहाँ भेंस की, उसके ऊपर जा बैठे।।
चौके में ले जाना चाहा, औरों ने हम को अंदर।
नहीं यहीं जीमेंगे हम तो, चौके से रक्खो बाहर।।
पंडतों का चौका बिगड़ेगा, क्यों कि लंगोटे हैं हम तो।
इनकी बात बिगड़ जायेगी, यहीं जीमना है हमको।।
भैंस जहाँ बंधती थी उनकी, उसी जगह जीमा हमने।
पश्चाताप हुवा मंगत को, बोल सुने जब वे उसने।।
दिल की बात जान ली मेरी, मंगत जी ने पकड़े कान।
इनसे अब कुछ छिपा नहीं है, ऐसे लिया उन्होंने जान।।
बहुत आग्रह की अंदर की, पर हम जीमें बाहर ही।
ले चलना चाहा बारात में, पर हमने इन्कार करी।।
कुछ दिन रहकर चले गये हम, गाँव जड़ौदा को अपने।
महाराज फिर जल्दी आना, हमसे सबने वचन लिये।।

छोड़ आए जिस घर को उस ही घर की ओर चले।
फिरता था खेंचे कोई हम फिरते खिंचे खिंचे।।

ब्याह योग्य हो गई सुता जब, चर्चा रहती धर भर में।
लड़की है जवान बोलो अब, इस कारज को कौन करे।।
छोड़ भगे घर झण्डू दत्त तो, मर गए या कंहि जीवित हैं।
रब जाने इसको तो केवल, लेकिन दुख्ख असीमित हैं।।
घर का भार सिर्फ़ पत्नी पर, फटकारें भी पत्नी पर।
कोई नहीं जो बाँटे दुख को, दिखता न था कोई सर पर।।
बूल चंद थे मस्त अपनी में, कुनबा अपनी अपनी में।
लावारिस की भाँति समझ लो, कहने वाले सभी इन्हें।।
शब्द बहुत ढंगे बे ढंगे, आ आकर कह जाते लोग।
निज पत्नी को सुनने पड़ते, आन बना ऐसा संयोग।।
घर पर मुखिया नकली पंडत, चचा ज़ाद भाई अपने।
साथ साथ पैसे वाले भी, लेन देन भी करते थे।।
इधर अगर ख़र्चें वे पैसे, वापिस उनको कौन करे।
सिर्फ़ समस्या थी तो यह थी, कारज सिर यह कौन धरे।।
अपना उनको पता नहीं कंहि, मर गये कहीं यही निश्चय।
इसी बात पर चूड़ी बिछुवे, विनश चुके थे पत्नी के।।

ज़ोर दिया नकली पंडित पर, लोगों ने जा जा करके।
बूल चंद जी को भी कहते, फेरे फेरो लड़की के।।
बात अटकती थी ख़र्चे पर, मुँह बिल्ली का पकड़े कौन।
सख़्त सुस्त सुनने को पत्नी, सुनती रहती सब की मौन।।
सधवा होकर भी विधवा का, पतनी ने आनंद लिया।
मिला न सुख दाता कोई भी, मिला जो, उसको दुख्ख दिया।।
अतः ख़र्च के भय से कोई, बटा न पाया इसमें हाथ।
गाँव भरे में चर्चा रहती, हर मुँह पर रहती यह बात।।
क्वारी कन्या रहे गाँव में, नाँक गाँव भर की जाती।
इसी लिये यह बात गाँव में, किसी आँख भी ना भाती।।
बहुत खड़ी हुइ तुल करके जब, लड़का तय था लड़की को।
ब्याह करो इस ही साये में, कहा सभी ने कुनबे को।।
ज़ोर पड़ा नकली पंडित पै, क्यों के पैसे वाला था।
कहने लगा किसे दूँ पैसा, ज़िम्मेदार कौन इसका।।
बूल चंद जी को कहते सब, अपने भाई के पश्चात्।
तुम ही तो हो और न कोई, तुम ही दोगे इसमें हाथ।।
वे कहते अपनी भाभी को, घर के घर रह जाती बात।
क्या उत्तर दे सकती भाभी, नाज़ुक थे घर के हालात।।
पले न जाने कैसे बच्चे, कैसे कैसे काम चला।
झेलै किस प्रकार इक औरत, कारज ब्याहों का ख़र्चा।।
सम्वत् उन्निस सौ चौरासी, था जिसदम हम घर आये।
सात साल के लगभग बाहर, रहकर घर वापिस आये।।
अनायास जा खड़े हुवे हम, घोषित था मैं ख़ात्म हुआ।
मानों मुर्दा जी उट्ठा हो, जिसने सुना यही समझा।।
बैठ गये हम पहुँच जूड़ में, हल्ला मचा जड़ौदे में।
भाग भाग आये अपने ढिंग, चर्चा अपनी हर मुँह में।।
अति उत्तम हो गया हितैषी, जन के मुँह पर थी आवाज़।
जिसका पाप बाप उस ही का, आप सिंभाले अपना काज।।
हम पै थी बस एक लंगोटी, कमली और कमंडल एक।
ना झोली ना बटुआ कोई, ऐसा कोइ न संग अलवेस।।
जिसमें दाम दुक्कड़ी रखते, दिखते ही होता अनुमान।
फूटी कौड़ी एक न पल्ले, पल भर में हो जाता ज्ञान।।
कहा किसी ने जा पतनी से, खुश हो अब आ गए भरतार।
अब बटुआ भर देंगे तेरा, कर कारज अब खूब संवार।।
दर्शन तो कर आ जा करके, सात वर्ष में आये हैं।

दर्शन से ही जँच जायेगा, कितना धन संग लाये हैं।।
गंगा राम चचेरे भाई, के मुह से इक दिन निकला।
ब्याह व्याह क्या होगा खिचड़ी, रंधवाकर खिलवा देगा।।
हमने भी सुन ली थी अपने, भाइ साहब की ऐसी बात।
सुनकर बोले नहीं किन्तु हम, रहे हमीं में अवख़ारात।।
बात नहीं थी एक चोट थी, लगा नमक सा जख़्मों पर।
दर्शन कर सोची पतनी ने, कब तक शर्म करू आख़िर।।
अतः जूड़ में पहुँची मिलने, हटे सभी ऐकान्त हुवा।
अपना अपनी शिरो मति से, इक संदिग्ध मिलाप हुवा।।
दर्श पर्श उपरान्त पत्नी ने, ऐसे हमसे प्रश्न किया।
क्या लाए हो मेरी ख़ातिर, दो आगे को हाथ किया।।
आप कमाने गये हुवे थे, बहुत लाए होंगे धन साथ।
सुता आपकी ब्याहने को है, लाओ किया फिर आगे हाथ।।
बोले हम अपनी पतनी से, पतनी का धन पति होता।
भेजो शुकर श्री सदगुरू को, मरा हुवा फिर आन मिला।।
ऐसा हुवा न होगा आगे, दिया तुझे जो सदगुरू ने।
तू तो रांड हुई बैठी थी, चुड़ी बिछुवे तक उतरे।।
अब भी धन ही धन चिल्लाती, तेरे लिए हमीं हैं धन।
पती व्रताऐं कभी न हमने, सुनीं कि होती हैं निरधन।।
घर में बैठ और जाकर के, सदगुरू सदगुरू कर पगली।
क्या लेगी धन के चक्कर में, हमसे अलग सभी नकली।।
ब्याह देख कर चक्कर खा गइ, क्या सम्बंध और क्या ब्याह।
जिसका काम करेगा खुद वह, सब का करते जो निर्वाह।।
कर प्रणाम पतनी उठ आई, समझ न पाई अपनी बात।
जिस लालच वश वहाँ गई थी, वह तो चीज न आई हाथ।।
जिसका लक्ष्य जहाँ होता है, वही चीज गर मिलती है।
काम हुवा वह तभी समझता, वरन निराशा दिखती है।।
दर्द पेट में दवा आंख में, उसे डाक्टर कौन कहे।
पर हकीम ऐसे ही थे गुरू, क्या मज़ाल जो दुःख रहे।।
धन की भूक भला बातों से, कहीं शान्त हो पाई क्या।
बातों ही बातों से किचिंत, जग का काम नहीं चलता।।
थी पुकार वह एक फ़र्ज की, भरत सिंह पंड़ित पहुँचा।
पहले बात करी पतनी से, माता जी कुछ भेद खुला।।
आप कर चुकीं बातें उनसे, क्या कहते हैं गुरू महाराज।
पैसे धेले दिये तुम्हें कुछ, कुछ तो खोलो उनका राज।।

छलक उठी अंखिया पतनी की, पल्ले कोड़ी एक नहीं।
ज्ञान चाहे जो ले लो जाके, पैसा बारह कोस नहीं।।
क्या फ़कीर होकर आ बैठे, घर का घर फ़कीर है अब।
जिसके बच्चे फ़िकर उसे हैं, उनका उत्तर यह है अब।।
उनका कारज और करेगा, भइया मत पूछै बस बात।
दोनों जाँगें अपने ही हैं, जिसे उघाड़ो मरना लाज।।
सुनकर के पतनी से इतनी, चोट लगी मजबूरी की।
कारज उधर चढ़ा बैठा सर, उसने मिलने की सोची।।
इकले हों जिस समय मिलूँ तब, लगा ताक में मौके की।
अर्ध रात्रि उपरान्त गया वह, हमसे जाकर चर्चा की।।
महाराज जी कैसे हो अब, सुनने लगे ग़ौर से हम।
लड़की शादी को बैठी है, कैसे हो बोलो कुछ तुम।।
काम आपका आप करेंगे, बोले हम भइ ब्याह करो।
जो होना हर हालत होना, उसके लिये न देर करो।।
बोला वह तो चिट्ठी दे दे, बोले हम बिल्कूल दे दो।
ख़र्चे की कैसे होवेगी, कहने लगे अरे पगलों।।
जिसका काम करेगा खुद वो, अन्य न कोई कर सकता।
दुनियाँ से अपने नंहि होते, औरों का क्यों कर होगा।।
की प्रणाम अपने पग लेकर, अपने घर वापिस आया।
उसने म्हारे घर कुनबे को, संदेशा यह पहुँचाया।।
चिट्ठी दो शादी की फ़ौरन, आप करेंगे गुरू महाराज।
नकली पंड़ित से बोला वह, चिट्ठी दो शादी की आप।।
ऐकत्रित हो चार आदमी, शादी की चिट्ठी दे दी।
रहें आप मूदी शादी के, नकली पंड़ित को कहदी।।
हर हिसाब शादी का रक्खो, दिया जायेगा पैसा सब।
हम इक दम ले लेंगे उनसे, चिंता कोइ न करना अब।।
उनसे बातें सब हो ली हैं, स्वयं करेंगे गुरू महाराज।
दुनियाँ से अपने नंहि होते, ये हैं सदगुरू के अलफ़ाज।।
धरा ज्यों हि दिन समझो आया, बाक़ी रहे आठ दिन अब।
घर वाले बोले के पैसा, लाओ कार्य यह होगा तब।।
पैसे का जवाब पैसा है, बातें पेट न भर सकतीं।
मालिक तो फ़कीर है भाई, अपनी समझ नहीं आती।।
उसपै सिर्फ़ लंगोटी है इक, रक़म कहाँ से दे देगा।
वह हमसे ली नहीं जायेगी, वह निकाल कर दे देगा।।
घर कुनबे के नाते से हम, खड़े हुवे हैं अलबत्ता।

पर भइया रूपया पहले दो, यों अपने नंहि है बसका।।
फिर पहुँचा वह पास हमारे, महाराज जी कैसे हो।
पंदरह दिन शादी के रह गये, वे कहते हैं पैसा दो।।
इन्तज़ाम जितना हो पल्ले, दे दो ताकि काम आवे।
जो सामान जरूरत का है, वह बाजार से आ जावे।।
बैठे रहे मौन सुनकर के, उत्तर वापिस नहीं दिया।
उसे प्रतिक्षा थी उत्तर की, कहकर वो तो चुप्प हुवा।।
जैसे कहीं चले गए हों हम, इस प्रकार हम लगे उसे।
वह भी बैठा रहा देखता, जब तक मेरे नेत्र खुले।।
खुली आँख तो भरत सिंह फिर, इधर पुनः आकृष्ट हुवा।
जैसे अब उत्तर देंगे कुछ, अतः दुबारा प्रश्न किया।।
खुलने पर भी आँख न बोले, तो उसने फिर दोहराया।
महाराज जी क्या उलझन है, जो न कुछ भी फ़रमाया।।
बोले हम सुन भाइ भरत सिंह, हम जिसके हैं वह जानें।
हम तो पैसा छूते तक नंहि, कृप्या हमसे मत मांगें।।
आप करेगा करने वाला, तुम चिंता क्यों करते हो।
आँखों वाले हैं वे तो सब, देख रहे विश्वास करो।।
ऐसे बोले कान जब पहुँचे, उसके हृदय हुई धक से।
ये तो अन्य आसरे पर हैं, इनके पास नहीं पैसे।।
उधर निकट दिन इन्तजाम सब, भली मौत आई सबकी।
इनकी तो बातें कोरी हैं, फ़िकर पड़ी अब इज्जत की।।
उसके आंसू निकल पड़े झट, महाराज अब बिगड़ी बात।
जिनके आप भरोसा बैठे, उनसे करें प्रार्थना आप।।
बात है यह दुनियाँ दारी की, जिस प्रकार चलती हैं ये।
वैसे ही ये चल सकती हैं, और तरह नंहि चल सकते।।
सगे सोधड़े सभी दीख गए, कोइ नहीं आवेगा काम।
तुम ही को करना होगा सब, कोइ न देगा एक छदाम।।
कहो आप अपने सदगुरू से, अब देरी की बात नहीं।
तीर गया चुटकी से बाहर, अब वह अपने हाथ नहीं।।
रो कर पैरों गिरा हमारे, कहें श्री सदगुरू से आप।
बात बिगड़ने के दर पर है, तुल कर बिगड़ चुके हालात।।
कौन भाइ क्या भाइ चारा, कोइ नहीं तुम ही हो बस।
अपना काम आप करना है, देख लिये सारे कस कस।।
जब बोला इस तरह भरतसिंह, आंखों में आंसू आया।
भरत सिंह तू क्या कहता है, तेंने भेद नहीं पाया।।

जिनकी आंखें खुली हुई हैं, सब कुछ देख रहे हैं जो।
जिनकी बंद कभी नंहि होती, कहवाता है तू उन ही को।।
तेरा मतलब है मैं उनसे, गरज़ बताऊंगा अपनी।
मेरे पै यह संकट है अब, रूपया दे दो सदगुरू जी।।
कभी नहीं निकलेगा मुँह से, मेरा नहीं कहीं सम्बंध।
बात उन्हीं की, काम उन्हीं का, वही करेंगे आप प्रबन्ध।।
क्या तू करी कराई मेरी, करवाने आया है मेंट।
जो अब तक भी मांग न पाया, मांगें आज कहाँ यह ढेट।।
साफ़ कह दिया जा अब हमने, किसकी ताब कहावे अब।
भरत सिंह को आया चक्कर, बात फंसी ऐसी बेढब।।
बैठ गया वह पैर थाम कर, नौ नौ आँसू आंखों में।
हम भी तब तक नहीं उठेंगे, जब तक यह हल नंहि करलें।।
हम बोले क्यों घबराता है, तू नाहक क्यों घबराता।
घबरावें तो हम घबरावें, तू नाहक घबराता क्यों वहाँ।।
फ़िकर चाहिए मालिक को, औरों के बट में नंहि आया।
तुम तो भाइ तमाशा देखो, सदगुरू की कैसी माया।।
सुनता और समझता कैसे, क्यों कि उसकी आतम तो।
चढ़ी जा रही थी सर्दी सी, उसने पुनः कहा हमको।।
एक बात कृप्या स्वीकारो, उन्हें एक चिट्ठी लिख दो।
<u>अगर नहीं कह सकते मुँह से, मेरे कर से लिखवा दो।।</u>
थोड़ा सोच साच कर बोले, स्वयं नहीं हम लिखने के।
तू लिखवा जो चाहे खुद ही, दस्ख़त उस पै कर देंगे।।
उसने इसे गनीमत समझा, चला गया उठकर घर को।
कलम और काग़ज ला करके, चिट्ठी लिख्खी सदगुरू को।।
बड़े संवर कर बड़े प्रेम से, बड़ा आग्रह था उसमें।
चर्चा खुल कर ब्याह यज्ञ की, व्यक्त करी उसने उसमें।।
आंमत्रित भी किया ब्याह पर, सहित साथ जी के आवें।
औ तारीख़ बता दो ताँगा, कब स्टेशन भिजवावें।।
सब अपनी बुद्धी की रू में, बड़े संवर करके लिख्खा।
और रात्री में पहुँचा लेकर, मेरे आगे जा रक्खा।।
मांगी कलम दस्तख़त के लिए, मैंने सो झट पकड़ा दी।
अपना नाम ड़ाल कर नींचे, फिर वापिस उसको दे दी।।
बोला चिट्ठी रख आसन पर, एक बाल्टी पानी ला।
हो तामील हुक्म की फ़ौरन, जल फौरन ही ले आया।।
अपने सन्मुख रखवा करके, भरत सिंह से हम बोले।

चिट्ठी को अब डाल डाक में, श्री सद गुरू पै पहुँचा दे।।
किसको ड़ाक बताता हूँ मैं, चारों ओर लगा लखने।
अरे ड़ाक में डाल पत्र यह, कहा पुनः उससे हमने।।
जल की ओर हाथ करके जब, बोला समझ उसे आई।
तभी बाल्टी में वह चिटठी, आंख दिखा कर डलवाई।।
फिर बोले हरफ़ों को धो दे, भरत सिंह ने धो डाले।
पहुँच गई जा चिट्ठी उन पै, परसों तक उत्तर आ ले।।
वाह री ड़ाक वाहरी चिट्ठी, कहता हुवा गया बाहर।
उसकी समझ नहीं कुछ आया, उसके दिल पर रहा फ़िकर।।
गुड़ गोबर हुवा दिखा उसको, क्या कहदे किसको कहदे।
चक्कर में फंस गया भरत सिंह, लोगों को क्या उत्तर दें।।
गर कह देवे उस चिट्ठी को, यों लिख्खी औ यों भेजी।
अपनी तो उड़ रही थी बस, खुश्की उसकी भी उड़ती।।
अपने मुँह पर शिकन न दीखी, जाने किसके घर पर ब्याह।
लोग मर जाते चिंता में, मालिक बैठा बे परवाह।।
मर मर जी जी घड़िया कट रहीं, ले देकर परसों आई।
डाक न जाने कैसी है यह, लीला ही अदभुत पाई।।
दोपहरी को एक डाकिया, सरकारी चिट्ठी लाया।
महाराज जी कहाँ मिलेंगे, हम तक उसको भिजवाया।।
इक चिट्ठी औ इक मनियाड़र, सोलह रूपयों का उसने।
हाथ हमारे में पकड़ाया, लिये अदब से वे हमने।।
भरत सिंह को बुलवा हमने, चिट्ठी कर में पकड़ा दी।
लो भाई यह अपनी चिट्ठी, उसने जब पढ़ कर देखी।।
लीला समझ आइ सदगुरू की, निष्कलंक के हाथों की।
था जवाब उसकी चिट्ठी का, उसने जो जो बात लिखी।।
था प्रणाम सब साथी जन को, लिख्खा था चिट्ठी पाई।
प्राप्त हुई वे सभी सूचना, जो चिट्ठी में लिखवाई।।
क्षमा मुझे करना शादी में, हम शरीक नंहि हो सकते।
सेठ लक्ष्मी चंद भेजे हैं, परसों तक आ लें घर पै।।
निस्संकोच आप शादी का, ख़र्च उन्हें बतला देना।
पत्र बंद था इन शब्दों में, मेरी सब प्रणाम लेना।।
फिर रूपयें हाथों में देकर, बोले सोलह कला हैं ये।
इन्हें रूपय्यें नहीं समझना, गुरू गंण शादी में आये।।
कारज पूर्ण करेंगे सदगुरू, निस्संकोच करो अब काम।
सोलह कला उतर आइ घर, निमटा समझो काम तमाम।।

साष्टांग गिर पड़ा चरण पर, देख भरत सिंह यह तत्काल।
गुरू महाराज बड़ी किरपा की, भले समय पर लिया संभाल।।
घुटनों में दम भर गया उसके, पड़ने लगे पैर आगे।
अपनों को संदेशा देने, चिट्ठी लेकर के भागे।।
बढ़ते गये हौंसले सुन सुन, उठने लगे पैर सबके।
लिखे मुताबिक अगले दिन ही, लक्ष्मी चंद भी आ पहुँचे।।
बहुत लाये सामान साथ में, थी कलकत्ते की सोगात।
श्री सदगुरू के लगे चरण से, आन झुकाया अपना माथ।।
कुछ क्षण बाद सेठ जी बोले, शादी का जो जो सामान।
आया हो जो आवेगा जो, कृपया हमें करा दो ज्ञान।।
सुनकर बात लक्ष्मी चंद की, दिया भरत सिंह को आदेश।
नकली जी से इन्हें मिला दो, वहीं करो ले जाकर पेश।।
नकली पंडित जी ने उनसे, कहा सेठ जी हर सामान।
आजायेगा स्वयं शहर से, आप हमारे हैं मेहमान।।
बोले सेठ ख़र्च हम देंगे, धन रक्खा उनके आगे।
पंडित जी बोले ले लेंगे, परचा दे देंगे लाके।।
सद गुरू ने की शादी खुलकर, खुलकर रीति रिवाज हुवे।
ब्याह बहुत होते देखे हैं, ऐसे लेकिन नहीं हुवे।।
अंतिम रोटी सदगुरू की थी, जो बारात को खिलवाई।
मेवा मिलवाकर खिचड़ी में, एक रसोई बनवाई।।
कहा फ़कीरी भोजन है यह, घी खिचड़ी हम वज़न पड़ा।
जिसने हेच किये सब खाने, जो प्रशाद था सदगुरू का।।
बच्चों तक के पैर सेठ जी, छूते फिरे जड़ौदे में।
तुम तो ग्वाल बाल हो ब्रज के, ब्रज लगता है यहाँ हमें।।
बड़ी मिठाई पैसे बाँटे, बच्चों को लाला जी ने।
बड़े भाग्य शाली हो तुम जो, पाया यहाँ जन्म तुमने।।
काफ़ी से ज़्यादा मिठाइयाँ, बचीं ब्याह में लड़की के।
उनसे किया गया भंडारा, वहीं जूड़ ले जा करके।।
पांचों गांवों धूम धाम से, उसमें हुवे सम्मिलित आ।
कथा कीर्तन आदिक का, सब भक्तों को आनंद मिला।।

लीला सदगुरू की बड़ी, बड़ा गुरू का नाम।
सदगुरू की क्या बात है, सारे अदभुत काम।।

बैठ गये हम जूड़ में, ले सदगुरू का नाम।
जिसने सुना हमारा आना, आते वहीं तमाम।।

घड़ी वक्त की चलती रहती, आता समय चला जाता।
एक धरोहर मात्र निशानी, वक्त छोड़ करके जाता।।
ये न देखता बाट किसी की, जाकर वक्त नहीं आता।।
अपना रहन सहन कुछ ऐसा, बना तीर्थाटन के बाद।
बंद बोलना कभी न होता, सदा छिड़े रहते संवाद।।
घर की जंजीरों के बन्धन, एक मिनट ना भाते थे।
अपने सभी सगे सम्बन्धी, ज्यों खाने को आते थे।।
जूड़ गाँव के दक्षिण पचिछम, के कोने में है स्थान।
रहते हम स्थाई रूप से, था उसमें इक देवस्थान।।
टूटा फूटा सा इक मंदिर, शिवजी का स्थित उसमें।
पड़ा हुआ था बेग़ौरा सा, था अपना डेरा उसमें।।
अगर सत्य पूछों तो, वह स्थान भजन के लायक था।
सभी वहीं पर संध्या वंदन, करते जो भी साधन था।।
जब जा लगा हमारा आसन, तब फिर लगा अजब ताँता।
लगे पहुँचने अनगिन फिर तो, थोड़ा बहुत हरिक जाता।।

पहुँचा यह चोला वहाँ, छः वर्षों के बाद।
सम्वत उन्नीस सौ चौरासी थी, जब आये घर के द्वार।।

हम हममें जब हैं नहीं, बनकर आये और।
ऊपर चोला और है, आतम में कोइ और।।
संचालन चोले का करते, अंदर बैठ गुरू महाराज।
ज्यों चालक हाँकै गाड़ी को, हंके फिर रहे हम यों आज।।
अब झण्डूदत्त कहाँ है अंदर, बाई रतन बनकर आये।
उनकी आतम में बिठलाकर, सदगुरू प्रीतम को लाये।।
क्या इच्छा है श्री सदगुरू की, जाने वे लीला अपनी।
लाए गये हम वहाँ बाँधकर, जित अपने थे हम वतनी।।
जुथ अपना काफ़ी से ज़्यादा, इधर पड़ा हुआ सोता था।
जिन्हें जगाकर क़ायम करना, खेंच और को लाना था।।
लगनी अब आवाज़ दूसरी, समय क़ायमी का आया।
ज्ञान खुदाई, खेल ख़ुदाई, छिड़ै जहाँ वहाँ गुरू लाया।।

जो श्री स्वामी प्राणनाथ थे, अपने समय जगाए थे।
देकर हुकम पुनः सोने का, सारे फेर सुलाए थे।।
जागे हुए लगे चिल्लाने, पल–पल प्रीतम धाम चलो।
यहाँ नहीं मन लगता अब तो, रहती हरदम चलो चलो।।
इधर साथ जगने को बाकी, संग आये संग ही जाएँ।
यह कैसे हो सकता है के, आधे सोते रह जाएँ।।
हो निश्चिंत जगावे उनको, जो बाकी हैं जगने से।
अतः सुलाने पड़े सभी वे, जितने इस दम जागे थे।।
जब दूजी आवाज लगेगी, समय कायमी का आवे।
एक साथ उठ जाना उस दम, जिस दम कान टेर जावे।।

हुआ उपद्रव सन् छालिस में, चले गोल के गोल इधर।
हुई ऐकत्रित अगली पिछली, अंतिम लीला चलै जिधर।।
किन्तु हुआ सब छिपे छिपे यह, ठहरी बातूनी लीला।
जाग गई जो पूर्ण रूप से, वह खेल यह समझेगा।।
वह ही देख सकी यह लीला, उस ही ने आनंद लिया।
सुख भी प्रीतम ने उस ही को, हर प्रकार का आप दिया।।

बना शेरपुर ब्रज एक तीजा, मिले यहाँ सब हास विलास।
पाया सबने प्राणनाथ को, परिचय दिया हुआ विश्वास।।
प्रकटा जोश यहाँ आकर के, जन जन को दी आवाज।
टेर–टेर कर पिया जगाई, कान पड़ी सबके आवाज।।

बना शेर पुर केन्द्र कायमी, उससे होगा यहाँ मिलाप।
जिसे आख़रत पर आना है, ब्रह्म प्रिया हो जिसकी आप।।
खेंच लिये शक्ती से अपनी, दे दे कर दूजी आवाज़।
सूर कायमी का बोला यहाँ, बजा अर्श आला का साज़।।
जहाँ जहाँ थीं खेंची सारी, उठीं वासनाऐं अपनी।
नगर नगर और गाँव गाँव, फिर फिर कर लाये धाम धनी।।
ज्यों चुगता है पक्षी दाना, अपनी लम्बी चोंच बढ़ा।
हंस चुगा करता ज्यों मोती, यही सदगुरू ने काम किया।।
दूर अगर थी उसको बरसों, पहले से आवाज़ लगी।
क्यों कि इधर होना था संगम, आत्माऐं आ यहाँ मिली।।
चोले में श्री झण्डू दत्त के, क्या आया छिपकर सामान।
किसे खबर है किसे परख है, जहाँ घोर छाया अज्ञान।।

बातन की बातूनी जाने, बाहर की बाहर वाला।
पुरूष क़ायमी का छिप करके, आया, आला से आला।।
हुवा झलक में पहली पागल, दूजी को फिर ताब कहा।
श्री राज इस चोले में हैं, क्यों कर हो विश्वास यहाँ।।
जब तक स्वयं न किरपा करदें, परदा उठा न दिखलावें।
जो ख़ुद भूल भुलइयों में हैं, भला उन्हें कैसे पावें।।

खेला रास मुजाहिदपुर में, जन जन को दिखलाया।
जुथ यहाँ भी था अपना, साकुँडल जिनके संग आया।।
बात सभी ये पोशीदा, खुले समय अपने आकर।
बैठ नूर में जोश प्रभु का, पधारा शेरपुर आकर।।
हमे साथ इमाम के, दिया फरिश्ता मर्द।
उड़ावे पहाड़ जभी जड़ भूताने सो तो फरिश्ता कैसे कद।।
कहा गया है जोश मर्द पर, इस ही में इतनी सामर्थ।
मुश्किल काम जोश कर सकता, मर्द जोश ही का है अर्थ।।
नहीं बुद्धि से जो हो पाता, उसे जोश करता पश्चात।
जोशी सभी कुछ कर सकता है, हो जाता इक साथ बलात्।।
वाणी में सब खुला पड़ा है, किन्तु छिपा है फिर भी सब।
जिसके पास कृपा हो समझ ले, अन्य न समझेगा मतलब।।
मगज जो मुसाफ का, जाहिर किया छिपाय,
गाया खुश आवाज सों, कोल सिर चढ़ाय।
जरा चातुरी लखो पिया की, कितने कुशल की वहां आप।
खोल धरा सब यहाँ माजजा, लेकिन फिर भी रखा ढाँप।।
इलम चातुरी नहीं चलेगी, साधारण सी बात नहीं।
यह है काम बुद्ध का, पी की, हर एक औकात नहीं।।
रस्ते चलता अर्थ लगा के, क्या मजाल जानों खुद ही।
वाणी को समझेगा तब ही, किरपा होय श्री जी की।।
कहूँ मायने मगज विवेक, जाए दीन होय सब एक।
छूट जाये छल भेष, ये कुछ इमाम को विशेष।।
आसन है इमाम का बुध में, बुध में करते पिया निवास।
अंग और प्रत्यंग उन्हीं के, पाँच शास्त्र ले उत्तर आप।।
अलग अलग हैं काम सभी के, ले गये अलग–अलग ही रूप।
पंचम को नित भोग लगाते, पाँचों तत्व मिल एक सरूप।।
मिले नूर में पाँचों आकर, रतनबाई पर की किरपा।
होकर पाँच एक जामे में, परातत्व आकर उतरा।।
खान देश में गाँव सोनगरी, नाम श्री नारायण दास।
इस चोले पर जोश प्रभु का, उतरा आकर के साक्षात।।
परिचय दिया पूर्ण तक हूँ मैं, देखा ही प्रत्यक्ष रूप।
रही साख की नहीं जरूरत, रही मगर लीला सब मूक।।
मुँह पर कुलफ दिये परिचय, खबरदार जो कहीं कहा।
बहुत उकसाये कहने का, बातन की है यह लीला।।
धीरे धीरे खुले सब राज, खुलती गई आँख जिसकी।

वह ही झुकता गया चरण पर, झुके अधिक देखा देखी।।
आत्म दुल्हन सर्वप्रथम ही, उतर चुकी थी माया में।
बैठी थी पहले से धनी श्री, देवचन्द्र जी की काया में।।
सदी ग्यारही बुद्ध जी उतरे, और बारही हुकम सरूप।
जोश तेरही आकर उतरा, और चाँद ही नूर सरूप।।
'धनी जी का जोश आत्म दुल्हिन, नूर हुक्म बुद्ध मूल वतन।
ये पाँचों मिल भई श्री महामति, वेद कतेबों पहुँची शरत।।
भया मेल पाँचों का आखर, करी कायमी पाँचों मिल।
लीला यह विचित्र बुद्ध जी की, उलट पुलट हो उठा तिमिर।।
भई गवाही पूर्ण शाम की, पूरा अपना वचन किया।
ज्ञात कराया मैं आ पहुँचा, अपना साक्षात्कार किया।।
हम हैं कौन लाखों पहचानों, आत्म की आँखें खोलों।
रूकना नहीं विपुल को भी अब, खेल खत्म कर धाम चलो।।
अपने–अपने मिले मूल से, तिमिर खेल से मुँह मोड़ो।
असली तन छोड़ै बैठी हो, अपने को उससे जोड़ो।।
उतर चुका जब नूर सान पर, तत्पश्चात जोश उतरा।
पैंतीस वर्ष रहा तिन ऊपर, खेली कायम की लीला।।
श्री मुख वाणी ऐ वचन, तण नव कीधों विचार।
ना कहाओं लखिया आधार, सांभलो रतनबाई ऐ किहूँ प्रकार।।
ऐ वी बुध केम अरबी आवार!
इन्द्रावती ही तरह रत्न भी, अपने संग पी को लाई।
सदी तेरही में नारायण दास, श्री सद्‌गुरू महाराज।।
पैदा हुए सोनगिरी आकर, था वो जोश सरूप साक्षात।
गुप्त भेष है यह प्रीतम का, नहीं कोई भी सखी जमात।।
बस खुद ही हैं आव महाप्रभु, साथ न कोई आत्म वर्ग।
उतरे नहीं किसी आत्म पर, बैठे नूर पर पी आवेश।।
कायम करने चल दिए तिमिर को, आ बैठे इस यों ह्दयेश्स।
चोले में श्री झंडूदत्त थे, आज रतन करती अरदास।।
बख्शा मुझे काम कुछ पी ने, करके मेरे अंदर वास।
मुझ पर अंकुश चढ़ा जोश का, जो कुछ हुआ जोश ने कहा।।
मैं दासी की भाँति संग हूँ, वृथा बड़ाई दे रहे नाथ।
मुझसे हुआ न कुछ हो सकता, कर रहे खुद सद्‌गुरू महाराज।
सुना रही मैं तो आप बीती, मुझे न सच कहने में लाज।।

श्री मुंख वाँणी से

जब सूर बाजे दूसरा देवे हक़ चिन्हाए।
तिन सब क़ायम किये रही आठों भिस्त भराय।।

आठों भिस्त क़ायम करीबजाय दूसरा सूर।
बरसा आब सबन पर अर्श अज़ीम का नूर।।

आज और कल और रोज, गिनती बढ़ती ही जाती थी।
जितनी भी थी भक्त मण्डली, हमें हृदय से चाहती थी।।
आने के पश्चात् भूल, जाते थे वे सब घर जाना।
किसका घर कैसे घर वाले, तज देते खाना दाना।।
कई कई दिन हो जाते, बहुतों को अपने घर जाये।
बने एक दम सब मतवाले, ऐसे हम उनको भाये।।
ऐसी चिपक बढ़ी कुछ हमसे, बना एक ऐसा संयोग।
पाँच गाँव के लगे पहुँचने, बड़े बड़े अपने ढिंग लोग।।
कथा कीर्तन की सीमा नंहि, रहता छिड़ा सदा सत्संग।
जमे रहा करते नित श्रोता, कभी न होता सत्संग बंद।।
रसिक वर्ग रस लेते रहते, पीते रहते रस प्याले।
श्वेत हुवे भँवरे पी पी रस, थे सरूप काले काले।।
बहुत टालते रहते उनको, पास हमारे कम आओ।
अपने पास नहीं है कुछ भी, दुनियाँ वालों भग जाओ।।
हम बिगड़े तुम तो मत बिगड़ो, हम से दूर दूर रहना।
योग्य न हम दुनियाँ वालों के, मान जाओ अपना कहना।।
लेकिन असर बहुत कम होता, उन पर ऐसे वचनों का।
तांता बढ़ता गया नित्य ही, इधर उधर से सजनों का।।
जब देखा पक्के हैं जितने, भक्त पास में आते हैं।
घर द्वारे को छोड़ काम का, नाम न लब पै लाते हैं।।
तो हम बोले उनसे भक्तों, अगर हमें तुम प्यार करो।
तो पहले इस शिव मंदिर का, मिलकर जीर्ण उद्धार करो।।
जहाँ बैठते हो नित आकर, करते हो रस पान अनेक।
तो अपने तन धन से इसका, जीर्ण उद्धार करो प्रत्येक।।
सुन कर अपनी भक्त जनों में, एक शक्ति सी जाग उठी।
शिव मंदिर की जीर्ण अवस्था, को सुधारने को उट्ठी।।
तन से मन से धन से सबने, कार्य श्रेष्ट में साथ किया।

अपने हाथों पाँच गाँव ने, शिव मंदिर उद्धार किया।।
साथ साथ राशन अन्नादिक, का भी सभी प्रबंध हुआ।
जिसके पास न था देने को, उसने श्रम का दान किया।।
बढ़ा ख़र्च भी धीरे धीरे, आते जाते रहते लोग।
साथ लगा द्रढ़ता से जमने, लगता वहीं प्रशादी भोग।।
जो बनता अपना हम, उन्हें खिलाकर ही खाते।
घर जाकर ही क्या लेते जब, पेट वहीं पर भर जाते।।
रूहानी जिस्मानी दोनों, ग़िजा जहाँ मिलती हों साथ।
भला वहाँ से डिगा सकेगा, कौन उसे है झूँटी बात।।
अपने पास पचासों सज्जन, पड़े रहा करते हर वक्त।
पेटू बाबा समझ न लेना, वास्तवो में ही थे भक्त।।
हमें न थी आदत सोने की, सोने का लेते नंहि नाम।
बैठे रहते भक्त जनों में, कभी न करते हम विश्राम।।
हम तो थे अभ्यासी इसके, भक्तों का आरम्भ हुआ।
चिपके कुछ अपने से ऐसे, उनका भी यह ढंग हुआ।।
भाँति अश्व की बहुते तो, चलते चलते सो लेते थे।
कुछ बैठे बैठै सो लेते, ये क़िस्से थे प्रति दिन के।।
हम तो भूल गये थे सोना, हमें याद भी नंहि आता।
पर हमने यह नहीं विचारा, इनसे नंहि बैठा जाता।।
बहुतों को निद्रा देवी जब, आ बेचैन बनाती थी।
होता मौत बैठना पल को, इतना उन्हें सताती थी।।
तो पाख़ाने का लोटा ले, बना बहाना चल देते।
लोटा रखकर निकट खेत में, अकसर बहुते सो लेते।।
उठा 2 लोटे सोतों के, ग्रामीणों ने पहुँचाये।
कहा बहुत ने टट्टी फिरते, हम को ये सोते पाये।।
तो हमने अनुमान लगाया, सुनते हो ऐ रामरतन।
आठ पहर की बैठक रोको, इनके साथ नहीं उत्तम।।
तुम तो हो अभ्यासी लेकिन, इनको तो अभ्यास नहीं।
सहन नहीं कर पाऐंगे ये, यह धन इनके पास नहीं।।
हमको बैठा देख सभी ये, बैठे रहते हैं हर वक्त।
हमें तनिक भी नहीं अखरता, किन्तु बीतती इनपर सख्त।।
लोग लगे अंदाज़ लगाने, कहने लगे आनकर पास।
ख़ुद तो बिगड़े ही थे पर, इनका भी कर दिया सत्यानाश।।
सुनी शिकायत जब, तो हम भी, आँखें मींच लिया करते।
सिर्फ़ दिखाने की ख़ातिर ताके, वे सो जांऐं जाके।।

लग जाते अपनी धुन में हम, नज़्ज़ारे करते रहते।
लोग वहीं सो जाते पड़ पड़, उठकर कहीं नहीं जाते।।
एक पुजारी भी रहता था, उस मंदिर में पहले से।
पर नाराज़ रहा करता वो, खुशी नहीं थी अपने से।।
उसका मान मर्तबा अपने, रहने से सब लोप हुआ।
उसकी पूछ ख़तम सी हो गइ, जिसका उसे अफ़सोस हुआ।।
उसे एक भी आँख हमारा, रहना वहाँ न भाता था।
कथा कीर्तन को अपने, सब से हुड़दण्ग बताता था।।
हालाँके अपने कारण, मंदिर का सभी प्रबंध हुआ।
पर उसके अंतर में लखकर, एक ईर्षा द्वन्द हुआ।।
उसने इक तरक़ीब निकाली, हमें डिगाने की आसान।
करने लगा बुराई जो भी, मंदिर में जाता इन्सान।।

लो जी हम तो मांग मांग कर, अन्न गांव से लाते हैं।
इन्हें लखो मुसटण्ड़ों को, मुंह छुट्ट खिलाऐ जाते हैं।।
हमें समझ नंहि आता इतना, नाज कहाँ से लावें रोज।
ऐकत्रित रहती है यहाँ तो, टुकड़े ख़ोरों की इक फ़ौज।।
करना और कराना कुछ नंहि, हाय हाय रहती हर वक्त।
बढ़ तो जाते हैं रोज़ाना, कमती होते नंहि कमबख़्त।।
करता रहा पुजारी भी, अपनी सी हम भी अपनी सीं।
चलती रही बराबर गाड़ी, अलग अलग हम दोंनों की।।
अपना नियम रोज़ का था, पांचों गांवों में हो आना।
इक के बाद एक पै होकर, वापिस मंदिर आ जाना।।
बाढ़ी एक भरत सिंह दूजा, मुंशी माम राज सिंह तीन।
बैठक थी इन ही घर अपनी, ये तीनों निज भक्त प्रवीण।।
थी उन दिनों हमें इक आदत, जो श्री सदगुरू ने बख़्शी।
चिलम पिया करते गाँझे की, पीली जहां किसी ने दी।।
और न कुछ लेना देना था, और न कुछ अपना आचार।
बैठक अपनी पांच गांव में, थीं केवल बस दो ही चार।।
बारू भगत शेर पुर का इक, बहुत अधिक बोला करता।
बहु बोला तो था ही लेकिन, बेढ़ंगा भी कुछ कुछ था।।
जब आता बोले ही जाता, मुंह में जो आया करती।
मेरे इम्तहान भी लेना, चाहा करता कभी कभी।।
कभी कभी तो वाद विवादों, में घंटों इलझा रहता।
अनायास इक दिन आकर के, बारू सिंह हमसे बोला।।
महाराज जी कल तुमको घर, ले चलने की इच्छा है।

खाना वहीं आपका होगा, तेरामी का न्यौता है।।
उसकी माँ के मरने का था, ब्रह्म भोज तेरामी पर।
उसे जिमाने की ख़ातिर, ले जाना था हमको घर पर।।
हम बोले बारू से भइया, न्यौता तेरा सिर माथे।
कहा आपने जीम लिये हम, मरण भोज हम नंहि खाते।।
घर जाना औ न्यौता खाना, छोड़ दिया हमने भइया।
क्षमा चाहते हैं घर से तो, जो जा सकता उसे खिला।।
बोला कैसे नहीं जाओगे, घर ले जाकर छोडूंगा।
जो प्रंण कर रक्खा है तुमने, आज उसे मैं तोड़ूँगा।।
हमने कहा ज़बरदस्ती क्या, तो बोला हमसे जी हाँ।
हम बोले यदि मिलें न तुमको, तो किसको ले जाओ वहा।।
वह बोला क्यों नंहीं मिलोगे, तुम्हें ढूंडकर छोडूँगा।
मगर ये प्रंण रहने नंहि देना, इसे आज में तोड़ूँगा।।
चला गया इतना कहते ही, हमसे वह बारू सिंह भक्त।
लेकिन अगले दिन फिर आया, खाने का जब आया वक्त।।
द्रष्टि पड़े हमको बारू सिंह, हमने आसन छोड़ दिया।
और जड़ौदे की जानिब को, हमने अपना राह लिया।।
निकले उसके सन्मुख से ही, किन्तु न उसको दिख पाया।
आसन के जब गया निकट वह, तो आसन खाली पाया।।
पूछा कुछ से कहाँ चले गए, लोगों ने संकेत दिये।
अभी जड़ौदे की जानिब को, उठ कर के महाराज गये।।
हमने पहुंच भरत सिंह के घर, एक चिलम भी पी डाली।
देखा जब बारू आ पहुँचा, खुड़ी हाथ में फिर ठाली।।
था अगला अडडा बाढ़ी का, एक चिलम उसके जा ली।
भरत सिंह घर ढूँडा उसने, किन्तु उसे पाया ख़ाली।।
महा राज जी इधर आए क्या, बोला भरत सिंह उससे।
तेरे आने पर ही तो, महाराज उठे थे आसन से।।
क्या तुमने देखा नंहि उनको, अब बढ़ई के घर होंगे।
लप झप करते बारू सिंह जी, हमें खोजने वहा पहुँचे।।
हमने माम राज जी के घर, उठ करके प्रस्थान किया।
वह बढ़ई के घर जा पहुँचा, प्रश्न वहाँ भी वही किया।।
उत्तर मिला अभी उट्ठे हैं, आगे आगे ही तेरे।।
तू तो यहीं द्वार पर था तब, तुझे नंहीं दीखे क्यों रे।।
अभी गली ही में तो होंगे, उसे न पर विश्वास हुवा।
उसने उस कोठे में घुसकर, हमको बहुत तलाश किया।।

विवश भाग छूटा फिर आगे, बारू माम राज के घर।
महाराज जी आये हैं क्या, चाहा जाते ही उत्तर।।
हमने उठकर मामराज से, धिसर पड़ी की राह गही।
मामराज से जब पूछा तो, माम राज ने झट्ट कही।।
उधर देख वे क्या जा रहे हैं, नहीं दीखते क्या महाराज।
किन्तु न दीखा बारू सिंह को, झूँटी लगी उसे यह बात।।
माम राज को तो दिखते हम, बारू को नंहि दिखते थे।
मैं घर में ढूँडूगा तेरे, बारू सिंह चिढ़कर बोले।।
अरे तलाशी तो तब लेना, जब वे कहीं न दिखते हों।
जब वे जाते दीख रहे हैं, फिर तुम यह क्या बकते हो।।
बारू ने देखा भी मुड़कर, पर हम नजर न आए उसे।
हमें ढूँडने को बारू सिंह, फिर भी घर में पहुँच गये।।
चप्पा चप्पा फिरा देखता, बारू सिंह उसके घर में।
लेकिन हम होते तो मिलते, फिर बाहर आया क्षण में।।
ढूँड लिया बोले मुंशी जी, हुवा आंख को क्या तेरी।
फूट गई क्या बिल्कूल ही जो, सुनता नहीं आज मेरी।।
दूर निकल गए हांलांके पर, नज़र फेर भी आते थे।
भाग पकड़ ले धिसर पड़ी तक, हाथ तेरे आ जायेंगे।
बारू लपक लिया सुनते ही, माम राज की इतनी बात।।
धिसर पड़ी अपनी बैठक पर, पहुँचा बारू हाथों हाथ।
बैठ बाठ कर हम वाँ से भी, चले शेर पुर उसके बाद।।
बारू लेता फिर तलाशी, जने जने से की बकवाद।।
आख़िर बारू चला शेर पुर, धिसर पड़ी सबसे झक मार।
हम जा बैठे बारू के घर, एक चिलम पी खूब संवार।।
जैपुर होते हुवे जूड़ में, जा हमने विश्राम किया।
नियम पूर्वक जो करते हम, पूरा उतना काम किया।।
बारू जब पहुँचा अपने घर, तो सब बोले आप कहाँ।
घूंम रहे हो महाराज जी, गये बैठ कुछ देर यहाँ।।
हमने बड़ा कहा रूकने को, बोले बारू यदि होता।
तो शायद हम रूक भी जाते, पर अब रूकना नहीं यहां।।
कौन दिशा को गये पूछकर, उसने फिर लम्बी तानी।
जैपुर खोज खाज कर उसने, पुनः जड़ौदे की ठानी।।
देख हमे आसन पर बैठे, नवा दूर से ही मस्तक।
बोला मैं भर पाया तुमसे, आप छलावा हो बेशक।।
तुम्हें ढूँडना बड़ा कठिन है, साधारण सा काम नहीं।

लाख बार सर मारो कोई, तुम्हें न पावे कोइ कहीं।।
बैठ गया बारू पग गहकर, बोला गलती क्षमा करो।
घर पवित्र करने को मेरा, उठो हमारे साथ चलो।।
हम बोले हो आए भय्या, जब तुम हमें न मिल पाये।
देकर द्वार हाजरी तेरी, सीधी नाक चले आये।।
जब तुम मिले न तो क्या करते, ये तो खता नहीं अपनी।
जाना था अपने वंश में सो, डयूटी थी दे दी इतनी।।
करता रहा आग्रह बारू, रहा मारता सर हमसे।
गये न हम लेकिन उसके संग, गया अकेला आश्रम से।।

होते रहत साथ में, बहुते ऐसे काण्ड।
काफी से ज़्यादा मिले, मानव हमें मदांध।।

ज्वाला मुखी उगलता रहता, अगनी जिस प्रकार डर से।
पावस में गाती रहती ज्यों, भमरी गाना इक स्वर से।।
उस ही तरह पुजारी अपना, कार्य विषय पर जुड़ा रहा।
नित प्रचार अपने प्रति गंदे, करते करते नहीं थका।।
रहे मस्त अपने पन में हम, फ़र्क न तिल भर भी आया।
आज और कल और निरंतर, सत्संग बढ़ता ही पाया।।
श्रद्धा चली गई बढ़ती ही, जो थे वास्तव में भक्त।
अलग हुवे हमसे अभक्त, जब मिला पुजारी जी कमबख़्त।।
सीख पार जाती पत्थर के, विष प्राणों को हर लेता।
पिछला भी बाहर आता जो, विषम पदारथ खा लेता।।
जागू तो जागता ही है पर, लागू भी जगता रहता।
उसे लगन अपनी होती तो, उसे ध्यान अपना होता।।
दोनों तकते अप अपने को, दोंनों मौके के मौहताज।
जरा झपकते ही जागू के, तागू के बन जाते काज।।
देवी एक शेर पुर वासी, जिसक नाम न लूंगा मैं।
कथा कीर्तन में आती नित, देखा करती नित्य हमें।।
भाव पड़े पावन निर्मल अति, देखा करती नित्य हमें।
हमें इष्ट की भाँति समझकर, रहती प्रेमानद बे सुद्ध।।
लगती चोट बोल की उसके, कभी ध्यान से सुन लेती।
तो आँचल में मुँह देकर वह, देवी अकसर रो देती।।
था अटपटा हाल अपना कुछ, जब बकने हम लग जाते।
साधारण तो साधारण, पंडित भी समझ नहीं पाते।।

हमें होश खुद कम रहती थी, किसकी बात किसे कह दी।
पात्र कुपात्र न लखते बिल्कूल, आंख मुंदी जैसी रहती।।
देवी बड़ी मर्म भेदी थी, शब्द मार्मिक जब सुनती।
तो उसकी इक साथ अवस्था, इक विभोर जैसी होती।।
तड़फ उठा करती शब्दों पर, सहन शक्ति खो सी जाती।
हालत इक अजीब सी हो, आपे से बाहर हो जाती।।
अपने श्री पुजारी जी हर, समय कटी पर रहते थे।
कैसे निकलें ये मंदिर से, बात ढूँडते रहते थे।।
उस देवी की देख अवस्था, उन्हें एक युक्ती सूझी।
जने जने को उसे दिखा कर, तरह तरह की बात कही।।
की बदनाम बहुत लोगों में, पदवी व्यभिचारिन की दी।
यहाँ प्रेम लीला होती है, फ़कत ढोंग है यह भक्ती।।
अर्द्ध रात्री तक नारी का, रहना साफ़ बताता है।
अपने लिए कहा लोगों से, इनका विषयी नाता है।।
बात नंहीं रत्ती भर झूंटी, अडडा है व्यभि चारों का।
जितने यहा पड़े रहते हैं, कोइ न सत्य विचारों का।।
शनः शनः उसका लोगों में, रंग चढ़ना आरम्भ हुवा।
अपने लिए गांव में चर्चा, होने का प्रारम्भ हुवा।।
समय एक दिन ऐसा आया, लोग लगे हमसे बचने।
बनते गये पराये अपने, चिपके हुवे लोग हटने।।
बनी योजना लोगों की, पंचायत करके निर्णय दो।
क्या यह ढ़ोग बना रक्खा है, तोड़ो और सजा भी दो।।
दूध दूध पानी का पानी, छन कर सब रह जायेगा।
बना महात्माँ फिरता है, मिनटों में भगता पायेगा।।
अपनी बिल्ली म्याँऊ हमें ही, घास क़साई की कटड़ा।
जीम जाम जिंदा भी रह ले, ऐसा कभी न हो सकता।।
वेष महात्मा है पापात्माँ, देवालय भी किया ख़राब।
छज्जू का भी नाम डबोया, खान दान की खोदी आब।।
ग़रज़ सभी नर नारी में, बदनाम हुवे अच्छे ख़ासे।
नीच पुजारी ने ऐसे कुछ, ड़ाल दिये उल्टे फाँसे।।
जो कहा किसी ने पोशीदा, जो किया किसी ने पोशीदा।
हम तक यह पहुँची नहीं बात, थी हर दिल में ये पोशीदा।।
पर आग रूइ में कोइ लपेटे, कब तक बैठा रह सकता।
एक समय वह आता जिसमें, भस्म सभी कुछ हो सकता।।
जो भी सुन पाता वह कहता, सोच समझ कर मुंह खोलो।

इतने कड़वे वचन एक, सज्जन के लिए मत बोलो।।
किन्तु गांव के दुर्बुद्धों ने, ऐसा किया प्रचार प्रबल।
जितने अपने अनुयायी थे, रहा न उनपै कोई हल।।
मुंशी मामराज सिंह ने जब, देखा गांव वहा इक लोट।
हमें जानते ही थे बिल्कूल, उनमें नहीं एक भी खोट।।
बड़े बड़े लोगों के संग वे, पर अक सरियत थी उनकी।
एक पेश ना चलने दी कुछ, हुवे विवश जब मुंशी जी।।
तो होकर लाचार बहुत ही, आकर बोले मेरे पास।
मैं जो कुछ कहने आया हूं, है तो सिर्फ़ एक बकवास।।
पर है एक प्रार्थना तुमसे, यहाँ न रहना कल को आप।
मैं बैठूँगा जगह आपकी, तुम मत देखो ऐसा पाप।।
गुण्डे सिर हैं बहुत आपके, हुवा आपका गर अपमान।
तो हम उन्हें खत्म कर देंगे, या दे देंगे अपनी जान।।
यह भी जान गये किस कारण, उठा हुवा है यह हड़बोंग।
तुम्हें डिगाने की ख़ातिर यह, रचा पुजारी जी ने ढ़ोंग।।
कान पके सुन सुनकर अपने, समझाया भी बहुतेरा।
महाराज जी सच कहता हूँ, उसे मौत ने है घेरा।।
बुरा वक्त आने वाला है, इस कमबख़्त पुजारी पर।
मेरे भी हैं बहुत आदमी, जो हैं सभी इशारे पर।।
आप यहाँ मत रहना कल को, पंचायत मैं देखूँगा।
इस गुण्डी पंचायत से तुम, चले जाओ मैं निमटूँगा।।
हमने कहा बात क्या है वह, जो सब हमसे हैं नाराज।
इच्छा क्या बेधडक बता दो, ग़ांव चाहता है क्या आज।।
क्या होगा पंचायत करके, हमें एक आकर कह दो।
हम तुमसे यह चाह रहे हैं, राम रतन ऐसा कर दो।।
वचन तुम्हें देते हैं हम, मुंशी जी वैसा ही होगा।
सोखा मार्ग छोड़ करके क्यों, पकड़ रहे हैं वे ओखा।।
मामराज जी बोले हमसे, महाराज जी मत पूछो।
वे ज़लील करना चाहते हैं, इस पंचायत में तुमको।।
देवी एक शेर पुर की जो, सुनने आती है सत्संग।
उसकी अफ़वा उड़ा रहे हैं, के हैं ग़लत आपके संग।।
हम बोले भाई मुंशी जी, अपनी भी थोड़ी सुनलो।
आप हमें पंचायत में, जाने से बिलकुल मत रोको।।
पाप हमारा बाप तुम्हारा, ऐसा किस प्रकार से हो।
अपना भोग हमीं भोगेंगे, तुम अपने को मत झोंको।।

रोका हमें बहुत कइयों ने, लेकिन हमने यही कहा।
अप अपना सब भोग भोगते, हम भोगेंगे भइ अपना।।
मुंशी जी लाचार चले गए, पंचायत का दिन आया।
बैठ गई पंचायत जब, संदेशा हम पर भिजवाया।।
हम भी पहुँच गये सुनते ही, जा बैठे पंचायत में।
ख़ामोशी आ गई एक दम, हम पहुंचे जिस सायत में।।
छोटे बड़े सभी बैठे थे, बोल बंद हो गए सब के।
पंद्रह मिनिट मौन हो गए जब, तो फिर मुंशी जी बोले।।
कहा सभी को संबोधन कर, बोलो भाई क्या है काम।
जिसके लिए इकट्ठे होकर, बैठे हैं यहाँ पाँचों ग्राम।।
किसने किये एकत्रित हम सब, वह जन उठकर बतलाओ।
किस निर्णय के लिये बुलाये, सबको मतलब समझाओं।।
लगे ताकने एक दूसरे, का मुह इतनी सुन कर के।
एक बोल नंहि बोला कोई, पंचायत में उठ करके।।
मानो गूंगे हुवे सभी जन, काठ मार गया हो जैसे।
पत्थर के हैं बने हुवे ज्यों, पंचायत लगती ऐसे।।
मामराज सिंह जी फिर बोले, जबां बंद क्यों है सबकी।
उठ कर कोइ बताता क्यों नंहि, ख़ामोशी किस मतलब की।।
उठा एक पंचायत में से, बोला है इक दुख की बात।
इतना बड़ा जड़ौदा है यह, जिसमें रहती छत्तिस ज़ात।।
क्या इसमें कोई ऐसा नंहि, जो अनर्थ यह छुड़वादे।
ज़िबह कशी के लिये गाय, जाती है यहाँ से रूकवादे।।
मुखिया लोगों की ढ़ीलों से, इक कसाइ बाहर का आ।
गाय मोल ले लेकर मां से, भिजवाने को आन बसा।।
<u>अगर न उसको रोका हमने, तो इक दिन वह आयेगा।</u>
<u>गाय वाय की बात नहीं फिर, बैल तलक नंहि पायेगा।।</u>
जड़ ही अगर काट डाली तो, डाल फूल पत्ते कैसे।
हमने कह दी जो कहनी थी, करो उचित होवे जैसे।।
किया ग़ौर सुन कर सब ही ने, सबने इसमें भाग लिया।
सोच साच कर पंचायत ने, सम्मति से आदेश दिया।।
आज रात में सोतों के सब, कटड़े बछड़े खुलवादो।
चाहे जो हो वापिस मत दो, दूर कहीं पर भिजवादो।।
बोले अगर कोइ उनमें से, तो दो ऐसी मीठी मार।
अगले रोज़ भागता पावे, बरतन भाँडे ले लाचार।।
बोले फिर संरपंच किसी को, अगर और कुछ कहना हो।

तो बेशक कह सकता है वह, पीछे कोई नाराज़ न हो।।
पांचों गांव उपस्थित हैं अब, जहां पांच वहाँ परमेश्वर।
पीछे लोग शिकायत करते, देखे हैं हमने अकसर।।
इसके पीछे पंचायत पर, फ़िर ख़ामोशी सी आई।
थोड़ी देर मौन रह करके, मुंशी जी बोले भाई।।
उठो काम देखो फिर अपना, पंचायत हो गई खड़ी।
हिला न आगे होठ किसी का, ऐसी मुंह पर कुलफ़ जड़ी।।
सभी गऐ उठ उठ कर वाँ से, हमने भी प्रस्थान किया।
यहाँ न अपनी दाल गलेगी, ऐसा मन में ठान लिया।।
इज्ज़त आज चली जाती यदि, कृपा न करते गुरू महाराज।
कब तक उन्हें कष्ट देता रहूँ, यहाँ है बस गुण्ड़ों का राज।।
उठा न रक्खी कसर किसी ने, देने में बदनामी तौक़।
लेकिन गुरू द्रष्टि से इक दम, बंद हुई हर इक की भोंक।।
ऐसी जगह नहीं रहना अब, आसन उठा लिया तत्काल।
जितने अपने अनुयायी थे, मत पूछो क्या हुवा मलाल।।

कर प्रणाम उस भूमि को, हरिद्वार की ओर।
हमने अपनी राह ली, जूड़ दिया बस छोड़।।

काफ़ी रोज उधर विचरे हम, एक रोज वापिस आये।
बुद्धी दास सहारनपुर था, हम अपने मन में लाये।।
मिलते चलो भाइ से अपने, अतः गये हम उसके पास।
एक कोठरी में रहता था, खाना और पकाना हाथ।।
आव भगत के बाद हमें कुछ, दूध दिया उसने लाकर।
पी लेना यह दूध धरा है, चला गया फिर समझाकर।।
मिट्टी के कुल्लहड़ में था वह, धरा आन कर चौकी पर।
बैठे थे हम मस्त ध्यान में, गिरा गई बिल्ली आकर।।
फैल गया सब दूध फ़र्श पर, द्रश्य देखकर यह हमने।
ओंधे होकर लगे चाटने, चाट लिया सारा हमने।।
अभी न पूरा चाट पाए थे, बुद्धि दास वापिस आया।
दूध पड़ा देखा भूमी पर, ओधा पड़ा हमें पाया।।
यह क्या यह क्या बोला इकदम, हम उठकर चुप बैठ गये।
जब तक हम नंहि बोले अपनी, बुद्धि दास जी कहे गये।।
उसे शान्त करने को हमने, कहा भाइ थी त्रुटि मेरी।
दोंनों मिल जुल कर पी लेंगे, यों पीने में की देरी।।

हमसे आंख बचा कर भय्या, बिल्ली ने आ धुधकाया।
ख़फ़ा न होने लगो कहीं तुम, भय ने हमसे चटवाया।।
दूजे भाइ दूध ही तो था, चाट लिया क्या ग़लती की।
अमृत है यह मृत्यु लोक का, घूँट भाग ही से मिलती।।
अगर गिरा था धो देते हम, पीने को ला देते और।
लेकिन यह क्या किया आपने, मानव के से कब थे तौर।।
इतनी भी क्या समझ नहीं, यह ढंग हैं सब हैवानों के।
ज़रा सोच कर देखो तुम तो, चोले में इन्सानों के।।
अपने होंठ खुले नंहि आगे, सिर्फ़ रहे सुनते हम तो।
बहुत देर हमको समझाया, दिया सब़क काफ़ी हमको।।
अगले दिन चल दिये वहां से, ओर जन्म भूमि की हम।
जैसे कोई धकेले फिरता, और धिके फिरते हों हम।।
हम थे ताबेदार हुक्म के, जो कुछ अंदर से होता।
सौ फ़ी सदी बमूजिब उसके, नत्मस्तक हो चल देता।।
पा प्यादा हम गये गांव को, जब पहुँचे, था संध्याकाल।
गये शेर पुर आसन अपना, एक बाग में दीना डाल।।
बना हुवा था वहाँ कूप इक, और एक पिण्डी शिव की।
किन्तु ज्ञात होता लखते ही, पूजा कभी नहीं होती।।
चारों ओर विकट गंदा पन, बीटों के अम्बार लगे।
पंख और पिंजर सुखे हुऐ, पशु पक्षी के थे बिखरे।।
बाग कहें या वन झाड़ों का, साँपों की बंबियाँ बे अंत।
भूत वहाँ रह सकते हैं या, रह सकते हैं केवल संत।।
लेकर नाम श्री सदगुरू का, आसन डाल लिया अपना।
करी प्रार्थना श्री सदगुरू से, ध्यान इधर अपना रखना।।
जिसदम हम बैठे आकर के, आस्मान का रंग बदला।
आँधी और मेघ उठ आये, बड़े जोर का जल बरसा।।
ग्रामीणों ने देख लिया था, जब हम पड़े वहाँ आकर।
चुहड़ और मूले गए हम पै, विवश किया हमको जाकर।।
महाराज जी वहाँ ठहरना, वर्षा में क्यों भीग रहे।
गांव आप ही का है वह भी, यहां रहे या वहाँ रहे।।
तुम्हें भीगते हुवा देखकर, हमसे सहा नहीं जाता।
आप कींच में पड़े रहें यो, हमसे रहा नहीं जाता।।
जहाँ पड़ा बस पड़ गया अब तो, यह आसन अब नंहि उठता।
चाहे कुछ भी आवे आफ़त, अब डिगाए से नंहि डिगता।।
बहुत आग्रह की दोंनों ने, किन्तु गांव में नहीं गये।

जब देखा दोनों भइयों ने, के अब बसकी नहीं रहे।।
लकड़ी फूँस ऐकत्रित करके, इक झूँपा तय्यार किया।
पानी धूंप न कर पावे कुछ, हमको उसमें बिठा दिया।।
जगह छीलकर साफ़ बना दी, इक दो दिन ही के पश्चात।
बना रूप इक कुटिया जैसा, आन लगे फिर बहुते हाथ।।
पाँच सात दस दिन में ही वहां, एक नया ही रूप बना।
मत पूछो बस शेर पूर की, आता हम तक जना जना।।
अपने पास जूड़ से ज़्यादा, होने लगा जमाव यहां।
प्रेमी वही पहुँच जाते हैं, उनको मिलता भाव जहां।।
यह सौदा वह नहीं क़ीमतन, जिसको बेचा जाता हैं।
यह तो सिर्फ़ भाव से मिलता, कीमत भाव चुकाता हैं।।
अपने पास मुरलिया थी इक, जब भी कभी मौज आती।
तो उसकी ताने मन मोहक, अर्ध निशा फूँकी जाती।।
पांचों गांव सुना करते थे, अपनी इस मुरली की टेर।
प्रेम हमारे से था जिनको, वहीं उन्हें ले आती घेर।।
दिन औ रात यहाँ भी अपना, उसी तरह सत्संग चला।
रहा यहाँ भी पंच गांव यह, अपने संग में घुला मिला।।
राजपूत सज्जन भी अपने, साथ बहुत श्रद्धा लाये।
संख्या बढ़ती गई सभों की, अपने पास सभी आये।।

यहाँ जूड़ से दो गुना, आने लगा सवाद।
चर्चा रहती नित्य ही, बड़े बड़े सँवाद।।

ग्राम जड़ौदे के पटवारी, भी अपने ढिंग आते थे।
बातें बहुत किया करते थे, चमत्कार भी चाहते थे।।
अकसर बड़े बड़े संवादों, और विवादों में हमको।
कई कई दिन लग जाते थे, समझाने में भक्तों को।।
पटवारी भी सुनता रहता, और देखता रहता सब।
किन्तु चाह थी चमत्कार की, बातूनी से क्या मतलब।।
लेते भक्त रसों के प्याले, भर भर देते रहते हम।
भर कर पिया किसी ने आधा, किसी किसी ने उससे कम।।
कुछ ऐसे जो आते भी, पर रस तक पहुँच नहीं पाया।
किसी किसी ने पाकर खोया, किसी किसी ने संगवाया।।
साक्षात् सदगुरू अंदर से, बरसाते अपनी वांणी।
लगा किसी को अमृत जैसा, और किसी को बस पानी।।

वर्षा में ज्यों मेघ बरसते, वृक्ष आम औ इन्द्रायन।
दोनों ही उस पावन ऋतु का, जल कंण पीते हैं पावन।।
किन्तु एक में मीठा पन, बढ़ता है इक में कड़वाहट।
जिस जिसमें जैसा अंकुर है, है वैसी वैसी चाहत।।
जैसी माला वैसे दाने, जैसा अंकुर वैसा बुद्ध।
इष्ट मिला करता वैसा ही, वैसी ही होती है सुद्ध।।
चश्मों से देखा जाता है, जो प्राणी जैसे पाते।
कामनाए अंकुर से चलतीं, वही रूप आगे जाते।।
बहुते चमत्कार से झुकते, बहुत प्रभा पर झुक जाते।
बहुते नव जाते बोलों से, जब उनके उर में चुभते।।
अपने साथ हुवा जो कुछ, व्यौहार जड़ौदे वालों से।
हमने बुरा न चाहा उनका, अपने कभी ख़ायालों से।।
लेकिन किये भुगतने पड़ते, किया आज का पाओ कल।
कर्म अकर्मों के पाटों में, दुनिया जाती दली सकल।।
हमें छेड़ता ही रहता वह, व्यक्ति जड़ौदे का अकसर।
चमत्कार दिखला दो कोई, कहता रहता उकसाकर।।
कभी कभी यह भी कह देता, भले बने तुम बाबा जी।
केवल बातें ही बातें है, चमत्कार इक पास नहीं।।
वैसे पढ़ा लिखा भी था वो, कहने को था पटवारी।
लेकिन क्या करता बेचारा, चमत्कार ने मति मारी।।
पाण्ड़ा झील निकट है अपने, जल पक्षी रहते बे अन्त।
सोचा करते देख शिकारी, है शिकार का इसमें तंत।।
लेकिन देता न था खेलने, वहां किसी को कोइ शिकार।
इसी लिए चिड़ियों की इसमें, रहती थी बेढ़ब भर मार।।
एक रोज़ कुछ फौज़ी अफसर, आ शिकार खेले उसमें।
लोगों ने आवाज़ सुनी, बंदूक लगी जिस दम छुटने।।
इधर उधर से ऐकत्रित, हो गये गांव के आकर के।
अंग्रेज़ों को देख, पास, आये मेरे घबरा कर के।।
बोले सब आकर के हमसे, महा राज अब बतलाओ।
क्या युक्ती हम करें रोकने, की इनको अब समझाओ।।
नहीं पूछने वाला कोई, ढ़ले एक ही साँचे में।
भार सभी के सर पर है, महाराज सुरक्षा का इनकी।
वे तो हैं अँग्रेज़ मार, डालेंगे पक्षी अन गिनती।।
फ़ौरन कोई युक्ति बताओ, काम जरूरी है करना।
मर भी अगर गये तो क्या है, दो दो बार नहीं मरना।।

जितने आये पास हमारे, की हमने सब ही से बात।
बोर्ड लगा दो एक मना का, लिख कर जोहड़ पर इक साथ।।
उसके बाद रोक को जाकर, पर साहस से लेना काम।
साथ आपके डरना मत, हर समय रहेंगे पांचों ग्राम।।
एक काठ की तख़्ती लेकर, तभी बांस पर जड़ डाली।
और इबारत उन्हें रोकने, की मन चाही लिख डाली।।
लेकिन थे अलफ़ाज़ तेज़, जैसे के हुक्म दिया जाता।
सार्वजनिक स्थनों पर, आदेश नम्र लिख्खा जाता।।
गाड़ दिया इक जगह हुक्म वह, और उन्हें जाकर रोका।
जनता भी बेढंग निरक्षर, जो मुंह में आया भोंका।।
कुछ वे समझ न पाये इनकी, साथ सभी था बेढंगा।
इस कारण उठ खड़ा हुवा वहाँ, आपस में इक दम दंगा।।
गूंगा गावे डुण्ड बजावे, बहरा सुन कर ताल लगाए।
तो बोलो ऐसी मजलिस में, स्वाद भला क्यों कर आ जाए।।
इनके रोके रूके न वे यों, अव्वल तो हम हैं अफ़सर।
दूजे थे हथियार हाथ में, तीजे मुकुट हमारे सर।।
राज हमारा माल हमारा, अनुचित उचित सभी अपना।
यह है प्रजा जन्म की सेवक, इनका कौन सुने बकना।।
अतः उन्होंने सुनी न इनकी, काम रहा जारी उनका।
जब वे रोके रूके न इनके, क्रोध इधर चमका सबका।।
काला अक्षर भेंस बराबर, जिनको क्या जानें क़ानून।
जितने थे ऐकत्रित उनमें, जागा इकदम धर्म जनून।।
फिर क्या था बढ़ गये अगाड़ी, बोल दिया हल्ला इकसाथ।
जा छीनीं बंदूक़े उनसे, और जमाये घूंसे लात।।
गुप्ती मार लगाई सब में, लगी मरम्मत जब होने।
तो दाऐं बाँऐ होकर के, गोरे लोग लगे भगने।।
बैठ बैठ मोटर में अपनी, बचा बचाकर अपनी जान।
भाग गये जितने थे सारे, छोड़ छाड़ अपना सामन।।
जो घटना घट गई एक दम, इतनी का अनुमान न था।
इस लीला के बाद हमारे, पास गया सारा जथ्था।।
महाराज जी अब क्या होगा, मुँह सबके उतरे उतरे।
कर तो दिया जो आया आगे, पर जँचता अब बुरे फंसे।।
इतनी आशा न थी किसी को, जितना क़िस्सा बढ़ा वहाँ।
अब निज जान बचेगी कैसे, गाँव छोड़कर जाँए कहाँ।।
थोड़ी बहुत देर में अब यहाँ, द्रश्य और बन जायेगा।

पुलिस फ़ौज या हुक्कामों का, डंडा बजता पायेगा।।

जिसको देखो और ही ढंग के तौर तरीक़।
भय से थे भयभीत सब साहस ना नज़दीक।।

हम बोले करके डरते क्यों, वह भी देखा जायेगा।
तुमने की अपनी सी वह भी, अपनी करता आयेगा।।
सब अपनी अपनी करते हैं, करके फिर डरना कैसा।
वक्त सभी दिखने को आते, जो आता देखा जाता।।
सुनकर पुलीस फ़ौज की बातें, लोग बहुत भयभीत हुवे।
कोइ किधर को कोइ किधर को, इधर उधर सब भाग गये।।
बिन अफ़सर की फ़ौज बिना, मालिक जैसे घर का धंधा।
भगदड़ सी पाँचों गावों में, हर इक था भय से अंधा।।
हो तो गया क्षणेक में सबकुछ, भावुकता की रौ थी तब।
लेकिन जँचा बाद में सब कुछ, कौन सम्भाले इसको अब।।
बात ठीक है चर्म चक्षुओं, को इतना ही दिखता है।
कौन कराता कौन कर रहा, कौन उसे यहाँ भरता है।।
चर्चा इधर उधर झगड़े की, फैल गई बिजली की नाँप।
ऐसा हुवा सुना जिसने भी, सुनते ही वह जाता काँप।।
आफ़त एक बुलाली यह तो, बंध जायेंगे पाँचों ग्राम।
अंग्रेज़ों से टक्कर है यह, नहीं है कुछ साधारण काम।।
दिन भी गया रात भी बीती, आया जब सवेर का वक्त।
धिरी मिली सारी बस्ती, था बंदूकों का पहरा सख़्त।।
चारों ओर गाँव के फ़ौजी, और पुलिस दस्ते पाये।
साक्षात् विक्राल काल के, दल बादल सर पर छाये।।
किये मिले बंदूकें सीधी, जिधर किसी का मुंह चमका।
ऐसा लगता था जैसे के, साक्षात् यम आ धमका।।
जो भी व्यक्ति गाँव में पाया, बालक युवक और बूढ़ा।
बिना कहे कुछ बात एकदम, हथकड़ियों में धर जूड़ा।।
थर्रा गया इलाक़ा सारा, आस पास जितने थे ग्राम।
भाग गये घर बार छोड़कर, कहीं न था मरदों का नाम।।
गाँव रहा गर्दिश में तबतक, जब तक हाथ न आये सब।
एक एक पकड़ा नंहि जब तक, खोज रही सब की तब तक।।
छोटे बड़े सभी इक पलड़े, तुले एक ही काँटे में।
नहीं पूछने वाला कोई, ढले एक ही साँचे में।।

जिसने जेल नहीं देखी थी, आने लगे जेल के ख़्वाब।
जिसने नहीं भाग कर देखा, भाग गये पड़ते ही दाब।।
वली न वारिस दीखा कोई, मानो हो गए जैसे सभी यतीम।
इज़्ज़तदार हुवे बे इज्ज़त, सर पर ऐसे चढ़े ग़नीम।।
त्राहि त्राहि कर उठे सभी जन, चले जेल को जिसदम लोग।
खाने लगी पछाड़ नारियाँ, बना अजब ही इक संयोग।।
चलीं जेल जब भर भर मोटर, सब के अंदर थी यह चाह।
मिले नहीं दर्शन सदगुरू के, भरते जाते थे सब आह।।
पहुँचे जिसदम द्वार जेल के, प्रगट हुआ सदगुरू का रूप।
बोले, है संघर्ष धर्म का, बन जाओ संघर्ष सरूप।।
डरा न करते धर्म कार्य में, हम हैं सदा आपके साथ।
धीरज रक्खो ठीक होए सब, क्यों के है सदगुरू का काज।।
ख़ुशी ख़ुशी फिर घुसे जेल में, की पूरी सदगुरू ने चाह।
जितने भी थे जेल यात्री, दर्शन पा हुए बे परवाह।।
सबने पिया जेल का पानी, साथ साथ डंडे खाये।
बड़े दिनों के बाद ज़मानत, पर छुट छुट के घर आये।।
सरकारी नज़रों में बाग़ी, घोषित हुवा जड़ौदा ग्राम।
तोपों से उड़वादो इकदम, अगर हिलावे कोई कान।।
सभी बने भीगी बिल्ली सी, म्याऊँ बने जितने ख़ूँख़ार।
कान सभी के ढलके नींचे, दिखती थी सर मौत सवार।।
बड़ा मुक़दमा था ता कारण, ऊपर से यह हुक्म हुवा।
वहीं जड़ौद बने कचहरी, वहीं मुक़दमाँ जाय सुना।।
मजिस्ट्रेट स्पेशल इक, अंग्रेज़ वहाँ तैनात किया।
ग्राम जड़ौदा उस हाकिम के, हाथों में था सोंप दिया।।
नहर महकमे की कोठी पर, बैठी आन अदालत आ।
जने जने का बारी बारी, उस हाकिम ने केस सुना।।
लोगों ने देखा जब अपनी, जान न बचने पायेगी।
नज़रें बता रहीं हाकिम की, सख़्ती बरती जायेगी।।
थोप दिया झगड़ा मेरे सिर, सबने मेरा नाम लिया।
झण्डू दत्त महात्माँ जी ने, ही हमको यह हुक्म दिया।।
कहते हैं तालाब पाण्डव, है अपना तीरथ स्थान।
जो शिकार खेलेगा इसमें, दंण्डित होगा वह इन्सान।।
चले उन्हीं के आदेशों पर, हम हैं उनके अनुयायी।
केवल हुक्म बजाया हमने, रोक उन्हीं ने लगवाई।।
सुनकर ऐसे कथन सभी के, हाकिम ने हमें बुलवाया।

कुछ सिपाहियों के संग अफ़सर, हमको लेने को आया।।
महाराज इक अफ़सर बोला, तुम्हें साहब ने याद किया।
साथ लिवा लाओ साहब ने, हमको ऐसा हुक्म दिया।।
पाँच फूल लेकर सदगुरू से, साथ साथ उनके पहुँचे।
भरी मिली कोठी आदम से, हाकिम उनमें बैठे थे।।
समझ हमें सरदार, नज़र इक, हाकिम ने हम पै डाली।
कर हमने परनाम मेज़ पर, रखदी फूलों की डाली।।
क्रुद्ध हुआ बैठा था अफ़सर, भेंट किये जब हमने फूल।
फेंक फाँक डण्डे से नींचें, बोला डौन्ट मेक मी फ़ूल।।
सुनो पादरी साब आपके, फूलों से हम ख़ुश नंहि हैं।
देकर हुक्म इन्हें तुमने, अपने अफ़सर पिटवाये हैं।।
ये सब के सब बता रहे हैं, इस झगड़े के तुम हो मूल।
नौब़त यह नंहि आती हरगिज़, तुम ही दिलवाया तूल।।
तुमने ले क़ानून हाथ में, वहाँ बोर्ड लगवाया है।
औ जो जी आया लिखवाकर, तुमने ही गड़वाया है।।
तुम्हें क़ैद कर देंगे हम, समझे, कहलो जो कहना है।
अपने लिये सफ़ाई में, रक्खो जो तुमको रखना है।।
जो कुछ कहा हमें हाकिम ने, बड़े साफ़ थे उसके अर्थ।
लोगों ने अपने वचनों को, थोपा मेरे मूँड़ अनर्थ।।
हमने भी स्वीकार लिया, उपहार समझकर लोगों का।
होता है स्वादिष्ट ज़ायका, अक्सर ऐसे भोगों का।।
हम बोले साहब से साहब, तुम जिसके हो ताबेदार।
होगी वह सरकार आपकी, अपनी नंहि है वह सरकार।।
हम नौकर हैं बड़े साहब के, हम भी रखते कुछ अख़्त्यार।
तुम अपनों की रक्षा करते, हम अपनों के पहरेदार।।
अपना पार्ट अदा करते तुम, अपना हमने कर डाला।
ना तुमने देखा भाला कुछ, न हमने देखा भाला।।
हमने तो डाटे तेरे, तेरों ने मेरे मार दिये।
जुल्म किया उन मासूमों पै, मौत के घाट उतार दिये।।
भय क्या दिखा रहे हो हमको, जेल तुम्हें भिजवादेंगे।
हम ने जैसा यहाँ किया, सो भजन वहाँ भी करलेंगे।।
हमें रोक कर साहब बोला, हमें न ज़्यादा समझाओ।
ज़ामिन अगर आपका कोई, हो तो उसे लिवा लाओ।।
हम ही हैं अपने ज़ामिन बस, आप ज़मानत हैं अपनी।
पुनः छेड़ कर उसने हमको, शुरू करादी बक अपनी।।

फ़ौरन सूरज भान तग़ा इक, खास जड़ौदे का बासी।
बोला मैं ज़ामिन हूँ इनका, और ज़मानत लिखवादी।।

इस प्रकार अपनी हुई उस अफ़सर से भेंट।
कर आये अंग्रेज़ को भली तरह हम चेत।।

फिर क्या था चल पड़ा मुक़दमाँ, रही बहुत दिन खेंचातान।
अपनी फ़िकर सभी को लग रही, बस मेरी बच जावै जान।।
किस प्रकार से है ये तीरथ, था सबूत हमको देना।
इसका भार हमीं पर था बस, अपनी अपनी जना जना।।
आई अमावश जय भादों की, पाण्डेवाले के तट पर।
मेले की, की एक योजना, गादी गई वहाँ उसपर।।
बाई थी इक शेर पूर की, गेंदी था देवी का नाम।
ध्वजा हाथ में ली देवी ने, घबराते थे पुरूष तमाम।।
ध्वजा सनातन की देकरके, करदी गादी के आगे।
गया कीर्तन होता वहाँ तक, नर नारी सब साथ लगे।।
आलम जुड़ा बहुत न्हाने को, आई दुकानें भी काफ़ी।
खेल तमाशे दंगल आदिक, इक अच्छी सी रौनक थी।।
आए देखने अफ़सर गण भी, बड़ी जाँच कीं उन सबने।
सालाना भरता है यह तो, बतलाया यह सब ही ने।।
कूआ भी इक खुदा वहाँ पर, पानी पीने की ख़ातिर।
जब प्रमांण सब मिले वहाँ पर, पड़ा मानना ही आख़िर।।
छः छः मास सज़ा बारह को, साल भर की दो को।
बारह को पंचस पंचास, सौ सौ जुरमाना था दो को।।
मुख़्त्यारा मर गया जेल में, छोड़ दिये हम सारे और।
काफ़ी दिन संघर्ष रहा यह, ख़त्म हुआ झगड़े का दौर।।
हुक्म हमेशा के लिए हो गया, तीर्थ बना पाँडा तालाब।
छपी प्रांन्त के लैसन्सों में, ग्राम जड़ौदे की यह ढाब।।
झगड़े की शौहरत हुई इतनी, कमिश्नरी सब मान गई।
छोटी सी बस्ती को जनता, दूर दूर की जान गई।।
इसके बाद किसी ने हमसे, चमत्कार की की नंहि माँग।
पटवारी जी से हम बोले, देखा चमत्कार का साँग।।
था तो वह मेहमान आपका, घूंम गया लेकिन घर घर।
परिचित था वह सभी गाँव से, मेहर करी उसने सब पर।।
महाराज जी क्षमाँ करो अब, पग पकड़े पटवारी ने।

मूल्य न आँका तनिक आपका, भगवन बुद्धि हमारी ने।।
लगने लगे निकट फिर अपने, भक्त अभक्त गांव के सब।
बढ़ने लगी सुसंगत अपनी, झूंपे में आ आकर अब।।
गंगा राम किशन पुर के इक, व्यक्ति लगे अपने नजदीक।
सोंप दिया ख़ुद को आते ही, मांगी आकर सेवा भीक।।
भाव देख उनके अति निरमल, सेवा भार उन्हें सोंपा।
अब मंदिर बन गया राज जी, का वह तिनकों का झूंपा।।
मुरली मुकुट न बागा वांणी, केवल फ़ोटो सदगुरू का।
बहुत दिनों तक श्री सदगुरू का, झूंपा लीला भवन रहा।।
करते रहे शयन तिनकों में, सिरी सिरी जी आनंद कंद।
पीते रहे प्रेम रस प्याले, भक्त उन्हों के हो निरद्वन्द।।
परम धाम को तज रज पावन, करी तिमिर की जैसे आ।
रंग मौहौल बन गया फूंस का, झूंपा श्री राज जी का।।
लीला शिरी शिरी जी की नित, रही बदलती नित बाने।
यह वह लीला थी जो देखे, केवल वही उसे जाने।।
गूंगे की हूँ भांति न वरनन, उस छवि का हमसे होता।
कल्पनाओं से अपनी अपनी, स्वयं समझ लेना श्रोता।।
वही आरती होती थी जो, प्रचलित है जगदीश हरे।
संध्या समय ग्राम वासी सब, आते छोटे और बड़े।।
गंगा राम समझने लग गया, लगने लगा इशारों पर।
नज़रें लगी पहुँचने उसकी, कभी कभी नज्ज़ारों पर।।
आने लगा बिशम्भर सिंह इक, लड़का वहीं शेर पुर का।
श्री राज जी की सेवा का, उसको भी कुछ चाव लगा।।
मित्र बिशम्भर का वारू, थे दोंनों बचपन के साथी।
मित्र मित्र की स्वच्छ मित्रता, खेंच मित्र को ले आती।।
बंधने लगा प्रेम में बारू, खिंचने लगा पतंग की नाप।
शनः शनः आ लगा डोर पर, आने लगा नियम से आप।।
गंगा राम बड़े कामों में, और बिशम्भर छोटों में।
बारू को भी दिया काम कुछ, लेकिन मोटे झोटों में।।
एक रोज़ सब साथी मिलकर, लगे सोचने आपस में।
कोंठा एक बना करके, पधरा दो यह सेवा उसमें।।
अतः साथियों ने मिल करके, कुऐ से दक्षिण की ओर।
कोठा एक बना ही ड़ाला, पधरा दी सेवा हर तौर।।
रोज़ कीर्तन होता उसमें, रक्खे जाते निज प्रस्ताव।
सभी तरक्क़ीं चाहा करते, आश्रम को ऊँचा ले जाओ।।

दैव योग से एक रोज इक, ऐसी वहाँ जमात आई।
जिसमें थे हर एक पंथ के, संत महात्माँ अनुयाई।।
थे सत्कार और आदर के, योग्य महात्माँ वे सारे।
आभा और प्रभा जिसने भी, देखी लगे उसे प्यारे।।
सब बोले हमसे मिलकर क्या, चलता नहीं यहाँ भण्डार।
जब हमने इंकार किया तो, वे बोले कुछ मन सा मार।।
महाराज यदि आप आज्ञा, दें तो हम चालू कर दें।
लंगर रहे तुम्हारा जारी, केवल आप नज़र रक्खें।।
हमने कहा आप समरथ हैं, इच्छा अगर यही है तो।
भला काम है आज्ञा किसकी, फ़ौरन आप शुरू कर दो।।
है विश्वास श्री सदगुरू सब, पूरा उसे निंभाऐंगे।
काम जगत के चला रहे क्या, अपना नहीं चलाऐंगे।।
मिलकर सभी महा पुरूषों ने, करवाया चालू भण्डार।
चलता रहे हमेशा यों ही, ताकत दें इसको करतार।।
बड़े प्रफुल्लित हो हो करके, सबने जींमा वह परशाद।
नियम पूर्वक उसी तरह से, क्षेत्र चला फिर उसके बाद।।
चले गये वे महा पुरूष तो, छोड़ गये अपनी माया।
रहे जीमते उस प्रशाद को, भण्डारे में जो आया।।
कभी वहाँ चलता था कूंआ, बैल चलाते थे चरसा।
पैड़ उसी की खुदी पड़ी थी, शुरू किया भरना गड्ढा।।
बाद कीर्तन के सब साथी, मिट्टी खोदा करते थे।
बनी तलय्या खुदा जिधर से, पैड़ उधर भर देते थे।।
चलता रहा बहुत दिन यों ही, कोठा छाप दिया इक और।
ज्यों ज्यों बढ़ता गया साथ निज, बनती गई वहाँ पर ठौर।।
हर प्रकार की दी सुविधाऐं, लोगों ने हमको हर वक्त।
सेवा भाव बहुत कम में था, ज़्यादा तर थे लोग अभक्त।।
कभी कभी कलयुग भक्तों में, भी घुस जाता है आकर।
बुद्धि भ्रष्ट कर ही देता है, अपने चक्कर में लाकर।।
गंगा राम समझ का भी था, और भाव भी थे सच्चे।
दिन चर्य्या औ नियम वियम सब, आंखों देखे थे अच्छे।।
कार्य्य महा प्रभु की सेवा का, था उन दिनों उसी के हाथ।
और किया भी करते सेवा, एक चित होकर के दिन रात।।
किन्तु फिसलते देर न लगती, कर्म काण्ड उस दिन बिगड़ा।
थाल भोग का मंदिर में से, इक दम बाहर आन पड़ा।।
बरतन जब श्री राज जी के, बजे जमीं से टकरा कर।

भोग मिला इक साथ धूल में, तो हमने पूछा जाकर।।
गंगा राम ये क्या हरकत है, तुम शायद यह जान रहे।
के हम भोग वोग जो कुछ है, चित्रों को आरोग रहे।।
यहां कहां है श्री राज जी, समझी होगी सब बकवास।
झूंठ खिलाने लगे प्रभू को, गंगा राम तुम्हें शाबाश।।
श्री राज बन बैठे क्या तुम, अगर वास्तव है यह बात।
तो मस्तक अब तुम्हें नवाया, करेगा सारा सुंदर साथ।
गंगा राम भाग कर आया, इकदम मेरे पैरों में।
क्षमाँ करो अब क्षंमा करो अब, मिन्नत करने लगा हमें।।
कभी न हो आइन्दा गलती, क्षमाँ आज कर दो महाराज।
आप सत्य कहते हैं मेरी, फूट गई थी हिय की आज।।
सेवा काज बिशम्भर सिंह को, सौंप दिया उसके पश्चात्।
बस केवल देखा भाली ही, बाकी रह गइ उसके हाथ।।
चलता रहा नियम कुछ दिन यो, बारू ने सहयोग दिया।
छोटा मोटा काम योग्य जो, उसके लगा सुपुर्द किया।।
कभी कभी बारू घर जाता, न था वहीं रह जाता था।
शनः शनः अभ्यास न जाने, का घर बढ़ता जाता था।।
देखा घर वालों ने लड़का, गया हाथ के नींचे से।
तो उसके घर वाले इक दिन, लेने आश्रम आ पहुँचे।।
लगे ताड़ने उसको आकर, कहने लगे जो मुँह आया।
और लगे हमसे कहने, क्यों जी इसको क्यों बहकाया।।
किसने देखा हमें बुलाते, कौन गया इसको लेने।
झूँट मूँट भाई हमको क्यों, लगे उलहना तुम देने।।
कौन रोकता है ले जाओ, हमें नहीं इसकी दरकार।
आते को सत्कार हमें तो, देना ही पड़ता लाचार।।
धक्के मुक्के दे दा करके, हांक लिया आगे आगे।
लेकिन मोती जुदा न होते, जब पिर जाते हैं धागे।।
घास काटने को दांती दे, भेज दिया वह हाथों हाथ।
लेकिन हालत बिगड़ी उसकी, काट रहा था जिस दम घास।।
बेसुध होकर गिरा बाढ़ में, मुट्ठी में था दाँती बैंट।
दांत बंद थे आंख मिची थीं, गात रहा था सारा ऐंठ।।
काधे पर लाये जंगल से, चार पाइ पर ला टेका।
किये बहुत उपचार न उसने, आँख खोल करके देखा।।
हाल रहा जब तीन रोज़ यह, तो घर वाले घबराये।
घर वाले धक्के दे सबने, आश्रम को तब भिजवाये।।

करी प्रार्थना जाकर हमसे, महाराज किरपा कर दो।
हमसे ख़ता हुई मांफी दो, बारू को अच्छा कर दो।।
एक अगर बत्ती दे करके, हमने भेजा गंगा राम।
चिमटे से मुंह खोल के उसका, करवाया चरणा मत पान।।
जब खुल गई आंख बारू की, गंगा राम चला आया।
पर चाचा बारू का बारू, को लेकर आश्रम आया।।
बोला महा राज लो वापिस, अपने चेले को रक्खो।
ख़ता हुई थी जो हम से बस, उसके लिए क्षमा कर दो।।
हमने कहा मौज है भाई, आते को आसन हाज़िर।
जो जाना चाहे वह जाओ, नहीं देखते उसको फिर।।
बारू फिर जम गया काम पर, अपने होकर के मुस्तैद।
घर भी कभी कभी आश्रम पर, पर हो गया प्रेम में क़ैद।।

अलग न हो सकते कभी, नहीं द्रष्टि से दूर।
जो इक बेरी ह्रदय से, हाज़िर हुवे हुजूर।।

एक रोज़ हलवा पोशीदा, जगह हमें रक्खा पाया।
श्री राज जी के प्रशाद को, हमने था वह बनवाया।।
इच्छा हुई ज़रा देखों तो, चोर कौन है हलवे का।
किसको साहस हुवा राज जी, की यह चोरी करने का।।
आ बैठे हम निज आसन पर, देखें कौन उठाता है।
श्री सद गुरू का माल चुरा कर, किस मुंह से वह खाता है।।
चले गये जब इधर उधर सब, तो इक व्यक्ति उधर पहुँचा।
मौक़ा पा ऐकान्त बड़ा, हल्वे का लुक़माँ जा ठोका।।
लेकिन लगा थूकने फ़ौरन, थू थू शब्द हमें आई।
तो हम पहुँचे उसे देखने, जाते ही बोले भाई।।
गंगा राम प्रशाद है यह तो, क्या यों थूका जाता है।
धरती पर गिरता यदि किनका, भक्त उठा खा जाता है।।
तू कमबख़्त थूकता इसको, जिसको ब्रह्मा तक तरसे।
गंगा राम श्वेत सा पड़ गया, मुझे देख करके ड़र से।।
मैं बोला यह खाना होगा, जिसको थूका है तेंने।
खा खाने का रक्खा था, सभी खिलाना है मैंने।।
बुला उधर से कुत्ते हल्वा, टेक दिया मैंने आगे।
चक्खा नहीं किसी ने सारे, सूंग सूंग वहाँ से भागे।।
फिर बोला चल खिला गाय को, वह भी सूंग हटी पीछे।

गंगा राम हल्क़ से तेरे, अगर पहुँच जाता नींचे।।
आज सिखा देता चोरी, करना हलवा बच गए महाराज।
दर्शन करने अभी आपके, यम पुर से आते यमराज।।
शर्म नहीं आती बे ग़ैरत, कैसा तेरा पेट हुवा।
भरते भरते भी नंहि भरता, खत्ती है या है कूआ।।
कम्बख़्तों जब श्री सदगुरू के, साथ तुम्हारा यह बरताव।
तो फिर नहीं पहुँच सकती, भव सागर पार तुम्हारी नाव।।
गंगा राम चला पग गहने, हम बोले बस वहीं रहो।
अगर चरण चाहो सदगुरू के, तो पहले प्राश्चित करो।।
जीभ चमारी के वश होकर, कर तो गया पाप उस वक्त।
लेकिन थर्रा उठा एक दम, उसकी हर नाड़ी में रक्त।।
ग़र्क हुवा हैरत में अपनी, धो डाले पातक आगे।
लगा लगन में श्री चरनों की, फिर उसके चक्षू जागे।।
गिरते कभी कभी फिर उठते, भक्त कभी औ कभी अभक्त।
ऐसा ही है पथ परमारथ, राग कभी तो कभी विरक्त।।
कृपा श्री सदगुरू जब होती, तभी उठा करता है पांव।
और कृपा तब होती है जब, बस जाता चरनों की छाँव।।
बारू गया एक दिन घर तो, ताले भीतर बंद किये।
आश्रम पर क्यों जाता है तू, घर वालों ने तंग किये।।
देखें अब क्यों कर जायेगा, तू ऐसे नंहि मानेगा।
जब तेरी हडडी तोड़ेंगे, तब तू हमको जानेगा।।
कर दो बंद इसे कोठे में, किया एकने उसको बंद।
खान पान पर रोक लगा दी, किया इस तरह बारू तंग।।
सदगुरू सदा देखते रहते, हैं अपने भक्तों का हाल।
बंद कोठरी में हो करके, बारू सिंह हो गया निढाल।।
सुध से बेसुध हुवा एक दम, नब्ज छूट गइ हो जैसे।
हरकत बंद हो गई बदन की, बारू सिंह हुवे ऐसे।।
जंगले में को देख एक ने, शोर मचाया कम्बख़्तो।
ताले को खोलो इक दम, क्या हाल है लड़के का देखो।।
देखा खोल खाल जब ताला, तो बारू बेहोश मिला।
दी आवाज़ें ज़ोर ज़ोर से, सबने उसको हिला हिला।।
उत्तर मिला न जब कुछ वापिस, नब्ज तलक न हाथ आई।
तो सम्मति कर सारे बोले, वहीं छोड़ आओ भाई।।
अपने बस का रोग नहीं यह, सब कुछ करके देख लिया।
पागल पन है भइया अपना, जो कुछ इसके साथ किया।।

फेंक गये आश्रम में उसको, मरा जानकर घर वाले।
लेकिन क्या रहस्य है इसमें, क्या जानें बाहर वाले।।
उठा लाए श्री चरनों में उस, शव को सारे सुंदर साथ।
चरणा मत लेकर सदगुरू की, करने लगा बैठकर बात।।
बदला गया नाम उस दिन से, युगलदास विख्यात हुआ।
छोड़ दासता चिर दासों की, धनि चरणों में दास हुआ।।
घर वालों ने तजा आसरा, निकला अपना पूत कपूत।
लेकिन सदगुरू चरण थाम कर, जो थम जाता वही सपूत।।
युगल दास ने गहे चरण, चरनों ने गह लिया अपना दास।
किया निछावर सब सदगुरू पर, हुवा पूर्ण उन पर विश्वास।।

सदगुरू की महिमा बड़ी, बड़ी हैं उनकी बात।
हो समानता किस तरह, बड़ी है उनकी जात।।

बात सुना करते थे अपनी, भरत सिंह से सुँदर लाल।
घिसर पड़ी में रहते थे वे, आकर इक दिन किया सवाल।।
भरत सिंह है चल सीने के, एक ब्राह्मण जाती से।
मुंशी हैं कोल्हू वालों के, अपने शिष्य कहाते थे।।
बाहर कहीं गये हम उस दिन, बोले आकर सुंदर लाल।
जैसे शर्त मारता कोई, इस प्रकार का किया सवाल।।
जब जानें मुंशी जी तुमको, महाराज जी के दर्शन।
आज करा दो तो हम समझे, महा राज जी है पूरन।।
वरना हमें सिर्फ़ बातें ही, बातें केवल दिखती हैं।
असल तभी जानेंगे हम तो, अगर असलियत मिलती है।।
भरत सिंह बोला भइया जी, बात अगर है इतनी सी।
महा राज जी तो पूरे हैं, दर्शन होंगे निश्चय ही।।
लेकिन बैठ जाओ श्रद्धा से, दिल में उनका ध्यान करो।
देर न लगने की आने में, कुछ उन पै विश्वास करो।।
कह तो गया भरत सिंह इतनी, पर कुछ कुछ फिर घबराया।
मानो भरत सिंह का जैसे, इम्तहान का दिन आया।।
जपा ह्रदय से सदगुरू सदगुरू, दर्शन को नज़रें तरसीं।
दर्शन दो प्रभु दर्शन दो प्रभु, कह कह कर अंखिया बरसीं।।
बढ़ती गई लालसा ज़्यादा, ज्यों ज्यों बढ़ता गया समय।
ज्यों ज्यों देर हुई दर्शन में, भरत सिंह को उपजा भय।।
सुंदर लाल उधर कुछ कुछ, जो मुँह आया कह देता था।

लगी खटकनी बातें उसकी, पर चुप चुप सह लेता था।।
लगी उचाटी महा राज जी, नींचा दिखलाना है क्या।
नहीं कहीं का भी रहने का, अगर आपने नहीं सुना।।
रहकर इसी दिशा में मुंशी, भरत सिंह बोला भइया।
मैं टट्टी हो आऊँ इतने, आप यहीं बैठे रहना।।
टट्टी किसे लगी थी वह तो, बेचैनी अंदर की थी।
वक्त बढ़ाने के लिए थोड़ा, सिर्फ़ एक वह युक्ती थी।।
लोटा ले जा बैठा ऐसी, जगह जहाँ से वह नाका।
जिससे महाराज जी अकसर, आया करते दिखता था।।
लगी टकटकी उस नाके पर, फाड़े बैठा रहा निगाह।
था विश्वास सुनेंगे अपनी, नंहि हैं सदगुरू बेपरवाह।।
इतने में दीखे आते हुए, लोटे का पानी फेंका।
और कारख़ाने की जानिब, क़दम बढ़ा कर मैं लपका।।
ताके पहुँच जाऊँ पहले ही, हाथ पैर धो धा करके।
लेने योग्य चरण हो जाऊँ, सदगुरू आए कृपा करके।।
बोले सुंदर लाल हमारे जाते ही, क्या समझूँ अब।
दर्शन होते तो हो लेते, भइया क्या घर जाऊँ अब।।
भइया मैं क्या करूँ बता अब, मेरे कुछ नंहि बसकी बात।
आना तो उनके बसकी है, बता हमारे क्या है हाथ।।
बड़े शौक़ से जा सकते हो, हम शर्मिंदा हैं खुद ही।
जिन्हें बड़ी मुश्किल से समझे, समझ जाओगे अब तुम भी।।
सुंदर लाल चला जैसे ही, ऐन द्वार पर जब पहुँचा।
अंदर आते श्री सदगुरू जी, देखे तो वह सहम गया।।
लगे पूछने आते ही क्या, बात है भइया सुंदर लाल।
याद किया किस कारण हमको, है भी ठीक आपका हाल।।
गिरा चरण पर शमी करके, निकल न पाया आगे बोल।
कृपा और लीला दोंनों ही, समझी सदगुरू की बे तोल।।
बना पुजारी एक झलक में, अंहकार हो गया समाप्त।
थके खोजते जिसको सुर नर, हुवा सहज घर बैठे प्राप्त।।
फूट पड़े श्रद्धा के सोते, झरने झरे भक्ति रस के।
रो रो कंथ न पाया बहुतों, हमें मिला हंसते हंसते।।

इस प्रकार के चुटकले घटते थे दिन–रात।
लोगों में श्रद्धा न थी, केवल बात ही बात।।

ऐसे ऐसे चुटकले दिखलाते रहे नाँथ।
सदगुरू बड़े महान हैं पारब्रह्म साक्षात्।।

जिन जाना तिन पाईया, राखा हिये छिपाय।
अन्दर ही अन्दर पिया, प्याला होठ लगाय।।
करनी कृपा और अंकुर ये, तीनों छिपाये नहीं छिपते।
लेकर ही जाते हैं उसको, अपने साथ नहीं हटते।।

सतगुरू की कृपाओं का वरनन,
स्वयम् नहीं होता हमसे।

– प्रथम पुस्तक समाप्त –

"बाँणी से"

आज सांच केहेना सो तो काहू ना रूचे, तो भी कछुक प्रकासूं सत।
सत के साथी को सत के बान चूभसी, दुष्ट दुखासी दुरमत।।

सत्य बहुत कम रूचता सबको, क्योंकि झूँट में बैठे सब।
छूटा ज्यों सम्बध सत्य से, और झूँट से हो मतलब।।

इल्मी उलझ रहे इल्मों से, शरियत वाले शरियत से।
समझ सकेगा इस लीला को, जो जुड़ बैठा प्रीतम से।।

मैं क्या कहता वे कह रहे हैं, बैठे बीच परआतम नाथ।
मैं तो सिर्फ़ हुकम का बंदा, ना ही लिखता मेरा हाथ।।

बोल आए सदगुरू श्री मुख से, उन्हें न समझो मेरे बोल।
मैं तो सिर्फ़ मनादी वाला, बजा रहा हूँ केवल ढोल।।

नहीं प्रशंषा होती खुद से, अपने ही मुंह अपनी बात।
उधर तो बोले लालदास जी, इधर साथ पी के परताप।।

दिया मुझे सब ख़ुद प्रीतम ने, गर्भित जो इस बीतक में।
पहरे पर रानी चलसीना, निधि बख़्शी जिस वक्त हमें।।

अगर शक है तो शक समझो, इमारत जो चिनी अब तक।
दरारें शक की भरने वाले, उतरे ही नहीं अब तक।।

उतर भी जाएँ क़िस्मत से, तो शक नवने नहीं देता।
शरण में अपनों के अपनों, हि को रहने नहीं देता।।

सुना कुछ मारदो शक को, बनो इक साथ सब बेशक।
बने बेशक तो बेशक एक दिन, हों आप ही में हक़।।

सदगुरू की बीतक कहनी है, अंतिम भी है रूप यही।
जो कुछ बख़्शा हमें इन्हों ने, रखना सन्मुख सही सही।।

"लेखक के दो शब्द"

तुमने जो कहलाया मुझसे वही कहा मैंने अविचल।
तुमने जो करवाया मुझसे वही किया मैंने निश्छल।।
तुमने जो सिखलाया मुझको सीखा मैंने वही सकल।
तुमने जो दिखलाया मुझको देखा वह मैंने पलपल।।

यह जो कुछ भी कहा किया, सीखा देखा मैंने प्रीतम।
सो सब तुमने ही अपने में अपनी लीला की उत्तम।।
ये सब कैसे होते मुझ से जब मैं ही हूँ नहीं स्वयं।
सदन आपका हूँ जो मैं हूँ तुम ही हो इसमें हरदम।।

बीतक लिखी नहीं मैंने यह ना मेरी बुध का यह काम।
बोली लिखी स्वयं सदगुरू ने अपना करते आप बखान।।
मुझे समझ मत लेना कोई कारण कार्य स्वयँ सदगुरू।
उनकी इच्छा उनका किस्सा उनका मुँह उनही का सुर।।

हैं प्रणाम बारह हज़ार निज गहकर चरण साथ जी के।
बीतक श्री राज जी की मैं भेंट कर रहा हूँ आगे।।
कृप्या क्षमां करेंगे त्रुटियाँ त्रुटियाँ ही त्रुटियां मुझमें।
जहाँ साथ है वहीं नाथ है सब मिल करना क्षमां हमें।।

श्री सदगुरू के मात पिता को श्रद्धाञजलि

परम पूज्य श्रद्धेय ब्राहम्मण, कुल भूषण सरताज।
सम्प्रदाय के रत्न मुकुट, श्री राम रतन महाराज।।
पाण्डु जड़ौदा ज़िला सहारन, पुर में है विख्यात।
इसी भूमि को सर्व प्रथम, परताप नवाता माँथ।।
जिस पवित्र भूमि पै उतरा, ऐसा पावन लाल।
उस धरती को क्यों नंहि हो, फिर जग में ऊँचा भाल।।
कोख सपूती वही कहाती, जो सुपुत्र का करती दान।
ऐसी पुत्र दात्री जननी, का यश गाता सकल जहान।।
माता श्रीमति मगन देई ने, कुल जग पर उपकार किया।
क्योंकि जन्म के अंधों को, अति उज्ज्वल दिव्य प्रकाश दिया।।
आभारी है जगत आपका, मातेश्वरी नवात शीश।
निज सेवक को भी प्रशाद में, बख़्शो माँ थोड़ा आशीष।।
माओं के आशीष सफलता, के स्थम्भ कहे जाते।
इसी लिये जननी श्री सदगुरू, पहले तुमको शीष झुकाते।।
चला छाज में, जेल से वंसु सर जो रूप।
छज्जू जी के नाम से है विख्यात सरूप।।
श्री छज्जू जी की समृति से, हो जाता रोमाँच शरीर।
सब से पहला नाम कृष्ण का, सुनकर मनमें होती पीर।।
छाज सिंहासन छाज सवारी, श्री कृष्ण का प्रथम बना।
किसी भक्त के मुँह से लेकिन, छज्जू ही ना नाम सुना।।
सत्य बात तो यह है के, छज्जू पंथी हैं परनामी।
पर अज्ञानता के कारण, यह बात किसी ने ना जानी।।
बेअदबी की क्षमाँ चाहता, सदगुर पिता पुनीत।
किन शब्दों से करूँ अलंक्रत, तुम्हें जगत के मीत।।
पिता श्री सदगुरू छज्जू जी, साष्टाँग करता परनाम।
क्षमाँ चाहता हूँ जिभ्या से, लिया आपका मैंने नाम।।
छज्जू जी का नाम मात्र, लेने से मैं कीड़ा मलका।
सत्य बात कहता हूँ भगवन, हो जाता हल्का हल्का।।
गुँण निदान थे, तुम महान थे, थे विरक्त सब से ज़्यादा।
नमन आपके पूज्य चरन को, श्री श्री छज्जू सिंह दादा।।
श्रद्धाञजली समर्पित करता, है प्रताप पद पंकज पर।
आशीर्वाद चाहता थोड़ा, किरपा करो हमारे पर।।

रतनसिंह मजादपुर

चले एक दिन शेरपुर से मजादपुर ओर।
मिलने को निज साथ से व्याकुल था मन मोर।।

बीता वहाँ बालपन अपना, माता और पिता के बाद।
जने जने से वहाँ प्रेम था, रह रह आते रहते याद।।
थे लंगोटिया मित्र हमारे, प्रेम हृदय में अति उनका।
कई चिट्ठियाँ गईं शेरपुर, हमें बुलाता जना जना।।
रतनसिंह सुलतान व भानी, बाबूजी भी कहते सब।
निकट बहुत रहते थे अपने, गये मजाहिदपुर जब जब।।
आए घूमकर के हम जब से, सबको यही तमन्ना थी।
ठहरें महाराज यहाँ आकर, चर्चा वर्चा जाय सुनी।।
हम क्या करें प्रशंषा गुरू की, कितनी हम पै दया करी।
जिन जिन से लगाव था अपना, उनपर भी जा कृपा करी।।
रतनसिंह साथी अपने इक, हैं मजादपुर बचपन के।
राजपूत जाती में से हैं, संग रहे काफ़ी अपने।।
थे मंशागिर शिष्य हमारे, वे मजादपुर जा पहुँचे।
योग्य देखने के सरूप था, उच्च महात्मा से लगते।।
कोल्हू में जब गये रतन के, उसने उठ सत्कार दिया।
जगह साफ़ सी करके आसन, फ़ौरन उनका बिछा दिया।।
भेष लिये थे व्रत्ति महात्माँ, लगता बड़ा मोहिनी रूप।
बोले आकर भाई रतनसिंह, खिचड़ी लाओ लगी है भूक।।
अच्छा कह जब चले गाँव तो, मिली मार्ग में एक जमात।
साधू ही साधू दिखते थे, सभी लिये थे कुछ कुछ हाथ।।
तोंवी चिमटा, सोटा, लोटा, गाँव तलक थी लैन लगी।
जहाँ आश्रम आज शिशोभित, जाती थी उस ओर चली।।
दिखता न था टूटता ताँता, बढ़ा देखता हुआ उन्हें।
चला जा रहा था इतने में, एक महात्माँ मिला उन्हें।।
थमाँ दिया इक थाल रतनको, जिसमें था विशेष परशाद।
कहा रतन से लो जीमो जब, जीमे तो था अद्भुत स्वाद।।
उस जमात का अंत नहीं था, वे चलते ही चले गये।
एक झाड़ में जहाँ आश्रम, सब खपते ही चले गये।।
घर पहुँचा खिचड़ी ली उनकी, खत्म मिली फिर उसे जमात।

चला वहाँ से अर्थ लगाता, नहीं समझ आई कुछ बात।।
दी खिचड़ी मंशा गिर को जब, तो झाड़ों से उठा उजास।
गिरा रतन चुँधियाकर उससे, था प्रचण्ड वो दिव्य प्रकाश।।
एक भवन जगमग सा करता, उसमें उसको नज़र पड़ा।
कोंध रही थी किरन स्वर्ण सम, बड़ी विलक्षण थी शोभा।।
बेहोशी में दीखा सब कुछ, भवन था कि मंदिर समझो।
सुँदरता में अद्वतीय था, देखे भूक भगे जिसको।।
होश हुआ जिस समय रतन को, मंशा गिर ने पूछा हाल।
बतलाया फिर उन्हें रतन ने, दीखा जो उस वक्त कमाल।।
हम भी पहुँचे, कुछ दिन पीछे, दीखा जब मजादपुर में।
साथ न कोई इकले ही थे, ठहरे वाग़ इसमसिंह में।।
ज़िकर हुआ दर्शन का हमसे, हमने हंस के कहा रतन।
अच्छा न्हालो जगह दिखाना, चलकरके देखेंगे हम।।
न्हा धोके जब रतन पहुँच लिया, हम बोले ले चलो हमें।
जगह न गंदी पड़े मार्ग में, मल पै कहीं न पैर पड़े।।
बम्बे बम्बे चला साथ ले, फिर पकड़ी इक पग डण्डी।
खड़ा किया उस जगह जहाँ पर, मंदिर की छवि देखी थी।।
करो बैठने लायक इसको, तभी फावला मंगवाया।
बहुत बड़ा इक झाड़ वहाँ था, उसी झाड़ को धुथराया।।
जितनी बंबी आई सर्पों की, ढाकर सब विस्मार करी।
और झाड़ियाँ आदिक जितनी, काट काट कर साफ़ करी।।
लगा वहाँ आसन सदगुरू का, जब जब पड़ी ज़रूरत फिर।
बढ़ते गये साफ़ करते गये, बनी एक कुटिया आख़िर।।
चारों तरफ़ भेड़ियों के भट, और बग़ल में सर्पों के।
ये थे नाते दार पड़ौसी, सम्बंधी श्री सदगुरू के।।
बालक तो बालक बुड्ढे तक, दिन चलते भय खाते।
रात्री में तो किसी तरह भी, लोग उधर को नंहि जाते।।
सदगुरू की सदगुरू ही जाने, उस थल आसन क्यों गेरा।
क्या रचना रचनी है उनको, लगा वहाँ जो आ डेरा।।
नूं नूं नम्बरदार गाँव का, उनपर श्रद्धा ले आया।
सब कुछ लगा समझने उनको, रहन सहन उनका भाया।।
बिन कूंअे के कहाँ आश्रम, जल बिन रहा नहीं जाता।
सब से जल आवश्यक, खाना गिना नहीं जाता।।
करके सब से धन ऐकत्रित, कूआ इक बनवा डाला।
जब तक पूरा हुआ न बनकर, स्वयं काम देखा भाला।।

नूं नूं बना पुजारी उनका, बड़ा भाव आया उनपै।
जान निछावर करने को, तय्यार रहा करता उनपै।।
इक गुलाब सिंह चोली वाले, औ चमेल सिंह राड़धना।
बड़ा प्रेम था श्री सदगुरू से, न्यौछावर था जना जना।।
सोते कभी न देखे सदगुरू, नूँ नूँ ने की यह चर्चा।
बड़ा अचम्भा सा होता था, जिसने भी यह ज़िक्र सुना।।
नूँ नूँ के दिलमें यह आई, देखें ज़रा आजमाँ कर।
कभी ढोंग ही होवे इनका, देखें इम्तहान लेकर।।
कब तक सोते नहीं ज़रा हम, देकर के देखें पहरा।
ख़ुफ़िया ख़ुफ़िया तीन माह तक, सदगुरू पर रक्खा पहरा।।
किन्तु न सोते मिले किसी को, हुवे प्रभावित सब लखकर।
जिसने सुनी बात यह उनकी, असर पड़ा उन उन ही पर।।
इतना असर पड़ा नूँ नूँ पै, बिना बनाये बना गुलाम।
महाराज की बढ़ी मान्यता, भक्त बने सारे निष्काम।।

पर ऊपर की समझ थी अंदर गया न कोय।
प्रेम शरीरिक ही अभी आतम रही सोय।।

इक दिन मनमें आई हमारे, व्रंदावन को हुऐ तय्यार।
कहने लगे साथ से अपने, क्यों भई नूँ नूँ नम्बरदार।।
चलो यत्रा करवा लावें, लीला भूमि कृष्ण महाराज।
सुनकरके नूनूंसिंह बोले, जंगल क्यों खूंदें महाराज।।
और मंदिर देखे का गुंण, कुछ अच्छे नंहि लगते हैं।
श्री कृष्ण दर्शन करवाओ, तो हम सारे चलते हैं।।
हम बोले दर्शन तो भइया, तुमको करवा देंगे हम।
आगे काम आप लोगों का, पहचानोगे उनको तुम।।
हम को है मंज़ूर बात यह, चला साथ वृंदावन को।
शर्त ये थी बुलवा हम देंगे, पहचानोगे तुम उनको।।
जिसदम मथुरा स्टेशन पर, आकर अपनी रेल रूकी।
लड़का एक बड़ा ही सुंदर, होगी उम्र अठारह की।।
की प्रणाम सब को आकर के, लगा उतरवाने सामान।
महाराज जी से कीं बातें, जैसे पहली जान पिछान।।
एक धर्मशाला में जाकर, कमरा सुँदर खुलवाया।
सभी साथ को ले जाकर के, सादर उसमें बिढलाया।।
न्हिलवा धुलवाकर हम सब को, लेने चले गये जलपान।

इक लड़के के सर पर रखवा, ले आये पूरी मिष्टान।।
खिलवा पिलवाकर सबही को, हाथ जोड़ कर के बोले।
सेवा अगर और हो कोई, सेवक हैं तय्यार खड़े।।
काम और देखें फिर अपना, कृप्या हमें अज्ञा दो।
बैठे होंगे इन्तज़ार में मेरी, बाहर हज्ज़ारों।।
अच्छा कहकर उस किशोर की, महाराज ने ली परनाम।
हम सबने आराम किया फिर, चले गये वे अपने काम।।
भोजन का जब वक्त आयगा, ठीक समय पर आलूंगा।
चलते चलते कह गए थे यह, आकर स्वयं जिमाऊंगा।।
कहकर इतनी बात वचन में, मानो बाँध गये हमको।
हमें ज़रा भी ध्यान न आया, तीर्थ यात्रा है यह तो।।
भला किसी कै क्यों जीमें हम, इतना सोच नहीं आया।
संध्या काल निकट आया जब, समय सुनिशचित पर आया।।
संग संग था खान पान भी, पूरी और मिष्ठान सहि़त।
मिले न हम सारे ऐकत्रित, इक प्रकार थे क्षित विक्षित।।
बड़े प्रेम से सभी जिमांये, हम को भी आकर पूछा।
जीमके थोड़ा सा हम हट गये, बोले ध्यान करो इनका।।
जीम चुके जब छक छक कर सब, था स्वादिष्ट बड़ा भोजन।
तो हम नूनूँसिंह से बोले, इन्हें जिमादो कम से कम।।
बोले उनसे नूनूँसिंह जी, अजी आप भी तो जीमो।
मुस्काकर बोले वे इनसे, इतनी कब फ़ुरसत हमको।।
हमें जीमने जाना घर घर, जगह पेट में कहाँ भला।
अगर और सेवा हो बोलो, वरना लो परनाम चला।।
गये घूंमने फिर वृंदाबन, जगह हरिक देखी जाकर।
समझाते रहे महाराज जी, अलग अलग सब दिखलाकर।।
चोली का गुलाब सिंह बोला, महाराज क्या भूल गये।
श्री कृष्ण जी के दर्शन का, वादा जो करके आये।।
बोले हम, सब हो जाऐंगे, पहले वृंदावन मथुरा।
का तो दर्शन कर नंहि पाये, पहले क्यों होवे उनका।।
ख़ूब घुमाया उनको सबमें, कुँज निकुँज सभी देखे।
लेकिन दर्शन हुवे न उनको, कहीं श्री कृष्ण जी के।।
चलने के सामान बने सब, बिठलाने लड़का आया।
ताँगे आदिक में बिठलाकर, स्टेशन तक ख़ुद आया।।
पग ले ले बिठलाये इक इक, रूपया दे दे विदा किया।
छूट गई जब गाड़ी अपनी, लड़का तब लौटा होगा।।

लगे झगड़ने सारे हमसे, दिलवाकर सब के सब याद।
पूरा नहीं किया वह वादा, महाराज जो करलो याद।।
काम तुम्हारा मैं क्यों करता, तै थी हम तुम में यह बात।
जब तुमसे पिछने ही नंहि वे, अब क्यों करते हो बकवास।।
झलक दिखाकर ही छिपते यदि, फिर हम से कह सकते थे।
लेकिन वे तो तीनों ही दिन, तुम लोगों के साथ रहे।।
स्टेशन से स्टेशन से स्टेशन तक, तुम लोगों का साथ दिया।
खाने के पीछे पर तुमने, नहीं उधर को ध्यान दिया।।
मैंने तो संकेत किया भी, अरे इन्हें भी जिमवादो।
ज़रा ध्यान देना क्या उत्तर, साफ़ मिला तुम लोगों को।।
घर घर हमें जीमने जाना, नहीं तनिक फ़ुरसत हमको।
और साफ़ इससे ज़्यादा, उत्तर चहिये था तुमको।।
विदा किया रूपया दे देकर, जने जने के चरन लिये।
तड़फ उठे सबके सब सुनकर, बड़े घोर अपराध हुवे।।
मारे गए धोके में हमतो, समझे थे सेवक उनको।
बुरा हुआ यह तो हमसे सब, महाराज अब कैसे हो।।
कोइ आपका सेवक होगा, हम तो इस भ्रम में रह गए।
इसे पता है आना अपना, बेवक़ूफ़ हम यों बन गए।।
बड़े छटपटाये सब के सब, अब क्या करते सब थे मजबूर।
बात निकल गई कोसों आगे, निकल आए मथुरा से दूर।।
हम बोले भइया दुनियाँ में, क्या नंहि है, है सब कुछ ही।
पर आँखों वालों के लिए है, अंधों के लिए कोई नहीं।।
बात तीन दिन की है यह तो, साथ रहो यदि जीवन भर।
अंधे कभी नहीं पा सकते, जब तक कृपा न हो सदगुरू।।

सनमुख होते हुवे भी बिना आँख मजबूर।
मंजिल के दर पै खड़ा फिर भी मंजिल दूर।।

यात्रा बाड़म

आ पहुँचे वापिस मजादपुर, मथुरा की यात्रा के बाद।
सुँदर साथ लगा बढ़ने कुछ, बढ़ा और हमपै विश्वास।।
पंडित निहालसिंह दिनकरपुर, रहने लगे वहीं दिन रात।
भाव बहुत पावन थे उनके, और समझते भी थे बात।।
कर्म काण्डीवी भी उत्तम, सेवक आला दर्जे के।
जानें किस कारण पंडित जी, निकट हमारे आन लगे।।
इक दिन उन्हें साथ में लेकर, चले मित्र से मिलने को।
मेरठ के है निकट गाँव वह, अतः चले हम मेरठ को।।
पहुँचे जब हम मित्र द्वार पर, उसने हमसे बात न की।
खाना तो खाना पानी तक, की भी बात नहीं पूछी।।
हम बोले निहालसिंह भइया, मित्र हमारा ऊत गया।
अब तो अपना मिलने वाला, हो कोई तो उसे बता।।
महाराज जी है तो लेकिन, दूर जगह है समय नहीं।
हम बोले चल वहीं टिकेंगे, चाहे कितनी दूर सही।।
कहने लगा गाँव बाड़म है, उसमें है इक सिरीनिवास।
उससे मेल जोल है अपना, उसे समझलो अपना ख़ास।।
बाड़म नाम सुना जब हमने, अपना झट माथा ठनका।
घटना याद आई हमें उसकी, यात्रा से था जब आया।।
टिका टिकूकर भाग गये थे, बैठे रह गए थे इकले।
मिला नहीं था पानी तक वहाँ, ऐसे ही उस जगह मिले।।
सोच समझकर चलना भइया, फुके दूध के हैं पिछले।
पड़ी छाय हो फूंक मारलो, कभी हों ऐसे ही अगले।।
मित्र है अपना महाराज जी, वहाँ नहीं है ऐसी बात।
आप देखना तो चलकर के, स्वयं जान जायेंगे आप।।
कर निहाल को आगे आगे, बाड़म की मंजिल नांपी।
गये भीगते सारे रस्ते, बारिश भी ऐसी बरसी।।
किसी तरह पहुँचे बाड़म हम, घर ही पर था सिरीनिवास।
ख़बर लगी जब हम लोगों की, तो वह आया अपने पास।।
आसन लगा तमाखू आदिक, का प्रबंध करके सारा।
गया रोटियों को कहने को, अंदर घर में बेचारा।।
थी कमज़ोर अवस्था घर की, कर्ज़ चढ़ा बैठा था सर।
जायदाद जाने वाली थी, परेशान था घर का घर।।

संत जनों में श्रद्धा थी यों, अगर किसी की किरपा से।
बच जावें ये खूड़ हमारे, तो हम भी फिर बस जाते।।
ताँता महात्माओं का केवल, इस कारण से रहता था।
ख़ार्चा करते थे जो उनमें, इस लालच से होता था।।
जब खाने के लिये गया घर, और कहा घर खाने को।
तो इक दम माँ दाँत पीसकर, दौड़ी उसे चबाने को।।
जान गये बस हमें महात्माँ, अब निकालके दम लेंगे।
ताँता रहा अगर यों ही तो, हमें भी इक दिन खा लेंगे।।
ज़ोर पड़ा घर माँ पर देखा, बाहर देखा उसपर ज़ोर।
घर में जावें घर धमकावै, बाहर मेहमानों के चोर।।
अजब हाल अब बाहर लों का, पड़ा धर्म संकट ऐसा।
इन्तज़ाम बाहर भी मुश्किल, क्योंके हाथ न था पैसा।।
राज़ी करके अपनी माँ को, जब आया वह अपने पास।
तो उसको संबोधन करके, हम बोले भई सिरीनिवास।।
रूकवादो खाना वाना सब, हमें जीमना नहीं यहाँ।
काढ़ें घर से जिन्हें महात्माँ, भला जीमना कहाँ वहाँ।।
घर की छिपी हुई बातों को, सुन मेरे मुँह से स्पष्ट।
खड़ा देखता रह गया हमको, मानो हुआ हृदय को कष्ट।।
बोला गिर क़दमों पै इकदम, क्षमाँ मिले क्योंकर महाराज।
इतने दिन की इन्तज़ार में, चरण काम के आये आज।।
पर हम पै ओले से पड़ गए, घर वालों ने किया अनर्थ।
इतने दिन का करा कराया, मिट्टी किया, गया सब व्यर्थ।।
आप महामति मती मंद हम, किसी तरह से क्षमाँ करो।
जो बन चुकी प्रशादी घर पर, ध्यान न दो स्वीकार करो।।
हमने कहा अगर तुम चाहो, के हम ठहरें रहें यहीं।
अपने पास न आना बिलकुल, लेटो घर चुप चाप वहीं।।
तंग किया यदि तुमने हमको, हम हैं जंगल के जोगी।
उठते देर नहीं लगने की, बैठक ये ख़ाली होगी।।
जिस दिन भोग बनेगा अपना, इस घर में तब आऐंगे।
हमें बुलाने की कोशिष मत, करना ख़ुद आ जायेंगे।।
इस प्रकार सुनकर मेरे मुँह, हटा आँख के आगे से।
जीमाँ नहीं कोइ घर में भी, सोये सारे फ़ाके से।।
मानो मौत हुई घर कोई, शोक मना रहे हों जैसे।
भूके हों मेहमान भला जिस, घर वो घर खाये कैसे।।
निकले वचन हमारे मुँह के, माँ के कानों पहुँचाये।

हत्यारी सी रह गइ बुढ़िया, सुनकर मुँह से निकली हाय।।
फिरी लोचती और कोसती, अपने आपे को वे अंत।
मौत आज ही आने को थी, क्या मुझ को जब आये संत।।
खिला दिया घर मुस्टंडों को, भारी पड़ा इन्हें टुकड़ा।
रही बड़बड़ाती फिर बुढ़िया, सारी रात रोई दुखड़ा।।
पश्चाताप् हुवा घर भर को, जैसे पाकर गँवा दिया।
करता रहा कई दिन यों ही, उस घर में आराम तवा।।
ब्रम्ह महूरत में हमने उठ, अपनी पग डण्डी पकड़ी।
आए मजाहिद पुर दिन के दिन, मंज़िल की उस दिन तकड़ी।।
खान पान छूटा बाड़म में, जारी हुआ प्राश्चित सा।
अपनी इस घटना का सारी, बाड़म में फैला चर्चा।।
पूछा जने जने ने आकर, किस किस तरह घटी घटना।
इक प्रशाद सा चमत्कार का, शुरू हुआ बाड़म बँटना।।
आठ रोज़ उपवास रहा जब, उस घर में हम फिर पहुँचे।
हमें देख खिल उठे एक दम, सब के मुरझाये मुखड़े।।
उमड़ पड़े बाड़म वासी सब, मेला सा भर गया वहाँ।
शुद्ध भाव उपजे सब ही में, रहते सट्टेबाज़ जहाँ।।
निकट बुलवाकर किया इशारा, इधर ध्यान दो सिरीनिवास।
जीमेंगे हम आज तुम्हारे, बंद करो अपना उपवास।।
छलक आए मोती आँखों में, प्रेम बिन्दु छलछला उठे।
जिन चेहरों पै छाइ मुर्दनी, सुन इतनी खिलखिला उठे।।
मुख्य–मुख्य मानव सब आये, अलग अलग थे सब में भाव।
माल चाहता कोई दर्शन, किसी किसी में चर्चा चाव।।
बड़ी शुद्धताई रख करके, भोग बना उनके घर पर।
बाहर से अंदर तक शुद्धी, अविश्वास कंहि नहीं तिलभर।।
बाद जीमने के फिर अपना, जमकर के सत्संग चला।
टस से मस नंहि हुआ एक भी, जो भी था वहाँ बुरा भला।।
सोते समय बंद की चर्चा, गये नहीं फिर भी कुछ लोग।
इच्छा रही ज्ञान चर्चा की, औ लेने की सत्संग भोग।।
एक लालची भी था उनमें, बड़ी लालसा थी धन की।
जब देखा अब समय उचित है, तो खोली गुथ्थी मन की।।
कहने लगा व्यक्ति हमसे वह, हम साधारण से इन्सान।
इतनी नहीं योग्यता हममें, जो तुमको हम लें पहचान।।
इतना तो हम जान गये के, है तुम में व्यक्तित्व महान।
पर जब तक निज आँख न देखें, तब तक मुश्किल हमको ज्ञान।।

कृपा अगर धन की करदो कुछ, तुम्हें महात्माँ तब जानें।
संकट धन के अगर काटदो, तब भगवान तुम्हें मानें।।
धन की भूक भगादो अपनी, करवादो लक्षमी दर्शन।
सोये भाग जगादो अपने, रहता धन ही का चिंतन।।
हम बोले सोऐगा तो नंहि, बोला बिलकुल नंहि महाराज।
तो फिर सावधान हो रहना, इच्छा पूर्ण करेंगे आज।।
हमने कहा चिलम भरने को, मुखिया दौड़ पड़ा इक साथ।
गाँझा था उसके पल्ले कुछ, भर कर लाया अपने हाथ।।
चला दौर जब धूम्रपान का, दम खेंचे तकड़े तकड़े।
जितने चिलम बाज थे सारे, चक्कर खा खा घिसर पड़े।।
पुतली चढ़ीं मगज़ के भीतर, दिखने लगे एक के चार।
निद्रा सी आगई सभी को, पड़ गये सारे आख़िर कार।।
कृपा श्री सदगुरू जब आई, जाग रहा था सिरीनिवास।
हमने किया इशारा उसको, उठकर आया मेरे पास।।
जब आ गया निकट तो हमने, पूछा उससे क्यों भाई।
कौन व्यक्ति था धन का भूका, पूंजी किसने थी चाही।।
उठा दिया आसन ऊपर को, धन नींचे का दिखलाकर।
बोले लो दे दो उसको या, बुला लाओ ले ले आकर।।
मुखिया को झकजोरा उसने, बार बार कहने पर भी।
कोशिष उसे जगाने की की, लेकिन आँखें नहीं खुलीं।।
हाँ हम्बै के सिवा न कुछ भी, मुखिया जी से हो पाया।
धन सन्मुख पर नहीं भाग में, कौड़ी एक न ले पाया।।
बोले भईया सिरीनिवास, जितनी हो तेरी इच्छा।
मुखिया जी तो पछड़ गये अब, तू तो अपनी भूक भगा।।
लगा देखने मेरे मुँह को, बोला इम्तहान मत लो।
माया को दिखलाकर स्वामी, हमको धक्का तो मत दो।।
इसमें तो शक नहीं कि ऐड़ी, से चोटी तक हैं भूके।
पर इतना भी दीख रहा है, अब चूके तो बस चूके।।
साक्षात् जब आप विराजे, हुवे हैं भगवन मेरे घर।
तो सब कुछ ही आया घर में, शेष रही अब कौन कसर।।
अगर आपकी इच्छा है यह, के हम से कुछ तो ले लें।
रात रात की ख़ातिर अपने, चरणों की सेवा दे दें।।
हम बोले कर्जा है तुम पर, पागल ले करले बे बाक।
मुझ पर नहीं आप पर होगा, बोला इक दम सिरीनिवास।।
मेरा तो चुक गया आज सब, अगला पिछला पाक हुआ।

मुझे नहीं कुछ लेना देना, महाराज बेबाक हुआ।।
चरण थमादो अगर कृपा हो, और न कुछ इच्छा स्वामी।
बड़े दिनों में हाथ लगे हैं, चरण कमल अंतरयामी।।
आज सिर्फ़ सेवा करने की पर्वी, है, मौक़ा दे दो।
सुनते ही यह लेट गये हम, बोले लो भाई करलो।।
एक घड़ी उपरान्त भक्त से, बोले हम भई सिरीनिवास।
तू जो चिपट गया है हमसे, क्या कुछ देखा अपने पास।।
या पैसे धेले ही अपने, देख दाख के मुग्ध हुआ।
ऐसे क्या दीखा है मुझमें, जो इतना बेसुद्ध हुआ।।
बोला छिपा नहीं अब कुछ भी, प्रगट सभी कुछ है श्रीमान।
दिल की नज़रें देख रही हैं, आज हमारै हैं भगवान।।
उनही के चरनों में बैठा, सेव रहा हूँ आज प्रभो।
बहक न सकता अब बहकाये, चाहे जितना धोका दो।।
सिर्फ़ जबाँ से कहते हो या, दिल से भी कुछ जानोगे।
कहते हो भगवान जिसे, उसका कहना भी मानोगे।।
कहने लगा आपका कहना, अगर नहीं माना हमने।
तो फिर किसका कहा करेंगे, यह क्या कहा प्रभो तुमने।।
अच्छा तो फिर सुनो हमारी, आज ज़रूरत है घर पर।
पतनी चाह रही है तुमको, इच्छा पूर्ण करो जाकर।।
खड़े एक दम हो जाओ बस, इसे हुक्म अपना मानो।
ख़बरदार जो किया उलंघन, अगर किया तो तुम जानो।।
खड़ा हुवा सुनते ही इतनी, कर प्रणाम प्रस्थान किया।
इस प्रकार का हुक्म दिया तो, भेद है कोई जान लिया।।
गया द्वार पर जब तो पतनी, आतुर खड़ी हुई पाई।
क्या है राज़ भेजने में यहाँ, समझ भक्त को तब आई।।
चलते समय बताया उसको, आज तुम्हारे घर है आस।
पुत्र रतन देंगे श्री सदगुरू, रख उनपर पूरा विश्वास।।
दो वर्षों के अंदर अंदर, निमट जायगा जा कर्ज़ा।
रहने का नंहि ख़ाली अब से, धरती और ख़रीदेगा।।
चैन करो औ मौज उड़ाओ, ख़ुश रक्खें सदगुरू महाराज।
है आबाद याद रक्खा तो, भूल गया तो है बरबाद।।
आ पहुँचे हम फिर मजादपुर, पंडित निहालसिंह औ हम।
इन्तज़ार में थे सब अपनी, भानी औ सुलतान, रतन।।

बीतक चलसीना

मिट्टी में सब कुछ छिपा सोना हीरा लाल।
खोजी ही के हाथ है लेता उसे निकाल।।

कींट न जाने रूप निज भ्रमरी देती रूप।
भ्रमरी की सार्थ से कींट बने तदरूप।।

जब सदगुरू की मेहर उतरती, शिष्य सभी कुछ पा जाता।
ज्ञान ध्यान धन औ सम्पत्ती, अज़खुद उसपै आ जाता।।
कुल अक्षत्री दल अक्षत्री, अक्षत्री की चौबीसी।
अत्री गोत्र सोम वंशी हम, अपनी परिचय इतनीसी।।
नत्मस्तक प्रतापसिंह सबको, गुरू को प्रथम झुकाता शीष।
क्यों कि उन्हीं की कृपा कोर ने, की अतुलित हमको बख़्शीष।।
हंस वहीं रहते, हों सच्चे, मोती जौन सरोवर में।
मोती है आहार हंस का, देखो मान सरोवर में।।
हंसों की ख़ूराक है मोती, परम हंस क्या खाते हैं।
मोती शुद्धतिशुद्ध सरोवर, परमधाम के चाहते हैं।।
हंस भूक से मर सकता है, किन्तु अन्य नंहि ले आहार।
परमहंस की कथा मोतियों, और हंस का साक्षात्कार।।
इस बीतक में सार यही है, खोजें परमहंस मोती।
मोती को दरकार हंस की, हंसों को चहियें मोती।।
न्यादर मल औ भरतसिंह, ये पंडित हैं चलसीने के।
मौलसरे हैं महाराज के, न्यादर मल चलसीने के।।
सन्मुख रानी चलसीने के, चर्चा कर रहे थे न्यादर।
महाराज इन्सान नहीं, भगवान हैं पूरे विश्वेश्वर।।
अपरम्पार हैं लीला बीबी, साक्षात् परमात्माँ हैं।
पकड़े हाथ पिछान के जो, वही परमधाम की आत्माँ है।।
वंशीधर चलसीने के इक, इक हम बैठे सुन रहे थे।
रंग चढ़ाया जा रहा कैसा, सुन सुन के हम भुन रहे थे।।
सुनी न गई जब गप्पें उनकी, किलसके दोनों उठ आये।
बैठे रहे बाट में उनकी, न्यादर जब बाहर आये।।
हो गए खड़े पकड़के उसको, पंडित जी कुछ रंग चाढ़ा।
या बेकार गई सब मेहनत, सुनता रहा चुप चाप खड़ा।।

हम बोले न्यादर मल हमने, सुना आपका पूरा ज्ञान।
सुना आपके मुँह से हमने, महाराज जी हैं भगवान।।
कही आपने या नंहि, बोलो, कही है हमने, स्वीकारा।
साक्षात् भगवान हैं सदगुरू, न्यादर बोले, दोबारा।।
हम बोले भगवान सर्वव्यापक, होते हैं, कुछ समझा।
हम भगवान तभी मानेंगे, इसी वक्त दर्शन करवा।।
सौ रूपयों का नोट निकाला, ये रही लो दक्षणाँ महाराज।
अगर न दर्शन करवा पाये, तो लम्बा भी करदें आज।।
हम नंहि डरते चौधरियों से, पट्ठे आज बतादेंगे।
महाराज जनै हैं या नंहि, पर तुझे भगवान बनादेंगे।।
सुनकर अपने ऐैलानों को, न्यादर पंडित घबराया।
इधर उधर को लगा ताकने, भगना भी उसने चाहा।।
भागा तो जाने नंहि दें हम, घर पै भी जा मारेंगे।
हम बोले दर्शन करवा झट, वरना तुझे सँवारेंगे।।
न्यादर की हालत मत पूछो, था सफ़ेद उसका चेहरा।
फंसा हो जैसे यम दूतों में, भय सवार उसपै गहरा।।
थे चबूतरे की पौड़ी पै, ठीक सामने है बाज़ार।
दूर तलक का दिखता वहाँ से, उधर देखता वो हर बार।।
भय खाये चेहरे पर उसके, हरियाली सी कुछ आई।
महाराज भगवान ही हैं मैं, झूँट नहीं कहता भाई।।
वे ही फंसावें, वे ही छुड़ावें, ज़रा देखना कौन हैं वे।
वो देखों आ रहे बाज़ार में, पैदल डंडा लिये हुवे।।
न्यादर के कहते ही हमने, हो कर चकित उधर देखा।
तो सरूप श्री सदगुरू जी का, हमने भी आता देखा।।
मची एक हलचल सी हम में, कल्पनाऐं जब हुई साकार।
होके प्रगट प्रमाणित कर दिया, भक्तों के हैं हम आधार।।
भीतर भगे ख़बर देने सब, बीबी महाराज आ गए।
कोइ किसी को कोई किसी को, देने ख़बर सभी भाग गए।।
भगे नहीं हम, भगा दिये थे, लदड़ पदड़ अंदर पहुँचे।
गादी वादी बिछवाने के, इन्तज़ाम जो करने थे।।
अक़्ल किसी में नहीं रही यह, स्वागत भी तो था करना।
अगवानी के लिये किसी को, आवश्यक था वहाँ रूकना।।
बिछवाकर गादी वादी जब, लेने को बाहर आये।
कहाँ धरे थे महाराज वहाँ, ढूँड़े बहुत नहीं पाये।।
लोगों से पूछा देखे क्या, सोचा गये मजाहिदपुर।

भगे घोड़ियों पै चढ़कर के, देखा जाके उनको धुर।।
महाराज जी कहीं न पाये, शेरपुर भी दिखवाया।
डिगे नही वहां से इक पल को, जा के खबर एक लाया।।
संज्ञा भ्रम की कोई वहम की, चमत्कार कोइ बतलाता।
किन्तु जिन्होंने आंखों देखे, उन्हें कोइ क्या झुटलाता।।
महाराज कुछ हैं ज़रूर क्या हैं, क्या कह दें, बिन जाने।
हक उसी को है कहने का, जिसने हों वे पहचाने।।
क्या कह दें इस क्षणिक झलक पै, दुविधा में रह गये लटके।
ना खिलाफ़ ना माफ़िक ही रहे, थे विचार भटके भटके।।
लेकिन परिचय दे गये अपना, ताके आए हम पै विश्वास।
दर्शन देकर यह दर्शाया दिया, दूर नहीं हैं हैं हम पास।।
देर आपकी चाहत में है, उनके आने में नंहि देर।
देर तो हो सकती है लेकिन, उनके यहाँ नहीं अंधेर।।

दुख में सुख की आत्मां, रही लिपट संग सोय।
जो मरज़ी श्री राज की, निज चाहा ना होय।।

बीतक

श्रीमति रानी ईश्वर कुँवर व विचित्र कुमारी
स्टेट चंदसीना

श्री मुख

आते रहे मजाहिदपुर हम जब जब समय हमें मिलता।
इधर उधर भी हो आते थे कोइ आमंत्रित यदि करता।।
ग्राम मजाहिद पुर के बाजू, है स्टेट चंदसीना।
दूरी तीन मील है केवल, बड़ा मर्तबा था उनका।।
सदा मार्ग में पड़ता अपने, जब भी हम आते जाते।
किन्तु ग्राम के बाहर बाहर, अपने राह चले आते।।
बड़ी आन का राजपूत था, जिसने झुकना नंहि जाना।
कोइ न था उनकी टक्कर का, सब ही ने उनको माना।।
किन्तु कमी इक साथ साथ थी, वृत्ति आसुरी थी भारी।
धर्म कर्म के निकट नहीं थे, मदिरा और माँसाहारी।।
यह ही कमी डूब गइ लेकर, बढ़ने दिया नहीं आगे।
उठने दिया नहीं तामस ने, अतः चौधरी नंहि जागे।।
बीतक हैं हम दो बहनों की, जन्म लिया राजा के घर।
पिता श्री घनश्याम सिंह जी, बड़ा स्नेह इनका हम पर।।
सुत की जगह हमीं दो बहनें, समझो लड़का या लड़की।
अंश बंश सब कुछ हम ही थीं, गादी पति चंदसीने की।।
राज्य प्रशादों में जन्में, औ खेले कूदे युवा हुवे।
घर वर सुंदर ढूढ़ पिता ने, धूम धाम से ब्याह दिये।।
मिला राज वैभव सब हमको, किसी तरह की कसर न थी।
सुख सब होते मिला किन्तु दुःख, बोलो खता रही किसकी।।
ईश्वर कुँवर बड़ी है सबसे, राव कपसिया से ब्याही।
प्रताप भान सिंह राय बहादुर, जिला अलीगढ के मांही।।
थी उस वक्त कपसिया ही मैं, गया पिता जी का संदेश।
माता है बीमार तुम्हारी, आस नहीं जीने की शेष।।
चली साथ संदेशे के ही, माता जी पर ध्यान दिया।
थे इलाज हद से ज्यादा पर, दुखने उठने नहीं दिया।।

थक जाते जब लोग दवा से, तरफ़ दुआ की तब जाते।
दुख की लाते खा खा करके, समझ महात्माँ फिर आते।।
भरत सिंह चंसीने का इक, था उन दिनों जड़ौदे में।
जब भी कभी भरत सिंह आता, बात सुनाता बड़ी उन्हें।।
महाराज श्री राम रतन जी, हैं दर्शन करने लायक़।
भागा करतीं तभी निगाहें, मजबूरी आ जाती जब।।
रहते थे उन दिनों जूड़ में, महाराज श्री राम रतन।
था विख्यात नाम झण्डूदत्त, उनमें पहुँचा उनका मन।।
एक व्यक्ति आज्ञा ले करके, भेजा उन्हें बुलाने को।
लेकिन महाराज जी ने, इन्कार कर दिया आने को।।
कहा न्हिला दुहला कर उनको, स्वच्छ सभी करके स्थान।
श्रवण कराओ उन्हें भागवत्, भली करेंगे सब भगवान्।।
उसके वापिस आ जाने पर, हमने बिठा दिया सप्ताह।
हर प्रकार के उपचारों की, हमने रक्खी खूब निगाह।।
चली गई फिर भी गिरती ही, फिर अपने मामां भेजे।
श्री फूल सिंह गये जड़ौदे, मां का संदेशा लेके।।
मिले जूड़ से बाहर सदगुरू, जलती अगर बत्तियाँ हाथ।
मामां फूल सिंह जी ने लख, टेका श्री चरणों में माथ।।
पहले ही कह उठे कि क्या तुम, देवियों के हो चपरासी।
हाँ निकली मामां के मुंह से, बिन पूछे कैसे जाँची।।
मुड़े जूड़ में को वापिस फिर, बोले आसन जब बैठे।
छूट चुका अब हुकुम न कुछ भी, हो सकता कह दो जाके।।
हनूमान जी क्या कहते हैं, इनका हुवा वहां अपमान।
भरे गये इनके मंदिर में, मछली के शिकार के जाल।।
बात नहीं माफ़ी के लायक, पर माफ़ी भी मिल जाती।
स्वीकृत कर अपनी गलती को, नाक अगर रगड़ी जाती।।
लेकिन ना मुमकिन है यह भी, मांगेगा नंहि वो माफ़ी।
लम्बा पड़े न जब तक चरनों, जान नहीं बख्श़ी जाती।।
सर्व नाश है यह भी सुनले, डूबेगा पूरा खेवा।
बजे ईंट से ईंट गढ़ी की, रहे नहीं पानी देवा।।
निकल गया सन्नाटा सुन कर, बैठे रहे मौन कुछ देर।
एक लहर फिर उट्ठी हिय में, बोले मामां उनसे फेर।।
महाराज जी कुछ तो दे दो, जो जाकर बहका ही दूँ।
भरा हाथ लेकर जाना था, क्या ख़ाली लेकर पहुँचूँ।।
बड़ी आस थी उन्हें आप से, क्या उत्तर दूंगा अब मैं।

घास उखड़वा कर फुलवारी, उसे देकर के कहा हमें।।
ताँवे के पैसे के संग में, घिस कर इसे चटा देना।
रक्खें याद वरन् बरबाद, देवी से यह कह देना।।
दी वह घास हाथ में लाकर, मामां जी ने जब उनको।
इक दम ऐसा जंचा उन्हें के, माता जी बच गई अब तो।।
न था उन्हें विश्वास अधूरा, पूरे से भी था पूरा।
मांमां जी ने कहा न आगे, भेद रहा उन पै पूरा।।
सह न पांए लड़की ही तो है, बैठे रहे छिपाऐ सब।
देखें क्या होता है आगे, कह दूंगा यह था मतलब।।
औषधि जब चाटी अम्मां ने, आंख खोल करके देखा।
श्री कृष्ण जी की प्रतिमाँ को, सन्मुख पधरा रक्खा था।।
हे भगवान ये निकला मुंह से, अब मेरा निर्वारा कर।
हे भगवान निवेरा कर, हे भगवान निवेरा कर।।
हाथ जोड़ कर कहा चौधरन, ने मेरी अंतिम अरदास।
इसिया यही रहेगी घर अब, दीवा यही जलायेगी।
होकर के मुख़तार रहेगी, सारा काम चलायेगी।।
अगर न रक्खी घर पर लड़की, पल्ला पकडूंगी आगे।
मुझे वचन दो तभी चौधरन, शान्त हुई हां करवाके।।
लगा ध्यान श्री कृष्ण चंद्र से, गया बदलता पल पल हाल।
बुझती गई जोत जीवन की, शक्ती होती गई निढाल।।
राम शब्द का रा मुँह पर था, आतम ने जब भरी उड़ान।
लिया गोद में तभी एक दम, गोदी में ही निकले प्रांण।।
अस्त हुवा सूरज मैया का, पहिया एक गया रथ का।
भाई नहीं था बहन ही थीं बस, वंश पिता का नष्ट हुवा।।
रह गइ आस दूसरों पर ही, या तो लड़का या लड़की।
जंचने लगा बहन ईश्वर को, तेरे सर यह आन पड़ी।।
बेटा या बेटी दो ही तो, आस पेट से आती हैं।
बेटी कभी कभी बेटे का, पार्ट अदा कर जाती हैं।।
अतः बोझ पड़ गया बड़ी पर, घर जाना मौकूफ़ किया।
लड़की वहा न जायेगी अब, उत्तर यह ससुराल दिया।।
मांमां जी ने हाल शेर पुर, का बतलाया सब के बाद।
कह देना देवी से जाकर, रक्खें याद वरन् बरबाद।।
लगा शब्द का एक चपत सा, उठी दरश की अंदर चाह।
सोचा करते बड़ी युक्तियाँ, हर दम सदगुरू की परवाह।।
था रिवाज परदे का बेढ़ब, क्या ताक़त आ जावे ग़ैर।

प्हरेदार द्वार पर रहते, कैसे रहे गैर की ख़ैर।।
तिस पर राज पूत थे बिग्गड़, कह देना सो कर देना।
हानि लाभ का ध्यान न रखकर, बात बिगड़ने नंहि देना।।
उनके राज पिरोहित थे इक, न्यादर मल था उनका नाम।
उन ही को हथियार बनाया, वैसे वे थे भी विद्वान।।
उन पर था विश्वास पिता का, बात उन्हों की मानी जाती।
सब की बाते गिर सकती थीं, उनकी पैदल चल जाती।।
अपने हिय की उन्हें बता दी, महा राज जी लाने हैं।
किसी तरह भी करना हो चाहे, पिता तुम्हें समझाने हैं।।
वरन् नाश समझो इस घर का, उनके चरन बचा सकते।
काम नहीं यह और किसी का, उनको तुम ही ला सकते।।
समझा बूझा सभी न्यादर को, ज्यों त्यों कर तय्यार किये।
बड़े दिनों तक सुनी कथा सी, आने के आसार बने।।
भेजे कई बार पंडित जी, महा राज को लाने को।
पर ओटी नंहि एक बार भी, राजी हुवे न आने को।।
कहने लगे प्रेम जब होगा, खुद ही पहुँच जांयेगे हम।
नहीं बुलाना पड़ता कोई, खिंची चली जाती आतम।।
जब मजादपुर आते सदगुरू, जाते रहते न्यादर मल।
बड़े दिनों करवाई तपस्या, हों कैसे इतने निर्मल।।
जैसों को महाराज चाहते, क्या जानें होंगे कैसे।
अंकुर चाहा करता ज्यों जल, तड़पा करतीं वे ऐसे।।
डेढ़ बरस करवाया तप सा, इक दिन आना स्वीकारा।
कल आएंगे कहदो उनसे, सुना संदेशा जब प्यारा।।
हाल हुआ होगा क्या उनका, ख़ुद हम नहीं बता सकते।
वहाँ न पड़ते पैर किसी के, जहाँ जहाँ भी वे रखते।।
फूले फूले फिरे रात भर, घर अंगना देहरी द्वारे।
छिड़क छिड़क कर गंगा जल से, रस्ते सारे धो डारे।।
गंगा जल में बनी रसाई, काम किये पलकों तक ने।
सिंहासन दिवान ख़ाने में, सजवादिया एक हमने।।
पिता हमारे बिगड़े हमपर, सुनकर खाना बना लिया।
कहने लगे कि हम बनवाते, इन्होंने अच्छा नहीं किया।।
वे क्या जानें महात्माओं का, कैसा होता है खाना।
बिगड़े उन पर तुमको नहीं, चाहिये था यहाँ बनवाना।।
हाथीं रथ रब्बा औ ताँगे, इक जमात लेने पहुँची।
महाराज जी मिले न उनको, आ पहुचे वे पैदल ही।।

आ गए आ गए मचा शोर सा, चिक में से दर्शन पाया।
पेंतिस छत्तिस व्यक्ति साथ थे, सादर सबको बिठलाया।।
महाराज बैठे चौकी पर, सिंहासन पर नंहि बैठे।
कुछ भी तो नंहि हुवा किसी से, ख़प्त हुई बुद्धि जैसे।।
ना बाजा ना स्वागत कोई, ना जूलूस ही बन पाया।
ऐसे ढंग से आये सदगुरू, पौरूष एक न चल पाया।।
भोग शीघ्र ही भेजा हमने, था तय्यार इधर खाना।
डर था कभी पिता जी आकर, करवादें खाने की ना।।
न्यादर जिमा रहे थे बाहर, बैठ गये किनका भर ले।
महाराज जी यह क्या थोड़ा, जीमो, न्यादर मल बोले।।
सारी रात लगीं बेचारी, ज़रा भाव उनका देखो।
फिर से सब को हाथ छुवाकर, न्यादर मल से बोले लो।।
हाथ जोड़ फिर बोले न्यादर, महाराज कुछ तो खालो।
कब से देवी सोच रही थीं, छक छक तुम्हें जिमाने को।।
उंगली छुआ छुआ कर तुमने, दिया हमें केवल बहका।
बोले और नहीं जीमेंगे, जो इच्छा थी जीम लिया।।
उठकर झट कुल्ला कर डाला, चल दिए फ़ारम को पश्चात्।
जीमे नहीं तनिक भी सुन कर, मानी बड़ी हृदय ने दाझ।।
हुवा जरा सा बुच कर के मुंह, पिता ठीक कहते थे क्या।
वे क्या जानें उन्हे जिमाना, यह तो काम हमारा था।।
महाराज जी पहुँचे फ़ारम, जहां चौधरी रहते थे।
उठ नंहि सके चौधरी तब तक, महाराज जी जा पहुँचे।।
बढ़े पगों की ओर चौधरी के, मानो छूना चाहा।
महाराज जी मर जाऊँगा, मर जाऊँगा, आ हा हा।।
झुके चौधरी फ़ौरन् इकदम, ये तो हक्क़ हमारा है।
इसे आप कैसे ले लोगे, यह हम सब का न्यारा है।।
घड़ी एक बैठे होंगे बस, आवश्यक जो पकड़ाया।
बात बड़ों की बड़े समझते, पाने वाले ने पाया।।
जिस दम मिली आंख आंखों से, चूंस गये सदगुरू विकार।
अविश्वास की भावनाओं का, कर गए श्री सदगुरू आहार।।
हम हैं कुत्तें वासनाओं के, नज़रे करम रखना इस ओर।
मिलें आप जैसे कब हमको, हम हैं एक क़िसम के ढोर।।
इन्सानों की सफ़ में तुमसे, मिलें तो हम आ सकते हैं।
अज़ख़ुद कोइ न कुछ कर सकता, जो कहते हैं बकते हैं।।
न्यादर मल भेजे हमने के, दोनों के सन्मुख कहना।

अगर आज्ञा हो तो लड़की, चाह रहीं दर्शन करना।।
जब यह कहा उन्होंने जाकर, बोले पिता नहीं कुछ हर्ज।
ये तो जगत पिता हैं भाई, ऐसों का दर्शन है फ़र्ज़।।
कह दो उन्हें यहाँ आ जावें, दर्शक ख़ुद आया करते।
महा पुरूष दर्शन देने ख़ुद, कहीं नहीं जाया करते।।
अँतर यामी थे वे तो हम, आँख बिछाये बैठे थे।
घर पवित्र किस दिन होगा यह, आस लगाये बैठे थे।।
क्यों अरज़ी मंजूर न होती, बोले सुनकर के महाराज।
उन्हें यहाँ मत बुलवाओ हम, वहीं चले चलते हैं आप।।
जाना भी है ही होकर के, वहीं चले जावें आश्रम।
सुनकर इतनी बात पिताजी, बोले नहीं न मारा दम।।
हुक्म हुवा तांगा जुड़वादो, महाराज जी बोल उठे।
हम पैदल ही चलते हैं क्या, करने हैं हमको तांगे।।
पैदल चलें आप इस घर से, हम ज़िन्दे मर जायेंगे।
होते हुवे सवारी इतनी, सहन नहीं कर पायेंगे।।
फिर इन्कार किया श्री जी ने, पैदल ही जाना हमको।
कहने लगे चौधरी उनसे, हम भी राजपूत हैं तो।।
स्वीकारी यदि नहीं सवारी, हम भी कभी न चढ़ने के।
जीवन भर पैदल घूँमेंगे, वाहन पास न रक्खेंगे।।
राजपूत की है ज़बान यह, सुनते ही इतनी महराज।
बैठ गये चुप से ताँगे में, गये गढ़ी तक फिर श्री राज।।
देख रही थीं ख़्वाब निगाहें, जोह रही थीं कब की बाट।
गिन रहे थे इक इक पल जानें, कैसे वक्त रहे थे काट।।
पहुँचे जब महाराज सूचना, पहले ही हम पर पहुँची।
लगा उछलने दिल गदगद हो, जब उनकी प्रतिमाँ देखी।।
खड़े हुवे आकर डयौढ़ी के, थोड़े ही अंदर जाके।
चरन लिये जब हमने स्वागत, की माला डाली जाके।।
किया आग्रह अंदर का पर, क़दम न रक्खा सदगुरू ने।
विवश करें क्या नज़र पेश की, श्री सदगुरू को फिर हमने।।
ना का हाथ हिला इक दम से, चेहरे पर था एक जलाल।
आँख नहीं उठती थीं ऊपर, था विचित्र सदगुरू का हाल।।
कंधों से टाँगों तक चादर, ओढ़े थे महाराज श्री।
लौट गये बाहर ना करके, हमने भेंट साथ भेजी।।
बिना दक्षणा गुरू का जाना, ग्रहस्थी के घर से ख़ाली।
एक बौखलाट सी अंदर, उसने मन में करडाली।।

न्यादर का वह नज़र थमाकर, भेज दिया पीछे पीछे।
चाहे कुछ भी करना होवे, हर हालत में दे दीजे।।
हाथ जोड़ और मिन्नत सी कर, भेंट डालदी बण्डी में।
छूते न थे धातु श्री सदगुरू, आँख दिखाईं बड़ी उन्हें।।
हम धन नहीं लिया करते हैं, तुमने अच्छा नहीं किया।
जिसको साथ नहीं रखते हम, क्यों बण्डी में डाल दिया।।
न्यादर गिरे चरण पर फ़ौरन, महाराज बस रख ही लो।
लड़की जीवित मर जाऐंगी, कृप्या हमें क्षमाँ रक्खो।।
जानें क्या फिर सोच साचकर, श्री सदगुरू ने स्वीकारी।
कोइ दुआ सी निकली मुँह, सुन न पाए न्यादर सारी।।
प्रथम मिलन इस तरह हुआ था, बड़ा साथ आया था साथ।
बड़े छोड़ने गये इधर से, ताँगे में बिठला कर साथ।।
धन्य धन्य समझा अपने को, चरण पड़े घर उनके आ।
यह भी बड़ी कृपा है उनकी, कम से कम दीदार दिया।।
छिपे छिपे ही दे गए हों कुछ, ऐसा लगने लगा हमें।
जैसे बिलकुल सगा कोई हो, अपनापन सा था उनमें।।

इस प्रकार से धाम धनि की आई किरपा।
सोए पड़े थे एक नज़र में आके दिया उठा।।

दिवस दिवस पै दिवस बीतते, चले गये दिन तेज़ी से।
श्रद्धा पै श्रद्धा आती गइ, राग हुआ श्री चरणों से।।
किसी तरह फिर आवें इक दिन, बोल सुनें उनके मुख से।
इच्छा होती गई युवा यह, भूखे से रहते उनके।।
दो वर्षों तक मिला न मौका, कारण हाथ नहीं आया।
बहुत हुई बीमार विचित्रा, महाराज को वह लाया।।
थी संग्रहणी उसे पेट में, मृत्यु रोग ने पकड़ लिया।
लगी चार पाई पर बिलकुल, सब ही का उपचार किया।।
मगर ठीक होने की आशा, यहाँ किसी को नहीं रही।
तब विचित्र की आत्माओं से, महाराज आवाज़ उठी।।
महाराज जी पास बुलालो, महाराज मत तड़पाओ।
महाराज जी क्या रूँठे हो, महाराज जी आजाओ।।
राग बना महाराज होठ का, हरदम मुखमें था महाराज।
अनायास ही मनोकामना, पूर्ण हुई आ गए महाराज।।
स्वागतार्थ भागे दौड़े सब, आदर देकर बिठलाया।

है बीमार विचित्रा काफ़ी, मरणासन है बतलाया।।
आए देखने उतरी किरपा, हाल चाल पूछा जाकर।
छुड़वादीं सब दवा, तोड़दो, सब परहेज़ कहा आकर।।
वे बोलीं पर हेज़ों से ही, तो ज़िंदा है यह महाराज।
कहने लगे तोड़कर देखो, खाने दो इसको सब आज।।
जो भोजन नुक़सान करे, उसको आइन्दा मत खाना।
चूरन साथ कोइ सा ले लो, खा लिया थोड़ा रोज़ाना।।
सुनती थी विचित्र यह सब कुछ, खुले कृपा के अब फाटक।
श्रद्धा जहाँ उन्होंने पाया, खटक जहाँ वे रहे लटक।।
आतम झुकी नमन को इकदम, अपना यों उद्धार हुआ।
भोग रही थी भोग नरक के, समझा बेड़ा पार हुआ।।
बोली मैं पूरी भी खालूँ, वे बोले सब कुछ खाओ।
साथ साथ थोड़े दिन के लिए, आप आश्रम आजाओ।।
जहाँ मिली सेवा मेवा का, हाथ सामने आ जाता।
जिसने किया उसी ने पाया, प्राप्त सभी कुछ कर जाता।।
उसी वक्त परहेज़ तोड़दिया, जो जी चाहा, सो खाया।
जिन चीज़ों को तड़प रही थी, उन्हें उसी दिन बनवाया।।
हो ही क्या सकता था फिर कुछ, क्यों के हुक्म धनी का था।
हुआ न कुछ भी उसको खाकर, जैसे के कट गई व्यथा।।
वे तो चले गये खिलवाकर, उधर पिता को लगा पता।
तोड़ दिया परहेज़ छोड़दी, लड़की ने सब दवा ववा।।
इन सब के पश्चात् ठीक है, उनमें श्रद्धा बढ़ी अपार।
समझ गये हैं महापुरूष कोइ, चमत्कार पर पाया सार।।
संग्रहणी का मर्ज़ ठीक है, पूरी आदिक खाने पर।
आँतें गल जाती हैं जिसमें, वह मरीज़ है अब हुशियार।।
हाल रोज़ पुछवाते मेरा, क्या खाया पुछवाते सब।
नहीं रही गुँजायश कोई, आवे वहाँ अश्रद्धा अब।।
बात जगह कर गई पिता कै, वे भी नित्य याद करते।
चाहत थी उनके भी मन में, महाराज को बुलवाते।।
श्री मुख से, सुनते कुछ उनके, कथा कीर्तन करवाते।
लड़की ठीक हुई ता कारण, एक जशन सा मनवाते।।
थे मजादपुर महाराज जी, अतः निमंत्रण भिजवाया।
और फलों का एक टोकरा, नज़र वहीं पर करवाया।।
साथ साथ बिस्तर भेजा इक, रेशमीन करके तय्यार।
न्यादर मल को करी हिदायत, रहें न सोऐ बिन सरक।।

बिस्तर पर सुलवाकर आना, लाख जतन करने होवे।
लेकिन बिस्तर पर अवश्य ही अब से श्री सदगुरू सोवें।।
बड़े जतन से महाराज को, न्यादर मल ढंग पै लाया।
भेजा था जो बिस्तर उसपै, महाराज को सुलवाया।।
उस दिन से बिस्तर अपनाया, मिला कमलिया को अवकाश।
बड़े दिनों तक साथ साथ वह, लगी फिरी सदगुरू के गात।।
मौलसरे भी महाराज के, श्री न्यादर मल लगते थे।
महाराज छोटे नाते में, उनकी बात मानते थे।।
तीन काम चंसीने द्वारा, महाराज ने किये शुरू।
बिस्तर, भेंट, सवारी चढ़ना, चंसीने से हुवे शुरू।।
भेजी गई सवारी उनको, श्रद्धा से लाये न्यादर।
ठहरे गुरू गढ़ी में आकर, पिता दर्श को आए इधर।।
थोड़ा सा सत्संग हुवा फिर, भजन कीर्तन इत्यादिक।
हर प्रकार से हुवे पिता जी, महाराज जी के माफ़िक।।
द्रवित हुआ जब ह्रदय पिता का, श्री सदगुरू के प्रति ज़्यादा।
हाथ जोड़ कर करी निवेदन, महाराज अपनी इच्छा।।
है इक कुटी यहाँ बनवालो, बड़ी मेहर होवे हमपर।
स्वीकारो यह बात हमारी, अभी जगह देखो चलकर।।
स्वीकृति मिलते ही सदगुरू की, चले साथ ले हाथी पर।
परिक्रमाँ की चंसीने की, चारों ओर फिरे लेकर।।
राह रामपुर की जब आई, ऊँचा भूड़ नज़र आया।
तो उंगली से किया इशारा, उस टीले को बतलाया।।
कहने लगे चौधरी लखकर, यह भी कोइ जगह है क्या।
सुँदर सुँदर जगह छोड़कर, भूड़ क्यों आके पसंद किया।।
बोले हम हैं एक महात्माँ, उज्जड़ हमको भाते हैं।
वह ही जगह उचित है हमको, लोग जहाँ कम जाते हैं।।
हुकुम हुआ खंदक लगवादो, और झूँड उसके ऊपर।
वानक बने कुटी के उनकी, यों चंदसीने में जाकर।।
गये घूँमते और घूमाँते, जिसदम बम्बे के ऊपर।
सड़क फुलत को जाती है जहाँ, कहा खेत इक दिखलाकर।।
यहाँ स्थान रहे अति सुँदर, फ़ारम भी अपना नज़दीक।
और गाँव भी दूर नहीं कुछ, हर प्रकार से यहाँ है ठीक।।
जगह सुनिश्चित की आश्रम की, किया खेत सदगुरू के नाम।
किन्तु न पूरा कर पाये, घन्श्याम सिंह आश्रम का काम।।
पड़ गया फ़ालेज दाँए अंगपै, डेड़ साल तक चले इलाज।

किन्तु न जाँ बख़्शी हो पाई, किये सभी ने बहुत इलाज।।
मरने से पहले लड़की से, कहा चौधरी ने इसिया।
चले तरसते हम लड़के से, अब तू ही अपना लड़का।।
माँ बापों का काम अधूरा, औलादों ने पूर्ण किया।
देके वचन न बनवा पाये, महाराज की हम कुटिया।।
अब हम सोंप रहे यह तुमको, बेटी कुटी बना देना।
कर्ज़दार हम महाराज के, अपना कर्ज़ चुका देना।।
डबडबाई अँखियों से बोले, गुनहगार हैं माँफ़ करें।
कर गुज़रे ओंधा सीधा अब, जो चाहे इंसाफ़ करें।।
तीन वर्ष उपरान्त चौधरी, के निज आश्रम बन पाया।
हुआ साथ ऐकत्रित जब श्री, राज को उसमें पधराया।।
सुना ये कहते हुए सदगुरू को, दीवा नहीं बलै इसमें।
चाहे जितना ज़ोर लगालो, सेवा नहीं चलै उसमें।।
बजै ईंट से ईंट नीव तक, इसकी यहाँ न रह पावे।
इससे आगे सदगुरू जानें, अपनी समझ नहीं आवे।।
भला श्री सदगुरू की वाँणी, झूँटी कभी हुई है क्या।
कुछ वर्षों उपरान्त कहा था, जो ज्यों का त्यों वही हुआ।।
दीवा वलना छुटा प्रथम, फिर सेवा होनी भी छूटी।
चोर उचक्के रहते रातों, आस्थाऐं सब की टूटी।।
चली गई सेवा उठकरके, चंसीने के इक घर में।
थी महंत जी रामकटोरी, इंतज़ाम उसके कर में।।
बुद्धिदास थे मात्र दिखावा, राम कटोरी की चलती।
केवल राम कटोरी के कारण ही, सेवा आश्रम से उड्ती।।
कुछ वर्षों के बाद यहाँ भी, राम कटोरी की किरपा।
हुई आश्रम के ऊपर आश्रम, उसी खेत में जा पहुँचा।।
जिसको सर्व प्रथम सदगुरू ने, आश्रम के लिए छाँटा था।
किंतु चौधरी साहब की, इच्छा थी मेरे पास कहीं।।
बने आश्रम श्री सदगुरू का, हम से इतनी दूर नहीं।
सभी सोचते निज बुद्धी से, और देखते आँखों से।।
किन्तु ख़ुदाई राज़ दीखते, सिर्फ़ ख़ुदाई आँखों से।
बुद्धी को सामर्थ न इतनी, जो समझे उन बातों को।।
समझ न सकते किसी तरह भी, सदगुरू के जज़्बातों को।
निकल गया जो सदगुरू मुख से, हो कर ही हर हाल रहा।।
देखा व्यक्ति न, कहे हुवे को, जो सदगुरू के बदल सका।
बजी ईंट से ईंट नींव तक, आश्रम की वहाँ से उखड़ी।।

बनके रहा वहीं सदगुरू की, जहाँ प्रथम उंगली उट्ठी।

बीत गई होतव्यता, हुआ ऐन का ऐन।
जो श्री सदगुरू ने कहा, पूर्ण हुवे वे वैन।।

बुद्धी दास चंसीने छोड़े, सोंप दिया आश्रम का भार।
महाराज के छोटे भाई, रहे यहाँ के वे आधार।।
दिवस शेरपुर भण्डारे के, भी आ गए नज़दीक बहुत।
जिसमें जाना अति आवश्यक, होना था वहाँ भी प्रस्तुत।।
प्रातः कुछ सामान ज़रूरी, रख मोटर में भाग पड़े।
घंटे तीन हुवे होंगे, आश्रम में हम सब आ पहुँचे।।
कुँवर श्री युवराज सिंह जी, जो विचित्र से ब्याहे थे।
साथ साथ वे भी उनके थे, जो मेले पर आये थे।।
असर पड़ा सदगुरू का कितना, बीतक है यह मंदिर की।
महाराज चर्चा कर रहे थे, सुन रहे थे हम सब के सब।
तन्मयता सी आई हमपै, रंग चढ़ा इतना बेढब।।
श्रीमति ईश्वर कुंवर जाग गई, हुवा श्री चरणों में राग।
बनी भावना इस प्रकार की, मानो उदय हुवा वैराग।।
ज्ञात न होने दिया किसी को, चूड़ी बिछवे हर ज़ेवर।
अलग जिस्म से किये एकदम, रहा न इक छल्ला तन पर।।
डाल दिये गोदी कोका की, ख़बर न हुई विचित्रा को।
पाठ खत्म होते हि विचित्रा, उठी छोड़ कर बीबी को।।
कहने लगीं कहाँ जाती है, फेर विचित्तार बैठ गई।
ख़ामोशी जब रही विचित्रा, तो उठ करके फेर चली।।
बोलीं बैठ कहाँ जाती है, फेर विचित्र बैठ गई।
तीन बार ही रोका उस ही को, तीन बार उठ कर बैठी।।
जब बोली नंहि एक शब्द भी, तंग सी होकर चली गई।
साथ उठी कोका देवी भी, बाहर जाकर बोलीं लो।
पल्ले में कुछ लिये हुवे थी, बोलीं पल्ले में ही लो।।
धोती का पल्ला फेलाकर, कोका बोली क्या इसमें।
पल्ला झाड़ झूड़कर बोली, खुद देखो क्या है इसमें।।
देखा जब श्रृंगार विर्सजित, उठी हूक सी हिय में एक।
कुटिया से लगकर सदगुरू की, औ हाथों पर माथ्था टेक।।
रोने लगी कूक दे दे कर, कुंवर साहब सुन उठ आये।
रोना देख सभी का इस विधि, आँसू उनके भी आये।।

बैठ गये थोड़ा बच करके, सुन बनारसो भी आई।
रोने लगी आन कर वह भी, कारण जान नहीं पाई।।
इक के बाद एक आया फिर, सबके मुह पर था आँचल।
सभी वहाँ आ रोने लगते, बढते गये वहाँ पल पल।।
काफ़ी जब हो गये ऐकत्रित, ब्रज मोहन था इक लड़का।
था बनारसो का भाई वह, उछल उछल आ कर बोला।।
महाराज जी ने रोने की, लीला इधर शुरू कर दी।
ताली बजा बजा कर उसने, सारे में शौहरत कर दी।।
महाराज जी से भी जाकर, बोला महाराज जी आज।
लीला क्या आरम्भ करी वाँ, चल कर तो देखो महाराज।।
कहा उसी से लाओ बुलाकर, वह हम पै भागा आया।
बच्चा होने के कारण, खातिर में कोइ नहीं लाया।।
और बुलाने भेजे फिर तो, कोका भी थी लीला बीज।
ज्यों का त्यों उसकी गोदी में, थी उस दम बीबी की चीज़।।
बड़ी कहां है सदगुरू बोले, उनको भी लेकर आओ।
कहा एक ने मंदिर में हैं, भेजा यहीं बुला लाओ।।
बैठ गई जब बीबी आकर, बोले क्या है बात बता।
कंवर साहब ने कह दिया क्या कुछ, ना कहने का शीष हिला।।
तो क्या कहा चौधरन ने कुछ, उत्तर फिर था सिर से ही।
चीज़ों के कारण रोई क्या, धीमे से फिर नाड़ हिली।।
पहनाना फिर चाह रही क्या, हाँ भी की सर ही के साथ।
योग दिया गोपी चंद को जब, लगे सुनाने सदगुरू बात।।
बड़ा हर्ष था राज महल में, चहल पहल भी थी भारी।
राज कुंवर को योग मिलेगा, बड़ी बड़ी थीं तय्यारी।।
गेरू से रंग कर जब अलफ़ी, गोपी चन्द को पहनाई।
शोक सभा में पड़ा एक दम, बल्कि रानियाँ डकराई।।
देख दृश्य यह गुरूवर बोले, सभा सदों इक उत्तर दो।
ले तो नहीं लिया कुछ तुमसे, तुम क्यों रोते धोते हो।।
गेरू भी अपना ही खर्चा, तुम्हें दिया ही होगा कुछ।
लेकिन फिर भी तुम लोगों पर, बीत रहा है इसका दुख।।
खुश होना था आज तुम्हें तो, हुआ परातम से सम्बंध।
परमारथ पर क़दम धरा है, छोड़ी माया की दुर्गंध।।
त्याग नहीं बैराग नहीं, तुमने रोना क्यों शुरू किया।
कहीं चला जायेगा क्या ये, या कोई घर त्याग दिया।।
घर में रहकर अलग रहो का, ही सिद्धान्त हमारा है।

वस्तु मात्र में मोह न रखना, यह कर्त्तव्य तुम्हारा है।।
बीबी ईश्वर कुँवर आपका, पिछला नाता टूट गया।
जो भी थोड़ी बहुत चिपक थी, आज पूर्णतः छूट गया।।
कहीं नहीं कुछ आज तुम्हारा, पती बहन औ तन मन धन।
आज आप जागी बैठी हैं, दुनियाँ तुमसे हुई ख़ातम।।
जिनको मन से अपनाया हैं, उनकी तन से आज बनो।
चूड़ी लेकर दो हाथों में, बोले लो इनको पहनो।।
श्री राज जी की चूड़ी हैं, हुवा आज उनसे सम्बंध।
काज राज जी का है सारा, हाथ आपके सिर्फ़ प्रबंध।।
तुम्हें सौंपते है हम अब से, सब कुछ उन ही का मानो।
इन्तजाम कर्त्ती हो तुम बस, अपने को सेवक जानो।।
सुंदर साथ बोल उट्ठा जै, बलिहारी श्री सदगुरू की।
श्री राज सदगुरू चोले में, लीला कर रहे छिपी छिपी।।
जब चंसीने चले तो बीबी, ने चलना नंहि स्वीकारा।
बड़ी प्रार्थना की हम सबने, काफ़ी सर सबने मारा।।
श्री सदगुरू ने ही भेजी वे, अगर नहीं जायेगी आप।
जिम्मेदारी के नाते से, क्षति पर देगा कौन जवाब।।
है उत्तर दायित्व तुम्हारा, कैसे कर सकतीं विश्राम।
चलो उठो घर जाओ अपने, जिनकी तुम उन ही का काम।।
तब वे चंदसीने को आई, श्री राज की समझी कार।
उसी भाव से काम सम्भाला, सेवक ज्यों सदगुरू सरकार।।
सिर्फ़ पहनना औ खा लेना, और समझ उसको परशाद।
करी साधना साधू सी बन, उजड़े हुवे, हुवे आबाद।।

लिये पकड़ अपने, अपने ने फाँसे ऐसे बदले।
कुछ से कुछ कर दिया विपल में, बैठे चरन तले।।

संतो एक बार श्री जी से, बोली महाराज जी क्या।
कोइ काम ऐसा भी है जो, तुमसे यहाँ न हो सकता।।
ऐसों के होते हुए संग में, घर चंसीने का उजड़े।
इतनी कृपा न कर सकते क्या, जो यह घर आबाद रहे।।
लड़के बाँटा करते सबको, तुम को बड़ी नहीं यह बात।
मेहेर करो इस घर पर अपनी, जोड़ रही ये दोनों हाथ।।
बड़ा उजड़कर बसना मुश्किल, महाराज दो इन्हें बसा।
लोग कहेंगे कुछ कुछ तुमको, अगर कहीं यह घर उजड़ा।।

जिस घर भी पहुँचे साधू जन, खा ही कर उसको छोड़ा।
डर है तो महाराज यही बस, ध्यान करो इसका थोड़ा।।
संतो पता नहीं कुछ तुमको, पुत्र इन्हें दे सकते हैं।
सदगुरू बड़े दयालू हैं वे, क्या कुछ नंहि कर सकते हैं।।
लेकिन सुख तो नंहि देगा वह, मांगा काम नंहि आता।
जैसे बैरागी से जग का, कुछ भी काम न चल पाता।।
समय सुनिश्चित तक रहता है, अन्दर म्याद चला जाता।
इन्हें नहीं देने ऐसे सुत, अपनी समझ नहीं आता।।
ऐसे से तो नष्ट भला घर, दुनियाँ जो नित आती है।
भले बुरे से उन्हें न मतलब, वो तो बच्चा चाहती हैं।।
संतो हम यह चाह रहे हैं, फिर न आए ये दुनियां में।
भोग भोग ले सभी अभी ये, दुख्ख मिले हैं बड़े इन्हें।।
चरण पकड़ फिर बोली संतो, तुम सार्मथों के भण्ड़ार।
बात डालनी थी कानों में, अब आगे जानें सरकार।।
हो गए मौन श्रवण कर इतनी, दोंनो संतो औ महाराज।
अंदर ही अंदर जो चाहा, होता चला गया वह काज।।
आग कहाँ की रूइ कहाँ की, लपट कहा जाकर उट्ठी।
करने वाला जानें कहने, वालों को तो हुइ छुटटी।।
संतों ने जो कहा उसी की, अपनी थी ऐसी ख़्वाहिश।
बहने उससे क्यों कहती यह, सदगुरू से माँगो बख्शीश।।
बहनें खुद भी कह सकती थीं, पर यह न थी किसी की चाह।
वे तो भी सदगुरू के ऊपर, हर प्रकार से बेपरवाह।।
जिसका हो सर्वस्व उसे क्या, कहने की आवश्यकता।
जो बिगड़े या सुधरे उसका, भला और को उससे क्या।।
देहरादून विचित्तर पहुँची, बातों के कुछ दिन पश्चात्।
था विचार रहने का कुछ दिन, कंवर साहब थे उनके साथ।।
कंवर साहब की बहन झड़ी, पानी में ऊपर रहती थी।
वह पहाड़ उन ही का था सब, उस पर उनकी कोठी थी।।
नंद विचित्रर की भी तब ही, रहने आई कोठी पर।
दस दिन का सुत था गोदी में, कंवर साहब को लगी खबर।।
चले गये मिलने वे दोंनों, बड़े प्रेम से मिली उन्हें।
दस दिन का सुत डाल दिया, लाकर भाई की गोदी में।।
बोली बहन भाइ यह बच्चा, तुमको सोंप रही हूँ लो।
तुम अब से वारिस हो थामो, चाहे हमसे लिखवालो।।
कंवर साहब की पड़ा गोद जब, तो मारी बच्चे ने चीख़।

थोड़ी देर खिलाकर वापिस कर दिया, क्योंकि रहा नंहि ठीक।।
फिर विचित्र की गोदी लाई, बोली लो अपनी सौगात।
मेरा नहीं आज से अपनी, ही समझो इसको औलाद।।
गोदी में विचित्र की आकर, शान्त हुवा रोना उसका।
पुत्र हीनता का दुख तो, छाती में रहता था कबका।।
वो ज्वाला सिधड़ी रहती थी, जलती रहती थी उसमें।
लगा हृदय से जब यह बच्चा, पड़ी शान्ति छाती में।।
तीन महीने तक यह चर्चा, चलती रही बराबर ही।
भाई बहन दोंनों ने अपनी, इच्छा पूरी कर ही ली।।
लेकर गोद गये ककरउवा, जहाँ विचित्रा की ससुराल।
जाने क्यों मुझको बीबी का, रहता था हर वक्त ख़्याल।।
डेढ साल के बाद पुत्र को, चंदसीना लेकर आये।
इस प्रकार श्री सदगुरू जी ने, किये हमारे भरपायें।।

सदगुरू अपने कौन है, किसको यहाँ इलम।
तरसा जिनको ब्रह्म भी, क्या बतलावें हम।।

चूके जिन ना जाने सदगुरू, समझो पकड़ गंवाये।
सुलभ नहीं था उन्हें जानना, आपने आप जगाये।।

थी मुद्रा गम्भीर एक दिन, हम दोंनों बहने थी पास।
चेहरा बता रहा था के कुछ, कहना चाह रहे है आप।।
बड़े दबे धीमें लहजे में, बोले सब पन्ना चलते।
उनके भाव प्राप्त करते ही, रूका गया नंहि बहनों से।।
बड़ी बहन बोलीं झट उनसे, महाराज जी पन्ना को।
जब इच्छा हो जब भी चाहो, हैं तय्यार तभी चल दो।।
काफी देर विचारा अंदर, बोले पुनः श्री महाराज।
चलतो दें पर ख़र्च बड़ा है, पर है बड़ा पुण्य का काज।।
पहले पहल जांयेगे हम तो, बड़ा ख़र्च है अपने साथ।
उठ जायेंगे वहां हजारों, संत महंतों की है बात।।
बहनें बोली महाराज सब, इन्तज़ाम हो जायेगा।
धन के बिना धर्म का कारज, छोड़ा थोड़े हि जायेगा।।
आप बता दें कब चलना है, औ कितना धन काफ़ी है।
इन्तज़ाम बहनों पर छोड़ो, कृपा आपकी काफ़ी है।।
छः हजार के निकट लगेगा, दिया सिर्फ़ इतना अंदाज़।

नहीं ज़रूरत पड़ी कहीं से, हुवे ऐकत्रित अपने आप।।
चलने की थी सिर्फ़ प्रतीक्षा, शनः शनः वह दिन आया।
पदमावती पुरी को पहला, जथ्था सद गुरू का धाया।।
सतना जा पहुँचे अडडे पर, टिकिट कँटाए मोटर के।
वक्त रात का हो आया था, ड्राइवर दिया नहीं चलके।।
चालक था झगड़ाल सा कुछ, एक वहाँ बुढ़िया आई।
पन्ना जाना चाह रही थी, ड्राइवर से बोली भाई।।
बड़ी कृपा हो ले लो हमको, पन्ना है हमको जाना।
बड़ी खुशामद की बुढ़िया ने, मगर ड्राइवर नंहि माना।।
बोल पड़े साथी कुछ अपने, बुढ़िया है भाई ले लो।
दब भिंचकर सब चल चलेंगे, कहाँ रहेगी अब याँ ये।।
लगा अकड़ने हम सारों से, जुर्माना तुम दे दोगे।
हमें नहीं ले जानी चल हठ, मगज़ मारती क्यों हमसे।।
थी गठरी उसकी मोटर में, वह निकाल फैंकी बाहर।
काफ़ी देर फिरा बकता कुछ, कोइ न बोला उससे फिर।।
दस बजने को हुवे रात के, पर वह नहीं सरकता था।
अगर कहें चलने को उससे, तो फिर कुछ कुछ बकता था।।
दस के बाद हुवा चलने को, बुढ़िया को भी बिठलाया।
आठ सात घुसे पड़े और भी, जाने कहां से ले आया।।
जब दम घुटने लगा भीड़ से, करने लगा भरतसिंह बात।
देखा इस मोटर वाले को, भरदी अब इसमें बारात।।
बुढ़िया पर तो यह कहता था, जुर्माना तुम दे दोगे।
अब जुर्माना कौन भरेगा, यह है ढंग इन लोगों को।।
ड्राइवर ने सुनलीं वे बातें, बोला कौन मर्द है ये।
जो दिखलादे मुझे रोक के, आजा तलै उतर करके।।
कूद पड़ा मोटर से बाहर, अपशब्दों से पेश आया।
भइया श्री रणजीत सिंह को, सुनकर उसकी क्रोध आया।।
चले मारने को उसको झट, हम सारों ने रोक लिया।
ना जाने क्या कर उठते वे, नहीं उतरने उन्हें दिया।।
इक तो राजपूत जाती से, वैसे भी थे थानेदार।
नहीं हाज़माँ होता इनमें, हरदम कमर कसे तय्यार।।
उधर चालकों को पेशा भी, गुण्डे पन से है भरपूर।
है इलाज इनका डण्डा बस, कहलाता है वही हज़ूर।।
ज़ोर दिखाता था वो बाहर, अंदर उछल रहा था साथ।
महाराज जी के कारण से, इससे आगे बढ़ी न बात।।

बिना हुकुम क्या करे सिपाही, जोश उछल दब जाते हैं।
अगर हुक्म हाकिम दे दे तो, हक्क अदा कर जाते हैं।।
वह दज्जाल चला मुश्किल से, लाल चंद की मोटर थी।
सुँदर साथी है अपना वह, ख़ामोशी इस कारण थी।।
वरना उसे ठीक कर देते, बुरी तरह मुँह पिट जाता।
और साथ थे महाराज जी, हर इक उनसे घबराता।।
ग्यारह के लगभग टाइम था, घाटी से गुज़री मोटर।
अनायास ही आगे से इक, टौर्च पड़ी निज मोटर पर।।
बड़ी तेज़ थी लाइट उसकी, भइया ने माँगी बंदूक।
बीबी मारे गये आज सब, डाँकू हैं नंहि इसमें चूक।।
घाटी बड़ी भयंकर है यह, मिल सकता है यहाँ गिरोह।
बैठ गये भर कर बंदूकें, जगा हृदय में इक विद्रोह।।
उसने रूकवाया मोटर को, महाराज को किया प्रणाम।
फिर बोला क्यों बे ओ चालक, क्या ये ही है तेरा काम।।
यात्रियों को तंग बनाना, लाना वक्त और बे वक्त।
कहाँ कहाँ से आते जाने, चल चल कर बेचारे भक्त।।
तंग किया क्यों तेंने इनको, तुझको आज सबक़ दूंगा।
जीभ चलानी मैं देखूँगा, चलके बंद कराऊँगा।।
बैठ गया मोटर में चढ़के, हुक्म दिया मोटर को हाँक।
ऐंठ आज झाड़ूँगा तेरी, करवाके छोड़ूँ बरख़्वास्त।।
महाराज जी पाँच मिनिट को, थाने तक जाना होगा।
तुमको कुछ तकलीफ़ न देंगे, आप सिर्फ़ बैठे रहना।।
क्षमाँ करो काफ़ी है इतना, इतनी ही थी इसे समझ।
महाराज जी बोले, इससे, आगे नहीं करेगा अब।।
आगन्तुक बोला श्री जी से, महाराज यह मत कहना।
इस लाइन पर ड्राइवरी में, इसे नहीं रहने देना।।
बारह बजे गये थाने पर, लेगया उसको तभी उतार।
लिखा पढ़ी कागज़ पै करके, मारी उसे भीतरी मार।।
साथ साथ आया फिर उसके, मोटर में बैठा आके।
बोला चलो उतारो इनको, जहाँ कहें ये ले जाके।।
लालचंद के यहाँ गये हम, आदर सहित उतरवाया।
उतर गये जब, वह आगन्तुक, ढूँड़ा बहुत नहीं पाया।।
हुआ अलक्षित हमीं हमीं में, महाराज जी से पूछा।
तो बोले अब भी नंहि जाने, छत्रसाल थे महाराजा।।
लक्षण से विश्वास हो गया, परिचय गुरू मुख से पाया।

बोले इनका इन्तज़ाम है, छत्रसाल यहाँ यों आया।।

बोलो सदगुरू रामरतन औ छत्रसाल प्यारे की जय।
सेवादार हों जिनके ऐसे उनको फिर काहे का भय।।

यात्रियों की भाँति ठहर गए, लाल चंद भाई के घर।
पूछताछ बस नाम मात्र की, दर्शन कर आते जाकर।।
नींचे और नवे सदगुरू जी, नींचा बनने की हद थी।
लोग उठाते सरऊँचा पर, उनकी आँख नहीं उट्ठीं।।
मानो सागर हों कृपाओं के, हुँकारे का नाम नहीं।
मैंने किया ये, या मैं जानूँ, भाव लेष भी पास नहीं।।
प्रतिमाँ थीं साक्षात् मेहर की, बड़े बड़ों ने नंहि जाना।
कौन आज आया पन्ना में, नहीं किसी ने पहचाना।।
धाम चौंतरे पर बैठे थे, सुँदर साथ बहुत था पास।
कालिंगपोंग वालों की शिष्या, भगवानी बैठी थी पास।।
गुम्मठ जी में हुई आरती, ध्वनि जब उट्ठी घंटों की।
बोल उठी भगवानी बाई, टेर लगाई ज़ोरों की।।
क्या ये ढोंग बना रक्खा है, किसकी आरती करते हो।
अरे आरती वाला यह है, गुम्मठ के बाहर देखो।।
बड़े जोश में कह रही थी वो, महाराज सुन हंसते थे।
खुद तो मुँह पिटवावेगी ही, पर हमको भी पिटवावे।।
उत्तर भी आया इक जन का, शर्त परिक्षा है इसकी।
गर्दन सभी झुका भी लेंगे, हुई वासना गर उनकी।।
भगवानी ने सुनी न इक की, काफ़ी देर अजाँ सी दी।
लेता रहा साथ भी तफ़री, बहुतों ने वह बात सुनी।।
कहने वाले कह जाते हैं, पर सुनने वाले हैं कम।
उनसे भी कम जिन्हें समझ है, जो पहचाने कहाँ खसम।।
ख़ाता न उन बेचारों की भी, देवचंद्र चूके इक वक्त।
सरल नहीं पहचान प्रभू की, कौन समझ सकता इक लख़्त।।
अगले प्रातः श्री सदगुरू जी, गुम्मठ जी को जाते थे।
खेल रहा राजा रस्ते में, राजा इधर आओ बोले।।
सूझ रहा था उसे खेल पर, जाना पड़ा साथ लाचार।
बोले चलो नमन कर आवें, ले गए हाथ पकड़ कर साथ।।
पास बहुत कम लगता था वो, चर्चा होती तौ बचता।
आठ वर्ष का तो था ही वो, था बिलकुल अबोध बच्चा।।

थी उंगली सदगुरू हाथों में, किन्तु चाह थी भगजाऊँ।
मन था अभी खेल में उलझा, सोच रहा कैसे जाऊँ।।
इतने जा पहुँचे गुम्मठ में, परिक्रमाँ आरम्भ करी।
इधर उधर थे भित्ती चित्र वहाँ, राजा की वहाँ नज़र पड़ी।।
हाथ वहाँ जाते ही छोड़ा, तस्वीरों में मन उलझा।
रहा साथ पर फिर भी उनके, दे रहे थे वे परिक्रमाँ।।
एक फूल था उनके कर में, मंदिर का जब आया द्वार।
बैठ गये पंजों के ऊपर, पुर्ष्पापण कर करी जुहार।।
झुकते तो देखे द्वारे पर, लेकिन फिर नहीं पड़े नज़र।
कुछ भ्रम सा उपजा राजा को, लगा खोजने इधर उधर।।
भाग भाग करके परकम्माँ, कई बार फिरकर खोजी।
आँखें फाड़े फिरा खोजता, पाये नहीं कहीं श्री जी।।
शायद बाहर निकल गये हों, जगह न छोड़ी कोई शेष।
किन्तु हमारे श्री सदगुरू के, खोज न पाये हमको लेष।।
भूल गया अब खेल कूद सब, मिला खेल का भी पुरखा।
आँख मिचौनी सी हो गई इक, चोर मिले थी यह इच्छा।।
कौतूहल का नहीं ठिकाना, जब बाहर नंहि हाथ लगे।
फिर गुम्मठ जी को हो भागा, जहाँ हाथ से निकले थे।।
आया जब उस ही डयौढ़ी पै, सदगुरू रूप नज़र आया।
झुकता जब देखा उनका सर, ऊपर अब उठता पाया।।
किसकी ख़ता आँख या मेरी, पहुँच न पाया निर्णय तक।
बोल बंद थे होश वाख़्ता, देखी जब ऐसी हरकत।।
खड़ा देखता था पुतला सा, मानो नहीं कहीं भी जान।
निकट पहुँचकर बोले सदगुरू, तुमने क्यों नहीं करी प्रणाम।
खेलों में रहते हो ज़्यादा, हाथ पकड़ ले चले पुनः।
समझाते ले चले साथ में, याद न इससे अधिक हमें।।

अंगनाओं की ख़ातिर अपनी उतर आए श्रीमान।
लेकिन यहाँ किसी ने प्रभु सा दिया न आदर मान।।

विजय दशमी पै पन्ना जी में, खड़ग भेंट दी जाती है।
पन्ना नृप लेते हैं उसको, ऐसी उनकी थापी है।।
द्रव्य भेंट देते महाराजा, भीड़ बड़ी होती है तब।
रस्म अदा होती है जिसदम, वही खड़ा था राजा तब।।
इन्तज़ार थी पन्ना नृप की, आये बड़ी देर के बाद।

चले आए बाजे बजते हुए, राज कुँवर भी उनके साथ।।
पूजन इत्यादिक के पीछे, परिक्रमा ली मंदिर की।
भेंट खड़्ग फिर की राजा को, भीड़ न पूछो उस दिन की।।
प्राँणनाँथ जी की प्रणालिका, अब भी वही चली आती।
पन्ना की गद्दी पै जो भी, बैठा उसको दी जाती।।
परम्परागत चलता आता, वह रिवाज सम्पन्न किया।
मथ्था जब टेका राजा ने, भेंट रूपैया एक दिया।।
सीता राम मुलाज़िम अपना, सटा खड़ा राजा के साथ।
वातावरण शान्त था इकदम, पन्ना धीष बहुत थे पास।।
एक रूपैया देख भेट का, राजा बोला सीताराम।
महाराज होते हुए केवल, एक रूपये से करी प्रणाम।।
इनसे तो हम ही चोखे हैं, सुनी हमारी सब ने बात।
झिझक न थी बातों में किंचित, सब ने उसे लखा इकसाथ।।
छोटा मुँह पर बात बड़ी थी, पन्ना नृप ने भी देखा।
राजा के ढिंग आकर पूछा, किसके लड़के हो बेटा।।
स्वयं दिया राजा ने परिचय, चंसीने के राजकुमार।
पींठ ठोकर दी शाबाशी, इस प्रकार दर्शाया प्यार।।
जलसे पर श्री पन्ना नृप ने, उसे बिठाया अपने पास।
शायद राजा की बातों पै, उन्हें हुवा हो कुछ अहसास।।
वस्त्र और धन श्री सदगुरू ने, वितरण अपने हाथ किया।
जो जिस लायक़ था वैसा ही, सदगुरू ने सन्मान दिया।।
तत्पश्चात् मण्डली सदगुरू, शेर पूर की ओर चली।
सुँदर साथ बड़ा ख़ुश था सब, महिमाँ लख श्री सदगुरू की।।

पन्ना जी की यात्रा करवा कर श्रीमान।
छिपे छिपे ही दे गये जानें क्या कुछ दान।।

सदी चौदवीं के सूरज हैं, अँणु अँणु में हो गया प्रकाश।
रूप क़ायमी मूल क़ायमी, धन जिसने पाया सहवास।।
ईश्वर कुँवर विचित्र कुमारी, दोंनों की करवद्ध प्रणाम।
समय आए जब घर चलने का, भूल न जाना है धनिधाम।।

सोना देवी विमल प्रशाद
देवबंद (श्रीमुख द्वारा)

कुछ भी हो सकता यहाँ क्या अचरज की बात।
अंधकार गहरा माया का दिन में हो रही रात।।

किसकी सुने कौन कहवे यहाँ, किससे होए बखान।
चक्कर में सब ही चक्कर के, बुद्धू और सुजान।।
हम मजादपुर से चले, हरिद्वार की ओर।
जितने थे अपने वहाँ, श्री सदगुरू पै छोड़।।
ऋृषीकेश आदिक रह करके, पुनः शेरपुर हम आये।
सुँदर साथ बाट में था सब, चारों ओर पुनः छाये।।
है अपने ही पास चिराऊँ, उसका भी कुछ सुँदरसाथ।
अपने पास अधिक आता जो, नाम है उसका विमल प्रशाद।।
आइ उन्हें श्रद्धा अपने पर, समय उन्हें जब मिल जाता।
वहीं आश्रम पै आ करके, चर्चा वर्चा चलवाता।।
सुन सुन भाव बढ़ा उसमें कुछ, रूहानी जब मिली ग़िज़ा।
आने लगे रोज़ आश्रम पर, ऐसा लगा उन्हें चस्का।।
लेकिन घर वाली थी नाख़ुश, चाहा उन्हें न जाने दूँ।
कभी महात्माँ बन जावै यह, ऐसा कभी न होने दूँ।।
पति पतनी दोनों में काफ़ी, से ज़्यादा संर्घष रहा।
सुनो आज पति पत्नी में, जो था, कैसे निमटा झगड़ा।।
त्रिया, राज और बाल हठ, यों हठ तीन बताते हैं।
बड़ी बाल हठ, दूजी नारी, तीजी राज को पाते हैं।।
यह दम्पति स्थाई निवासी, हैं तो वैसे देवबंद के।
पर चिराऊँ में रहने लग गए, पती क्यों कि अध्यापक थे।।
विद्यालय है इक चिराऊँ में, है चिराऊँ आश्रम के पास।
उस ही में अध्यापक थे वे, नाम है उनका विमल प्रशाद।।
मेरी सुन कहीं से चर्चा, चर्चाओं से हुआ लगाव।
आने जाने लगे पास में, बढ़ा प्रेम औ भक्ति भाव।।
किसी तरह से आने जाने, को सोना को लगा पता।
वह घबराई इस लगाव से, सदगुरू की जब सुनी कथा।।
जो जाता हो जाता उनका, अजब मोहिनी है उनमें।
तो पति देव गये हाथों से, अंदर भय सा लगा उसे।।

युवा अवस्था है अपनी यदि, हम से रिश्ता तोड़ गये।
बहुत बने बाबा जी ऐसे, यदि पति मुखड़ा मोड़ गये।।
तो कैसे यह उम्र कटेगी, काटो ख़ून नहीं पाया।
उन्हें रोकने की सोची अब, भय मानो सिर चढ़ आया।।
लगी योजना बनने अंदर, किस प्रकार रोका जावे।
मर भी जावे साँप और, लाठी भी बची रही आवे।।
घर था वैसे देवबंद में, वहीं रहा करती थी वो।
घुट्टी में पति आ जाते थे, सोचा बस अब साथ रहो।।
जुदा रहे का फलपाया यह, क्यों आते उल्टे दिन ये।
बात नहीं बढ़ती इतनी यह, अगर पास रहती उनके।।
अतः चिराऊँ आ पहुँची वह, ताकि पास रह सकें सदा।
निगरानी रखनी अब पति पै, ता से अब क्यों रहे जुदा।।
जाते ही मालिक पै उसने, अपने जाल दिये फेला।
रखने लगी नज़र में अपनी, आश्रम जाने नहीं दिया।।
जाने पर प्रतिबंध लगा जब, होने लगी उन्हें हड़कल।
ढूँड़ा जाने लगा बहाना, किसी बहाने आश्रम चल।।
ग़ैर हाज़री हुई वहाँ जब, उनका रूका वहाँ जाना।
क्या बीमार हुवे पंडित जी, इक चिंता का विषय बना।।
चर्चा होने लगी साथ में, तय पाया सुध लो जाकर।
मुमकिन है बीमार पड़े हों, या हो कोई बला सर पर।।
यों ही तो रूकने वाला वह, पंडित नज़र नहीं आता।
है अवश्य कोई आपत्ती, बिना सबब नंहि रूक पाता।।
थे तय्यार सहारनपुर को, जाने के लिए श्री महाराज।
बोले कोइ न जाओ उनपै, उनको हम देखेंगे आज।।
हमें पहुँचना है देवबंद तो, निकल इधर से जाऐंगे।
आश्रम नहीं आए क्या कारण, स्वयं पूछकर आऐंगे।।
जब हम पहुँचे पंडित जी के, और रूके घर जाकर के।
वक्त ठीक समझा सोना ने, बोली हम से जाकर के।।
आप पिता के तुल्य हमारे, जोड़ रही हूँ मैं दो हाथ।
एक प्रार्थना है तुमसे के, यहाँ न आवें फिर से आप।।
जाने वाले तो थे ही वे, बात जानने को ठहरे।
खड़े हुवे सुनते ही इतनी, बोले नहीं बने बहरे।।
मानो सुन अनसुनी करी ही है, जाते समय दिया उत्तर।
अपने लिये यहाँ कुछ है क्या, तंग करेंगे क्यों आकर।।
चलते चलते कही बात यह, पंडित जी को लगी बुरी।

अपने घर पै आए हुवे को, तिरष्कार की बात कही।।
संघर्षण छिड़ गया इसी पर, अन बन इससे और बढ़ी।
वाद विवाद रहा करता नित, बहुत बात घर की बिगड़ी।।
पति पतनी बोला नंहि करते, वातावरण बना गुमसुम।
घुला ज़हर सा मानो घर में, बातें बिगड़ी दम पै दम।।
काफ़ी दिन के बाद एक दिन, पती देव ने दिया हुकम।
जो हम कहते हैं वह मानो, ख़ुद जाकर देखो आश्रम।।
क्या है वहाँ न देखो जब तक, बतलाओ कैसे हो ज्ञात।
बिना वजह तुमने अपने संग, रच रक्खा है इक उत्पात्।।
नंगा न्हाने दे ना न्हावे, यह तो वही बात ठहरी।
पार न पाई जब कुम्हार ने, गूँण गधे की जा गेरी।।
बंद करो तिरिया चरित्र अब, असल बात क्या है जानो।
नौकर नंहि हम पती हैं तेरे, हुक्म हमारा है मानो।।
इतनी बात बता कर हमको, निकल गये बाहर घर से।
मैं समझे थी बाहर होंगे, पर वे पहुँचे आश्रम पै।।
सोना देवी के विरूद्ध थी, घटना जो इस वक्त घटी।
महाराज जी से लड़ने के, लिये आश्रम जा पहुँची।।
गूदड़मल चिराऊँ के थे इक, उनकी बहन साथ में ली।
था कस्तूरी नाम उन्हों का, गाड़ी भी इक जुड़वा ली।।
महाराज जी के लिए उस में, बड़े बुरे थे उस भाव।
ज्यों लड़ने जाते शत्रू से, सोचे सारे रस्ते दाव।।
पर जब पहुँची आश्रम पै वो, पति देव भी मिले वहीं।
महाराज बैठे थे सन्मुख, भक्त मण्डली काफ़ी थी।।
मिले थे जब ये पहले इकदिन, कशिष न थी जब मूरत में।
जो माधुर्य्य मिला अब उनमें, फ़र्क मिला इस सूरत में।।
मिली आँख से आँखें जिसदम, बाँध दिया ज्यों खूँटे से।
तकती रह गइ उन्हें चकित हो, रह गए खड़े देखते से।।
अजब हाल हुआ सोना जी का, खेंच लिया ज्यों फंदा डाल।
प्रथम दरश में हो गइ उनकी, देख लालियाँ हो गइ लाल।।
फंसी बिना फांसे फंदे में, पड़ी बेड़ियाँ सी पाओं।
मुश्किल लगा लौटना वापिस, उठते न थे उधर पाओं।।
क्या आर्कषण कोशिश कौनसी, बता न सकती क्या दीखा।
बस इतना ही जान सकी के, किसी कशिष ने धर खींचा।।
मिला एक शर्बत प्रशाद में, कर दी वह मीठी सारी।
जब वह चली वहाँ से घर को, कदम हुवे भारी भारी।।

उठते न थे उधर पग उसके, भूली सब कहना सुनना।
किसकी करें शिकायत किससे, अपना रहा न अब अपना।।
ज्यों त्यों करके चली वहाँ से, जैसे तैसे धर पकड़ा।
समझ गये पंडित जी उसको, देख कि कितना असर पड़ा।।
मुस्का कर बोले बोलो जी, कैसी रही यात्रा यह।
कुशल पूर्वक लौट जाओ तुम, वर हम मांग रहे थे यह।।
बोलो ठीक ठाक लौटी हो, या सम्पत्ती लुटवा दी।
बोली पंडित जी से तुमने, कहाँ बुला कर फंसवादी।।
उनके पास माहिनी है कुछ, सर जाते ही झुक जाता।
नहीं निकल सकता चंगुल से, अंदर कुछ पकड़ा जाता।।
हंसे मास्टर जी सुनते ही, क्या कहने है चौबे जी।
आप गये थे छब्बे बनने, बन कर आये दूबे जी।।
हमें आज्ञा दो आगे अब, गर चाहो नंहि जाने के।
हम जाँयेंगे सोना बोली, मना करो नंहि मानेंगे।।
आना जाना बना रहा फिर, पड़ता गया कान में रस।
यश अपयश औ मान कान सब, उस संगति से गये झुलस।।
सहज सहज सदगुरू ने अपने, चरनों में ही लगा लिया।
सहित मास्टर जी दोंनों को, आश्रम पै ही बुला लिया।।
दी रसोई सेवा सोना को, औ कुठार भी उसके साथ।
साथ साथ सेवा मंदिर की, जो मिलती बटवाते हाथ।।
करो नौकरी पंडित जी को, कहा उन्होंने समझाके।
पांच वर्ष तक सेवा रक्खी, चल न सकी उससे आगे।।
निकट मास्टर जी के पहुँची, लिया आश्रम से अवकाश।
रहते नियम और संयम से, था उर अंदर ज्ञान प्रकाश।।
चली ग्रहस्थी आर्दशों पर, जो बख़्शा श्री सदगुरू ने।
आतम जानें या प्रभू जाने, बड़ी शान्ती मिली उसे।।
एक रोज़ महाराज कहीं से, लौटे सहित मण्डली के।
तो देखो सौभाग्य चिराऊँ, घर के आगे से गुज़रे।।
रोका उन्हें मास्टर जी ने, जाने नहीं दिया आश्रम।
बनी योजना यहीं कीर्तन, औ सदगुरू के सुनें वचन।।
चौकी एक लगा कर ऊँची, उस पर पधराऐ महाराज।
होने लगा कीर्तन जिसदम, ध्वनि बोला मिल सुंदर साथ।।
प्रगटा इक प्रकाश परलौकिक, सद गुरू छवि जगमगा उठी।
पलट हुवे महाराज राज जी, बड़ी मोहिनी छवि दीखी।।
कर था, थाल आरती उस दम, हुवा जिस समय यह दर्शन।

था लावन्य मधुर ज्योर्तिमय, लगी बड़ी प्रिय राज फबन।।
सराबोर हो गई आत्मा, अंतःकरण हुवा शीतल।
नैन बावरे बने अचानक, लख कर राज रूप निरमल।।
हृदय चकोरी देख चन्द्रमां, भूल गई लेना निश्वांस।
शुभदा छटा सरस मृदु मंजुल, आत्मेश्वर का निरख उजास।।
रोने लगे फंद यम के सब, अट्टहास कर उठा सुहाग।
पद पंकज मनहर सूरत के, आतम ने पकड़े इक साथ।।
हुई आरती की समाप्ति, रूप अलक्षित पाए हमें।
वही भुलवनी बाना पहने, रामरतन श्री मिले हमें।।
छलका रूप असल का बातन, अंदर कुछ तो बाहर और।
राम रतन श्री उधर राज जी, मैं है फ़र्क़ भला किस तौर।।
सद गुरू आतम नाथ पती के, सिवा हमें कुछ जंचा नहीं।
परिचय और अधिक क्या देते, खोल दिया कुछ बचा नहीं।।
थी यह छिपी हृदय में अब तक, आज उजागर करती हूँ।
सद गुरू श्री श्री राम रतन जी, को श्री राज समझती हूँ।।
एक रोज़ जाना यह पूरा, संषय रहा न तब से शेष।
इस चोले में श्री सदगुरू के, छिप कर बैठे हैं आत्मेश।।
थी ध्यानस्त अवस्था इक दिन, चित्त लगाये बैठी थी।
उसके बाद आए पति मेरे, दर्शन दिये उन्होंने भी।
रहते थे उन दिनों तीतरम, बोले सन्मुख आते ही।।
गर आपत्ति न हो तुमको कुछ, तो लड़के को ले जाँऊ।
अगर नहीं हो इच्छा तो मैं, उसको यहीं छोड़ जाऊँ।।
जो इच्छा हो इतना कहकर, उनको भी परनाम किया।
बाद तीन दिन के पंड़ित जी, आऐ मैंने ध्यान दिया।।
वही शब्द बोले पंड़ित जी, लड़के को कहो ले जाऊँ।
आपत्ती तुमको हो गर कुछ, तो मैं यही छोड़ जाऊँ।।
जो इच्छा हो वही शब्द, मैंने भी अपना दोहराया।
एक समय में ही मैंने, इस तरह त्रिपति दर्शन पाया।।
सोना वति उर्फ सुंदर, बाई सदगुरू ने नाम धरा।
किस प्रकार अब उन्हें सराहें, हमसे कितना प्रेम करा।।
किसे सुनायें गाथा अपनी, कोइ नहीं सुनने वाला।
खुलती नहीं ज़बाँ अब अपनी, भेड़ दिया जैसे ताला।।

सदगुरू तक जो भी गया, मिला अवश्य प्रसाद।
चाहे थोड़ा ही सही, चाखा अमृत स्वाद।।

युगलदास शेरपुर

आज और कल और निरंतर, रहा तरक्की पर आश्रम।
सुंदर साथ गया बढ़ता ही, बढ़ते गये वहाँ सज्जन।।
चर्चाऐं तो सुनते काफ़ी, पर विश्वास तभी होता।
जब सदगुरू कुछ दिखला देते, बोल बंद तब ही होता।।
कितनी ही सेवा करता हो, कितना ही हो चाहे पास।
ऐसा साथ बहुत ही कम है, बिन देखे लाया विश्वास।।
युगलदास था ख़ास शेरपुर, पर विश्वास उसे भी कम।
हालां के चर्चा सुनता था, दिव्य चक्षु थे लेकिन बंद।।
चमड़े की से चमड़ा दिखता, देखे कैसे अंदर का।
इसमें शक्ति नहीं है इतनी, दिखता केवल बाहर का।।
किस प्रकार से जाने सदगुरू, कैसे चला इधर की बाट।
मुख्य मुख्य घटनाये इसकी, सुनो सुनाये स्वयं प्रताप।।
महाराज जब चर्चा करते, सदगुरू को कहते भगवान।
शंका थी परमातमाँ हरगिज, भी नंहि हो सकता इंसान।।
परमात्माँ तो परमात्माँ है, समता किसके है बसकी।
जो उनके समान हो बैठे, ताक़त नहीं किसी की भी।।
बुना उधेड़ी युगलदास के, निर्णय इसका था मुश्किल।
बस सदगुरू ही करे निवारण, एक यही था इसका हल।।
अर्ध रात्रि उपरान्त घेर में, युगलदास जाकर लेटा।
नींद नहीं आई थी तब तक, सोच रहा था पड़ा पड़ा।।
राजवाहे पर इक प्रकाश सा, जाता हुवा नज़र आया।
व्यक्ति बहुत सुखपाल लिये थे, जिसमें कोई बैठा था।।
युगलदास भागा उठ कर के, आज रात को कौन आया।
दो बैठे थे उसके अंदर, नज़र साथ काफ़ी आया।।
हो गए युगलदास भी संग संग, लेकिन थे पीछे पीछे।
वह सुख पाल रूका आश्रम में, जो पधरे उतरे नीचे।।
महाराज औ श्री राज को, नींचे आते जब देखा।
आने लगा पसीना सा कुछ, दीख रही यह क्या लीला।।
अभी गया था इन्हे छोड़कर, आश्रम पर छोड़े महाराज।
सिर्फ़ घेर तक तो पहुँचा था, दो क्यों कर बन गये ये आज।।
इधर साथ हैं सिरी राज के, उधर आश्रम में भी है।
आया नहीं समझ में उसके, किससे पूछें किसे कहे।।

शिरी राज छवि बड़ी मनोहर, बड़ा देखने योग्य सरूप।
मुकुट तिलक गलहार पीतम्बर, मोहित किये डालता रूप।।
राज बाद में पहले सदगुरू, वाहन से नींचे उतरे।
चारों ओर देखने लग गए, सभी दिशाओं में घूमें।।
कहा आश्रम बनना चाहिए, महाराज ने किया सवाल।
घूंम घूंमकर किया निरिक्षण, देखा सभी जगह का हाल।।
बहुत देर के बाद राज जी, को स्थान पसंद आया।
यहां नींव खुदवा डालो बस, श्री सदगुरू को बतलाया।।
बैठ गये वापिस फिर उसमें, महाराज जी गये नहीं।
छोड़ी दूर नजर आये बस, लोप हुवे श्री राज वहीं।।
देख रहा था युगल दास सब, आड़ वृक्ष ले आश्रम में।
चला खयालों का प्रवाह अब, रौ सा बन कर आतम में।।
वह लौटा चिंतित सा घर को, नींद भला फिर क्या आती।
भ्रम में डाला युगल दास को, लीला समझ नहीं आती।।
सिर्फ़ घेर तक ही पहुँचा था, छोड़े थे महाराज यहां।
साथ राज के लखे उतरते, भेजे में यह नहीं जमां।।
मतलब इसका यह निकला फिर, इन दोनों में फ़र्क नहीं।
दोनों रूप एक ही जानो, मन में तर्क वितर्क नहीं।।
अब शंका का समाधान सा, युगलदास को हुआ प्रतीत।
सदगुरू ठीक कहा करते हैं, सदगुरू ही हैं अक्षरातीत।।
शंका जैसी युगलदास को, औरों को भी थी ऐसी।
कलकत्ते को चले एक दिन, कहके सब से सदगुरू जी।।
सेठ लक्ष्मीचंद के ख़ात पर, इकलों ने प्रस्थान किया।
रेल पकड़नी थी देवबंद से, मुश्कीपुर का राह लिया।।
आश्रम में दो आए महात्माँ, उनके जाने के पश्चात्।
हाथ एक के चिप्पी उनकी, डण्डा था दूजे के हाथ।।
चिप्पी देकर युगलदास को, बोले मुझे मिले थे वे।
बोझ अधिक है क्या करनी है, आश्रम दे देना जाके।।
दूजा बोला मुझे मिले थे, डण्डा दे करके बोले।
युगलदास को दे देना यह, आवश्यकता नहीं मुझे।।
लड़ने लगा प्रथम दूजे से, झूँट काहे को बतलाते।
वे तो हमको मिले मार्ग में, मुश्कीपुर को थे जाते।।
दूजा बोला ग़लत बात है, हमें मिले वे रस्ते में।
थाना भवन मार्ग से गए हैं, और ये सोटा दिया हमें।।
इक पूरव से इक पश्चिम से, दोनों साथ आए आश्रम।

लगे झगड़ने आपस में वे, हम सच्चे वो कहता हम।।
तभी महात्माँ आए तीसरे, जो बड़ गाँवों से आया।
महाराज ने कमली दी है, हम पै बोझा है ज्यादा।।
युगलदास को दे देना लो, इस प्रकार बोला हमको।
दोनों ने सुनकर के पूछा, कहाँ मिले ये वे तुमको।।
बड़गाँवों से परे मिले थे, जाते हुए कलकत्ते को।
गरम जगह है कलकत्ता तो, कमली दे देना उनको।।
समझा देना युगलदास को, जल्द आएंगे, कह देना।
जब तक कलकत्ते से लौटें, तुम भी मौज यहीं लेना।।
बंद हुआ झगड़ा दोनों का, वे दो इसे आ झगड़े।
क्या तुम सत्य बताते हो यह, महाराज जी तुम्हें मिले।।
सोच समझ कर के बतलाना, हम को भी वे अभी मिले।
उनपै डण्डा, मुझ पै चिप्पी, अभी नहीं निमटे झगड़े।।
इतने में तुम भी आ टपके, कम्बल दिया बताते हो।
तीन दिशा में मिले तीन को, कैसे सच हो यह सोचो।।
पड़े अचम्भे में तीनों ही, युगलदास ने समझाया।
क्या तुम अब भी समझ न पाये, मतलब समझ नहीं आया।।
शंका होगी तुम तीनों को, समाधान करवाया है।
ख़ुद को समझे आप महात्माँ, इस प्रकार दिखलाया है।।
तीनों ने स्वीकार करी यह, हम को इनपर शंका थी।
आते जाते भी रहते थे, किन्तु हमें श्रद्धा कम थी।।
नमन किया सदगुरू गादी को, और उन्हें पूरा समझा।
महात्माओं की बातें सुनकर, बहुतों में उपजी श्रद्धा।।

श्री सदगुरू की ज़ात पर बहुत लाए ईमान।
इन्सानों की बात क्या झुक गए बड़े सुजान।।

सदगुरू सिर्फ़ देखने में ही, आना जाना करते थे।
जाते न थे एक पल को भी, आश्रम में ही रहते थे।।
सर्प मिले गादी पर बैठे, अनघड़ जन देखा करते।
गंगा राम बताया करते, ये भी रूप हैं सदगुरू के।।
विदा हुवे कलकत्ते से जब, भेट सेठ जी ने इक दी।
श्वेत वस्त्र में बांध जूड़कर, चिप्पी एक विदा पर दी।।
बोले नहीं खोलना इसको, इसमें है थोड़ा परशाद।
आप बांट लेंगे सब साथी, केवल दे देना महाराज।।

चिप्पी लाकर युगलदास को, महाराज ने पकड़ा दी।
भइया लो परशाद तुम्हारा, उसे खोल कर जब देखी।।
तो रूपया निकला उसमें से, सदगुरू को जा बतलाया।
इसे जरूरत पर ही लेना, है श्री सदगुरू की माया।।
एक डोलची में पीतल की, युगल दास ने पलट लिया।
आवश्यकता जब भी पड़ती, उस ही में से द्रव्य लिया।।
आमदनी उसमें डलवाते, और जरूरत पर लेते।
गुप्त सेठ जी ने यों भेजी, ये रूपया छूते नंहि थे।।
बाहर जाने लगे बहुत जब, महाराज जी आश्रम से।
सोम दत्त औ युगलदास को, पास बुला बोले उनसे।।
हम बाहर रहते है ज़्यादा, है सम्भालना तुमको काम।
मिट्टी का बरतन इक लाकर, मुट्ठी भींच धरे कुछ दाम।।
इसमें से लेते रहना बस, आवश्यकता पड़ने पर।
आमदनी भी इसमें डालो, आश्रम को यदि हुई अगर।।
ख़बरदार गिनना मत इनको, है सदगुरू की इसमें देन।
बुरी जगह धन खर्च न होवे, फेर रहेगी सब विधि चैन।।
भण्ड़ारा भर पूर रहेगा, बख़्शिश का है यह परशाद।
श्रद्धा से बरते जाओ बस, इसमें उनकी कृपा अगाध।।
रक्खी उस निधि को संगवाकर, थी वह बस दोंनों के हाथ।
ज्येष्ट पुत्र श्री महाराज के, और इक युगल दास के हाथ।।
महाराज का छोटा लड़का, ओउम दत्त था उसका नाम।
कम श्रद्धा थी श्री सदगुरू में, बड़ा समझता था धीनधाम।।
दोनों ही ने काम सम्भाला, हर प्रकार से आश्रम का।
बढता गया काम दम दम पर, बढा नाम भी सदगुरू का।।
खाने देश के थे दादा गुरू, एक बार श्री सदगुरू ने।
पुष्पाँजली वहाँ भेजी इक, पहुँचे लेकर के उन पै।।
साथ साथ दादा गुरू ने भी, पीतल की दी प्रतिमाँ एक।
कहते थे भगवान उन्हें वे, लेकर आऐ व्यक्ति विशेष।।
और प्रतिष्ठा की मंदिर में, इधर शेर पुर आकर के।
पीतल के भगवान विराजे, बड़े दिनों तक यहाँ पुजे।।
जो प्रतिमां के साथ आए थे, उनके साथ चले महाराज।
अमर नाथ, हरिद्वार व काशी, करी यात्रा उनके साथ।।
सबके बाद सोनगिर पहुँचे, ठहरे दादा गुरू के पास।
लेकर के सरूप साहिब फिर, सर पर इधर चले महाराज।।
महाराज मंजिल दर मंजिल, पैदल चल कर के आये।

सर सरूप साहिब था उनके, सादर लाकर पधराये।।
सदगुरू औ दादा गुरू दोंनों, इक फोटो में थे यकजा।
उन ही को पधरा रक्खा था, उन ही की होती पूजा।।
पीतल की प्रतिमाँ आइ फिर, की पूजा अर्चन उनकी।
अब सरूप साहिब पधराया, सेवा शुरू हुई इनकी।।
पुरूषों से नारी कोमल है, शीघ्र द्रवित हो जाता मन।
धर्म इन्हीं के बल चलता है, ये ही कर सकतीं संयम।।
बढ़ने लगी मात्रा इनकी, देख एक को इक आती।
यथा शक्ति औ श्रद्धा जो भी, आश्रम आती कुछ लाती।।
भक्तों को तो लगी खुशी पर, शोक अभक्तों को गुजरा।
वहाँ माइ बहनों का आना, कुछ ऐसे थे जो अखरा।।
बनी योजना रोको इनको, रूके न तो मारो इनको।
जिस प्रकार भी हो महिलाओं, को आश्रम में से रोको।।
वरन् तगाओ नाक गई बस, अपनी ही यदि नहीं रूकीं।
मुँह दिखलाने योग्य नहीं है, आती जाती अगर रहीं।।
युक्ति लड़ाते रहे बहुत दिन, कामयाब पर नहीं हुवे।
देख लिया सब ही को कहके, जाने वाले नहीं रूके।।
बारू, बुद्धू, औ मँशागिर, तीनों ने तरकीब रची।
युगल दास के खान दान की, लड़की आश्रम जाती थी।।
जाल बनाया इक लांछन का, बढ़े अगाड़ी युक्ति से।
अड़ा मोरचा यो टूटेगा, बात बनेगी इस विधि से।।
युगलदास ऐसे निकलेगा, जाले बन कर खड़े किये।
आहिस्ते आहिस्ते सदगुरू, के कानों में पूर दिये।।
जन्म अष्टमी के अवसर पर, बने चौलाई के लडडू।
भूला युगलदास रखकर कुछ, याद न आये के दे दूँ।।
धरे धरे से कीड़े पड़ गए, उनको जब इक दिन देखा।
जल था भरा तलय्या अंदर, वह सामान उसमें फेंका।।
फिरे तैरते जल पर लडडू, महाराज को दिखलाया।
देखो महाराज जी लडडू, जल में इनको फिकवाया।।
सदगुरू का प्रशाद फिकता है, लेकिन दिया नहीं जाता।
सिर्फ़ लड़कियों को बंटता है, नही मर्द को मिल पाता।।
ग़ौर करो करतब पर इसके, युगल दास वो नहीं रहा।
खेल बिगड़ जायेगा सारा, यत्न अगर कुछ नहीं किया।।
करे कोइ औ भरें आप यह, हमको तो बरदाश्त नहीं।
बात अगर तोली कुछ तुमने, तो यह रहने योग्य नहीं।।

चढ़ा रंग महाराज श्री पै, जोख लगा दी पत्थर को।
बिगड़ गये वे युगल दास पर, लात लगाई जा उसको।।
बाहर फेंका उसका आसन, नजर न आना हुक्म हुवा।
आंख देखकर महाराज की, झट नजरों से दूर हुवा।।
निकल गया जंगल में जाकर, एक बाग में काटा वक्त।
वापिस चला पुनः आश्रम को, संध्या का जब आया वक्त।।
पहुँच गया आश्रम में वापिस, था रसोइ का सारा काम।
भोजन मैं हि बनाया करता, चौका बरतन आदि तमाम।।
जब रसोइ में पहुँचा जाकर, हाथ लगाया सेवा को।
ख़बरदार मत हाथ लगाना, आप करेंगे रहने दो।।
बैठ गये इक पेड़ तले हम, लगे बनाने सदगुरू आप।
हैं नाराज जनें क्यो हमसे, युगलदास को पश्चाताप्।।
भेजा थाल एक खाने को, जीम गया वह चुपके से।
ना खाना ही बनवाया औ, ना बरतन ही मँजवाये।।
साफ़ किये अपने झूठे बस, महाराज जी फिर बिगड़े।
ठीक निकल जाना ही समझा, हम दिल्ली को भाग पड़े।।
दस दिन इधर टक्कर खा, हम वापिस आश्रम आये।
ज़िक्र उठा लडडू का फिर से, महाराज जी गरमाये।।
कान भरे थे ऐसे अपनी, एक नहीं सुननी चाही।
जितना भी बोले सफ़ाई में, डाट और दुगनी खाई।।
भाग गया वह हरिद्वार को, तत्पश्चात सहारनपुर।
इसके बाद नावले पहुँचा, ठहरा पिरथी सिंह के घर।।
पंदरह दिन विश्राम किया वहाँ, चले वहां से फिर पैदल।
चढी हुई थी जमना काफ़ी, इच्छा हुई कि देखें जल।।
लगी रास्ते में कै हमको, इक दम से बीमार हुवे।
चारा चला न जब कुछ आगे, युगल दास घर लौट पड़े।।
बड़ा पित निकला रस्ते में, हालत हो गई बड़ी खराब।
ज्यों त्यों कर आश्रम तक आये, आते ही मिल गया जवाब।।
महाराज जी वहां नहीं थे, बोला हमें बिशम्बर दास।
जब तक उनकी न हो आज्ञा, यहाँ नहीं रह सकते आप।।
चले गये हम अपने घर को, हालत और अधिक बिगड़ी।
मर जायेगा हालत ऐसी, घरवालों को जांच पड़ी।।
थे मजादपुर महाराज जी, पहुंचा एक वहीं लेकर।
महाराज जी कुइया बनवा रहे, थे मजादपुर आश्रम पर।।
आता लख कर युगल दास को, बोले कहो हाल क्या है।

थी कमज़ोरी हद से ज्यादा, दिखलाया के ऐसा है।।
मरने के नजदीक खड़े है, आगे ख़बर आपको है।
मरने से पहले कुछ ईटें, डालो जाकर कुइया पै।।
मरना हो तो फिर जाना, उठ कर वह सेवा कर दी।
उसी रोज सद गुरू किरपा से, हालत अपनी ठीक हुई।।
दिन दो चार वहां ठहरा कर, हुक्म दिया जाओ घर को।
एक वर्ष की और सजा है, अपने ही घर पर ठहरो।।
चले गये हम एक वर्ष को, देखा जाकर अपना काम।
सुबह शाम जाते आश्रम पर, बाहर से करते परनाम।।

श्री सदगुरू की बात में होता था कुछ राज़।
केवल उसको जानते सिर्फ़ एक महाराज।।

बीतक बाबू सुलतान सिंह
मजाद पुर

कौन किसे जाने वैसे तो, कौन किसी का सगा यहाँ।
बस चक्कर ही चक्कर दीखे, जीना भी है मौत यहाँ।।
जब तक समझ नहीं होती है, खुद से बड़ा नहीं जँचता।
समझ बूझ पर आंखे खुलती, पता किसी का तब लगता।।
बचपन भी देखा सदगुरू का, और जवानी भी देखी।
इस चोले में कौन छिपा है, सुलतान देर में पता लगी।।
जांच पड़ी टक्कर खा करके, क्यों के ऊत शुरू ही के।
दुनियां का हर ऐब पास था, बदमाशों के अब्बा थे।।
गुण्ड़े बंधे हुकुम में रहते, जो चाहें सो करवा दें।
मानव जरा नहीं जँचता था, मिनटों में मुंह पिटवादें।।
पीना खाना शग़ल रोज़ का, इसके बिना न रहते थे।
घटने का कुछ प्रश्न नहीं था, कदम रोज कुछ बढते थे।।
महाराज आते जाते थे, न थी मगर उसको श्रद्धा।
जैसे और बहुत बाबा जी, वैसा ही उनको समझा।।
तारीफ़े सुनता औरों से, होंगे ऐसे कह देता।
जैसे पीछे पड़ जाते हैं, ऐसे पीछे नहीं पड़ा।।
अन्य गांव का योगी होता, शायद पीछे पड़ जाता।
लेकिन वे घर के योगी थे, श्रद्धा भाव नहीं उपजा।।
सुनी बहुत ही प्रशंषाएँ जब, पहुँचा इक दिन उनके पास।
और बहुत काफी बैठे थे, वही मजाहिदपुर का साथ।।
राम राम सुलतान सिंह ने, उत्तर गर्दन से पाया।
किया इशारा इक आसन का, उस पै उसको बिठलाया।।
राजी खुशी गई पूछी तब, दया आपकी कह डाला।
सदगुरू ने उसको औ उसने, सदगुरू को देखा भाला।।
लगीं नज़र कुछ और और सी, थे वे पूरे सट्टे बाज।
मन में सोचा किसी रोज़, पूछेंगे इनसे अपनी बात।।
सिर्फ़ भाव आये ये उस दिन, परख न थी उनकी कोई।
न था धर्म का कोई चसका, आतम थी इक दम सोई।।
एक रोज़ पहुँचे घर पर ही, खाना बना रहा सुलतान।
उसने पूछा आओ खा लो, बोले दे दो बस इक नान।।
उठ कर एक उन्हें दी रोटी, तीन बनाई थीं केवल।

बाकी दो सुलतान ने खाई, पेट भरा पीकर के जल।।
समय वही आया अगले दिन, महाराज जी फिर आये।
फिर रोटी तय्यारी पर थी, महाराज जिस दम आये।।
पहले दिन की तरह आज फिर, पूछा खाने को उसने।
उत्तर वही मिला फिर उनका, लाओ दे दो एक हमें।।
भूका फिर वह रहा आज भी, पानी पी विश्राम किया।
आठ रोज तक महाराज ने, क्रम से अपना भोग लिया।।
किलस किलस रह जाता मन में, जब लखता उनकी मूरत।
ये तो भइया लिपट गया अब, बचने की सोचो सूरत।।
मुंह से यह भी नहीं निकलता, जा में तुझको नंहि देता।
मन से भी कहता मत पूछै, पर मन भी चुप नंहि रहता।।
आठ रोज तक भूके मारे, नौवे दिन बोले महाराज।
साथ हमारे बाबू जी क्या, बाहर चल सकते हो आज।।
चुड़ियाले जाना है हमको, वहां साथ है इक अपना।
उससे मिलकर चले आँएगे, फुरसत हो तो चल पड़ना।।
निकल पड़ी हां उसके मुंह से, नहीं चाहता था जाना।
बलिक चाहता था उल्टा ही, सदगुरू से पिड छुड़वाना।।
पकड़ा गया और अब ज्यादा, चलना पड़ा विवश फिर साथ।
पहुँच गये चुड़ियाले सीधे, वापिस हुवे दो दिन के बाद।।
दो दिन रह कर जब लौटे तो, चले खतौली से पैदल।
चले आ रहे थे दोंनों ही, उट्ठी उसमें उथल पुथल।।
मौका आज बड़ा अच्छा है, जंगल था चंलसीने का।
निकले भूड़ भूड़ आते थे, था निशान नंहि पंछी का।।
महाराज इक दड़ा बता दो, चुपके से उसने पूछा।
बोले उससे महाराज जी, किसको कहते आप दड़ा।।
क्रोध उसे सुनते ही आया, कितना सीधा बनता है।
दुनियां को ठगता फिरता क्या, सट्टा नहीं जानता हैं।।
पकड़े दोनों हाथ लपक कर, शब्द सख़्त करके बोला।
या तो दड़ा बता दे पट्ठे, आज नहीं अच्छा होगा।।
मैंने बहुत संवारे तुझसे, तेरा भी है नम्बर आज।
हूँ सुलतान नाम से मैं भी, आज बना दूँगा महाराज।।
हंसे श्री सदगुरू लखकर के, आज मुझे मारेगा क्या।
वह बोला तो दड़ा बतादे, फेर भला क्यों मारूँगा।।
भइया हम उनमें से नंहि हैं, कर यक़ीन सगुरू बोले।
मुट्ठी और सख़्त की उसने, ज़ोर और ज़्यादा तोले।।

है कोई हमदर्दी तेरा भी, है तो कोई बुलाके देख।
फिर भी हंसकर बोले सदगुरू, अरे भाई हम नंहि हैं एक।।
इकला हमको समझ रहा क्या, वह बोला आवाज लगा।
जो हिमायती होगा तेरा, कम से कम वो बोलेगा।।
हमको भी दिख जायेगा वह, सदगुरू बोले पीछे देख।
उसले जब मुड़कर देखा तो, जिनसा दीखा उस को एक।।
दैत्याकर और बदरूहा, था शरीर भी बड़ा विशाल।
उसकी फूँक देख कर निकली, हो जैसे वह उसका काल।।
बिजली जैसी फुरती कर, सुलतान सिंह के पकड़े पैर।
और उठाकर उसे घुमाया, भला कहाँ फिर उसकी ख़ैर।।
देकर मारा उसे झूड़ में, वह बेहोश हुआ तत्काल।
मुँह इकदम धंस गया रेत में, स्वयं समझ लो आगे हाल।।
होश उसे जिसदम आया, सरहाने बैठे थे महाराज।
हवा कर रहे थे धोती से, उसे होश लाने के काज।।
दीदे फाड़ फाड़ के देखा, मानो के पहचान रहा।
कभी कहीं महाराज न हों ये, सरहाने हो जिन बैठा।।
देखा उसने बड़े गौर से, हम पै नज़र जमाँ करके।
दहशत थी उसकी ही उसको, मारे कभी फेर आके।।
बहुत देर हालत रही ऐसी, जैसे के वो अब आया।
पैर पकड़ फिर दे मारेगा, था इतना वह घबराया।।
हंस कर बोले महाराज जी, क्या हो गया तुझे सुलतान।
उसके मुँह में बोल नहीं था, मानो निकल गये हों प्राँण।।
महाराज से भी भय उतना, जितना जिन से था उत्पन्न।
उसके होश ठिकाने नंहि थे, औ शरीर भी भय से सन्न।।
बैठा हुआ भड़क कर इकदम, लगा ताकने चारों ओर।
दीखे अगर आदमी कोइ, तो तू भाग उसी की ओर।।
महाराज से हटा एक दम, चौर भौंर होकर भागा।
आगे कभी कभी पीछे को, देख देख भगता जाता।।
निकल भाग कबज़े से इनके, दहशत थी इतनी ग़ालिब।
किसी तरह से बच बुच करके, भगा गाँव की वह जानिब।।
महाराज अपनी कुटिया को, वह भगा अपने घर को।
जान बची और लाखों पाये, समझा अच्छा इस ही को।।
लेकिन पिण्ड न छूटा फिर भी, पाला ऐसा आन पड़ा।
आठ पहर वह जिन दिखता रहा, जैसे हो वो यहीं खड़ा।।
नहीं हुआ जब चित्त ठिकाने, तो फिर वो डरता डरता।

गया आश्रम पै सदगुरू के, पापों से पिटता छितता।।
इधर शरम तो उधर मौत थी, फंसे कुटब्बे दोंनों पेच।
जाही पड़ा शरण में उनकी, इस प्रकार की मारी खेंच।।
भय बिन प्रीत न होत है, ऐसा है दस्तूर।
भय समीप ला डालता, जो रहते अति दूर।।
पलक हुऐ मानो मन मन के, उठे नहीं गुरू के सन्मुख।
बाबू जी कुछ बात नहीं है, मान रहे क्यों इतना दुख।।
चला गया सट्टे वाला तो, हो गई बेचारे की मौत।
साथ न ज़्यादा रह पाय वो, नाहक हुवा विचारा फ़ौत।।
उसकी जगह हमें रख लेना, भरना हो यदि वह स्थान।
लेकिन सट्टा हमें न आता, कठिन बात है यह सुलतान।।
वह पड़ गया चरण पर लम्बा, क्षमाँ चाहता हूँ महाराज।
कैसी मति मारी गइ थी जो, किये आप संग उल्टे काज।।
थंपी देकर उसे उठाया, जा ये भी कुछ कारण था।
आज भला सदगुरू चरणों में, उस बिन कभी नहीं आता।।
ध्यान रहे आइन्दा जा बस, सावधान होकर रहना।
वरन बहुत पछताऐगा तू, माना नहीं अगर कहना।।
करी प्रतिज्ञा मन से उसने, छूट गई सट्टे की लत।
बाक़ी खान पान की रहगइ, यह भी बड़ी बुरी थी धत।।
पीकर कुछ भी नहीं सूझता, कर अनकर सब एक समान।
भय बिन प्रीत नहीं होती है, हुआ आज उसको यह ज्ञान।।
आता जाता रहा रोज़ ही, सुनने लगा धर्म की बात।
करता क्या मजबूरी थी बस, हारे बाबा दाढ़ी हाथ।।
भय से आता जाता था वो, धीरे धीरे उपजा प्रेम।
परनामी से वह चिड़ता था, पर अब देखे सारे नेम।।
लगीं बात अब अच्छी लगने, अपनाने को दिल चाहा।
दिया तारतम इक दिन उसको, श्री सदगुरू ने अपनाया।।
देकर बोले हुवे क़ैद अब, खाना पीना आज ख़ातम।
किया उलंघन यदि नियमों का, तो फिर गया समझ जीवन।।
सत्य जान सब बातें उसने, धरा चरन सदगुरू के शीष।
ताक़त दोगे तभी निभेगी, साथ साथ माँगी बख़्शीश।।
थेपी लेकर चला गया वो, रहनी वहनी सब बदली।
खान पान औ ऐबदारियों, में आई अब तबदीली।।
छुटा बैठना उन लोगों में, जिस फ़न के थे वे उस्ताद।
बंधे श्री सदगुरू चरणों से, आने लगा इधर अब स्वाद।।

सदगुरू उसे साथ रखते थे, अगर कभी बाहर जाते।
सुनते वचन साथ से मिलते, औ प्रशाद उनका पाते।।
बड़े बड़े धनियों से सदगुरू, का लगाव उसने देखा।
कितनी मान्यताऐं उन्हें देते, था अदभुत लेखा जोखा।।
साक्षात श्री कृष्ण चंद्र, सदगुरू को माना करते थे।
हो सुलतान निरे बुद्धू तुम, तुम क्या समझे बैठे थे।।
घर के बाहर और लगे कुछ, देख देख हम शरमाऐ।
क्या कारण जो हम जैसों पै, करने कृपा यहाँ आये।।
एक रोज़ पहुँचा आश्रम, सुल्तान सिंह गुरू दर्शन को।
बड़ा सोहना सा इक बालक, मिला आश्रम पै उसको।।
तगड़ी और लंगोटी बाँधे, स्याह लटूरी थीं सर पर।
किसका बालक आ खेला यह, भागा उसे देख अंदर।।
उसे चाह थी महाराज की, डयौढ़ी को परनाम किया।
अंदर जब पहुँचा तो बालक, गुरू गादी पर बैठा था।।
अब के मुकुट भी दीखा सरपर, ताक रहा था उस ही को।
उसने सोचा किसका है यह, उतर तले कहंदूँ इसको।।
इधर उधर देखा सदगुरू को, कहीं न जब नज़रों आये।
किसको ढूँढ़ रहे हो भाई, शब्द बाल छवि से आये।।
महाराज जी से मिलना है, तू इस गादी पर क्यों है।
महाराज जी की गादी है, उतर तले चढ़ बैठा है।।
रंग बदलता दीखा बालक, चला गया नीला होता।
मन सुल्तान सोच में पड़ गया, चमत्कार है या बच्चा।।
भय सा भी था पिछले जिन का, जिसने पीछे मारा था।
महाराज आ बना कहीं क्या, अजब क़िस्म का सा भय था।।
दीखे झट फिर महाराज जी, अलख हुवा वो बालसरूप।
सीधा साधा वही पुराना, दिखने लगा गुरू का रूप।।
हंस बोले कहो चौधरी, आज खड़ा क्यों भौचक्का।
महाराज यह क्या लीला थी, आज रूप कैसा बदला।।
यह क़सूर तेरी आँखों का, है ज्यों का त्यों सभी यहाँ।
रात नशा कर बैठा क्या कंहि, उतरा नंहि क्या अभी नशा।।
मत पूछो बस हाल हृदय का, साष्टाँग परनाम किया।
बस रहने दो महाराज जी, चक्कर में ही डाल दिया।।
लगा समझने सहज सहज अब, महाराज विचलाओ मत।
चलते चलते बीत गये युग, अब तो हमें चलाओ मत।।
बाल मोहिनी लख सदगुरू में, हुआ प्रभावित उसका मन।

साधारण इन्सान नहीं हैं, अपने सदगुरू रामरतन।।
साक्षात् भगवान रूप हैं, हुआ पूर्णतः उसको ज्ञान।
बेशक हैं मन मोहन प्यारे, शक की रहा नहीं स्थान।।
श्रद्धा बहुत हुई अब उत्पन, उनके प्रति उनके मनमें।
जँचता कोइ न उनके आगे, भजन ध्यान निधिध्यास में।।
अब नित रहने लगे चित्त में, बन बन स्वप्न दिखाते रूप।
जँचा प्रवचनों से उनके यह, के दुनियाँ है अँधा कूप।।
चार पाँच वर्षों के पीछे, एक समय ऐसा आया।
होली का त्यौहार था उस दिन, कुछ लोगों ने बहकाया।।
खिंच रही थी मदिरा जिस घर, सुलतान सिंह वहाँ जा पहुँचा।
थे मदहोश नशे में सारे, हर इक पै था नशा चढ़ा।।
फैली थी बदबू ही बदबू, धरी हुई थी भरी सुरा।
साथी पिछले सभी वहाँ थे, सबही ने मुझ को घूरा।।
द्वार बंद झट किये एक ने, बोले, अब पीकर जाना।
होली का त्यौहार बरस का, इसमें बस पीना खाना।।
उसने हाथ तलक के जोड़े, छोड़ दिया अब ऐसा काम।
महाराज क्या देख रहे हैं, पीले सिर्फ़ एक ही जाम।।
बैठ गये सब पकड़ जकड़कर, जो कहता थोड़ी पीले।
महाराज तक पता न होगा, मुँह से ग्लास लगा ले ले।।
पिछला किया हुआ सो था ही, गंध नाक में जब आई।
भड़क उठी तबियत इकदम से, क़सम सभी से खिलवाई।।
गुरू तक बात न जाने पावे, सब कह उठे, नहीं नहीं।
एक पैग पी डाला फिर तो, ज्यों सदगुरू को पता नहीं।।
डली एक बकरे की भी ली, सब बोले थोड़ी सी और।
फिर तो गाड़ी चढ़ी लैन पै, चले दौर पै फिर तो दौर।।
पड़ना पड़ा वहीं खा पी के, नशा देखकर के कोई कहीं।
कह ना दे जाके सदगुरू से, इसी लिये वे गये नहीं।।
घंटे बाद दर्द उट्ठा इक, बजने लगे पेट में ढोल।
उछल उछल पड़ता पीड़ा से, आँत रहा ज्यों कोई छोल।।
ऐसा लगा साँस निकले अब, लगता न था कोइ भी पास।
दवा गोलियाँ भी दीं लेकिन, पैदल चली न कोई बात।।
पल पल दुगना तो होता पर, घटने को नंहि कहता था।
मरा जा रहा था पीड़ा से, बल्के दम सा घुटता था।।
कहा किसी ने महाराज से, है तकलीफ़ उसे काफ़ी।
थोड़ी बहुत दवा दे देते, बोले दवा न दी जाती।।

मौत ठीक कर देगी सब कुछ, उसकी चिंता छोड़ो अब।
यम पै गोली है ऐसों की, खुद आकर दे देगा अब।।
ऐसों का मर जाना बेहतर, भाग जाओ नहीं यहाँ दवा।
जो चूरन लेने पहुँचा था, सुन सदगुरू की भाग पड़ा।।
कहीं पहुँच कर उससे सारी, मौत नज़र आई उसकी।
यह तकलीफ़ नहीं है भइया, मौत लिपट गई मुझको तो।।
अब हरगिज़ भी नहीं बचूँगा, वक्त निकट आया भइया।
उनके बिन अब नहीं ढंग कुछ, डूबी बस समझो नैया।।
सूझ नहीं उसे फिर कुछ भी, कहा एक से भइया रे।
किसी तरह मुझको ले जाकर, सदगुरू के द्वारे धरदे।।
अगर मरा तो वहीं मरूँगा, क्यों की मिट्टी यहाँ विरान।
यह तो सूझ गई अब बिलकुल, बचती नहीं तुम्हारी जान।।
किया उलंघन आज्ञाओं का, शायद ही माँफ़ी हो अब।
फंसे जाल में कुकर्मियों के, इसे जानता मरा रब।।
लेगया एक कमर पै धरके, जा डाला आश्रम के द्वार।
महाराज आश्रम ही में थे, दर्द रहा था बेढब मार।।
मिली सूचना मेरी उनको, बोले बाहर रहने दो।
अंदर मत लाना ऐसों को, मरता हो मर जाने दो।।
करी प्रार्थना सभी साथ ने, क्षमाँ करो है पहली बार।
आइन्दा यदि फेर करे तो, चाहे जितनी देना मार।।
क्षमाँ आज बस करदो सदगुरू, मिली इजाज़त ले आओ।
पहुचे दो लेने को उसको, बोले अब मत घबराओ।।
बस ज़बान ही मत निकालना, चाहे जितने हों नाराज़।
गिर जाना चरनों में जाकर, चाहे जितने हों नाराज़।।
एक इधर से एक उधर से, कंधे पर धरवाकर हाथ।
चरन श्री सदगुरू तक पहुँचा, दूर बिठाओ बोले नाँथ।।
साष्टाँग पड़ गया दूर ही, नाक रगड़नी की आरम्भ।
महाराज जी बोले क्यों रे, क्यों आया क्या है सम्बंध।।
हम क्या तुम्हें देखते फिरते, और क़सम दे मित्रों को।
डली उड़ा या सलिम बकरा, मर कर यहाँ क्यों आते हो।।
हम क्या ठेकेदार तुम्हारे, कब तक तुम्हें बचाऐंगे।
तुम डण्डे लायक़ हो यम के, वे ही तुम्हें सधाऐंगे।।
वहीं ठीक होगे तुम जाकर, यहाँ तुम्हारा काम नहीं।
राजपूत ऐसे होते हैं, जहाँ ज़बाँ का नाम नहीं।।
महाराज जी क्षमाँ करो बस, क्षमाँ करो अब कै महाराज।

आगे ग़लती नहीं होयगी, जाने कैसे हो गइ आज।।
ख़ुद ही आँख न मिलती तुमसे, गुनहगार हूँ माँफ़ करो।
चूरन आया फिर झोली से, इक बोला परनाम करो।।
आधा दर्द गया आश्रम पै, आधा घर पर शान्त हुआ।
चक्कर जो आया था उसपै, चक्कर का यों अंत हुआ।।
सागर थे कृपाओं के सदगुरू, गाया क्या गावे कोई।
महिमाँ कही न जाती किंचित, मुझ अपूर्ण से पूरण की।।
प्यार किया फिर बहुत ह्रदय से, रक्खा सदगुरू ने भी ध्यान।
नज़रों में रहने लग गए बस, मनसुख का पद किया प्रदान।।
धाम धनी मेरे में उनकी, हूँ अर्धागिनी है स्पष्ट।
पावन की आतम आ करके, वरना हो गई थी मैं भ्रष्ट।।
रामरतन श्री में पिया पाये, सदगुरू बन कर गये निहाल।
वरण पकड़ लिए हमने तो बस, आगे सदगुरू जाने हाल।।
बार बार परनाम निवेदन, करता पीतम को सुल्तान।
अलग न चरणों से कर देना, है चरणों में निज स्थान।।

युगलदास की वापसी शेरपुर

सदगुरू हैं साक्षात् राज जी मैं चरणों की ख़ाक।
मेरी नज़रों जँचा यही बस काहे की निज साख।।

युगलदास को दण्ड दिया था, एक वर्ष पहले हमने।
कहीं रहो आश्रम मत आना, करना भरना है तुमने।।
अतः वर्ष की सजा काटकर, युगलदास पहुँचा आश्रम।
आया शरण चरण सदगुरू की, आते ही की चरन नमन।।
स्वीकृति मिली उसे रहने की, साथ साथ सोंपा इक काम।
बुद्धिदास को संग लेजाकर, जाओ दिला लाओ निजनाम।।
हैं मेले के दिवस आज कल, घूंम आओ तुम मलकाहास।
वचन सुनेंगे दर्शन होंगे, चेतेगा इनमें विश्वास।।
पाक पटन पश्चात पहुँचना, वहाँ मिलेंगे मुरली दास।
मंत्र इन्हें दिलवाना उनसे, पहले रखवाना उपवास।।
वह बोला तुम ही जो दे दो, यहाँ ठीक नंहि रहने का।
गुरू भाव से वंचित रहकर, भ्रात भाव, आजावेगा।।
जो अनर्थ का कारण होगा, अतः यही है बस उत्तम।
मुरलीदास बहुत इलमी हैं, मंत्र दिलाओ उनसे तुम।।
लेते ही संकेत हमारे, मलकाहास गये दोंनों।
मेले का सुख लिया प्रथम तो, सुने वचन अपने कानों।।
पाक पटन पहुँचा मेले से, बुद्धिदास थे उनके साथ।
भेष दिलाया वहाँ पहुँचकर, बने गुरू श्री मुरलीदास।।
लौट पड़े कुछ दिन रह करके, बुद्धिदास को मंत्र दिला।
उन्हें साथ ले करके आश्रम, बुद्धिदास घर आ पहुँचा।।
युगलदास आश्रम में रहता, हुई उसे फिर से आज्ञा।
चुभने लगा किन्तु आँखों में, अपना शत्रु पक्ष जो था।।
हम भी अब सतर्क से हो गए, खोटी जो करता आकर।
युगलदास का पक्ष पकड़के, उन्हें मारते धमका कर।।
हमें पूजना खूँटा अपना, इज्ज़त हो जिसको प्यारी।
बहन बेटियाँ रोको अपनी, क्यों आती हैं यहाँ नारी।।
नहीं बुलाने जाता कोई, जो आता सो मतलब को।
आने पर तो आवभगत, करनी ही पड़ती है हमको।।
अपने से ऐसी सुन करके, की पंचायत उस दल ने।

नारी पै प्रतिबंध लगाया, कोइ न जावे आश्रम में।।
लकिन रूकीं न नारी उनसे, ख़ूब हुईं ऐंचातानी।
मर्द बैठ गए थक कर सारे, नारी एक नहीं मानी।।
खेल गई जानों पर लेकिन, रूकीं न जाने से आश्रम।
लोगों ने लखकर यह लीला, मारा नहीं किसी ने दम।।
कहने कहने की हैं अबला, बला बनीं उनकी ख़ातिर।
विवश बैठना पड़ा त्रस्त हो, कलह हरिक घर में पाकर।।
बात न चलती देखी जब कुछ, तो बारू सिंह खिसियाया।
किस से विजय मिले अब, यह हथियार न चल पाया।।
थी परास्त करने की इच्छा, एक बात अब यह सोची।
बावन गाँव इकट्ठे करके, उन सब से कटवा रस्सी।।
था गुजराती एक महात्माँ, हमें जूड़ से हटते ही।
उसे जूड़ में ले आये सब, सब ने मान प्रतिष्ठा दी।।
बारू मिला पहुँचकर उससे, दाढ़ू करके था विख्यात्।
उससे तार मिलाया उसने, कहते थे सब उसको नाँथ।।
बात उसकी टलती कोई, लोगों से जो कुछ कहता।
उसके साथ मिला जा करके, और एक उत्पात रचा।।
नींचा हमें दिखाने के लिए, बनने लगी योजनाऐं।
परनामी नंहि रहने देने, चाहे जो कुछ हो जाऐ।।
बावन गाँव त्यागियों के हैं, भागे फिरे सभी पै वे।
नेता गण हर एक गाँव के, जा जा कर तय्यार किये।।
समय सुनिश्चित पर सब के सब, गाँव जड़ौदा आ पहुँचे।
लाँछनीय आरोप लगाकर, आश्रम पैसब टूट पड़े।।
आज ईंट से ईंट बजादो, सब का यही इरादा था।
युद्ध स्तर पर संर्घषण हो, हर इक यही चाहता था।।
मिली सूचना महाराज को, महाराज जी यह है बात।
इधर आ रहा है आश्रम को, ओर त्यागियों का उत्पात्।।
शिष्य लोग भी भाग पड़े सुन, बोले आकर सदगुरू को।
क्या आज्ञा है हम लोगों को, केवल आप हुकुम करदो।।
दया आपकी से वही होगा, जानों की परवाह नहीं।
शर्मनाक बातें ये इनकी, हम से तो नंहि जाँए सुनीं।।
शान्त रहो बोले श्री सदगुरू, आप करेंगे गुरू महाराज।
हमें तुम्हें क्या इसकी परवा, फ़िकर उसे है जिसका काज।।
जोश न अपने में लाओ कोइ, अपने कामों में लाना।
यह है काम श्री सदगुरू का, खुद होगा जो कुछ होना।।

तुमतो रहो देखते केवल, इतने में दल आ पहुँचा।
बारू और दाढ़ू आगे थे, संग सेंकड़ों का जथ्था।।
आए बाग़ वाले द्वारे पर, लाठी डण्डे सब के हाथ।
जो जिसके मुँह में आती थी, करता आता था बकवास।।
साथ आश्रम में जितना था, बकवासों पर जोश आया।
महाराज इनका हम ही को, कर लेने दो भरपाया।।
रूका नहीं जाता दाढ़ू की, दाढ़ी तो उखाड़ ही लें।
और देखलें लाठी इनकी, आप ज़रासे हट जावें।।
आँखें लाल करीं सदगुरू ने, हमको इन्हें देखने दो।
ये ही लोग उखाड़ें दाढ़ी, इसका आप न कष्ट करो।।
इताना कहकर महाराज जी, उठ करके पहुँचे द्वारे।
पहले सब पै द्रष्टी डाली, एक नज़र देखे सारे।।
फिर बोले क्या हुकुम आपका, किस इच्छा से आये हो।
क्या कारण जो लाहो लश्कर, इतना संग में लाये हो।।
प्रश्न किया दाढ़ू बारू ने, कहने का बेहूदा ढंग।
यहाँ औरतों का आना, करते हो या नंहि करते बंद।।
हमें न रूकना, बोले सदगुरू, अपनी को तुम ही रोको।
अगर बुलाने जावें मारो, अपनी को मत आने दो।।
लेकिन हमें नहीं रूकना है, यहाँ रहेगा जारी काम।
आश्रम यहाँ नहीं रह सकता, बारूसिंह फिर से बोला।
तभी शेरपुर के बोले झट, आगे निकल चुहड़ मूला।।
जगह उन्हीं ने दी आश्रम को, बोले किसमें इतना दम।
जगह तुम्हें भी देंगे इतनी, इक चिनलो तुम भी आश्रम।।
बैठे यहीं रोकते रहना, लेकिन ये नंहि उठ सकता।
ताक़त नहीं डिगादे कोई, सुन उनकी हुल्लड़ खिसका।।
ख़ून यहाँ हो सकते हैं अब, नेता गंण सब लौट गये।
लोटा नमक हरिक ने डाला, त्यागी त्यागी एक हुवे।।
होकर एक गाँव पाँचों ने, एक ढँढोरा पिटवाया।
नारी जाति एक भी आश्रम, नहीं जायगी बतलाया।।
दण्ड उसे पंचायत देगी, किया उलंघन जिसने भी।
डौंडी सब में पिटवा करके, स्त्रियाँ सब रूकवादीं।।
महिलाओं ने सोचा यह तो, थोपा दोष हमारे पै।
पुरूष पाक बनकर दिखलाते, समय परिक्षा का अब है।।
भक्त अभक्तों का झगड़ा तो, होता आया पहले से।
परम्परागत चलना आया, करें शिकायत अब किससे।।

भड़क उठीं नारी जितनी थीं, द्वन्द युद्ध को उतर पड़ीं।
किया सिद्ध हमको कलँकनी, किस प्रकार अब जाय सही।।
जैसें के हम दुराचार के, लिये आश्रम जाते थे।
परनामी जन दुराचार के, लिये हमें बहकाते थे।।
हुई तार थरक़ी आपस में, हर नारी पै गई ख़बर।
अगनी भड़क उठी बदले की, सब पर इकदम पड़ा असर।।
अब चाहे जो कुछ हो जावे, रूकना नहीं किसी को भी।
सेहरा बाँधा अपने सर पर, माँ ने श्री शान्ती की।।
व्यक्ति जड़ौदे आदिक के सब, रखते थे उसपर पहरा।
अगले रोज़ चली वो आश्रम, भरा हुवा था दोपहरा।।
चली बीच बाज़ार निकलकर, अचपल बोला वो चलदी।
रोको इसे कोइ उठकर के, बावन की अब नाक कटी।।
बोली तभी शान्ती की माँ, ऐसा कोइ नहीं जन्मा।
मुझे रोक करके दिखलादे, वापिस घर नंहि जाने का।।
भेज सूरमाँ खड़ी हुई हूँ, आगे सब के उठकर के।
लेकिन कोइ न आया आगे, सभी हौसले पस्त हुवे।।
भागे लोग शेरपुर कहने, उधर न हो कोई औरत।
गेंदी बाइ वाहाँ भी पाई, थी दोनों की मिली भगत।।
आइ जड़ौदे से गंदी पै, मिल दोनों पहुँचीं आश्रम।
की परनाम पहुँच सदगुरू को, मारा नहीं किसी ने दम।।
महाराज जी बोले देवी, आप लोग अब ना आवें।
कृपा करो अपने पै हम पै, और आप सब रूक जावें।।
चाहे जान चली जावे, महाराज हमें अब नंहि रूकना।
एक बार ही तो मरना है, बार बार तो नंहि मरना।।
किन्तु आपके चरन थामकर, रूकना कैसा बतलाओ।
रोके सारा जगत अगर यह, आप यहीं हमको पाओ।।
कुछ दिन को तो रूको देवियो, बोलीं वे कितने दिन को।
अगर आप ही रोक रहे हो, तो हमको दिन बतलादो।।
उतने दिन हम नहीं आएगी, आगे तो अपना घर है।
महाराज जी ख़ूब समझलो, यह बोझा सब तुम पर है।।
बोले सदगुरू आठ रोज़ को, अच्छा कह परनाम करी।
अपने अपने घर को आज्ञा, लेकर ये दोनों चलदीं।।
चले श्री जी हरिद्वार को, कुछ दिन के लिए कह करके।
युगलदास ही रहा आश्रम, साथी और बहुत से थे।।
कुनबा एक धँागड़ों का है, शेरपुर ही रहते हैं।

सूरज भान उन्हीं में है इक, कुछ तकलीफ़ घुसी उसमें।।
सर्दी खाकर के निमोनियाँ, वह भी डबल पड़ा उसको।
देखा वैद्य डाक्टरों ने भी, फ़ुरसत नहीं हुई उसको।।
चला गया दबता ही दबता, साँस न आता बेढब दर्द।
परेशान कुनबे का कुनबा, जितने भी थे औरत मर्द।।
घबरा गये डाक्टर तक के, एक तरह से दिया जवाब।
बनी चेष्टा ऐसी जैसे, हाथ तले से गया हिसाब।।
लड़का गया हाथ से अब तो, जँच गइ पूरी तरह उन्हें।
महाराज जी सूझे फिर तो, शरम मगर लग रही उन्हें।।
रहे सूरमाँ पंचायत में, क्या मुँह ले करके पहुँचें।
महाराज जी हमें बचालो, कैसे जाकर उन्हें कहें।।
मरता हुआ दौड़ पड़ता है, पहुँचे उनमें से कुछ पास।
पैर पड़े जा युगलदास के, घर में आज पड़ी है ल्हास।।
अगर बसाना हो बसवादे, वरना उजड़ गये हम आज।
आज न कोई दिखता हमको, फक़त एक दिखते महाराज।।
हम ठहरे बदमास भाइ जी, व्यभिचारी के पास कभी।
चमत्कार रह सकता है क्या, कह सकता है कोइ कभी।।
ये हैं काम महात्माओं के, सीधे जूड चले जाओ।
दाढ़ू का चरणामृत लेकर, अपने अपनों का प्याओ।।
गिग्याकर गिर पड़े पैर पर, युगल दास अब रहने दे।
उस अनर्थ पर पछता रहे हैं, उसे याद मत दिलवावे।।
वक्त भयंकर है अब हम पै, बचवाना हो बचवा दो।
वरना आज उजड़ने को है, गलती सभी क्षमां कर दो।।
चिपट गये जब बुरी तरह से, हरिद्वार थे सदगुरू तो।
मैने करीं ध्यान से बातें, उत्तर मिला विभूति दो।।
लेकर अगर विभूति दोंनों, आख़िर कार गया घर पर।
वहीं वैद्य भी बैठा था इक, मौत चढ़ी थी छाती पर।।
बोला क्या रक्खा है अब याँ, बंद जबाड़ी है इसकी।
मैंने देख दाख कर उसको, जल में वो विभूति घोली।।
दाँत खोल कर के चम्मच से, तीन चार चम्मच डाली।
मल कर गला ज़रा हाथों से, अंदर को वह सरका दी।।
कुछ बदाम रोग़न में डाली, सर छाती पर मलवाया।
बीस मिनट में गुरू किरपा से, उसका सांस लौट आया।।
की परनाम खोलकर आंखें, बोल नहीं पाया लेकिन।
करता गया वैद्य भी अश अश, सदगुरू लीला जानी किन।।

बोले सब बुलवा कर जाना, बैठा युगल दास कुछ देर।
बैठा किया बुलाया उसको, आश्रम को लौटा वह फेर।।
फैली यह पाँचों गाँओं में, रही न पोशीदा यह बात।
दौड़ी फिर विश्वास लहर इक, फैली सब में हाथों हाथ।।
दिवस तीसरे सदगुरू आये, आते ही बोले उससे।
मौत बुला ली तैने अपनी, मुक्त न होता तू उससे।।
तैंने बहुत बुरा कर डाला, सूरज भान बचाया क्यों।
जाना था उसको तों तेंने, बला लगा ली अपने को।।
दर्द हुवा छाती में फ़ौरन, टाले फिरता रहा उसे।
ठीक महीने छः तक उसने, बहुतेरे ही यत्न किये।।
लेकिन गया न छाती से वह, पूछो मत कमजोरी का।
पिंजर पिंजर हुवा बदन यह, नहीं दवा ने काम किया।।
मौत न थी ज़हमत तो निकली, मरने जैसा हाल हुवा।
सूरज भान हुवा था जैसा, वैसा मेरा हाल हुवा।।
मांगी कृपा श्री सदगुरू से, बड़ी देर में हुवे दयाल।
काफी दिन में ठीक हुवा वह, सुधरा युगलदास का हाल।।
सूरज भान लगा चलने जब, कहने लगी बहू उसकी।
सवा महीने तक आश्रम में, दीवा रोज जलाउँगी।।
आज्ञा दे दी घरवालों ने, किन्तु पड़ा था लोटा नून।
गली गांव के सब लोगों में, उठ्ठा फिर से वही जनून।।
वाद विवाद हुवे आपस में, हुवे धांगड़े सारे एक।
कौन रोकता है जायेंगे, जो रोकेगा लेंगे देख।।
दीप जलाकर इक थाली में, सभी औरतों को ले साथ।
ढोल बजाकर चली चढ़ाने, शक्कर का बांटा परशाद।।
टूट गई वह शरह बनी जो, शुरू हुवा आना जाना।
बारू सिंह को हुई असह ये, फिर पूरा ताना बाना।।
गांव नन्हेड़ा नाम तेज सिंह, सहारनपुर में रहता था।
काम पेशकारी था जिसका, वो भी पंचायत में था।।

उठा लिये अब दूसरे, बारू सिंह ने शास्त्र।
हड़काऐ की भाँति से, भगा फिरा सर्वत्र।।

गुदड़ राम चिराऊं के इक, महाराज के प्रेमी थे।
आते जाते रहते आश्रम, उन पर श्रद्धा रखते थे।।
सगी बहन थी गुद्दड़ की इक, कस्तूरी था उसका नाम।

जोड़ कूए पर ब्याही सुसरे, का था उसमें एक मकान।।
यह है ज़िक्र सहारनपुर का, है सुमेरचंद पति का नाम।
मोर गंज में है दूकान इक, आड़त का करते हैं काम।।
मोती, मोहन, कँवर सैन औ, चतर सैन हैं लड़के चार।
कुनबा बडा़ भरा पूरा है, है सदगुरू की कृपा अपार।।
कस्तूरी को महाराज जी, पाऐ गूदड़ के ज़रिये।
इसने अपने पीहर ही मैं, महाराज जी समझ लिये।।
इन्हें सहारनपुर में लाना, कस्तूरी ही का था काम।
कस्तूरी ने दिया निमंत्रण, इक दिन जा पहुँचे धनिधाम।।
भजन दास को संग लिये थे, आते सड़क सड़क दीखे।
करते ही दर्शन उनके, लड़के ने मेरे जा पूछे।।
निकट भाइ के ठहरेंगे हम, भजन दास ने बतलाया।
वह व्रतान्त आकरके उनका, घर बेटे ने समझाया।।
भोग वोग सा लेकर के कुछ, मोहन पहुंचा टिके जहां।
बुद्धिदास सिगरेंट फैक्ट्री में, नौकर थे उस वक्त वहां।।
भोजन के लिए दिया निमंत्रण, जोड़ कूऐ पर ले आया।
जितना साथ हमारा था वहां, हमने सबको बुलवाया।।
आती गईं दर्श पाती गईं, लाभ उठाया सब ही ने।
मिला साथ सत्संग सभी को, खेंचा इक आर्कषन ने।।
अंती रहती थी सन्मुख ही, कस्तूरी के द्वारे पर।
जो पीहर का घर है उसका, मटिया महल सास का घर।।
वहां मिले उसको भी दर्शन, वो अपने घर ले आयी।
मटिया महल पार खाले के, तुलसी राम से थी ब्याही।।
कस्तूरी, राज रानी, पूरना, तीनों ने गुरू पूजा की।
गुरू भाव से धारण कर लिये, और दक्षणाँ आदिक दी।।
अंती और द्रोपदी दोनों, शिष्या बनीं उधर उनकी।
प्रथम सहारनपुर में उनको, ये पांचों ही शिष्य बनी।।
पहल करी इन ही पांचों ने, जहां पांच वहां परम़ातम।
चालू हुवा यहां से कीर्तन, होता गया खड़ा यों धर्म।।
परमेश्वरी और अँगूरी, फूल बाइ औ सुंदर बाई।
दोबारा में बनी शिष्य ये, साथ क्षमाँ देवी भी आई।।
चालू हुवा जागरन इनसे, बड़े प्रेम से गोते खा।
करते थे ये शिष्य कीर्तन, सुनने साथ बहुत आता।।
बड़े कीर्तन के रिवाज थे, थी प्रचलित ये बड़ी प्रथा।
दिवस पंदरवे बारी बारी, घर घर कीर्तन होता था।।

इस प्रकार से सहारनपुर में, बढ़ी ख्याति सदगुरू की।
बढ़ने लगा साथ भी इनका, हुई साथ ही मशहूरी।।
क्षमाँ बाइ के कहने पर, इक रोज़ कीर्तन उसके घर।
करने पहुँचा युथ्थ हमारा, श्रोताओं पे पड़ा असर।।
था रानी बाज़ार मौहल्ला, सत्यवती सेठानी भी।
जा पहुँची कीर्तन में अपने, मिल कइ जिनकी चावल की।।
साथ अमीचंद भी मुनीम जी, हुवे उपस्थित उस दिन सब।
मगन बहुत थे कीर्तन में सब, रस बरसा उस दिन बेढब।।
बड़े प्रेम से सुना कीर्तन, उसको भी आनंद आया।
बड़ी मगन थीं सेठानी जी, किन्तु भजन ये जब गाया।।

"भजन"

हम श्री राज के दीवाने, कोइ क्या समझे कोइ क्या जाने।
फिरते हैं प्रेम में मस्ताने, कोइ क्या समझे कोइ क्या जाने।।

"दूसरा भजन"

मुक्ती तो वे ही पाऐंगे, परनाम जो करने वाले हैं।
निजधाम को वे ही जाऐंगे, जो धाम के रहने वाले हैं।।

सुन सेठानी विचली सी कुछ, बीज विवादों का उपजा।
जब नौ खण्डों बुली आरती, गुस्सा उसका उबल पड़ा।।

"नौ खण्डों आरती"

गीता की जहाँ गम नहीं, वह सदगुरू का देश।
ब्रह्माँ विष्णु तलक थक गए जहाँ, थक गए शेष महेश।।

बोल सुने जब इस प्रकार के, आया क्रोधा वेष।
हम को भी अब यही जानना, कौन जगह पर है यह देश।।
या तो सिद्ध करोगे इसको, वरना मज़ा चखा दूंगी।
खुदवा करके शेरपुर की, ईंट ईंट फिकवा दूंगी।।
बहुत प्रश्न कर बैठी इक संग, दे न पाए जिनका उत्तर।
क्यों के विषय ज्ञानियों का था, चढ़ बैठी मानो हम पर।।

हम प्रशाद भी नंहि लेते थे, जहाँ दूसरी हो प्रतिमाँ।
किया अस्वीकृत जब प्रशाद वह, झगड़े का आरम्भ हुवा।।
तुलसी राम पती अंती का, करता था चावल का क़ार।
थी दुकान वह सेठानी की, तुलसी राम किरायेदार।।
ले ओछे हथियार हाथ में, सेठानी के उठे क़दम।
उस दुकान की धोंस दिखाकर, चाहां के छा जांऐ हम।।
तुलसी राम दबाये धर के, रोको अपनी स्त्री को।
वरना बहुत उपद्रव होगा, सावधान करती तुमको।।
खूब सोच लो खूब समझलो, यह है इक मज़हब की बात।
बुरा बताती देवों को क्या, हिन्दू नहीं तुम्हारी ज़ात।।
बेहतर यही रोक लो इनको, वरना इसका ख़ामियाज़ा।
तुम्हें भुगताना होगा इकदम, सिर्फ़ हमें था बतलाना।।
इक इक ईंट शेर पुर की मैं, बजा बजा दिखला दूँगी।
कितने बड़े भक्त हैं ये सब, परख परख कर देखूंगी।।
अमर नाथ लड़का अंती का, सेठानी ने बुलवाया।
उससे बातें लगी पूछने, अपने पास बिठलवाया।।
लड़क बुद्ध थी श्री सदगुरू की, महिमाओं को क्या जाने।
सेवा किस प्रकार होती है, क्या महत्व है क्या जाने।।
अहम ब्रह्म ये उधर पधारे, क्या जानें सेवा का भाव।
नहीं कोइ अतिरिक्त हमारे, स्वाभाविक है वहां तनाव।।
अमर नाथ बतलाया करता, वहां लफ़ंगे आते हैं।
चरण दबाती रहती है माँ, वे बकवाद सुनाते हैं।।
नये नये नित नित आते हैं, है सराय अब घर अपना।
लाला जी भी थक गए कहकर, पर अम्मां ने नहीं सुना।।
छांगा मल के यहां एक दिन, सत्यवती सेठानी जी।
बग्गी लेकर पहुंचीं घर पर, अनायास ही नज़र पड़ी।।
बोली जाते ही सेठानी, हम आऐ हैं दर्शन को।
बड़ी कृपा हो सेवा का यदि, दर्श हमें भी करवादो।।
फूल बाइ ले गई वहां पर, जहाँ सेवा को पधराया।
इनकी सेवा करते हैं हम, सेठानी को दिखलाया।।
लगीं पूछने ग्रंथ कौन से, उसने वे भी दिखलाये।
निजा नंद चरितामृत आदिक, उसके कर में पकड़ाये।।
अलट पलट कर पन्ने उसके, रही देखती थोड़ी देर।
बोली ज़रा पढ़ेंगे घर पर, लेकर चली गई घर फेर।।
पढने ही को तो होते हैं, इसी लिये लिख्खे जाते।

महापुरूष अपनी वांणी को, गर्भित यों ही कर जाते।।
निजा नंद चरितामृत ले गइ, सेठानी अपने घर को।
ताके बीज युद्ध का पनपे, ऐसी बात ढूँडने को।।
उस दम तो दे गए हम उसको, किन्तु बाद में आया ध्यान।
हाथ काट लिए अपने हाथों, हुई मूर्खता बड़ी महान।।
अन्न और जल हमने अपना, तब तक के लिए छोड़ दिया।
जब तक ना ले ले पुस्तक को, उसका यों प्राशचित किया।।
दिवस तीसरे ले आए हम, सेठानी से अपना ग्रन्थ।
जब तक हाथ न आई पुस्तक, दुख्ख रहा हमको बेअंत।।

सेठानी ने युद्ध का बीज दिया आरोप।
लगी सींचने चाव से इस विखे को गोप।।

बाजू एक इकाई ने जब, एक इकाई आती है।
कहने इन्हें चाहियें दो, पर ये ग्यारह बन जाती हैं।।
विफल हुई बारू की कोशिष, अतः शेरपुर में जिसदम।
बदला और तरह अब लेंगे, किन्तु गिराकर छोड़ें हम।।
डाल डाल ये पात पात हम, चाहे नाक कटानी हो।
लेकिन शकुन बिगाड़ेंगे अब, चाहे अब जो कुछ भी हो।।
अतः नन्हेड़े तेज सिंह पै, बारू सिंह फ़ौरन पहुँचा।
इन्हें सहारनपुर अब रगड़ो, प्रौपैगण्डा शुरू किया।।
खाड़ा करो उस जगह उपद्रव, वहाँ कामयाबी होगी।
रहते खाले पार तेज सिंह, अतः वहां पर कोशिश की।।
मिला कंसरी कुछ गुण्डों से, करना शुरू किया बदनाम।
फैलाया इस तरह कि जिससे, तेज़ी से हो जावे काम।।
कोइ हैदराबाद राज्य के, तन्ख़्वादार बताते थे।
मुसलमान मत फैलाते है, ऐसा उन्हें जताते थे।।
कोइ बताता सिर्फ़ औरतों, के बहकाने का है काम।
धन मरोड़ सिद्धी है इन पै, ऐश उड़ाते शिष्य तमाम।।
ख़ैर अंश यह चला पनपने, पंख लगे जमने इसके।
छोटों से यह गया बड़ों में, होने लगे बड़े चर्चे।।
विष उस ही प्रौपैगण्डे का, था जो सेठों ने खाया।
रोके रूका न वह संर्घषण, शनः शनः बढ़ता आया।।

मैं प्रतापसिंह भी वहीं था झगड़े के वक्त।
परनामी की नीतियों का दुश्मन था सख़्त।।

मैं प्रतापसिंह लेखक बीतक, उसी मौहल्ले में उस वक्त।
था नौकर सिगरिट फ़ैक्ट्री मैं, हूँ सनातनिक ढंग का भक्त।।
श्रद्धा सब देवों में थी निज, सर्व अहारी थे ही हम।
परनामी मंदिर के बाजू, रहते चार बरस से हम।।
चचा श्री रंजीतसिंह जी, थे कोतवाल सहारनपुर।
गुण्डे रहे पुलिस की जोरू, नज़र सदा रहती उनपर।।
ज्ञान बहुत ऊँचा चाचा को, दुनियाँ के जितने भी पंथ।
वे उनकी किताब लाते थे, रखते घर में सारे ग्रंथ।।
था अभ्यास पठन पाठन का, चर्चा ऊँचे दर्जे की।
पिता समान हमारे थे वे, नज़र उन्हीं की हमपर थी।।
थे विख्यात धर्म स्तर पर, जन जन हमें जानता था।
उधर पुलिस की सर्विस के बल, छोटा बड़ा मानता था।।
सेठ और सेठानी आदिक, में जब फैली ये बातें।
इस प्रकार का धर्म चला है, जहाँ सिर पैर नहीं पाते।।
था मकान मेरा रहने का, परनामी मंदिर के पास।
कभी निकलते बड़ते कानों, में पड़ जातीं उनकी बात।।
ख़ुदा, मौहम्मद औ कुरान, ये शब्द कान में जब आते।
बिला वजह मेरे ज़मीर को, आके ये झंझोड़ जाते।।
हिन्दू हैं ये मुसल्मान हैं, पूछा बहुतों से जाके।
पर हिंन्दू बतलाया सबने, चकित हुवे उत्तर पाके।।
हिन्दू पै कुरान क्या मतलब, क्यों इसलामी हैं जज़्बात।
हिन्दू होते हुवे मुसलमाँ, क्यों बदले इनके हालात।।
है रहस्य बातन में कोई, खुलै राज़ मन ने चाहा।
मंदिर में कुछ बैठे मिल गए, अतः एक को बुलवाया।।
कौन धर्म क्या ग्रंथ आपका, कौन इष्ट है किसका जाप।
हिन्दू हो यदि तो कुरान क्यों, ख़ुदा ख़ुदा क्यों करते आप।।
क्या लगता इसलाम आपका, और मौहम्मद से क्या काम।
मुसल्मानियत फैला रहे हो, ख़ुफिया ख़ुफिया आप तमाम।।
हमें चाहिये उत्तर इन, तमाम बातों का जल्दी ही।
वरन रोकना एक दिन, क्या कह रहे हैं कुछ समझी।।
की ज़ाहिर मजबूरी उसने, कहेंगे सदगुरू जब आवें।
वे ही उत्तर दे सकते इन, बातों का हम क्या जानें।।

अच्छा तो बतलाना जिस दिन, कोइ आवे यहाँ उनमें से।
रहे पूछते अक्सर उनसे, कोइ आया क्या उनमें से।।
जियालाल इक व्यक्ति वहीं, नज़दीक गली में रहता था।
आया गया कौन मंदिर में, सूचनाऐं सब रखता था।।
नेता भी था वो गुण्डों का, इक दिन युगलदास पकड़ा।
कौन पंथ है कौन ग्रंथ है, लोगों ने उससे पूछा।।
हम तो घास घूस खोदू हैं, खुरपा सेवक आश्रम के।
ज्ञान ध्यान को हम क्या जाने, इनका क्या मतलब हमसे।।
बात धर्म की जिससे पूछी, वही व्यक्ति अनजान मिला।
मुसलमानियत हिन्दू में क्यों, जब नंहि इसक भेद खुला।।
आर्य सनातन लगे सोचने, था उन दिनों हैदराबाद।
छिड़ा हुआ हिन्दी आंदोलन, था हिन्दी पै वहाँ विवाद।।
चाह रहे थे वे उर्दू भाषा, हिन्दी भाषी हिन्दी को।
जथ्थे पै जथ्थे जा रहे थे, गिरफ़्तारियाँ देने को।।
लोगों ने अनुमान लगाये, हैं निज़ाम के ये नौकर।
मुसल्मानियत फेलाने को, गुप्त कार्य कर रहे इधर।।
हिन्दू धर्म एक हो गए सब, इन्हें निकालो बस्ती से।
राज़ी ख़ुशी न जाऐं तो फिर, इन्हें भगाओ सख़्ती से।।
जब रहना दूभर हुआ इनका, परिचय देना ही होगा।
ज्ञानी तो ज्ञानी अज्ञानी, भी इनके सिर हो जाता।।
मूल बना ये ही झगड़े का, शास्त्रार्थ की बिना बनी।
अतः एक दिन शास्त्रार्थ के, संघर्षण की आन ढनी।।
सन् उन्निससौ पेंतालिस में, श्रीमन रामरतन जी को।
पड़े बुलाने कृष्ण दत्त जी, झगड़े को निमटाने को।।
निर्णय स्थल चुना गया, पंचायती मंदिर खाला पार।
ठहरे उस ही में आकरके, श्री सदगुरू जी आख़िरकार।।
शास्त्रार्थ किसने करना था, इक प्रकार का हुल्लड़ था।
हो अपमान चाहे जैसे हो, बहुतों का यह मंशा था।।
ठहरे थे जिस जगह महा प्रभु, भोग आदि लेकर अंति।
जा पहुँची प्रातः कमरे में, थे संग कृष्ण दत्त जी भी।।
जिमा रही थी जब दोनों को, क्या हरकत की गुण्डों ने।
संकल देदी झट बाहर की, किये बंद तीनों उसमें।।
लग गए शोर मचाने फिर वे, देखो कमरे की लीला।
चूके नहीं प्रणामी याँ भी, दौड़ो देखो पकड़ लिया।।
कुछ गुण्डों ने इधर उधर से, कुछ गुण्डे ऐकत्र किये।

हल्ला बोल दिया मंदिर पर, मुख्य द्वार से हो करके।।
अपनी अपनी भोंक रहे सब, अपनी अपनी हाँक रहे।
द्वार तोड़ दो और पकड़ लो, जाने क्या क्या छोंक रहे।।
खोला गया द्वार युक्ति से, पर पाया कमरा ख़ाली।
तीनों में से एक न पाया, जगह सभी देखी भाली।।
लेकिन वहाँ कहाँ थे सदगुरू, जिसदम वहाँ उठा ऊधम।
झट निकाल लिए वे पीछे से, पहुचा दिया उन्हें आश्रम।।
द्वार एक पीछे भी था जो, कभी कभी जाता खोला।
जिसमें ताला पड़ा हुआ था, ताला तभी तोड़ डाला।।
हुल्लड़ फिरा खोजता उनको, वे जा पहुँचे आश्रम में।
विवश गये हुड़दंगी वापिस, महाराज नंहि मिले उन्हें।।
जो इच्छुक थे इन्हें समझलें, वास्तव में क्या है पास।
जान न पाये भेद धर्म के, रह गए सब के सभी निराश।।
भागे डर कर फैली अफ़वा, सत्य अगर होता पल्ले।
इस क्यों जाते भगकर, सुने शहर में ये हल्ले।।
फिर चिढ़ सी गइ जनता इनसे, अगर शहर में अब आवें।
गुण्डे सब सतर्क से कर दिए, वापिस ना जाने पावें।।
डेढ़ वर्ष तक महाराज फिर, सहारनपुर में नहीं घुसे।
संत महंतों पर परनामी, नाते से महाराज फिरे।।
धर्म विरोधी आँदोलन है, करो पहुँचकर उज्वल पक्ष।
संकट में है धर्म प्रणामी, करो उधर को अपना लक्ष।।
ध्वजा उखड़ने को पंजे की, ध्यान करो संतो लवलेष।
दे गए थे जो कभी धनी जी, घर घर देने को उपदेश।।
पूरा करो पहुँचकर वादा, घर घर जानी है वाँणी।
उत्तर भारत में चल देखो, किस गति में हैं ब्रह्माँणी।।
धर्म ध्वजा की लाज बचाओ, और साथ का देखो हाल।
शहर सहारनपुर चल देखो, है उनकी छाती दज्जाल।।
महाराज ने टेर लगाई, जगह जगह ख़ुद जाकरके।
जहाँ जहाँ परनामी गढ़ थे, वहाँ वहाँ सदगुरू पहुँचे।।

कूक लगाई देश में जगो प्रणामी साथ।
अरे सहारनपुर चलो बिगड़ रही है बात।।

गये बनारस महाराज जी, और बिशनपुर तत्पश्चात्।
भावल नगर श्री गोस्वामी, महंत सदानंद जी के पास।।

उनसे करी प्रार्थना जाकर, धर्म आज संकट में है।
आप ध्वजा हैं आज धर्म की, कर्म आपका रक्षा है।।
अतः निवेदन है चरणों में, हुक्म करो हमको चलकर।
सेवक हैं हाज़िर ख़िदमत में, सेवा जो सोंपो हमपर।।
स्वीकृति दी चलने की अपनी, कहा कानपुर भी पहुँचो।
कृष्ण दत्त आचार्य वहाँ हैं, सूचित उनको भी करदो।।
श्री आनंद दास मटियारी, वालों के भी पास गये।
वहाँ जंगली स्टेशन था, रातों उसमें पड़े रहे।।
मटियारी था दूर रात का, मौका था ठहरे उस ठौर।
जहाँ न पानी तक पीने को, और न मानव मिलता और।।
गये कानपुर इसके पीछे, मिले न किन्तु शास्त्री जी।
उनकी श्रीमति धर्म पत्नि को, ख़र्च और चिट्ठी दे दी।।
चले सहारनपुर को वापिस, उन्हें निमंत्रण दे करके।

श्री सदगुरू को शेरे पुर आश्रम ही पर छोड़।
युगलदास भेजा गया, जा पहुँचा लाहौर।।

भगत हर किशन लाल वहाँ थे, पढ़ते थे क़ानून जहाँ।
मुँह पर रेख तलक नंहि थी तब, लड़के ही थे गया वहाँ।।
संदेशा दिया महाराज का, तुम्हें याद फ़रमाया है।
कार्य अत्यधिक आवश्यक है, जिसमें तुम्हें बुलाया है।।
रह गए सन्न प्रथम सुनते ही, जब समझाई खुलकर बात।
है प्रणामियों के संग झगड़ा, सहारनपुर बिगड़े हालात।।
सम्प्रदाय ऐकत्रित करना, है संर्घष धर्म संबंध।
इसी वास्ते महाराज ने, याद किये सब अपने बंधु।।
किंतु आपको ख़ास निमंत्रण, देकर, मुझको भेजा है।
अपनी आप देखलें आगे, के संबंध ये कैसा है।।
सुना गिना सोचा समझा सब, स्वीकृति दी फिर आने की।
तत्पश्चात् आज्ञा चाही, मैंने आगे जाने की।।
मथुरा दास मिंटगुमरी के, और चौधरी सुंदर दास।
जहाँ जहाँ रहते थे दोनों, पहुँचा वहीं मैं उनके पास।।
थे कमालिया के बाशिंदे, श्री चौधरी सुंदर दास।
इन्हें साथ ही लेकर आया, साथ साथ श्री मथुरादास।।
इन्तज़ाम सोंपा दोंनों को, जो भी हुआ सहारनपुर।
वही काम मिलता है उसको, जैसा जो होता अँकुर।।

बड़े मुन्तज़िम बड़े असर के, बड़ी बुद्धि के मालिक थे।
अतः यहाँ के शास्त्रार्थ के, सारे काम उन्हें सोंपे।।
जुबली बाग़ जगह निश्चित की, उसके लिये इजाज़त ली।
उससे उत्तम जगह शहर में, और नहीं कोई भी थी।।
श्री लाल बाबू पै पहुंचा, बिशन पुरे में रहते थे।
पाक पटन के कृष्णा देव जी, कृष्णा दत्त जी कानपुर के।।
माई कनहैया हरिद्वार के, मुरली दास जी मलकाहास।
कुछ श्री पन्ना जी से आये, हुवे उपस्थित कुछ गुजरात।।
हुवा सहारनपुर ऐकत्रित आ, आकर सब अपना साथ।
उठी संसनी एक शहर में, जब बढ़ती देखी यह बात।।
दल के दल विपक्षि गण के उठ, लगे घूंमने चारों ओर।
हर इक के मुंह पर कानों में, शब्द यही इक यह ही शोर।।
इन्हें निकालो इन्हें भगाओं, मारो फिरें शहर में गर।
इन्हें खाद्य सामिग्री जो दे, उसको भी मारो जाकर।।
जंगल टट्टी दिया न जाने, चारों ओर लगे गुण्डे।
वारदात भी हुई कई से, उठने को ही थे डण्डे।।
दफ़ा चवालिस लगी शहर में, हुवा एक दम से ऐलान।
शरेआम पर अधिक पांच से, घूंमे नहीं कोइ इन्सान।।
ना सोटा डण्डा आदिक ही, किसी तरह का ले हथियार।
वार्जित है लेकर के फिरना, जो घूमे पकड़े सरकार।।
जब इस ढंग की हुई समस्या, हुवा शहर में ऐका सा।
रसद आदि सब रूके अगर, लेने जाते होता झगडा।।
तार दिये इन्दौर बौम्बे, जहां सेठ गोर्वधन दास।
मांगी लाल सेठ इन्दौरी, सेवक दोंनों खासुल खास।।
प्राँण नाथ जी के आगे से, लंगर भार इन्हीं का है।
भण्डारी का लक़ब मिला था, इन की अदभुत सेवा है।।
चले आओ इक साथ प्रणामी, लाज अगर बचवानी है।
संर्घषण है बड़ा भयँकर, जान जान की बाज़ी है।।
एक सूत्र सब हुवे प्रवाही, उपद्रवों की आशंका।
तार प्राप्त करते ही कृप्या, लाज़िम है चल ही पड़ना।।
अड़तालिस घंटे के अंदर, दोंनों सेठ इधर पहुँचे।
पुतली धर्म शाला में सारे, बड़े बड़े जो थे ठहरे।।
राम किशन कोयले वालों का, घेर है नाले के ऊपर।
उसमें छोटा साथ टिकाया, वहीं बना सब का लंगर।।
टैली ग्राम गर्वनर यू.पी., को दिया आते ही दिल्ली।

सेठों ने कीं बात फ़ोन पै, है नौबत यहाँ झगड़े की।।
सम्प्रदाय अधिवेशन अपना, करना चाह रहे हैं हम।
यह है बात धर्म सम्बंधी, गुण्डे कर रहे उसको भंग।।
राशन तलक न लेने देते, हम हैं परदेसी सारे।
उत्तेजित कर रहे शहर को, लगा 2 गुण्डे नारे।।
ध्यान इधर को करो एकदम, कहीं न हो जावे बलवा।
अपना फ़र्ज़ बता देना था, जाने फ़र्ज़ आप अपना।।
था अंग्रेज़ गवर्नर उसने, दिया कमिश्नर को आदेश।
गया सहारनपुर मेरठ से, सब अफ़सर कर दिये सचेत।।
बाहर से राशन मंगवाया, जो ट्रक द्वारा आता था।
सबज़ी तक बाहर से आती, कोइ बज़ार नंहि जाता था।।
खुला शहर में राशन अपना, कहा कलक्टर ने आकर।
जो भी चीज़ चाहिये तुमको, सब बज़ार से लो जाकर।।
अगर न देवे कोई बनिया, ताक़त से उठवा लाओ।
हम भुगतान करेंगे उसका, आप लोग मत घबराओ।।
झट प्रबंध हो गया पुलिस का, जल्से की हुइ तय्यारी।
लगा वहाँ पिंडाल प्रणामी, किन्तु न आये नर नारी।।
परनामी ही केवल उसमें, एक प्रवाही नंहि आया।
अगले दिन फिर एक निमंत्रण, बड़े बड़ों पै भिजवाया।।
आओ जानलो हमें कौन हम, जो जीमें आवे पूछो।
जो आरोप हमें दे रक्खे, उन सब का निर्णय करलो।।
खुले नाम नींचे सेठों के, बड़े बड़ों पै पहुँचा पत्र।
ज्ञात हुआ व्यक्तित्व सभी का, गया निमंत्रण जब सर्वत्र।।
राधाकिशन मामचंद हैं इक, सहारनपुर में मिल वाले।
सेठ मारवाड़ी हैं वे भी, जब परचे देखे भाले।।
माँगी लाल सेठ इंदौरी, लगते थे कुछ संबंधी।
परचा पढ़कर मिलने पहुँचे, रोक लिऐ गए बाहर ही।।
स्वयं सेवकों का पहरा था, अंदर कोइ न जा सकत।
पहरे के इक अधिकारी ने, बाहर का संदेश दिया।।
आए सेठ जी मिलने द्वारे, ले गए साथ लिवा उनको।
बात हुईं जिसदम आपस में, क्या लहजा था मत पूछो।।
इन प्रणामियों में तुम कैसे, राधा किशन पूछ बैठे।
तुम इनके चक्कर में क्यों हो, हमको बड़ा ताज्जुब है।।
सेठ गोर्धनदास जी बोले, क्या तुम भी हो कोई सेठ।
गुण्डापन दिखलाकर तुमने, सेठाई तो दीनी मेट।।

हमें ताज्जुब ख़ुद है तुम पै, हामी हो तुम गुण्डों के।
जहाँ अधर्म क्या रिश्तेदारी, नंहि संबंधी तुम अपने।।
हम परनामी सात पुश्त के, बालेश्वर मंदिर बम्बई।
पुरखों ने बनवाया अपने, तुम लोगों क्या समझी।।
समझ रहे परनामी को क्या, इसी वास्ते आये हैं।
निर्णय करके जायेंगे अब, जो आरोप लगाये हैं।।
किन्तु खेद है हमें आपपै, आप मारवाड़ी कैसे।
गुण्डा गर्दी करवाते हो, फिर कहते हम ऐसे।।
रिश्तेदार बताते तुमको, हम को लज्जा आती है।
धर्म प्रथम संबंध बाद में, धर्म नीति बतलाती है।।
आप समझलें पहले हमको, फिर होंगी रिश्तेदारी।
खेल छेड़ दिया और आपने, कौन सगा किससे यारी।।
राधाकिशन सहारनपुर उन्हें, घर ले जाने को आये।
रिश्तेदारी के नाते तो, हो गए सारे भर पाऐ।।
दम न मार पाऐ मामन चंद, उठ उठ के घर को भागे।

लीला है श्री राज की औ बातों की बात।
ज्यों पलास संग पान के पहुँचे राजा हाथ।।

फिर स्टेज लगी रात्री में, प्रथम हरकिशन जी बोले।
मिली जुली हिन्दी अंग्रेज़ी, में रहस्य अपने खोले।।
हालाँ के लड़के ही तो थे, बोल मगर थे नपे तुले।
फिर बोले श्री कृष्ण दत्त जी, धर्म धुरंधर कानपुर के।।
सम्प्रदाय कोई भी हो हम, शास्त्रार्थ को हैं तय्यार।
हम हो लेंगे साथ उन्हीं के, जिनसे भी मानें हम हार।।
फिर अपनी कुछ जानकारियाँ, और दिया अपना परिचय।
सम्प्रदाय का ज्ञान कराया, दो घंटे का लिया समय।।
श्रोता अगले दिन भी कम थे, दूर बैठे सुनते होंगे।
लेकिन वहाँ न बैठे आकर, वहाँ बड़े कुछ सज्जन थे।।
पर जिस दम चेलेंज हुआ यह, रातों रात भाग गए व्यक्ति।
लेने शास्त्रीयों को अपने, दिखलाने को अपनी शक्ति।।
आर्य समाजी रामचंद्र इक, दिल्ली का रहने वाला।
हरिद्वार का रामानंद इक, सिर्फ़ कथा वाचक ही था।।
किया उन्हें बुक पैसे देकर, वे थे घोड़े भाड़े के।
जो पैसे दे वही हाँक ले, अपने पैर नहीं चलते।।

शास्त्रार्थ को जानें क्या वे, ऋषीकेष गइ सत्यवती।
हैं परास्त करने परनामी, ख़र्चा हो चाहे जितना भी।।
एक महात्माँ ने बतलाया, ऋषीकेष हैं मुरलीदास।
शास्त्रार्थ के योग्य वही हैं, तुम पहुँचो बस उनके पास।।
वे परास्त कर सकते इनको, अतः वहाँ वह ख़ुद पहुँची।
मुरली दास मिले आश्रम में, बोली उनसे सत्यवती।।
ख्याति आपकी सुनकर के मैं, लेने तुम्हें यहाँ आई।
जो माँगो वही मैं दूँगी, मैंने एक क़सम खाई।।
उसे पूर्ण करना हर हालत, हाथ आपके है यह बात।
देवी बोलो क्या इच्छा है, बोले उनसे मुरलीदास।।
सत्यवती सेठानी बोली, परनामी हरवाने हैं।
शास्त्रार्थ में आप हरादो, ये परास्त करवाने हैं।।
काम अगर इतना करदो तो, जो तुम कहो वही करदूँ।
मंदिर, आश्रम, क्षेत्र, धर्म, शाला जो चाहो बनवादूँ।।
बोले सुन महंत जी उससे, यह कुछ बड़ा नहीं है काम।
उनको हम परास्त कर देंगे, ख़र्च न होगा एक छदाम।।
हारे यदि हमसे परनामी, हम नंहि कुछ तुमसे चाहें।
पड़े हमारे मत में आना, आप शर्त यह स्वीकारें।।
झट स्वीकारा सेठानी ने, मुझे महात्माँ जी मंजूर।
बोले मुरली दास पुनः यों, हमें हराना कुछ नंहि दूर।।
अन्य कोइ पृथ्वी पर उनको, नहीं हरा सकता सुनले।
ख़ूब समझता हूँ मैं उनको, इस दुनियाँ के नंहि बसके।।
हैं अनन्य ये भक्त कृष्ण के, उनकी कौन करे समता।
सर दे दें पर धर्म न छोड़ें, उनकी यहाँ नहीं तुलना।।
तू भी कुछ जो धर्म छोड़ती, कारण सिर्फ़ ईर्षा का।
धर्म धर्म चिल्लाती फिरती, तेरा भी कुछ धर्म बता।।
हार जीत पर धर्म बदलती, थाली के बेंगन जैसी।
तिसपर धर्म सनातन कहती, यह ही है तेरी नीती।।
जा देवी परनामी हूँ मैं, क्या दिखलाती मुझको दाम।
क्या हरवाती फिरती उनको, आजावे चाहे विश्व तमाम।।
तीनों लोकों के बसकी नंहि, उन्हें छेड़ना मत भगजा।
बिना पूंच ही रह कर जीले, क्या लेगी अपने घर जा।।
कभी गले उल्टी नमाज़ हो, भूले बख़शिष रोज़ों की।
नाम नाम के आप सनातन, शुद्ध सनातन परनामी।।
मक्खन के भ्रम में कपास को, कहीं निंगल भी मत जाना।

आखें कभी निकल आवें ये, ख़ैर न इनसे भिड़ जाना।।
हो हताश लौटी सेठानी, सुन परनामी की गाथा।
किन्तु जलन थी अंदर बेढब, लौटी वापिस करती क्या।।

पकड़ी गई छछूँदर मुँह में, निगलें तो हों कोढ़ी।
एक ओर ना मर्द कहेंगे, गर उगली औ छोड़ी।।

रामचंद्र दिल्ली वाले जो, थे कुरान ही के ज्ञाता।
शास्त्र सनातन में कोरे थे, शास्त्रार्थ नंहि बसकी था।।
पहलवान पैसे के केवल, भाड़े पै लड़ते शास्त्रार्थ।
आर्य समाजी ही बस उनसे, साध रहे थे अपना स्वार्थ।।
हार चुके थे कृष्ण दत्त से, राम चंद्र जी दिल्ली के।
शास्त्रार्थ था कभी कानपुर, मुँह दुबका कर भागे थे।।
गये सहारनपुर से जो भी, रामचंद्र जी को लेने।
किससे शास्त्रार्थ होना है, बतलाया यह नहीं उन्हें।।
नाम लिया नंहि कृष्णदत्त का, वरना कभी नहीं आते।
आए सहारनपुर स्टेशन, राम चंद्र दिल्ली से।।
सुना नाम जब कृष्णदत्त का, छिपकर वापिस भाग गये।
लौट गये स्टेशन ही से, शहर तलक भी नंहि आये।।
विवश विपक्षी क्या करते फिर, मिला न कोई महारथी।
शास्त्रार्थ बिन हार दीख गइ, फिर बस झगड़े की सूझी।।
भीष्मार्जुन संग्राम हुआ ज्यों, लाके बीच शिखण्डी को।
खड़ा किया लाकर इक बक्की, बक बक ही थी प्रिय जिसको।।
मरो युवा, बालक या बुड्ढा, उसे सिर्फ़ हत्या से काम।
फ़ीस चाहिये कुछ बकवालो, दामों के हर वक्त गुलाम।।
जुबली बाग़ तीन दिन को बुक, बीत गई वो अवधी तो।
ख़त्म हुआ पिंडाल वहाँ से, किन्तु न पहुचे निर्णय को।।
बिन मुक़ाबले चले जाँए क्यों, हार एक दम है फिरतो।
गया संदेशा है मुक़ाबला, चुना धर्मशाला ही को।।
बात हुई दोनों पक्षों में, वहीं सहन में तख़्त बिछे।
शास्त्रार्थ के लिये एक बस, रामानंद शास्त्री थे।।
रामानंद शास्त्री के कुछ, आर्य समाजी भी थे साथ।
शास्त्रार्थ किस तरह शुरू हो, शुरू हुई पहले यह बात।।
मौखिक हो या लिखित सोचलो, मौखिक ही आरम्भ हुआ।
पर बेढंगी देखे व्याख्या, इकदम सबको ज्ञात हुआ।।

ये नंहि आये शास्त्रार्थ को, इनमें एक न जिज्ञासू।
इनकी नज़रें और और हैं, इनसे मथ्था मारें क्यूँ।।
घूंम रहे हैं ये लड़ने को, हो झगड़ा जैसे भी हो।
महात्माओं ने किया इशारा, शास्त्रार्थ ये बंद करो।।
बाहर से झट ईंट आइ इक, कोई सिपाही न था वहाँ।
अतः मजाहिद पुर आदिक के, लड़कों ने कंट्रोल किया।।
मानो मिली पुलिस भी इनसे, ऐसा जँचता था कुछ हाल।
ठाकुर श्री रंजीत सिंह जी, थे उस समय शहर कोतवाल।।
सगे चचा लेखक बीतक के, निस्संह यही थी बात।
ढील पुलिस ने भी दे दी थी, यों ही हुआ अधिक उत्पात्।।
कूद पड़े ले लाठी सेवक, द्वारा घेर लिया जाकर।
गुण्डे भगे लगीं जब उनमें, किये धिकाकर सब बाहर।।
विरमाजीत त्रिलोकी श्यामू, रतन और भानी सुल्तान।
कुछ थे लड़के राड़धने के, जा झोकी इन सबने जान।।
सिवा उपद्रव के कुछ नंहि था, तित्तर बित्तर हो गए सब।
कौन शास्त्री, को जिज्ञासू, सर क्यों मारें बे मतलब।।

। झगड़ा समाप्त ।

शास्त्रार्थ शेरपुर

बस हो चुकी नमाज़ मुसल्ला उठाइये।
कोई नहीं कबूल किया घर को जाइये।।

वापिस लौट गये घर अपने, जहाँ जहाँ से जो आये।
हाय हाय के सिवा न हासिल, दोनों पख कुछ कर पाये।।
मतलब हुआ न हल बारू का, व्यक्ति शेरपुर का जो था।
शास्त्रार्थ में हरा न पाये, कोशिष सारी गई ब्रथा।।
सोचा तेज सिंह बारू ने, शास्त्रार्थ होना चाहिये।
बावजूद इतनी कोशिष के, परनामी ये यहीं रहे।।
ढोंग न ढह पाया यह इनका, कली न इनकी उतर सकी।
शास्त्रार्थ हो जाता यदि तो, लीला सारी खुल जाती।।
तेज सिंह औ बारू सिंह ने, फिर बीड़ा चाबा इसका।
फिरे महीनों भागे दोनों, ध्यान घुंमाया लोगों का।।
किये ऐकत्रित आर्य समाजी, हमें चुनौती दे डाली।
निश्चित दिन करवाके हमसे, जनता काफ़ी बुलवाली।।
हमने भी श्री कृष्ण दत्त को, और एक दो पन्ना से।
बुलवा भेजा शास्त्रार्थ को, अतः समय पर आ पहुँचे।।
मंच बने दो बल्ली गड़ गईं, दोनों के लिए बिछ गए तख़्त।
उमड़ पड़ा कुल गाँव बाग़ में, हम पै नज़र हरिक की सख़्त।।
अब भगाए देतें हैं जाकर, अब छीना जाकर स्थान।
ठहर नहीं सकते हैं आगे, इनपै क्या रक्खा सामान।।
नियम बने आते ही पहले, कृष्ण दत्त बोले उनसे।
मौखिक बात नहीं होने की, शास्त्रार्थ हो लिखकरके।।
ताके अदल बदल ना हो कुछ, ये जनता भी पढ़ लेवे।
लिखित रहेगी ज्यों की त्यों ही, हर इक उसको समझ सके।।
जिभ्या लौटा करती पल पल, कुछ कहकर कुछ कह उठती।
इससे लिखित करेंगे भइया, प्रश्न सो चलो आप सभी।।
उत्तर देना पाँच मिनट में, पाँच प्रश्न होंगे सब के।
पाँच आपके पाँच हमारे, लिखकर दूजे को दे दे।।
अतः व्यक्त कर करके परचा, इक ने इक को पकड़ाया।
तीन मिनिट में कृष्ण दत्त ने, उत्तर उनको पहुँचाया।।

आर्य समाजी दल पै जिसदम, जा पहुँचा अपना परचा।
सिर जुड़ गये सभी के उसपै, काफ़ी देर रही चर्चा।।
रही सिर्फ़ घैं पै ही घैं पै, उथल पुथल रही बातों की।
वह प्रश्नों का परचा अपना, घूँमा हाथों हाथों ही।।
पाँच मिनिट के बाद उन्हीं से, कहने की नौबत आई।
कृष्ण दत्त बोले जनता से, देख रहे हो तुम भाई।।
हम कबका दे निमटे उत्तर, उनका उत्तर नंहि आया।
तुम सारे मुंसिफ़ हो अपने, पाँच मिनिट था तै पाया।।
अब दस मिनिट बीतने को हैं, अगर नहीं बसकी उत्तर।
तो माँफ़ी माँगें हमसे इस, जनता के आगे उठकर।।
इतने में इक व्यक्ति हाथ से, उनके वह परचा लाया।
कोरा का कोरा था सारा, क़लम न उसको छू पाया।।
ऊँचे स्वर से कृष्ण दत्त ने, जनता को संबोधन कर।
कहा देखलो कोरा है ये, इसपै नहीं एक अक्षर।।
अपने प्रश्नों के उत्तर इन, बेचारों के पास नहीं।
ख़ूब देखलो कोरा कागज़, ताकि जानलो सही सही।।
एक मण्डली हार चुकी है, और कोइ हो आ जावे।
हम से जो शंका हो जिसको, छिपो न सन्मुख आ जावे।।
होगा अब भुगतान सभी का, है चेलैंज चाहे जो हो।
आज निमट लो भाई हमसे, कभी बाद में चर्चा हो।।
हमें किसी ने पूछा नंहि था, आज पूछ लो, अभी यहीं।
ठोक बजाकर आज परखलो, खोटी है या जिन्स सही।।
आर्य धुरंधर चले मंच से, उठकर जब अपने घर को।
जो श्रोतागंण बैठे थे वहाँ, लिपट गये जाकर उनको।।
दाढ़ की उखाड़ली दाढ़ी, उसी रात को उठ भागा।
बारू का भी बुरा हाल हुआ, रोग भयंकर इक लागा।।
बुरी तरह से भोग भोगकर, तड़प तड़प प्रणाँत हुआ।
उट्ठा था जो एक बवंडर, इस प्रकार वह शान्त हुआ।।
हुई सत्य की आख़िर को जय, ख़त्म हुवे यों दुर्जन लोग।
फल ले ले अपनी करनी का, भोग भोगकर अपना भोग।।
फहरी ध्वजा फेर पंजे की, सर सबके पंजा छाया।
नया दौर फिर नई रील इक, नया तमाशा दिखलाया।।

झगड़ा नहीं बल्के कारण, कहो हो विख्यात।
जान गया सदगुरू को भारत, हैं ज़रूर कुछ आप।।

चर्चा चला साथ में अब यह, अब तो मंदिर बनवादो।
हो प्रभाव शाली निज मंदिर, थी यह इच्छा सब ही की।।
किन्तु जगह कम थी मंदिर की, फैली जने जने में बात।
कारण बने कार्य होने के, कारण ने फैलाया हाथ।।
मूला और चुहड़ दो भाई, उबला भक्ति भाव का सोत।
शुभ कारज में बने अग्रणी, जगी दान की उनमें जोत।।
भूमि समर्पित की मंदिर को, श्री राज के चरणों में।
शिरोमंणी माने जाते हैं, ऐसे मानव भक्तों में।।
ऐसों के प्रताप से धार्मिक, संस्थाऐं चल जाती हैं।
मर कर नाम अमर कर जाते, गाथा गाई जाती हैं।।
कूऐ से बम्बे तक की सब, धरती आश्रम को देदी।
क़ानूनी उपचार कराकर, दाख़िल ख़ारिज करवादी।।

मूर्खता

मूर्ख बने मूरख मंडल में किसकी कहें ख़ता।
वह भी यहां *और ही आये* बनके कुछ नंहि जिसे पता।।

होता रहता था कुछ कुछ, निर्माण कार्य नित आश्रम में।
कभी कहीं तो कभी कहीं, बनता ही रहता आश्रम में।।
कड़ी कहीं से आ जातीं तो, ईंट कहीं से आजातीं।
आश्रम की इस तरह भूमि पर, गई इमारत बढ़ती ही।।
बाग़ कटा था एक व्यक्ति का, भेजीं कुछ कड़ियाँ उसने।
जो जी में छपवालो इनसे, देकर बोला आश्रम में।।
चला गया वो कड़ी डालकर, बोला इक दिन सुंदर साथ।
महाराज यदि बुरा न मानो, हमें पूछनी है इक बात।।
बोले हम ज़रूर पूछो भई, मैंने सुनकर उन्हें कहा।
जो मन में हो भाई बताओ, क्या मंशा तुम लोगों की।।
आये थे कितने ही मिलकर, लोग जड़ौदे आदिक के।
इक मत होकर आये थे सब, आकर के हमसे बोले।।
जब भी कभी बना याँ पर कुछ, कभी न पूछा हम सब को।
अपनी मरज़ी से चिनवाते, अपनी आप चलाते हो।।
आश्रम तो हम सब ही का है, है अफ़सोस हमें यह ही।
हमीं नहीं पूछे जाते हैं, हमें शिकायत है इतनी।।

तुम क्यों बुरा मानते भइया, अब कै तुम अपनी करलो।
कोठा बनना है मंदिर का, चिनकर सेवा पधरालो।।
जगह जहाँ तुम उत्तम समझो, वह भी तुम सब के ऊपर।
अब कै दख़ल नहीं देंगे हम, सोंपी आज सभी तुमपर।।
पाँचों गाँवों के थे उनमें, इक इक दो दो सब में से।
एकत्रित हो गये एक जगह, कुछ चिनने की इच्छा से।।
आ बैठे सारे आश्रम में, बनी शकल पंचायत की।
चिनना है इक कोठा भइया, आते ही यह बात उठी।।
यह प्रस्ताव धरा जब आगे, सारे सोच साच उट्ठे।
जगह देखलो पहले उसकी, सारे ही इक साथ उठे।।
एक बड़ा बोला उनमें से, एक जगह को दिखलाकर।
यहा बनाओ तो अच्छा है, काट एक ने की बढ़कर।।
यहाँ नहीं इस जगह ठीक है, बोला अन्य जगह दिखला।
तीजा बोला इधर बनाओ, उधर ठीक नंहि रहने का।।
चौथा बोला ग़लत बात है, तुम को कुछ भी ज्ञात नहीं।
उत्तम जगह बताता हूँ मैं, उससे अच्छी एक नहीं।।
पिल गए फिर अपनी अपनी पै, अपनी जगह बताते ठीक।
ऊँची बात रहे बस मेरी, मानी नहीं और की सीख।।
धैंपै धैंपै रही सभी की, मानो हो कोई झगड़ा।
पैरों चली न बात किसी की, इक ऐसा अपवाद छिड़ा।।
इक बोला झगड़ो मत भाई, मानो तो इक बात कहूँ।
एक युक्ति है निबटारे की, कहो झगड़ा निमटा दूँ।।
सब बोले निमटादे भइया, कमसे कम निमटे तो बात।
फिर चिनने का काम चलावें, ऐकत्रित है सारा साथ।।
बोले फिर सरपंच महोदय, बीच मान लो धरती का।
मत चलने दो बात किसी की, यों निमटेगा यह झगड़ा।।
हाँ हाँ निकली सब के मुँह से, भइया ऐसा ही करलो।
स्वीकृति मिलते ही सब ही की, बोले चलो नींव खोदो।।
ले ले सभी फावले इकदम, जुटे खोदने को बुनियाद।
भींत गोंद की बनवानी, अतः बीच में बना लगार।।
बड़े चाव से चिपटे सारे, अंधा धुँद उठी दीवार।
अगले दिन हुइ ख़त्म चिनाई, कड़ियावल पहुँचा आसार।।
थे प्रसन्न सब बड़े मगन थे, मंदिर श्री राज जी का।
चिना जा रहा अपने हाथों, जिसमें दख़ल न सदगुरू का।।
हम भी गये न उठकर उन तक, जो मरज़ी हो आप करो।

हम बिलकुल भी दख़ल न देंगे, करो आप जो मरज़ी हो।।
जा पहुँची जब कड़ियाँ उठकर, अभी पाटदो की चर्चा।
मैं अपने आसन से उठकर, जहाँ चिनाई थी पहुँचा।।
अभी कई ऊपर बैठे थे, क्यों कि पकड़नी थीं कड़ियाँ।
मस्त सभी अप अपनी धुन में, देखे कौन भला कमियाँ।।
दूजे शुद्ध भाव सब ही के, वहाँ न कमियाँ आ सकती।
चारों ओर घूमकर मैंने, उनसे एक बात पूछी।।
अच्छा किया आपने अपनी, ग़लती जो थी आ पकड़ी।
हम चलाए जा रहे थे अपनी, बड़ी भयंकर थी ग़लती।।
हमें सिर्फ़ उससे मिलवादो, जो इस टोले का सरदार।
पास हमारे वही आए बस, हमें सिर्फ़ उसकी दरकार।।
जाना चाह रहे हम अंदर, भवन बनाया जो तुमने।
बाहर से देख लिया अब, अंदर जाना है हमने।।
केवल द्वार बतादे इसका, अपने हाथ नहीं आया।
हमें ज़रा कुछ दिखता है कम, द्वारा इसका नंहि पाया।।
या ऊपर रक्खोगे द्वारा, आने जाने को भीतर।
है भी उचित बृह्मसृष्टि हो, द्वार चाहिये भी ऊपर।।
निकल निकल ऊपर से ऊपर, चले जाँएगे सब ऊपर।
जीव सृष्टि के नींचे होते, भली बात सोची मिलकर।।
लगा देखने इक का इक मुँह, बात चली जब द्वारे की।
चौतरफ़ा सब लगे झाँकने, मानो खोज रहे वे भी।।
हाँ भइ द्वार कहाँ है इसका, इक ने इक से जा पूछी।
मैं क्या जानूँ उत्तर मिलता, जिसने भी जिससे पूछी।।
बाज़ बाज़ तो यों कह उठता, क्यों जी क्या तुम याँ नंहि थे।
फिर क्यों हमसे पूछ रहे हो, ज़िम्मेदार सभी तो थे।।
चलो द्वार फोड़ो अब इसमें, चले फावला ले ले के।
कड़ी कहाँ रक्खोगे इसपै, पूछी यह हमने फिरसे।।
बोला इक, ऊपर रक्खेंगे, एक टेक कर दिखलाओ।
मैंने कहा एक से, इसको, ज़रा कड़ी इक पकड़ाओ।।
जिसदम धरी कड़ी इक ऊपर, कोठा बड़ा कड़ी छोटी।
झट धड़ाम से उनके हाथों, में से नींचे आन पड़ी।।
डूब मरो बोले आपस में, पहलें कड़ी नाँपनी थी।
उसके बाद कहीं बुनियादें, खुदने की नौबत आती।।
सब की पींठ हमारी जानिब, हम बोले नम्बरदारो।
यह क्या खड़ा किया है चिनकर, कुछ तो हमको समझादो।।

जमीं बोलती थी पर वे नंहि, सूँग गया ज्यों सब को साँप।
ज़िम्मेदार कौन है तुम में, उत्तर क्यों नंहि देते आप।।
हमें आपका ज्ञान नहीं था, इस प्रकार से करवाया।
बल पराक्रम निज बुद्धी का, बड़ी कृपा की दिखलाया।।
भले मानसो रहने दो बस, लाँडे ही रहके खालो।
क्या समझेगा कोइ देखकर, भला चाहो इसको ढादो।।
यों सलाह नंहि लेते थे हम, देख लिये करतब अपने।
नाप तोल ली बुद्धी हमसे, तुमसे हम इकले अच्छे।।
छिपा छिपा मुंह निज चादर से, भवन शेख चिल्ली वाला।
ढाढू करके भाग गये सब, मुड़ कर नंहि देखा भाला।।
आए नहीं अठवाड़ों आश्रम, आये तो नंहि आंख मिली।
माँगा नहीं बड़प्पन फिर से, बंद हुई सब की बोली।।

हाँसी का ही खेल है, हंसा न यदि कुछ साथ।
फिर लीला ये क्या रही, क्या लीला की बात।।

जब से मूला और चुहड़ ने, धरती दी आश्रम को दान।
लोगों ने भी शुरू कर दिया, झुकने लगा हरिक इन्सान।।
जल्दी से जल्दी औ अच्छा, ऐसा भाव सभी में था।
नास्तिकों की बात नहीं यह, किस्सा है यह भक्तों का।।
शनः शनः सहयोग मिले सब, सबने उसमें दान दिया।
बड़े चाव से बड़े भाव से, सम्वत् दो हज़ार पूरे।
हुई प्रतिष्ठा निज मंदिर की, श्री राज उसमें पधारे।।
चंसीने से हाथी आया, वह जलूस उसपर निकला।
सुंदर साथ हुआ ऐकत्रित, सब का चरणों हाथ लगा।।
बाल बुद्ध नर नारी सारे, गाजे बाजे से आये।
सादर श्री राज श्यामाँ जी, निज मंदिर में पधराये।।
भक्तों को तो लगी ईद सी, दुख्ख अभक्तों को गुज़रा।
वहाँ माई बहनों का आना, कुछ ऐसे थे जो अखरा।।

श्री मुख द्वारा

सुनहरी देवी पत्नी मोहन लाल
सहारनपुर

बहुत जगह अपमान जनक सी, घटना घटीं हमारे साथ।
ठीक किये फिर गुरू किरपा ने, इस प्रकार के सब हालात।।
वे गुनाह करते नहीं थकते, वे भी क्षमां सदा करते।
पर ऐसे खाली के खाली, गुरू भरते भरते थकते।।
है अफसोस नाक एक घटना, याद रहेगी जीवन भर।
क्षमां योग्य तो थी नंहि बिल्कुल, गुरू ने माफ करी आखिर।।
श्री मती कस्तूरी देवी, है सुमेर चंद पति जिनके।
कक्कड़ गंज सहारनपुर में, आढ़त का बिजनेस करते।।
जिनकी पतनी थी चिराऊं की, कस्तूरी देवी है नाम।
है नजदीक शेर पुर आश्रम, के चिराऊं यह उनका ग्राम।।
उसने एक व्यक्ति के ज़रिये, हमें निमंत्रण भिजवाया।
घर पवित्र करवाने के लिये, सहारन पुर हमें बुलवाया।।
लेकर भजन दास को संग में, घर कस्तूरी के पहुँचे।
जिस कमरे में पधरी सेवा, उस कमरे में जा बैठे।।
श्री सुमेर चंद जीम रहे घर, खाना जीम जाम करके।
ऊपर गये जहां हम बैठे, जाते ही बोले हमसे।।
चलो महात्मां जी दुकान पर, घर तो लहू बेटियाँ हैं।
ठीक नहीं है यहाँ बैठना, आप हमारे साथ चलें।।
बिस्तर खाट वहीं बिछवादें, चलो वहीं करना आराम।
इतनी सुन सुमेर चंद मुंह से, इक क्षण रूकना हुवा हराम।।
भाव समझ गए हम उनके सब, अंदर तक की जान गये।
भजन दास भइ ठहर लिये यहां, इतना कहते ही उठ गये।।
हो लिये उठ लाला से आगे, ठहरे नहीं सहारनपुर।
चले गये पैदल ही चलते, टपरी जा पहुंचे आखिर।।
वहां रेल पकड़ी जा करके, और देवबंद जा पहुंचे।
इधर ससुर जब जीम जामकर, जाना उसने चले गये।।
हम सब लोगों को खाने के, लिये बुलाने को पहुंची।
कस्तूरी ना आई अभी तक, घर से कहीं वो बाहर थी।।

हम दोनों जब वहां न पाये, उसके मन फ़ौरन आया।
शायद ससुर पहुंच लिये उन तक, जिसने माथा ठनकाया।।
उनमें भाव नहीं है अच्छे, कुछ जरूर कह गये उनको।
चले गये यों ही वो भूके, खोजा काफी दोनों को।।
लेकिन मिले नहीं हम उसको, लगा हृदय में घूँसा सा।
हाय चले गये सदगुरू भूके, हुवा अनादार यह कैसा।।
वे तो घर न्यौते आये थे, कितना बड़ा हुवा अपमान।
इसकी बख़्शिष नहीं मिलेगी, उसने मन में लीनी ठान।।
जब तक नहीं जिमालूँ उनको, खाना नहीं खाऊं तब तक।
भला चले भी मुंह में कैसे, जहां गुरू की हुई हतक।।
तीन रोज़ छः वक्त बीत गये, उसके पति श्री मोहन लाल।
घर खाना खाने को आये, वह नंहि जीमी हुवा ख़याल।।
बिना खाए क्यों रखती जातीं, अलमारी में खाने को।
मोहन लगे पूछने क्यों जी, खाती क्यो नंहि खाने को।।
वह बोली तुम आज पूछते, मुझे तीन दिन बीत चुके।
मेरा ही जी जान रहा है, कितना संकट है मुझपै।।
उसके पति बोले क्यों क्या है, वह बोली है बात विकट।
मर जाना मंजूर मगर मैं, जीम नही सकती तब तक।।
पूरी बात करो तो खोलूँ, वरन लाभ क्या खोले से।
और कौन जिससे खोलेगी, कह क्या है सारी हमसे।।
उसने सब क़िस्सा बतलाया, सदगुरू की यों हुई हतक।
चले गये भूके वे घर से, मैं क्यों कर भर लेऊ हलक़।।
जीम नहीं सकती मैं तब तक, जब तक दर्शन कर नंहि लूँ।
और क्षमां नंहि ले लूँ इसकी, साथ साथ जिमवा नंहि लूँ।।
प्रश्न बड़ा गम्भीर सामने, सदगुरू उधर, इधर निज बाप।
बड़ी पड़े दुविधा में मोहन, झिलना भी मुश्किल संताप।।
मुश्किल कहना उधर पिता को, उनकी श्रद्धा उनके साथ।
लेकिन बात साफ़ दिख रही थी, बुरा हुवा सदगुरू के साथ।।
सोच साच कर मोहन बोले, इक उपाय है बस केवल।
हरिद्वार का भरो बहाना, न्हाने के ओड़े से चल।।
उनके पास तभी जा सकते, और सूझता नहीं उपाय।
उन दोनों में हुअ यही तय, इस प्रकार ही निकला जाय।।
लिया नाम यदि सदगुरू घर का, हरग़िज भी नंहि जाने दें।
एक फ़जीता हो जायेगा, किसी तरह भी नंहि मानें।।
अतः पिता जी से जा पूछी, यह है ग्रहणी की इच्छा।

हरिद्वार न्हाने जाना है, सुनते ही दे दी आज्ञा।।
बाध बूंध सामान भाग लिए, था स्वभाव यह लाला का।
गाड़ी स्वयं चढाकर आते, उनका एक तरीका था।।
हम जब चले निकल कर घर से, बहुत सोचना पड़ा हमें।
कहां मिलेंगे श्री सदगुरू जी, किस गाड़ी में जा बैठें।।
कभी साथ चल दें लाला जी, उधर हमें यह भी डर था।
आंख बचा स्टेशन पहुँचे, देवबन्द का टिकिट लिया।।
बैठ गये गाड़ी में जिस दम, लाला जी भी जा पहुंचे।
उन्हें देख वह बोली पति से, अब कैसे हो पकड़े गए।।
देखते हि पूछा इसमें क्यों, बोले मोहन लाला जी।
हरिद्वार हम साथ चलेंगी, कहती थी देवबंद वाली।।
उन्हें संग लेकर जाना है, वरन् उलहना देंगी वे।
पहले उधर पहुँचना हमको, इस कारण हम इधर चले।।
फिर क्या था मिल गई आज्ञा, श्री सदगुरू ने थामी बाह।
भेजा शुकर श्री सदगुरू को, उनकी ओर झुकाया माथ।।
देवबंद जा पहुँचे दोनों, रिश्तेदारी थी उनकी।
मक्खन लाल वहां रहते थे, वहीं थी दोनों की द्रष्टी।।
थे वे सेवक श्री सदगुरू के, था ख़ायाल उनसे पूछें।
यह घटना बीती सदगुरू संग, इसका क्या उपचार करें।।
क्या प्राशचित करें अब इसका, निर्णय करना था उनसे।
लेकिन गति देखो सदगुरू की, बैठे हुऐ देवबंद मिले।।
कर रहे थे दोनों की चर्चा, छिड़ा उन्हीं का था किस्सा।
इक पराँवठा धर रक्खा था, कह के है इक का हिस्सा।।
चला आ रहा है इक भूका, उसको हमें खिलाना है।
बरती तीन रोज से है इक, व्रत उसका खुलवाना है।।
भाग्य सराहे निज दोनों ने, जब सदगुरू आगे पाये।
हुवा सफल इत आना श्री जी, के हमने दर्शन पाये।।
लिये चरन जिस समय पहुंचकर, निकल पड़ी अंदर से कूक।
महाराज जी क्षमां चाहते, बड़ी हुई है हमसे चूक।।
आप समझते है ही सब कुछ, माफ करो गलती अपनी।
सभी शक्ति है प्रभू आपमें, ख्याल न करना धाम धनी।।
रूदन वेग से कह गये सारी, सुनकर पकड़ा उसका हाथ।
बैठी करी चरन से अपने, बोले ले फैला अब हाथ।।
ले प्रशाद खा अपना पहले, देख रहा है कबकी बाट।
दुनियां के झगड़े क्यों गाये, क्या आयेगा उनमें हाथ।।

दी दो तीन कमर में थेपी, अपना कर औ अपना खा।
दुनियां से तू क्या लेवेंगी, यहां न उनके किस्से ठा।।

इस प्रकार से तब किये, श्री सदगुरू ने मांफ़।
अंतर में जो दाह था, हुई इस तरह साफ।।

एक बार लाला दुकान पर, युगल दास जी जा पहुँचे।
श्री सुमेर चंद जी बैठे थे, उनसे लगे बात करने।।
महाराज में चमत्कार तो, दीखा नहीं कभी हमको।
अगर कोइ होता इन पै तो, कम से कम दिखलाते तो।।
समझाया भी युगल दास ने, चमत्कार दिखता नंहि क्या।
मौज आ रही घर पर तेरे, कमी कौन सी है बतला।।
भली बात तो सब हाज़िर है, बुरी बात की सिर्फ़ कसर।
सुनकर फिर बोले सुमेर चंद, कुछ कुछ थोड़ा खिसियाकर।।
महात्माओं पै होते तो है, जंचता ही नंहि उनके पास।
युगल दास यों बोले उनसे, लाला अगर यहि है बात।।
मतलब साफ़ यही है इसका, चमत्कार यदि दिखलावें।
तभी आपकै आ सकते है, वरना यहां नहीं आवे।।
लाला बस अब तभी आंऐगे, जब गुरू किरपा कर देंगे।
चमत्कार जब तक श्री सदगुरू, तुम्हें नहीं दिखला देंगे।।
चले गये उठ युगलदास तो, इस प्रकार कहकर उनसे।
पुनः न फिर पहुँचे दुकान पै, उसके कुछ ही दिन पीछे।।
देवबंद को गई सुनहरी, पीहर था उसका अपना।
बच्चा भी था पेट सुनहरी, अवसर जन्म अष्टमी का।।
हो रही थी उस समय आरती, वह तीजा था गोदी पर।
गोदी लिये घूंमती थी वह, झट जलूस निकला बाहर।।
गोदी लिये लिये जा पहुँची, था मकान दो मंजिल का।
गिरी धम्म से नींचे जाकर, पैर टूट दोटूक हुवा।।
पड़े तभी लेने के देने, सहारनपुर को खड़के तार।
गिरी सुनहरी छत से नींचे, टाँग टूटकर हुइ बेकार।।
भाग पड़े सब सुन सुन इतनी, चमत्कार वह उठा फिरा।
कभी यहाँ का कभी वहां का, होता हुवा इलाज फिरा।।
रही मगर वैसी की वैसी, उसमें फ़र्क नहीं आया।
हज्ज़ारों लग गये टाँग को, पर आराम नहीं पाया।।
स्वप्न दिया इक दिन सदगुरू ने, मानो दिया उसे संकेत।

क्यों फिरती है लिये टांग को, कर पगली सद गुरू का हेत।।
जाग्रत होते हि लगी उधर की, अब नंहि करना कोइ इलाज।
सदगुरू के ढिंग जाऊगी अब, रटना लगीं हाय महाराज।।
लाला जी पै गई बात यह, हारे दवा बूटियों से।
एक बार उनको दिखला दो, चारा है अंतिम बस ये।।
लाला पड़े सोच में सुनकर, क्या अब जाना ही होगा।
जिनका आदर न था ह्रदय में, क्या अब करना ही होगा।।
जिनको सर नंहि झुका हमारा, क्या अब झुकना ही होगा।
मान्यताऐं नंहि दी मन ने जिन्हें, उन्हें पूछना ही होगा।।
वहीं सुनहरी को ले जाकर, चलो शेरपुर दिखलादें।
अगर सभी की यह इच्छा है, यह भी भइया करवादें।।
गये शेरपुर लेकर उसको, दरवाज़ा गुरू खटकाया।
जिस दरवाजे बिना किसी का, कभी काम नंहि चल पाया।।
बहुते अपनी खुशी पहुँचते, बहुते पिटकर जाते हैं।
वे निकृष्ट श्रेणी के होते, वे उत्तम कहलाते हैं।।
चमत्कार के पकड़े पहुँचे, श्री सुमेर चंद लाला जी।
उनका सर उसने झुकवाया, थे मरोड़ में पैसे की।।
वहां टांग में रक्खा क्या था, चमत्कार ही था केवल।
निकल गये सारे कुनबे के, इक झटके में सारे बल।।
हो गइ टाँग ठीक जिसदम वो, युगलदास ने जा पूछा।
देखा लाला चमत्कार कुछ, अगर और होवै इच्छा।।
तो सदगुरू से करें प्रार्थना, टाँग आपकी कर देवे।
उनके यहाँ देर काहे की, तुम्हें खाट पै धर देवें।।
पकड़ लिया पग झट लाला ने, ग़लती हुई क्षमाँ करदो।
बोल निक़ल गए ना समझी में, हमपै दया द्रष्टि रक्खो।।

चमत्कार को नमश्कार है चमत्कार ही झुकवाता।
रहने देते नहीं चैन से, तभी इसे लाया जाता।।

श्री मुख द्वारा

।। श्रीमती चावली देवी धाम गमन जड़ौदा ।।

सब सागर स्याही करूँ, क़लम सकल बन राय।
गुरू महिमाँ तौ भी रहे, पूरी लिखी न जाय।।
और बहुत लीलाऐ हैं पर, सब का क्यों कर करूँ बयान।
बीतक बढ़ने का भी भय है, कब तक पढ़ता रहे जहान।।
कैसा खिला आत्माओं संग, खेल क़ायमी सुंदर साथ।
ये बातें सब बातन की हैं, आवे बिना कहे ना हाथ।।
एक बार आश्रम का आँगन, लीप रहा था सुंदर साथ।
पतनी श्री चावली देवी, भी थी उस दिन उनके साथ।।
चलते हाथ बात भी आपस, में उनकी होती जाती।
बस्सो आज कढ़ी खिलवादे, तेरे ही घर जीमेंगी।।
गेंदी भी थी उस चर्चा में, थी दावत में वह भी साथ।
ज़ोर दिया सब ने बस्सो को, स्वीकारी बस्सो ने बात।।
ग्राम शेर पुर की है बस्सो, बना कढ़ी और भात वहाँ।
बाकी रहीं लीपती आश्रम, लगी काम में रही यहाँ।।
काम ख़त्म कर दोपहरी में, न्हा धोकर जिसदम निपटी।
निज अर्धांगिनी चावली देवी, आज्ञा लेने ढिंग पहुँची।।
चावल और कढ़ी खाने को, है बस्सो के घर जाना।
बात कान डाली जब मेरे, साथ साथ माँगी आज्ञा।।
तो बोले हम श्रीमती जी, आज भात यदि खाना है।
और अन्य के यहाँ जीमने, और चाटने जाना है।।
आज बात इक कहनी होगी, रख कर मेरे सर पर हाथ।
बेटा कहकर हाथ फिरादो, फिर जा खाना उसकै भात।।
जैसे मिर्च आँख में फोड़ीं, इतनी झूँझल उठी उसे।
लाल आँख करके वे बोलीं, इतनी ही है अक़ल तुझे।।
दुनियाँ को तो अक़ल बताता, लेकिन ख़ुद को पता नहीं।
भांग धतूरे खा खा करके, भ्रष्ट करी अपनी बुद्धी।।
बातें इस प्रकार की करती, और भोंकती चली वहाँ।
बोले अच्छा, बिना कहे यह, यों ही चली जायगी क्या।।
सुनते हुवे बोल वो मेरे, पतनी चलती चली गई।

श्री राज जी के मंदिर के, आगे से जिसदम गुज़री।।
चिपके पैर भूमि से उस के, आगे क़दम न उठ पाया।
आगे का आगे, पीछे का, पीछे से, नंहि छुट पाया।।
जैसे चुंबक लगा चरण से, खेंच रहा हो, नींचे को।
वहीं खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे कोई पकड़े हो।।
सर पर धूंप तपत थी नींचे, जेष्ठ मास की दोपहरी।
बनी जान पर अब पतनी की, धूप कड़ाके की ठहरी।।
अजब धर्म संकट आ टूटा, उधर बात थी बेढंगी।
इधर जान पै आन बनी अब, जो कहने के योग्य नहीं।।
उसने भी संकल्प लिया मन, करें जो उनके मन आवे।
किन्तु बात नंहि मानें हम भी, चाहे जो कुछ हो जावे।।
खड़ी रही कैड़ा जी करके, घंटा बीत चुका जब एक।
क्यों जानें यह खड़ी हुई है, साथी बहुत रहे थे देख।।
लड़की कला से पूछा इक ने, बोबो एक बात बतला।
माता जी क्यों खड़ी धूप में, कलावती को पता न था।।
जा पूछा लड़की ने माँ से, यहाँ धूप में क्यों हैं माँ।
उत्तर दिया न माँ ने कुछ भी, कलावती ने फिर पूछा।।
बोली पैर न उठते बेटी, चिपके हैं धरती के साथ।
कंहि से महादेव की चिप्पक, सीख आया है तेरा बाप।।
ताक़त दिखा रहा है मुझको, इतना बड़ा सिद्ध हूँ मैं।
देख तुझे चिपका सकता हूँ, सो चिपकी हुई खड़ी हूँ मैं।।
पैर हिलाकर लगी देखने, कलावती पर नहीं हिला।
वहीं पुजारी कृष्ण दास थे, उनसे कहने लगी कला।।
माँ चिपकी हुई खड़ी हुई हैं, महादेव की चिप्पक से।
निकट गये वे श्री सदगुरू के, बोले आकर वे हमसे।।
उनकी सज़ा हमें देदो पर, इतना कष्ट इन्हें मत दो।
महाराज जी माता जी पै, दया करो और क्षमाँ करो।।
अभी अक़ल सीधी होने दो, अभी न बोलो रहने दो।
कसनी अभी कहाँ देखी है, अभी तपत में तपने दो।।
हुकुम अदूली में फाँसी तक, दण्ड दिया जा सकता है।
बिना आज्ञा जाकर देखो, कोइ नहीं जा सकता है।।
पहुँचे दो इक और ये कहने, विनती की आकर हम से।
गिड़गिड़ाए सब ही आ आकर, हम उनसे फिर यों बोले।।
हो मंजूर अगर वह उसको, जो कुछ उससे अभी कहा।
तभी रिहाई हो सकती है, वरना लेने दो लटका।।

कहा सभी ने हाथ जोड़के, निज पत्नी से माता जी।
मान जाओ कहना सदगुरू का, क्यों बनती हो अपराधी।।
जा वेजा सब के मालिक हैं, माँ तुमको डर काहे का।
जो बिगड़े उनका बिगड़ेगा, जो सुधरे सुधरे उनका।।
आप मानलो कहना उनका, माँ जल्दी से हाँ करदो।
जाने क्या क्या छिपा हुआ है, कोइ न जाने लीला को।।
कहने सुनने पर सब ही के, निज पत्नी ने हाँ करदी।
पैर तत्क्षण छुटे चिपक से, वापिस मेरे ढिंग पहुँची।।
वही शब्द जो पूर्व कहे थे, दोहराये फिरसे हमने।
धर कर हाथ शीष पर मेरे, कहे चावली देवी ने।।
बेटा सुखी रहो चिर जीवो, हर प्रकार आनंद करो।
चरन लिये हमने फिर उनके, जब ये वचन कहे हमको।।
दुनियाँ क्या जाने ये क्यों है, दुनियाँ क्या समझे ये बात।
लीला जान सके सदगुरू की, जीव सृष्टि की क्या औक़ात।।
अहद और पैमान कराकर, साथ साथ बेटा बनकर।
रही वासना रतन बाइ की, इस प्रकार इस तन आकर।।
किन्तु बात बातन की थी यह, बस बातन वाला जाने।
ईश्वर जीव सृष्टि क्या समझे, कहो एक भी ना माने।।
रहीं साथ की भाँति चावली, देवी आश्रम भी आतीं।
किन्तु जड़ौदे वाले घर को, वापिस रोज़ लौट जातीं।।
था स्वभाव कुछ कैड़ा उनका, बात उन्हें चुभ जाती थी।
फिर चाहे कुछ भी हो जावे, भरसक उसे निंभाती थी।।
शादी करी शान्ती की भी, कलावती लड़की के बाद।
लेकिन धाम चली गई लड़की, शादी के कुछ दिन पश्चात्।।
गया वक्त पै वक्त बीतता, लड़का होता गया जवाँ।
शादी उसकी भी करडाली, घर का भार उसे सोंपा।।
नाम बहू परकाशी देवी, बेटी थी वो भक्तों की।
सेवा भाव बहुत ही उत्तम, अनथक सेवा करती थी।।
जन्मी इक कन्या उसकै भी, सरला देवी रक्खा नाम।
अंकूरी आतम थी वह भी, लड़का फिर इक हुआ निदान।।
उमर चार दिन की लाया पर, चौथे दिन ही उतर गया।
अंत राज प्यारी फिर जन्मी, अति सुलक्षणी वह कन्या।।
ओउम् दत्त की भी शादी की, प्रेम वती दुलहिन का नाम।
भुरिया भी घरवाले कहते, प्रेम वती यहीं रक्खा नाम।।
सेवक अति उत्तम है यह भी, बिला उज़र सेवक है यह।

काम हमेशा बस सेवा से, चार पहर बस लगे रहे।।
प्रेमवती के लड़की जन्मी, नाम श्याम प्यारी रक्खा।
इतनी ही ग्रहस्थी बस अपनी, इतना था अपना कुनबा।।
बारह वर्ष आश्रम घर का, सोमदत्त ने काम किया।
भक्ति भाव के क्या कहने थे, खूब प्रभू का नाम लिया।।
सत्संगी अव्वल दर्जे का, सेवा में भी था अव्वल।
गायन भी अव्वल दर्जे का, वादन में भी था अव्वल।।
रूपवान गुँणावान शील, आदिक सब ही कुछ था पल्ले।
लेकिन इस माया में सबके, पीछे चिपके दुम छल्ले।।
माया इतनी प्रबल बदल, देती पल में ब्रह्माण्डों को।
क्या बिसात आतम बेचारी, की जो जीत सके इसको।।
अव्वल तो है खेल निराला, बाज़ी वद वद के आये।
इसी लिये पी ने भी इसके, बंध जुगत से बंधवाये।।
यहाँ चूक सब से होती है, यहाँ भूल सब में आती।
पूर्ण ज्ञान यदि हो भी जाऐ, आतम फिर बिचली खाती।।
डोल गये ज्ञानी अज्ञानी, उलट गई सब की बुद्धी।
सर्व शुद्ध आतम उतरीं पर, हवा हुई सब की शुद्धी।।
रैन दिवस पी पी करने पर, भी सब झटके खा जाते।
चरनों में बैठे बैठे भी, अलग पिया से हो जाते।।
लिखा यही बीतक में आतम, ख़ासुलख़ास न टिक पाई।
अटल नहीं रह पाईं डिगगईं, भ्रम में फंसी ख़ता खाई।।

वक्त वक्त की बात है वक्त वक्त का खेल।
युग के बिछड़े हुवों का हुआ मिनटों में मेल।।

बने ग्रहस्थी लड़के दोनों, घर का भार तजा उनपर।
हम हो गए बस आश्रम वासी, जाना छोड़ दिया घर पर।।
गाड़ी ज़्यादा चली न यों भी, चलकर थाड़ी देर थमी।
अतः श्रीमति चावली देवी, कुछ दिन में बीमार पड़ी।।
उन्हें सिर्फ़ ज्वर ही आया बस, अपने घर ही पड़ी रही।
दवा गोलियाँ बहुत हुईं पर, उनके तन को नहीं लगी।।
जब हालत हो गई भयंकर, संदेशा आश्रम आया।
महाराज जी माता जी ने, तुम्हें आज घर बुलवाया।।
उनकी हालत ठीक नहीं है, दर्श आपका चाह रहीं।
सुरता धाम गमन की सी है, केवल तुम्हें पुकार रहीं।।

सदगुरू बोले सोमदत्त से, देखो भाई जाकर घर।
कोइ दवा बूटी करवाओ, हम क्या कर लेंगे जाकर।।
और साथ काफ़ी था उसने, करी प्रार्थनाऐं हमसे।
तुमही को जाना होगा अब, नम्र निवेदन है तुमसे।।
विवश पड़ा चलना ही घर को, घर जाकर हो गये खड़े।
द्वारे पर उस कोठे के, निज पत्नी को हम नज़र पड़े।।
हालत बहुत तंग थी उनकी, लेकिन उठकर चरन लिया।
और कहा, हम धाम जाएगे, अतः टिकट के लिये कहा।।
तुम जानो, घरबार व बच्चे, वापिस तुम्हें सोंपती हूँ आज।
अंतिम दर्शन चाह रही थी, सो करदी किरपा महाराज।।
हम बोले उनसे तो अच्छा, झूँट न हो जाने की बात।
दीखे जैसा वही बताना, कभी बनावें लोग मज़ाक।।
निकल आए कोठे से बाहर, कहके इस प्रकार की बात।
चले आए जल देकर आश्रम, छूटा फिर शरीर पश्चात्।।
अंतिम संस्कार पतनी का, सभी साथ ने निमटाया।
हम को भी ले गए मरघट तक, धाम गमन यों करवाया।।
दाग़ सुदी पड़वा असौज की, सम्वत् दो हज़ार विक्रम।
हुआ चावली देवी का यों, अपने हाथों धाम गमन।।

शिव चबूतरे की आड़ लेकर झगड़ा शेरपुर

जितनी बार स्वर्ण अगनी की, लपटों में डाला जाता।
उतनी बार शुद्ध होता है, दुगना रंग निखर आता।।
बड़ी कोशिषें कीं लोगों ने, बहुत बार बोले हमले।
जड़ उखाड़देंगे आश्रम की, सब ने ज़ोर बड़े तोले।।
पर परिणाम सामने सबके, जड़ें उन्हीं की उखड़ गई।
नहीं खेल में कोई मिंया जी, सब की मिट्टी बिखर गई।।
बहुत बार कोशिष करके भी, नहीं कामयाबी पाई।
तो सूझी फिर और युक्ति इक, लोगों के दिल में आई।।
शिव चबूतरा है आश्रम में, जो अपने मज़हब का है।
उसकी पूजा शुरू करादो, यही तरीका अच्छा है।।
सहज सहज जड़ पकड़ जाएगे, परनामी डिगजाँऐं फिर।
कब तक ठहर सकेंगे सन्मुख, भाग जाँए इक दिन आखिर।।
थी तजवीज़ मास्टर की यह, जो बाहर से आन बसा।
और बालकों को गाँवों के, नित्य पढ़ाया करता था।।
अतः उसी ने बीड़ा चाबा, शिव सेवा में करता हूँ।
वहीं पढ़ाऊँगा बच्चे भी, देखो इन्हें भगाता हूँ।।
अगले रोज़ आम के नींचे, सभी बालकों को लेकर।
आन पधारे मास्टर जी तो, घुस बैठा दज्जाल इधर।।
ख़ूब बजीं कम्मच बच्चों पै, दिन भर रही हाय तोबा।
बजने लगा शंख संध्या को, शिव चबूतरे पै उसका।।
अपनी सेवा थी बाजू में, समय आरती जब आता।
वह भी उसी समय आकरके, अपनी गड़बड़ खड़काता।।
बीत चुके दो तीन रोज़ जब, फ़िकर पड़ी उसकी हमको।
यह तो बीज उपद्रव का है, युगलदास इसको रोको।।
इसमें है इश्ताल किसी की, वरन् मास्टर की क्या ताब।
विघ्न करे आश्रम में आकर, इसको है लोगों का साँस।।
इसे देखना चहिये कहकर, क्या परिणाम निकलता है।
सारा सार निकल आयेगा, क्या ये ज़हर उगलता है।।
पूछा स्वयं हमीं ने उससे, पंडत जी यह तो बतला।
तू जो रोज़ यहाँ आता है, बोल है तेरी क्या मंशा।।
तेरा ढंग बताता है तू, भजन भाव से नंहि आता।

किसी उपद्रव की इच्छा है, जो बच्चों को संग लाता।।
कृप्या यहाँ न आना अब से, वहीं दिखा अपनी भक्ति।
यहाँ आयगा ख़ाता खायगा, मास्टरी याँ नंहि चलती।।
सुनकर इतनी चला गया पर, रूका नहीं अगले दिन भी।
बल्कि अधिक ही आए साथ में, बात जँची झगड़े की सी।।
ख़ूब अधिक था हल्ला गुल्ला, नागफनी औ कूके शंख।
उछल कूद बेढंगे ढंग की, साफ़ दीखता था हुड़दंग।।
हमको इसकी फ़िकर पड़ी तब, युगलदास क्या होवे अब।
यों हम यहाँ नहीं ठहरेंगे, आसन उठने को है अब।।
उधर मास्टर दूना दूना, विघ्न लगा करने आकर।
घंटों रोज़ उतरता ऊधम, दोंनों वक्त वहाँ जमकर।।
फ़िकर चढ़ा फिर युलदास को, उठा अगर आसन गुरू का।
तो लानत हमको आवेगी, आख़िर कुनबा है अपना।।
युगलदास बोला हमसे बस, तुम तो अपना रहने दो।
हमीं उठावें अपना आसन, हमें गाँव में जाने दो।।
इसका जतन वहीं से होगा, भूत जूत से जाता है।
जो इसको यहाँ भेज रहा है, उससे मेरा नाता है।।
हम देखेंगे इन भूतों को, उठा लिया उसने आसन।
और बिछाया जा अपने घर, करे इकट्ठे भाई बंद।।
हम बोले अपने भइयों से, हमें नहीं साझे रहना।
पहले तो चौपाल बाद में, घर भी है अपना बटना।।
जितनी हिस्से में हो मेरी, अभी अलहदा करवानी।
जाए भाड़ में भाई चारा, मुझे है मस्जिद बनवानी।।
घर में मुल्ला को रक्खूंगा, याँ अज़ान लगवानी हैं।
जो रोकेगा उसकी सुनलो, थूथड़ियाँ पिटवानी हैं।।
जब हम असली मुसलमान हैं, मुसलमान बिठलाना अब।
देव बंद वालों को लाकर, यहाँ हड़वोंग मचाना अब।।
मज़हब में क्या दख़ल किसी का, जल्दी मेरा हिस्सा दो।
शंख बजाओ तुम आश्रम में, मुझे अजाँ लगवाने दो।।
मास्टर को तो सुबह तलक में, कटवाके दबवा दूँगा।
जो हिमायती होगा उसका, उसको मैं ख़ुद देखूंगा।।
जब भइयों के कान पड़ी यह, पैर तले से भू खिसकी।
ये उजडड है कर भी देगा, फ़ौरन ही नीती बदली।।
सुबह गंडासा ले इक भइया, राजवाहे पर आ बैठा।
अगर मास्टर चला आशरम, तो मेंने धर के काटा।।

राड़ काटदें हम उस ही की, लोग मास्टर पै पहुँचे।
आज मौत है पट्ठे भगजा, ना जाने क्या हो जावे।
बम्बे पर बैठा है तेरी, ख़ातिर तू मारा जावे।।
मारे डरके भाग गया वह, फेर नहीं वापिस आया।
यों दज्जाल गया आश्रम से, युगलदास वापिस आया।।
लोगों में सनसनी फैलगइ, चारा क्या था क्या करते।
उसका तो भाई चारा था, घुसकर उनमें क्या मरते।।
तरकीबों में रहे फेर भी, लोग डिगाने को हमको।
बहुत रोज़ पहले से ही हम, छोड़ चुके थे घर जाना।
सोमदत्त या परकाशी को, पड़ा भार घर का ठाना।।
बड़े कुशल ढंग से परकाशी, देवी ने सासू के बाद।
घर का भार लिया निज कंधों, लिया पूर्ण ग्रहस्थी को साध।।
भजन भाव भी घर धंधा भी, साथ साथ आश्रम सेवा।
घर के साथ आश्रम का भी, काम बड़े ढंग से होता।।
पितु समान हम परकाशी को, देख भाल था उसका फ़र्ज।
छोटे सदा बड़ों की सेवा, करके, आए चुकाते कर्ज़।।
ससुर और सदगुरू दो रिश्ते, लाज़िम थी सेवा उसको।
बड़ा ध्यान रखती थी अपना, हरदम सेवा पर समझो।।
सोम दत्त मंदिर सेवा पर, अन्य काम पर परकाशी।
दिन भर आश्रम सेवा करती, शाम ढले घर को जाती।।
आठ माह सासू के पीछे, पति पतनी ने काम किया।
बड़ी कुशलताई दिखलाई, हर इक हो संतुष्ट किया।।
रहती थी संतो बाई भी, वहीं आश्रम में उस वक्त।
शुद्धताई और भक्ति भाव में, इक नम्बर की थी वह भक्त।।
संतो के पतिदेव किशोरी, लाल साथ ही रहते थे।
न्यौछावर थे हम पै वे भी, सेवा करते रहते थे।।
श्रद्धा थी अटूट दोंनों में, इक हीरा तो माणिंक एक।
दोंनों का जोड़ा उत्तम था, नहीं ख़ूबियों का उल्लेख।।
एक और भक्ता रहती थी, उन्हीं दिनों निज आश्रम में।
जो अपना कल्यॉंण चाहती, आ पहुँची गुरू चरनों में।।
कुछ कुछ सेवा मिली उसे भी, राम कटोरी जिसका नाम।
झुलसी हुई दुख्ख से आई, उसने भी चाहा कल्यॉंण।।
आँख मगर उसकी चमड़े की, चमड़ा ही दीखा उसको।
गुरू किरपा के बिना कोइ भी, देख न सकता रूहों को।।
अहंकार के हैं अहार सब, सब को उल्टा लटकाया।

अहंकार की कुटिल मार से, यहाँ न कोई बच पाया।।
राम कटोरी से संतो की, समझी नहीं गई सेवा।
अहंकार के वशी भूत हो, डूबा बुद्धी का खेवा।।
सेवक ही सेवा को जाने, कितना कोमल है ये काम।
कितना कष्ट साथ है इसका, अपनाना मुश्किल है काम।।
सेवा होती खुद को खोकर, पहले अपने को खो लो।
उसके बाद कहीं सेवा हो, तजती आतम खोखे को।।
आतम से परमातम सेवा, परमातम आतम है एक।
प्रीतम हाथ नहीं आते यों, प्रेम लक्षणां भक्ति देख।।
ये लक्षण थे सब संतो में, थी अनन्य भक्ता संतो।
लोग उसे कम समझ सके कुछ, थोड़ों ने समझा उसको।।
सत्य अर्थ हो चौपाई का, समझ आयेगा फ़ौरन् अर्थ।
ओंधां सीधा अगर किया तो, हो अर्थो का तभी अनर्थ।।
अर्थ तनिक संतोबाई की, सेवा का नंहि लग पाया।
राम कटोरी ने भ्रम के वश, ओंधा सीधा धर गाया।।
कह डाला जो भी मन आया, लांछनों का किया प्रचार।
भष्ट आचरण की है संतो, महाराज संग दुर्व्यौहार।।
पत्थर में भी जोख चिपटती, हालांके नंहि रक्त वहां।
पर स्वभाव वंश चिपट बैठती, रक्त मिलो ना मिलो वहां।।
सेवक गंण जो थे आश्रम में, नये पुराने सारे दास।
राम कटोरी के लैक्चर पें, आने लगा उन्हें विश्वास।।
लगी फेलने फिर वह चर्चा, सोम दत्त तक जा पहुंची।
उसके बाद गई औरों में, फिर तो अच्छी कथा बंची।।
हर दम यही चर्चनी चलती, मिनट मिनट के होते अर्थ।
बैठ क़ह क़हे लगते सबके, हुवे अर्थ के खूब अनर्थ।।
भंग भाव हो गये सभी के, क्या बाहर क्या अंदर के।
बाहर तो कहते ही थे सब, आश्रम में भी कह निकले।।
लगे खोदने गड्ढे सारे, आप आपको दफ़नाने को।
स्याही उछलने लगी गुरू पर, लगे धुंध बरसाने को।।
हो उद्धार कहां ऐसों का, जो गुरू तक को ना बख़्शा।
चाहे जिस प्रकार से देखो, उलट गया मानो तख़्ता।।
धारों धार सभी बह निकले, बेटा भी ना बच पाया।
लगे उड़ाने सभी एक हो, कुछ ऐसा झोका आया।।
सोम दत्त ने परकाशी को, जाकर यह आदेश दिया।
बंद आशरम जाना तेरा, ख़बर दार वहाँ क़दम दिया।।

एक म्यान और दो तलवारें, पति एक और दो प्रीतम।
अब से अगर वहाँ देखा तो, सहन नहीं कर सकते हम।।
ऐसे सड़े बुसे शब्दों को, सुन कर बोली परकाशी।
किस ग़लती पर ताड़ रहे हो, फिर से ज़रा बताना जी।।
ऐसी वजह कौन सी हो गइ, जो रूक जावें सेवा से।
अगर भूल की होगी कोई, तब अवश्य रूक जायेंगे।।
एक पत्नि दो प्रीतम वाला, शब्द उन्होंने दोहराया।
भाव भेद है इनको कोई, समझ परकाशी को आया।।
हाथ जोड़ कर करी निवेदन, हमें बात इक समझा दो।
तुम गुरू को प्रीतम क्यों कहते, बाप आपका है वो तो।।
इधर आप लड़के हो उनके, क्यों कर पिया हुवा तेरा।
अगर आपके प्रीतम हैं तो, तुमसे पहले हैं मेरा।।
सब अपना कल्यांण चाहते, मैं क्यों वंचित रह जाऊँ।
बात अगर इतनी ही है तो, मैं वहाँ से ना रूक पाऊँ।।
आप पती हैं इस खोखे के, आतम पति तो वे ही हैं।
खुद तुम ही ने हमें सीख दी, आज सबक दूजा क्यों है।।
हमें नही दो रस्ते चलना, एक रास्ता है अपना।
बांह गही है हमने इक की, हमें नरक में नंहि बहना।।
हम पर शक है इम्तहान लो, अपने शक को निखारो।
बिला वजह चलते बैलों को, आर चुभा कर मत मारो।।
तुम क्या मुझे प्रेम नंहि करते, या तुममें कमजोरी है।
वहां आपसे ज्यादा है कुछ, हम तुम में क्या चोरी है।।
कुछ तो शरमाते यह कह के, अपनी पतनी अपना बाप।
बहक रहे किसके बहकाये, उड़ा रहे अपनों को आप।।

तुम नहीं यह बोलते कोइ और है।
डूब मरने को तुम्हें कंहि ठौर है।।

सांस न मारा सोमदत्त ने, प्रश्नोत्तर पर पतनी के।
उसके मुंह से सुनकर इतनी, सोमदत्त फिर नंहि बोले।।
आना जाना रहा नियम बध, आश्रम में परकाशी का।
भांति पूर्व के कार्य भार सब, रहा घूंमता आश्रम का।।
छिपी रही जहरीली पुड़िया, सोम दत्त ही के मन में।
नहीं ज़बाँ पर आया फिर पर, ज़हर घुला रहा चिंतन में।।
विष से विष उतरा करता है, या इलाज है उसका काल।

शैतानों की मजलिस दुनियाँ, यहाँ राज्य करता दज्जाल।।
खेल रहे यहाँ सभी काल से, पंच वासना का संसार।
काम, क्रोध, मोह, लोभ अहं का, पहने बैठे हैं सब हार।।
दोंनों मुख जलती लकड़ी के, बंदी कीड़े से प्रांणी।
यहाँ मूल किसको दिखता है, समझे को पी की वांणी।।
क्षार से अक्षर खेल रहा है, दुनी खिलौना है उसका।
ख़तम बदलते ही द्रष्टी के, चिन्ह मिले ना फिर इसका।।
बानक बने ठीक ऐसे ही, कारण बने भयंकर आ।
संतो ने सुन लिया ज़िकर यह, सभी साथ में है चर्चा।।
भ्रष्ट आचरण की है संतो, महाराज से की फ़रियाद।
अपने प्रति ऐसी चर्चा है, सबके मुंह पर यह बकवाद।।
बाहर क्या आश्रम के भी अब, उड़ा रहे हैं हमें तुम्हें।
अति आवश्यक इन्हें रोकना, मिलनी चहिये सज़ा इन्हें।।
बदली मुद्रा महाराज की, संतो से सुन इतनी बात।
छिदा ह्रदय में इक काँटा सा, अंदर लगा एक आघात।।
गहरी नज़र पडी संतो पर, नाप गये नज़रों नज़रों।
क्या कारण ऐसी अफ़वा का, ज़िकर छिड़ा आश्रम में क्यों।।
विष अमृत तक कैसे आया, वास्तविकता कितनी है।
महाराज जी इक दम बोले, संतो तू क्या बकती है।।
बात अगर सच है यह तेरी, ज़हर किसी ने घोला है।
हम ही पीवेंगे भी इसको, की किरपा जो बोला है।।
चरण पकड़ कर बोली संतो, महाराज इन लोगों को।
जो भ्रम है हटना तो चाहिये, इस लाँछन से मुक्त करो।।
डोरे सुर्ख़ आंख में आये, बोले महाराज संतो।
फिर जावै लोहे का मैड़ा, सदगुरू पर विश्वास करो।।
आसन छोड़ दिया कहते ही, जा लेटे निज कुटिया में।
कोइ न आवै पास हमारे, हम को सभी क्षमाँ रक्खें।।
किसकी फिर मजाल जा पहुँचे, बंद हुआ सब का जाना।
सेवा बंद हुई हर कोई, साथ साथ पीना खाना।।
छाई उदासी सी आश्रम पै, होने वाला कुछ जैसे।
महामरी घुस आई मानो, जान बचै जानें कैसे।।
लक्षण दिखने लगे सभी को, रंग बदल गये आश्रम के।
काम सभी ज्यों के त्यों लेकिन, ढंग बदल गये आश्रम के।।
दिशा अगर जाते तो इकले, न्हाते स्वयं खेंच पानी।
आसन आप बिछाते अपना, तज दी परशादी खानी।।

किसी इस्तरी पुरूष आदि की, ताब नहीं जा पहुँचे पास।
इक दिन युगलदास जा पहुँचा, अर्ध रात्री की है बात।।
दीपक टिमक रहा था धीमां, धीमे धीमे पग धरता।
महाराज जी के आसन तक, हिम्मत करके जा पहुँचा।।
हाथ बढ़े जब पग लेने को, आंखों थी आंसू की धार।
पग़ छूते ही ज्ञात हुआ के, सदगुरू को है तेज बुख़ार।।
बेसुध हैं उसकी तेजी में, सर पर हाथ धरा जिसदम।
मस्तक तपता मिला तवा सा, सांस नाक से बड़ी गरम।।
महाराज जी निकला मुंह से, कूऐ से में से बोले।
पास न आना कोइ हमारे, कह कर अपने दृग खोले।।
अंग बचाऐ युगलदास से, वस्त्रादिक को सरकाया।
ना खुश से होकर के बोले, युगलदास कैसे आया।।
हमें अकेले ही रहने दो, युगलदास बोला इकदम।
आप अवस्था में ऐसी हैं, अलग रहें अब कैसे हम।।
क्षमां चाहते हैं आतमेश्वर, हमको सेवा करने दो।
हिड़की बंध गइ चरण पकड़कर, बोला अब मत दुत्कारो।।
भला अशुद्धों का शुद्धों से, कभी मेल देखा है क्या।
इस प्रकार श्री मुख से निकला, हुकुम ऊपरी छूट चुका।।
अब हमको जाना ही होगा, ऐसी ही सदगुरू इच्छा।
हमें न छूना हम गंदे है, क्यों अपने को भ्रष्ट किया।।
बिखल हो उठा युगलदास सुन, जकड़ लिये पग हाथों से।
सारा भेद निकलता दीखा, महाराज की बातों सें।।
कमबख़्तों ने कदर न जानी, अंधों में हाथी आया।
हाथ लेगे बिन भक्ति परिश्रम, मुल्यांकन ना हो पाया।।
चरनों में सर युगलदास धर, रोने लगा अगर यह बात।
हमको ही क्या करना रहकर, हम भी चलें आपके साथ।।
जग को छोड़ तुम्हें पकड़ा था, जब तुम ही नंहि रहने के।
यहां सहारा फिर किसका है, साथ साथ हम भी होंगे।।
कौन चला है साथ किसी के, सब फ़िज़ूल की बातें हैं।
युगल दास यों बोले सदगुरू, वचन आपके यदि सच हैं।।
ताक़त नहीं रोकले कोई, साथ उठेगी अब अर्थी।
पड़ गये हम भी यहीं चरन में, अगर आपकी यह मर्ज़ी।।
बीती रात और दिन अगला, युगलदास को पड़े पड़े।
चाहा बहुत भाग जावे यह, डर दिखलाये बड़े बड़े।।
पर टस से मस नहीं हुवा वो, छोड़ दिया खाना पीना।

जब जीवन दाता ही जाता, किसके लिये फेर जीना।।
चौबिस घंटे बीत गये जब, बोले श्री सदगुरू महाराज।
युगल दास धीरे से बोले, सत्ती ही होगा क्या साथ।।
तेरी क्या इच्छा है बतला, कम से कम जाने तो हम।
प्रिया नहीं रह सकती पीछे, वहीं रहेगी जहां खसम।।
युगल दास ने झट कह डाला, आप अगर छोड़ें अनसन।
बड़ी कृपा हो हम सब ही पै, सुधर जाए सबका जीवन।।
दर दर ठुकराते डोलेंगे, तजा आपने अगर शरीर।
इनको कुछ भी नहीं पता है, फूट जाये सबकी तक़दीर।।
अंधे है सारे के सारे, फूटी हैं सबकी महाराज।
भौंक रहे बेढंबे यों ही, आती नहीं एक को लाज।।
और आप भी इन अंधों पै, दौड़ पड़े खोने को प्रांण।
उनका क्या बिगड़ेगा सोचो, बिगड़ जायेगा जग का काम।।
अपनी यही प्रार्थना है बस, कृप्या इस जिद् को छोड़ो।
चरणामृत प्रशाद ले लो अब, अपने अनशन को तोड़ो।।
युगल दास की सुन श्री सदगुरू, बहुत देर ख़ामोश रहे।
रहे सोचते जानें क्या क्या, इस प्रकार फिर बचन कहे।।
युगलदास तू अपनी कहता, सदगुरू चाह रहे अपनी।
अन होनी, हौनी हो जावे, हौनी की हो अनहौनी।।
यह कुछ खेल निराला ही है, रहे न कोई बिन हांसी।
मेहर बिना किसमें ताक़त जो, काटे माया की फांसी।।
सदगुरू पर जिसको शंका हो, जाए मेहर उस तक कैसे।
इसी सोच में डूबा हूँ मैं, खेल न बिनशेगा ऐसे।।
और युक्ति अपनावें सदगुरू, युगल दास बोले महाराज।
इतनी सख़्त बात मत सोचो, क्षमाँ चाहते है श्री राज।।
अब तो हमें बचन दे दो बस, कह दो मांफ़ किया तुमको।
कहां शक्ति कुछ और झेल लें, हम पै कृपा द्रष्टि रक्खो।।
एक काम कर सकते हो क्या, अगर हमें रखना चाहो।
टट्टू ला दो एक किसी का, इतना काम करो जाओ।।
कमजोरी के कारण पैदल, चलना तो दूभर होगा।
टट्टू पर हम चले जांयेगे, युगलदास ने कुछ सोचा।।
बोला कहां जाओगे उस पै, कही जांए यह मत पूछो।
टट्टू वापिस आजायेगा, लेकिन इसी वक्त ला दो।।
ना दर्शन हम करें किसी का, ना ही अपने देने हैं।
गर इतना कर सकता कर दे, अगर तुम्हें हम रखने हैं।।

युगल दास उठ लिये उसी दम, टट्टू माँगी मूले की।
पहर रात बाक़ी होगी जब, घोड़ी लाकर के बाँधी।।
महाराज घोड़ी आ पहुँची, हुकुम हुआ तामील प्रभो।
आप कहाँ जा रहे हैं इसपै, सिर्फ़ हमें यह बतला दो।।
मैं भी साथ चाहता चलना, क्षमाँ चाहता हूँ इसकी।
इस हालत में इकले भेजूँ, मेरी तबियत नंहि ठुकती।।
सदगुरू बोले युगलदास ज़िद, क्यों करते हो नाहक में।
हमको इकले ही जाना है, अड़चन मत डालो इसमें।।
इतनी कृपा करो अब हमको, ज्यों त्यों टट्टो पर धरदो।
साथ नहीं जायेगा कोई, इस के लिये माँफ़ करदो।।
कमज़ोरी शरीर में बेहद, बिन पकड़े चलना दुश्वार।
तिसपर ज़िद इकले जायेंगे, टट्टो पर कर दिया सवार।।
ठीक नहीं बैठा जाता था, कम्पन था कमज़ोरी से।
लेकिन माने नहीं जाए बिन, बहुत कहा हमने उनसे।।
चले साथ मूले हम दोंनों, नदी उतरवा कर मूले।
लौटा दिये शेरपुर वापिस, हम सदगुरू के संग चले।।
चले गये धमकाते हमको, युगलदास वापिस जाओ।
जाने दो हमको इकले ही, अपने साथ नहीं आओ।।
लेकिन साथ न छोड़ा हमने, काफ़ी दिन भी चढ़ आया।
पहुँच गये रोहाना जिसदम, वापिस मुझ को लौटाया।।
आप मजाहिद पुर ही जावें, जब लौटा यह वचन लिया।
इस प्रकार महाराज श्री ने, आगे को प्रस्थान किया।।
दिवस तीसरे एक आदमी, घोड़ी लेकर के आया।
उसने कहा मजाहिदपुर हैं, धीरज हमें फेर आया।।
महाराज जी के जाते ही, पंजे उखड़ गये सब के।
सून सान हो गया आश्रम, लगे बोलने वाँ कव्वे।।
आदम तो आदम कुत्ते तक, रूके आश्रम आने से।
रौनक़ बद रौनक़ हुई सारी, श्री सदगुरू के जाने से।।
अपनी अपनी राह लगे सब, सेवक जितने सदगुरू के।
युगलदास से मन मुटाव था, फ़र्क मनों में रहते थे।।
महाराज भेजे हैं इसने, मिला हुवा है यह उनसे।
सोमदत्त तक के भावों में, फ़र्क आ चुका था तब से।।
सेवा भार सोमदत पै था, ओमदत्त कुछ था बीमार।
लोग उसे दिक़ बतलाते थे, मंझे का मानो असवार।।
महाराज जी के प्रति उसके, भाव सदा ओछे पाये।

ब्रत्ति आसुरी का लड़का था, भक्ति भाव नहीं भाये।।
ओमदत्त चरपाई अपनी, आश्रम में उठवा लाया।
सोता यहीं रेडियो बजता, गाँव एक दम तज आया।।
श्री राज जी के आश्रम में, चारपाई का आ जाना।
साथ साथ मन चाहा करना, और रेडियो बजवाना।।
हुआ अनादर श्री राज का, जहाँ आरती औ वंदन।
बजता रहे रेडियो हरदम, भद्दा लगा बहुत इकदम।।
जाँच लिया जब युगलदास ने, है सारा व्यौहार ग़लत।
ये सब यहाँ नहीं चलने पर, जो बोले होवै हुज्जत।।
अगर कहूँ मैं झगड़ पड़ेंगे, आप कौन होते हैं जी।
ओमदत्त उद्दण्ड बहुत था, उससे कहना ठीक नहीं।।
समझा नहीं मुनासिब कहना, सोचा तू मजादपुर जा।
ऐसी लीला यहाँ शुरू है, सारा चिट्ठा उन्हें सुना।।

सोमदत्त का धाम गमन

जैसी हो होतव्यता, तैसी मिलै सहाय।
ताय न आवै ताय पै, ताय तहाँ ले जाय।।

दास्तान इक दिन ले जाके, धरदी सदगुरू के आगे।
सुन कर बोले ओड़ आगया, बुद्धिदास से कह जाके।।
वह उनको चिट्ठी लिख देगा, फ़ौरन् खाट उठा लेवें।
जाकर पड़ें घरों में अपने, आश्रम को माफ़ी देवें।।
रोग लिये फिरता है ऐसा, जिसका बसकी नहीं इलाज।
हम फ़कीर क्या मतलब इससे, यह है राज रोग का काज।।
चर्णामृत प्रशाद है यहाँ तो, श्रद्धा जिसे वही लेगा।
उससे कहो जाय घर अपने, इतनी दवा कौन देगा।।
बुद्धीदास भी थे मजादपुर, मैं बोला ख़ुद ही कहदो।
तुम्हीं कहो तो और बात है, यहीं बुलादूंगा उनको।।
स्वयं कहा उनसे सदगुरू ने, बुद्धीदास लड़कों को लिख।
यह है इक स्थान नहीं घर, तेरे साथ लगा है दिक़।।
चारपाई ले जावै अपनी, भला इसी में है उसका।
ठहरे नहीं वहाँ इक पल को, यह घर श्री राज जी का।।
बुद्धिदास ने यों ही लिखदी, और ज़रा कुछ लिखदी सख़्त।
वह चिट्ठी जब आइ शेरपुर, गौरी आरती का था वक्त।।
युगलदास ने सोमदत्त के, कर में लाकर पकड़ादी।
महाराज जी ने भेजी है, साथ साथ यह भी कहदी।।
कर में लेकर बिना पढ़े ही, सोमदत्ते ने वह चिट्ठी।
दे करके मारी ज़मीन में, यह कहकर किसकी चिट्ठी।।
हमें नहीं आदत पढ़ने की, बड़ी आई चिट्ठी चलके।
हमें पता है क्या है इसमें, बोले वचन बहुत हलके।।
ग़रज़ अनादर किया पत्र का, और पत्र वाहक का भी।
अप शब्दों की की निछावरी, भ्रष्ट हुई मानो बुद्धी।।
पत्र नहीं, था हुकुम एक दम, हुकुम उदूली पर फाँसी।
दे देती सरकार तिमिर की, भला वहाँ क्यों हो माँफ़ी।।
हुकुम आलिया की मत पूछो, बड़ा मर्तबा है उनका।
वहाँ भाव पर भी गुनाह है, शब्दों का तो किस्सा क्या।।
परमधाम की परम प्रियाऐं, झेल रहीं किस कारण दुख।

कारण हुकुम न माना उनका, अब छिनाए बैठी हैं सुख।।
तलबगार अब सभी मेहर की, मेहर मेहर चिल्लाती हैं।
जब दुख की छाया पड़जाती, तो उससे थर्राती हैं।।
मेहर करो श्री सदगुरू प्यारे, रक्शा करो आन करके।
कान पकड़तीं नाक रगड़तीं, टेर रहीं रो रो करके।।
होकर द्रवित टेर पर उनकी, महाप्रभू यदि आते हैं।
तो उनसे व्यौहार ये होता, ऐसे हार चढ़ाते हैं।।
युगलदास हट लिया वहाँ से, इस प्रकार के लख आचार।
ठीक न जाना वहाँ बोलना, डर था हो न जाए तकरार।।
इक दो दिन के बाद बात जब, कुछ पुरान सी ले आई।
युगलदास ने सोमदत्त को, आहिस्ता से समझाई।।
आप मजाहिदपुर हो आवें, बुलवाया है सदगुरू ने।
बैठा दी दिमाग़ में उसके, जाना है हर हाल तुम्हें।।
अतः सोमदत जा पहुँचे वहाँ, आठ रोज़ तक रहे निकट।
खुली न लेकिन गाँठ ज़हर की, लगी हृदय के बीच विकट।।
दिवस आठवे लौटे घर को, कर सदगुरू से अपनी बात।
भोग भोगने को करनी का, अतः बढ़ा होनी का हाथ।।
सोमदत्त जी आए शेरपुर, की प्रणाम निज मंदिर को।
उसके बाद चले गए घर को, हुई तकलीफ़ वहाँ उनको।।
कुछ दिन पड़े रहे घर पर ही, दुख कुछ और उभर आया।
थोड़े ही दिन के अंदर दुख, आपे से बाहर पाया।।
ताक़त खिंचती गई जिस्म की, ढल सी ली काफ़ी काया।
इक दिन निकट सोमदत जी ने, परकाशी को बुलवाया।।
कुछ चाँदी की चीज़ और, नक़दी पचास की थी पल्ले।
परकाशी की डाल गोद में, सोमदत्त जी यों बोले।।
लो हिसाब, था आज तलक का, आगे जानै तेरा काम।
हम तो हैं बेबाक आज से, अपनी तो लो आज प्रणाम।।
परकाशी देवी बोली क्यों, अब हम से कुछ नंहि लोगे।
ऐसी बात कौनसी होगइ, घर अब कुछ नंहि रक्खोगे।।
इक गिलास पानी ले आ जा, कुछ ख़ुश्की सी है अंदर।
जो होगा सब दीख जाएगा, हो जायेगी आप ख़बर।।
परकाशी पानी ले आई, सोम दत्त को पकड़ाया।
एक घूँट पीकर बाक़ी को, वापिस उसको लौटाया।।
उसे पी लिया परकाशी ने, सोमदत्त ने जब देखा।
बोला यह क्या किया आपने, तुमने अच्छा नहीं किया।।

क्यों क्या हुवा प्रकाशी बोली, झूँट मना है क्या मुझको।
या मैंने ली नहीं कभी भी, जो अब ताड़ रहे हमको।।
सोमदत्त बोले परकाशी, आज पता लग जायेगा।
चमत्कार क्या है पानी में, धीरज रख दिख जायेगा।।
अन सुन कर चलदी परकाशी, जैसे सुना नहीं कुछ भी।
काम काज से फ़ारिग़ होकर, निज बिस्तर पर जा लेटी।।
सोम दत्त बोले परकाशी, आज हमारी कुछ सुनलो।
छोड़ो मोह आज बिस्तर का, निकट आनकर के बैठो।।
लड़की राजपियारी को, अपनी गोदी में ले करके।
घंटा तारतम्य जपवाया, अरज़ी बुलवाई हमसे।।
करी आरती सब से पीछे, फ़ारिग़ हो इन कामों से।
बिछवाया आसन नींचे निज, कहा तलै ही सोवेंगे।।
गोबर से लिपवाकर धरती, आसन उसपर लगवाया।
ज़रा देर ही लेटे होंगे, परकाशी को बुलवाया।।
खड़ी हुई जब आकर, बोले, सोमदत्त निज पतनी से।
क्षमाँ चाहता हूँ कमियों पर, हो गुज़री जो कुछ हमसे।।
आशा है माँफ़ी दे दोगी, भूल बहुत की हैं हमने।
तीन बार श्री प्रँणनाँथ जी, की जै हो, बोली उसने।।
आतम चली गई पिंजरे से, ख़ाली ही पिंजर पाया।
धाम गमन हो लिया पलक में, रह गई पड़ी हुई काया।।
कोलाहल मच उठा फेर तो, गाँव इकट्ठा हुआ तमाम।
किसपै रूका गया सुनकरके, सोमदत्त जी चलगए धाम।।
महाराज जी घर पर नंहि थे, भगे बुलाने उनको लोग।
पर मजादपुर भी नंहि थे वे, ऐसा कुछ आया संयोग।।
लोगों में ऐसी चर्चा थी, महाराज जब आ लेंगे।
जीवित करलें सोमदत्त को, हरगिज़ मरने नंहि देंगे।।
उनकी शक्ति पर श्रद्धा थी, हैं समर्थ सदगुरू महाराज।
ऐसा कभी नहीं हो सकता, रक्खेंगे इस घर की लाज।।
रूका पड़ा रहा दाह कर्म यों, जब तक महाराज आये।
चौबिस घंटे बाद एक दम, महाराज ख़ुद ही आये।।
उमड़ पड़े मानव सब उनपै, क्रंदन रूदन जाग उट्ठा।
महाराज जी उजड़ गये, यदि सोमदत्त हमसे बिछुड़ा।।
कृपा कोर के भूके हैं सब, अपनी मेहर करो हे नाँथ।
देखा नहीं जायगा हमसे, पिया बढ़ाओ अपना हाथ।।
इस प्रकार का रूदन देखके, महाराज बोले सब से।

ऐसा लगा सभी पागल हो, क्या कहते हो तुम हमसे।।
घर जाते को पागल रोते, इससे अधिक ख़ुशी क्या है।
मिला परातम से वह अपने, तुम्हें दुख्ख क्यों लगता है।।
उसने जान बचाली दुख से, मुश्किल उसका पिंड छुटा।
आप चाहते वापिस लौटे, कितना है विचार उल्टा।।
जाओ दाह करो अब शव का, पागल पन मत दिखलाओ।
बोल रहे उल्टी महारनी, संस्कार को ले जाओ।।
गिड़गिड़ाए मानव बहुतेरे, बड़ी प्रार्थना की सब ने।
किये काम हैं पिया तुम्हारे, जान बहुत बख़्शीं तुमने।।
औरों के जब काज सँवारे, क्या अपना नंहि करने के।
बोले ही जब चले गये तो, ताड़े धरके सदगुरू ने।।
सोम दत्त मेरा लड़का था, इस भ्रम से कहते हो क्या।
यह है भूल आप लोगों की, आप हमारे नंहि हो क्या।।
इन बातों में सार नहीं कुछ, अपना काम करो जाके।
चौबिस घंटे हो लिये उसको, बात कही यों झुँझलाके।।
अंतिम संस्कार तब बीता, यह चलावनी थी उसकी।
चालिस दिन में ओमदत्त भी, धाम गये है अपबीती।।
दोंनों लड़के चले गये यों, चालिस दिन आगे पीछे।
सदगुरू के घर का किस्सा है, सावधान होना सुनके।।
कोई नहीं बख़्शा जाता यहाँ, परधाम की सैर नहीं।
बड़ा अदल इंसाफ़ यहाँ है, दुष्कर्मों पै ख़ैर नहीं।।

दुनियाँ नहीं पाप का गढ़ है यहाँ न समझो ख़ैर।
कान दबाके वक्त काटले कर न यहां की सैर।।

मुलखराज बनारसो लाहौर

मुलखराज है नाम हमारा, हैं लाहौर निवासी हम।
और बनारसो देवी पतनी, पुत्र पिता के इकले हम।।
माता पिता अभी हैं सर पर, है मुलाज़मत पर र्निवाह।
जीवन यापन पेट पालना, करते रहते वे परवाह।।
धर्म कर्म किसको कहते हैं, केवल सुने सुने यह नाम।
आते जाते कहीं न थे हम, घर ही पर करते विश्राम।।
था विश्वास कमी में अपना, चिपका नहीं किसी से दिल।
ना ही इस जीवन में पहले, गुरू मिला कोई कामिल।।
आया उलट फेर कुछ ऐसा, हो गया इक तूफ़ान खड़ा।
मौत नाँचती फिरी नगन हो, सन् सेंतालिस का झगड़ा।।
रौ सा उठा उपद्रव इकदम, जानों के लाले देखे।
माता पिता और पतनी को, मैं भागा वहाँ से लेके।।
किस प्रकार निकला क्या बीती, यह है केवल मेरी बात।
इस चर्चा की नहीं ज़रूरत, ज्ञात है सब को वह उत्पात।।
मुझे सिर्फ़ कहनी है उतनी, जितनी से सम्बंध यहाँ।
अपना दुख रोना नंहि हमको, क्या क्या हमने किया वहाँ।।
आए सहारनपुर हम लेकर, हालत थी उस वक्त ख़राब।
आश्रय मुश्किल से मिलता था, कहीं न पाया ठीक हिसाब।।
चर्चा सुनी शेरपुर में है, एक महात्माँ का स्थान।
सुविधा वहाँ बहुत मिलती हैं, पहुँच जाए जो भी इन्सान।।
खाना कपड़ा और आसरा, पैसे धेलों की इम्दाद।
अति उत्तम हैं महापुरूष वे, सुनते हैं सबकी फ़रियाद।।
पहुँच गया मैं शरण उन्हीं की, देखा सत्य मिलीं सब बात।
वहाँ हज़ारों पाये हमसे, एक गाँव सा था आबाद।।
सभी वस्तु आवश्यक मिलतीं, जिसने भी जो जा मांगा।
वापिस कभी न लौटा कोई, मन चाहा लेकर आता।।
वस्त्र गाड़ियों बटते प्रति दिन, लंगर चलता ही रहता।
मनियों रसद रोज़ लगता था, रिफ़्यूज़ी आता रहता।।
दस दस बीस बीस के जथ्थे, मारे हुवे मुसीबत के।
बढ़ते तो रहते मानव पर, कम होने में नंहि आते।।
इतना बड़ा ख़र्च लखकर मैं, आश्चर्य से हुवा चकित।
यह धन प्राप्त कहाँ से होता, सोच सोच मैं हुआ चकित।।

आता दिखता न था कहीं से, जाता दीख रहा सब को।
सिले सिलाये कपड़े मिलते, पकी पकाई खाने को।।
न हो अचम्भा तो फिर क्या हो, समझ न हमको कुछ आया।
है ज़रूर शक्ति कुछ इनमें, हमने कुछ ऐसा पाया।।
श्रोत जगा हम में श्रद्धा का, बंधी आत्माँ से डोरी।
कुछ संबध जुड़ा अंतर से, था लेकिन चोरी चोरी।।
छोड़ गया सब को आश्रम में, फिर लाहौर गया मैं लौट।
माता पिता पतनी टब्बर सब, छोड़ा श्री सदगुरू की ओट।।
भय था अपनी नौकरियों का, छूट गई तो क्या होगा।
इस लालच से भागा वापिस, पता न था ऐसा होगा।।
फिर छिड़ गया भयंकर झगड़ा, रहा न कोई कहीं शुमार।
हम फंस गये मौत के मुंह में, बनने को थे यम आहार।।
जब तक निभी निंभाया हमने, पड़े जानके लाले फिर।
विवश लौटना पड़ा इधर को, हमको ट्रक लेकर आखिर।।

।। बनारसो देवी ।।

श्री चरणों में पती हमारे, हमें छोड़ कर चले गये।
साँस मिला कुछ हमें चैन का, बड़े प्यार में यहाँ रहे।।
सास ससुर ऐसे ढंग के थे, शीघ्र न लाते थे ईमान।
लेकिन चकित हुवे लखकरके, है सदगुरू में शक्ति महान।।
राजा भी नंहि झेल सकेगा, जो संभाल की सदगुरू ने।
बोझ न झिल सकता इतनों का, अजब करश्मा मिला हमें।।
देख देख में स्वयं चकित थी, आता नज़र नहीं आता।
जाने को सौ राह दीखते, भेद नहीं जाना जाता।।
इस उधेड़ बुन में रहती थी, घुसकर देखूँ अंदर से।
मौके की तलाश में थी मैं, मिला एक दिन क़िस्मत से।।
करने को स्नान चले श्री, महाराज जी जब प्रातः।
घुसे गुसलख़ाने के भीतर, मुझ को ताली पकड़ाके।।
एक माँगने आया चादर, मुझको भी मौक़ा पाया।
चाबी हाथ हमारे थी ही, घर खोला ख़ाली पाया।।
एक बक्स ख़ाली था वह भी, और न कुछ उसमें सामान।

कौतूहल सा हुआ ह्रदय में, समझी थी कपड़ों की खान।।
कपड़ा बर्तन और रूपइये, सभी यहाँ से जाते हैं।
लेकिन यहाँ आज नंहि कुछ भी, कहाँ से ले पकड़ाते हैं।।
ख़ूब तलाशी ली मैंने भी, पाया घर का घर ख़ाली।
दाँए बाँए औ ऊपर नींचे, ख़ूब नज़र मेंने डाली।।
पर निराश ही लौटी बाहर, सदगुरू निपट चुके न्हाकर।
माँग पुनः दौहराई उसने, मांग रहा था जो चादर।।
अंतरयामी थे सदगुरू तो, जान गये सब मेरी बात।
आए पहनते कुरता बाहर, चाबी देखी मेरे हाथ।।
कहने लगे इसे चादर दे, तुझ पै है मेरी ताली।
मैं बोली उसमें तो कुछ नंहि, सभी कोठरी है ख़ाली।।
आँख निकाली श्री सदगुरू ने, ख़बरदार ऐसे मत कह।
है भण्डार श्री सदगुरू का, होगा कभी न ख़ाली यह।।
तेंने कब देखा जो पगली, ख़ाली इसे बताती है।
इस प्रकार तू झूँट बोल, सदगुरू को दाग़ लगाती है।।
हमें दिखा चल किधर है ख़ाली, चले लपक कर गुरू महाराज।
अभी देखकर तो निकली हूँ, झूँट नहीं कहती महाराज।।
ताली हाथ लगी तो तूने, सभी निरीक्षण कर डाला।
द्वार पहुँच कर बोले मुझसे, ख़ाली दिखा, खोल ताला।।
बड़े ताज्जुब में थी उस दम, अभी अभी तो देखा है।
महाराज कैसे कहते हैं, कभी न खाली रहता है।।
है अवश्य कोई ग़लती में, या तो मैं या ये ही आज।
भली परिक्षा हुई आज यह, हम देखें कैसे महाराज।।
मेंने ख़ुद वह ताला खोला, संकल खोल दिया धक्का।
अंदर खोल दिखाया जिसदम, पुर था वस्त्रों से बक्सा।।
चादर ही चादर थी उसमें, बोले देख इधर क्या है।
भरा हुआ है या ख़ाली है, यह सदगुरू का बक्सा है।।
जा क्या लेगी इन्हें परख के, चादर उठा उसे दे दे।
ख़बरदार शक किया कभी फिर, रखना गुप्त कभी कहदे।।
मैं आवाक् सी खड़ी रह गई, शब्द न मुंह से निकला एक।
मेरा मुंह नन्हा सा रह गया, चेहरे पर विस्मय की रेख।।
चादर एक उठाकर देदी, चुपके से बाहर निकली।
करी न चर्चा कहीं किसी से, फिरी भरी हुई मैं इकली।।
यही हाल निकला गल्ले का, मैंने पूछा गुरू महाराज।
इतना रसद रोज़ लगता है, आता कभी न देखा नाज।।

कहाँ आपने भर रक्खा है, जगह हमें दिखलादोगे।
काम करो जाओ अपना बस, उसे देख के क्या लोगे।।
कभी समय पर दिखला देंगे, उसी शाम को एक गधा।
आता देखा लधा नाज का, मन में सोचा दाव लगा।।
जब अंदर डालेंगे जाकर, उसी वक्त घुस जाऊंगी।
अंदर क्या क्या भरा हुवा है, सभी देखकर आऊंगी।।
महाराज जी को बुलवाया, कोठारी ने जा कर के।
खुलवाया ताला कुठार का, श्री सदगुरू ने आकर के।।
जब कुठार के अंदर बोरी, चली गई मैं भी पहुँची।
लगी झाँकने टंकी में मैं, महाराज जी ने रोकी।।
लड़की क्या लेती है इसमें, घुसी किस लिये तू अंदर।
यहां सिर्फ़ कोठारी आता, और सभी रहते बाहर।।
है अनधिकार चेष्टा तेरी, इम्तहान लेती फिरती।
तुझे नहीं दीखेगा कुछ भी, क्यों मारी मारी फिरती।।
ये धंधा है महात्माओं का, पहले इनके बनो गुलाम।
जान जाओ फिर बिना जनाऐ, बिना बने है टेढ़ा काम।।
हंसते हंसते आए निकलके, मैं भी साथ साथ निकली।
यह है खेल चमत्कारों का, उस दिन हमको पता चली।।
तली तली में नाज मिला बस, ख़र्चा कई मन रोज़ाना।
नज़र न आता लाने वाला, लेकिन पूरा हो जाना।।
यही बात थी विस्मय की बस, चक्कर में थे जिसके हम।
पर चक्कर ये ख़त्म हुवा अब, जान गये कुछ कम से कम।।
सास ससुर भी श्रद्धा लाये, महाराज जी के ऊपर।
सदगुरू महापुरूष हैं बेशक, कहते मौक़े मौक़े पर।।
ख़र्च संभाले हैं इतनों का, बड़ी बात है इन्हें यही।
बाहर से देखा सदगुरू को, भीतर समझा नहीं अभी।।
भ्रगू संहिता वाले ने इक, डाल दिया था शक हमको।
मुलखराज की उम्र नहीं कुछ, ज्योतिष कहती है हमको।।
धुन सा तो लग गया हृदय में, सुनी ज्योतिषी की जब बात।
पर यह भी मैं सोच बैठती, ज़्यादा होती हैं बकवास।।
सत्ताइस तक आयु बताई, आगे उम्र न चलती है।
है प्रमाँण ज्योतिष के ऐसे, लेष न इसमें ग़लती है।।
छिपी रही यह बात मुझी में, वक्त न आया था बोलूँ।
बात ज्योतिषी ही की थी बस, और किसी पै क्या खोलूँ।।
पता लगा कुछ दिन के भीतर, उठा उपद्रव फिर लाहौर।

नष्ट हो चुके सारे हिन्दू, उस दिन हुआ हमें कुछ ग़ौर।।
वर्ष सत्ताइसवाँ चालू था, साल ख़ात्मे पर ही था।
मेरे अंदर लगी उचाटी, धक्का सा इक साथ लगा।।
सास ससुर से भी चर्चा की, वे भी सुन तिलमिला उठे।
मुझ को ऐसी लगी चोट सी, रोती थी चुपके चुपके।।
चारा नहीं चला जब कोई, जा थामे सदगुरू के पाँव।
क्यों अनाँथ करते हो हमको, उजड़ जांएगे हमें बचाओ।।
काट मार लाहौर हो रही, और फंसे हैं वे उसमें।
सदगुरू प्रांण बचादो उनके, भूल न सकती कभी तुम्हें।।
साफ़ कह दिया वह न बचेगा, उसकी आगे उम्र नहीं।
उस पै चक्कर बड़ा विकट है, जहां जयगा मरै वहीं।।
सास ससुर जा चिपटे पग से, रो रो की उनसे फ़रियाद।
उजड़ जांएगे एक पूत है, करदो प्रभो हमें आबाद।।
गर्भवती थी उन्हीं दिनों में, झट चक्कर आ जाता था।
बच्चा होने में कुछ दिन थे, हाल बिगड़ता जाता था।।
कह कह थके सभी हम उनसे, पर इकदम करते इन्कार।
मेरे चैन कहाँ मेरा तो, लुटने वाला था संसार।।
जब भी समय मिला करता मैं, चिपट चरन से जाती थी।
जो भी कुछ मेरे मुंह आता, बेखटके कह जाती थी।।
एक रोज़ ऐकान्त देखकर, मैंने उनके चरण गहे।
आज आपसे पति लूंगी मैं, इस प्रकार के बोल कहे।।
या फिर मुझे युक्ति बतलाओ, दिन व्यतीत होंगे कैसे।
उसी तरह से काटूंगी दिन, हुकुम हमें दोगे जैसे।।
सास ससुर हैं वृद्ध आयु के, मैं ठहरी नारी जाती।
मेरा वक्त कटेगा कैसे, मुझ को समझ नहीं आती।।
जीवन शेष पड़ा है सारा, मुझे प्रभू बतलादो ठौर।
शरण अगर दी तो पूरी दो, कोइ नहीं है अपना और।
होते हुवे आपके सदगुरू, लुट गया मेरा अगर सुहाग।
कौन पतित पावन जानेगा, कौन करे चरनन अनुराग।।
समझ गई हूँ कुछ तो तुमको, कुछ तुम ख़ुद जनवाओगे।
अब तक हमें बचाया, क्या, आगे अब नहीं बचाओगे।।
बोले, आज इरादा क्या है, क्यों तू गले लिपटती है।
अरी लेख हैं ये विधना के, उन्हें मिटवाना चाती है।।
कभी हुआ है क्या ऐसा जो, तेरे लिये घटेगा आज।
मैं कुछ नहीं जानती आगे, करना है तुमको महाराज।।

या तो आज करोगे रक्षा, या फिर मेरे प्रॉंण हरो।
छांट आपकी कुछ भी छांटो, जो हो इच्छा वही करो।।
दर दर फिरने से बेहतर है, निकलें इस ही दर पर प्रांण।
प्रांण प्रांण से बच जाऐं तो, सदगुरू मेरे लेलो प्रांण।।
मुलखराज के प्रांणों को यदि, प्रांण हमारे बचवादें।
बड़े हर्ष से निज प्रॉंणों को, उनके बदले भिजवादें।।
उनके बिना न रह पाऊंगी, सदगुरू सत्य बताती हूँ।
निज प्रांणों को आज दाव पर, उनके लिये लगाती हूँ।।
चेहरे की मुद्रा कुछ बदली, महाराज जी की सुनकर।
बोले ज़रा सोच लें अब कुछ, चली जाओ अब तुम उठकर।।
लख अपने अनुकूल भाव को, उठी चरण का चुम्बनकर।
चेहरा बदल गया सदगुरू का, चली वहां से मैं उठकर।।
बोले नहीं किसी से सदगुरू, मेरी बातों के पश्चात्।
रहे जागते महाराज श्री, और इधर में भी उस रात।।

।। <u>मुलखराज लाहौर</u> ।।

मैं टब्बर को छोड़ शेरपुर, वापिस जब पहुँचा लाहौर।
तो कुछ ठीक नहीं लगते थे, हिन्दू मुसलिम के तिलतौर।।
बढ़ता गया तनाव रात दिन, रह न सके मिल आपस में।
मार काट आरम्भ हुई फिर, बचना दीखा हमें महाल।
सोचा निकल भागना हमने, बुरा नज़र जब आया हाल।।
ट्रक वाले से बात करी इक, किसी जतन से हमें निकाल।
काफ़ी उसमें चले बैठकर, दिया उसे मुंह मांगा माल।।
ट्रक भागा हमको लेकर के, निकले कई जगह बचकर।
मौत सरों पर मंडला रही थी, वक्त बड़ा नाजुक हमपर।।
कुछ गुण्डों ने चाहा पकड़ें, पीछे मोटर में भागे।
ड्राइवर अपना बड़ा तेज़ था, भागे चले गये आगे।।
हाथ नहीं हम आये उनके, बाडर के जब लगे क़रीब।
मोटर से मोटर से टकरा गई, फूटे सब के यहाँ नसीब।।
अपनी मिची आँख इकदम से, रहा न बाक़ी होश हवास।
आया होश तो पाया खुद को, पड़ा हुआ झाड़ों में ख़ास।।

चोट नहीं थी कहीं जिस्म पर, सोचा अरे बचा कैसे।
बंदा एक बचा नंहि जिंदा, मैं जो बचा बचा कैसे।।
मोटर जब टकराने को थी, ऐसा हुआ प्रतीत हमें।
कंधे पर धर करके जैसे, फेंक रहा है कोई हमें।।
फिक चुकने के बाद कहीं, मोटर से मोटर टकराई।
पड़ा झाड़ में मैं जाकर के, जान इस तरह बच पाई।।
आते आते होश, कार इक, खड़ी हुई आकर के पास।
एक व्यक्ति निकला उसमें से, ठीक कराये होश हवास।।
बोला ऐक्सीडैन्ट की सुनकर, अमृत सर से हम आये।
अब हम आ पहुँचे घबरो मत, हमें उठाकर ले आये।।
छोड़ दिया अमृतसर लाकर, साथ रेल में बिठलाया।
जान बचाकर इक प्रकार में, शहर सहारनपुर आया।।
छोटी लैन बैठ ननौता, पा प्यादा चल पड़ा उतर।
धीरे धीरे चला वहाँ से, थका थकाया नहर नहर।।
पिटा हुआ कुछ तो आफ़त का, कुछ थकान थी मंज़िल की।
चलना पड़ा इधर पैदल कुछ, थी अजीब हालत अपनी।।
वहीं नहर पर एक पेड़ की, छाया में मैं बैठ गया।
थोड़ी देर थकन सी तारूँ, सोच घास पर लेट गया।।
दबा लिया निद्रा ने इकदम, तत्पश्चात् स्वप्न आया।
महाराज श्री रामरतन को, सन्मुख खड़े हुवे पाया।।
करूणा कर बोले, थक गए क्या, मुश्किल से लाये बचवा।
अब जंगल में पड़ गए आकर, यहाँ न देना कुछ लुटवा।।
चलो उठो हम ले चलते हैं, हाथ पकड़ कर उठा लिया।
अपना सब सामान उठा ख़ुद, आगे आगे हमें किया।।
आई जड़ौदे की कोठी जब, धर सामान अलोप हुवे।
खुली आँख तो कोठी पर था, बड़े ताज्जुब हुवे मुझे।।
फेंका ट्रक से जिसदम बाहर, ध्यान नहीं था पूरा जब।
क्यों के था वो वक्त और ही, किन्तु होश है अब तो सब।।
सोया कहाँ कहाँ आ जागा, मेहर नहीं तो फिर क्या है।
उठा लिया सामान तत्क्षण, सदगुरू की सब किरपा है।।
अनुभव अब प्रत्यक्ष हुआ ये, दूर बहुत थे उनसे हम।
जब लेकर सामान चले तो, तनिक नहीं थी हमें थकन।।
उधर स्वप्न आया संतो औ, मुलखराज के बापू को।
जल में है तूफ़ान ज़ोर का, उसमें देखा सदगुरू को।।
बुला रहे हैं जाने किसको, कह रहे हैं थोड़ा ठहरो।

एक व्यक्ति है अपना इसमें, उसको ज़रा निकलने दो।।
करते थे चर्चा आपस में, दोनों उठकरके प्रातः।
था दोनों का स्वप्न एक सा, सदगुरू पहुँचे उधर स्वतः।।
संतो को बोले जा तेरा, रात निकल आया लड़का।
ताल मेल मिल गई स्वप्न की, यही वहां भी था झगड़ा।।
महिमा महा आपकी सदगुरू, बात आपकी और महान।
महिमां से भी आप महा हो, कोई न कर सकता गुंण गान।।

भूरे खाँ पठान कल्लन हेड़ी
शेरपुर के पास

भूरे खाँ है नाम हमारा, कल्लन हेड़ी अपना ग्राम।
अव्वल सजदा खुदाबंद को, उम्मत को वादस्त सलाम।।
मैं भी ज़ेर साए मुरशद के, पड़ा हुआ हूँ दुनियाँ में।
रहमत पर ज़िंदा हूँ इनकी, क़दमों में दी जगह मुझे।।
ज़िक्र हमें करना है कुछ, सवाने उम्री पर उनकी।
करामात देखे हमने भी, घटना है बिलकुल सच्ची।।
मेरी लड़की की शादी पर, लोगों ने दी मुझे सलाह।
दावत दो बारह गाँवों को, चोटी का करना है ब्याह।।
उक्सा दिया, मुझे लोगों ने, ताकि आबरू होवै ख़्वार।
हमें तजुर्बा कम था तासे, कर बैठे उनके अनुसार।।
बहक गये बहकाये उनके, सोच न पाये हम अंजाम।
कितना ख़र्च उठे दावत में, न्यौते बारह गाँव तमाम।।
जीवन में पहला मौक़ा था, इस प्रकार के साहस का।
नाई भेजा चिट्ठी देकर, अगला दिन था दावत का।।
रात रात में लोग मुख़ालिफ़, गाँव गाँव समझा आये।
सब चलना दावत में कलको, हर इक को उकसा आये।।
काम छिड़ा इज़्ज़त जाने का, उठी छान सी हौनी की।
अपनी जूती अपने ही सर, अपने ही हाथों मारी।।
सुबह लगा तांता लोगों का, जब घर आँगन भरे तमाम।
बेशुमार लखकर लोगों को, लगे ख़तम होने औसान।।
घर इतना सामान कहां था, जो कारज को भुगतादे।
कोइ न था सहयोगी अपना, जो कि सहारा लगवादे।।
मुरशद रामरतन साहिब की, ऐन वक्त पै आई याद।
बारह गाँव किये आमंतित, छेक दिये तेंने ये साध।।
मैं भागा इकदम आश्रम को, महाराज मिल गये वहीं।
बीत रही थी मुझ पै जो तब, ज्यों की त्यों वो सभी कही।।
हम में इतनी शक्ति कहाँ थी, छेड़ दिया हमने जो काम।
हाथ आपके है अब इज्ज़त, नाम करादो या बदनाम।।
यज्ञ कर रहा है तू तो, फिर भी इतना घबराता है।
बुरा काम तो किया नहीं कुछ, फेर मरा क्यों जाता है।।
बुरे काम बिगड़ा करते हैं, भले ख़ुदा के बल चलते।

अगर भरोसा रक्खा उसपै, भारी बन जावें हलके।।
दीं दो अगर बत्तियाँ लाकर, साथ साथ इक आसन भी।
जगह ठीक करलो चल करके, रसद और भण्डारे की।।
बुद्धिदास को भेज रहा हूँ, मुरशद पर रक्खो विश्वास।
आगे की मत सोचो तुम कुछ, भूरेखाँ मत बनो उदास।।
मैंने बोसा लिया क़दम का, वे निधियाँ लेकर भागा।
पड़ा हुआ था सोया सा कुछ, लगा कि जैसे अब जागा।।
जगह पाक करवाई चलके, रसद और भण्डारे की।
इतने महाराज जा पहुँचे, पेशवाई की प्यारे की।।
कहा हमें जाते हि घुमांदो, अपने उन उन ठौरों पर।
जहाँ धरा जावेगा पारस, या कच्चा कोठार जिधर।।
था दो कड़िया भण्डारे का, चारों ओर फिरे उसमें।
बैठे आसन डाल वहाँ पर, जगवाया दीपक उसमें।।
दीपक जलना है अखण्ड यह, भण्डारी को किया सचेत।
घुसे न कोई और यहाँ अब, अगर बत्तियाँ रखना चेत।।
भट्टी से पारस यहाँ आवे, यहाँ से बरताओ सब को।
शक क़तई मत लाना मन में, जानो आज यहाँ रब को।।
लोगों को खिलवाओ आप तो, जो भी भाई यहाँ आवै।
कहदो सब को चले आंए अब, भूका जाने ना पावै।।
पकड़ो काम जिमाने का बस, पीछ का अब करो न ध्यान।
पूर्ण करें मुरशद सब कारज, उन चरनों में कमी न जान।।
कृपा चरण पधरा कर सदगुरू, चले गये वापिस आश्रम।
बरकत छोड़ी भण्डारे में, देख भाल के लिये करम।।
चली भट्टियाँ छः चावल की, चला जिमाने का भी काम।
गये खटाखट लोग निमटते, आए जो खाके गये तमाम।।
इस प्रकार की बरकत देखी, जो चुन पुन था उस ही में।
छत्तिस घंटे चला जीमना, छक छक खाया लोगों ने।।
बची आबरू इनके बल पर, उस दिन से जाना इनको।
करामात है इनपै कोई, साफ़ नज़र आई हमको।।
तब से निकट लगे ज़्यादा हम, जब भी जाते उनके पास।
मुसल्मान किसको कहते हैं, किसको कहते अल्ला पाक।।
ज़िक्र मौहम्मद मौमिन का बस, अहमद मंहदी और इमाम।
नबियों ने क्या दिया दुनी को, उतरा क्यों कर रब्ब कलाम।।
राज़ उगलते रहते बैठे, हम तकते रहते सूरत।
सदा तज़करे मुसल्मान के, कहने को हिन्दू मूरत।।

हमें ताज्जुब होता मन में, क्या ये सब सच कहते हैं।
अल्ला ताला के वकील क्या, इनके धोरे रहते हैं।।
यह शंका उपजी बस मन में, रफ़ा हुआ इक दिन यह शक।
उस दिन से मुरशद को जाना, रब्बुलाल्मीं हैं मुतलक़।।
पानी पर था एक रोज़ मैं, आश्रम के लगवाँ है खेत।
अर्ध रात्री बीत चुकी थी, सोचा चल आश्रम में लेट।।
सिर्फ़ झोंपड़ी थी केवल तब, काँटों की चौतरफ़ा बाढ़।
थोड़ी जगह घेर रक्खी थी, बाक़ी था वीरान उजाड़।।
लकड़ी थीं दो गड़ी बाड़ पर, जाते उसे लांघ कर लोग।
घुसे न जिससे डंगर अंदर, इक प्रकार की समझो रोक।।
मैं उस लकड़ी को लंघ करके, जब पहुंचा कुटिया के पास।
मेरा दम नींचे का नींचे, ऊपर का पहुँचा आकाश।।
टुकड़े तीन मिले मुरशद के, पैर और धड़, सर न्यारा।
उछल उठा दिल हाथों मेरा, निकला कौन ये हत्यारा।।
किसने काट दिया मुरशद को, खड़े रोंगटे हुवे तमाम।
कभी तुम्हारे सिर लग जावे, भाग बचाकर अपनी जान।।
मुसल्मान हिन्दू का झंझट, कभी गले पड़ जाए कहीं।
यह हिन्दू मैं मुसल्मान हूँ, बात न यह छिड़ जाए कहीं।।
ग़ालिब हुई विकट इक दहशत, विकट वहां था सन्नाटा।
कटी पड़ी थी ल्हाश इधर इक, मार रही दहशत चांटा।।
सरक लिया धीरे से उल्टा, दहशत का मत पूछो हाल।
जान लबों पर थी बस मेरे, दीख रहा मुझ को भी काल।।
बाहर होते ही भगले घर, लौट पड़ा यों उलटे पैर।
आज नहीं रहना जंगल में, समझी, नहीं जान की ख़ैर।।
चला गया हटता उल्टा ही, कमर लगी जब लकड़ी से।
तब मेंने मुंह उधर घुँमाया, सोचा बस भगले यहाँ से।।
दीखा जो मुड़ते ही मुझ को, और मुसीबत में घेरा।
खड़े मिले महाराज सामने, हाल न पूछो बस मेरा।।
भूरे आज मौत है तेरी, चींख निकलने ही को थी।
घिघ्घी सी बंध गई हमारी, ख़ून हुआ, पानी पानी।।
किधर चला हमको यों तजकर, मुरशद की आई आवाज़।
अपने पैरों चला जायगा, क्या लेकर तू मेरा राज़।।
चलो वहीं वापिस कुटिया पर, जलीं मशालें सी आंखें।
भूरे मारा गया आज तू, वापिस नंहि जाता बचके।।
हम में दम का निशाँ नहीं था, कठ पुतली सा था बस मैं।

नांच उठा उनकी उँगली पै, होश न अपना तनिक हमें।।
जिन्नातों में समझा ख़ुद को, रूहों का मजमां जाना।
जां बख्शी की सूरत कुछ भी, नज़र न थी मन ने माना।।
साथ हुकुम के लौटा वापिस, समझा है मुरशद की रूह।
उधर तीन टुकड़े दिख रहे थे, आश्रम लगा भूतिया व्यूह।।
भूरे ख़ैर नहीं अब तेरी, बचना तेरा आज महाल।
कहाँ ले आई शामत तेरी, दीखा बड़ा विकट जंजाल।।
पहुंच लिया में जब कुटिया पै, मुरशद बोले यहीं रूको।
इस हालत में कोइ आज तक, देख नहीं पाया हमको।।
हिलना नहीं यहां से तब तक, जब तक हम ना कहें तुम्हें।
हमने हां करली सुनते ही, जो कुछ चाहा मुरशद ने।।
पैर और सर जोड़े धड़ से, मुरशद हो गए अंतरध्यान।
उठ बैठे तीनों टुकड़े जुड़, लौट आइ फिर उनमें जान।।
बोले महाराज उठकरके, भूरे तुमने बुरा किया।
ऐसे वक्त आए आश्रम में, इस हालत में देख लिया।।
चलो ख़ैर जो हुआ हुआ सो, पर अब जब तक दम में दम।
राज़ हमारा राज़ रहे यह, जब तक हैं दुनियां में हम।।
बात खुली गर कहीं हमारी, कहते हैं हम करो यक़ीन।
जैसे टुकड़े देखे अपने, मिलें तुम्हारे टुकड़े तीन।।
ताला देलो अभी ज़बाँ को, कभी न ग़फ़लत हो समझे।
वरना बख़्शे नहीं जाओगे, यह ताकीद करी हमसे।।
झट बोसा लेकर क़दमों का, सर पर धर कर अपने पैर।
भाग लिया मैं, घर आश्रम से, गया मनाता अपनी ख़ैर।।
लिया गाँव में जाकर के दम, इतना था सर ख़ौफ़ सवार।
कई रोज़ तक सच्च जानना, आया हमको तेज़ बुख़ार।।
कई रात भय से नंहि सोये, वही नज़ारा आ जाता।
रहता नित आंखों के आगे, भुलवाया भी ना जाता।।
परेशान रहना ही था यों, हो न पाए कहकर हल्के।
बीझन सी अंदर रहती थी, सोचा पूछ वहीं चलके।।
एक रोज़ मैं दिन में पहुँचा, शंका थी अंदर काफ़ी।
निकल न जाये जब तक ये सब, भला कहाँ तब तक माँफ़ी।।
पाकर के ऐकान्त क़दम पर, रख करके मुरशद के मांथ।
मैंने अपने भीतर की जो, थी सो खोली आगे बात।।
है हलचल ही हलचल अंदर, रात और दिन हमें न चैन।
आप कौन हो उस दिन क्या था, यही लगन रहती दिन रैन।।

पर दहशत से पूछ न पाते, आते भी घबराते हैं।
दीख गया उस दिन क्या हमको, वही जानना चाहते हैं।।
क्या लोगे यह बात जानके, तुमने तो सब देखा है।
एक नहीं हम तीन पुरूष हैं, हम तीनों में ऐका है।।
हमें मौहम्मद समझो बस तुम, ख़तम न हो पाई थी बात।
हुआ हमें दीदारे मौहम्मद, बैठे वहीं साथ के साथ।।
साँप काँचली में ज्यों रहता, मँहदी में जैसे लाली।
निकल गये सारे शक इकदम, छटा देख कमली वाली।।
कृष्ण बने फिर बाद मौहम्मद, जल्वा अजब क़िस्म इस बार।
मुरली मुकुट और पीताम्बर, गल में है बैजंती हार।।
इसके बाद बहुत ही सुंदर, सूरत सन्मुख इक आई।
नज़रें लख भोंचक्की हो गइ, ये थे सब ही के साँई।।
दब गया एक बटन सा इकदम, रह गए राम रतन साहिब।
या हम रह गए बैठे इकले, हो गए सब जल्वे ग़ायब।।
रहा न अंदर मैल तनिक अब, हैं अल्ला ताला सरकार।
रहमत ही समझो यह हमपर, बिन कसनी पाया दीदार।।
बोसे पर बोसा क़दमों का, औ नियाज़ पर दई नियाज़।
देखा अजब मर्तबा मुर्शद, नज़रों नज़रों पढ़ी नमाज़।।
बंदगियों पर करी बंदगी, माँगी बख़्शिष की ख़ैरात।
दीख गया हमें साफ़ तौर से, इन क़दमों में छिपी हयात।।
भूरे की लो ख़ुदा बंदगी, रूह क़ब्ज़ हो जब अपनी।
ख़्वाहिश है तो बस इक यह है, क़दमों में रखना अपनी।।

बीतक
श्री पुजारी हरिदास जी

।। निज मंदिर मजादपुर ।।

महाराज जी थे मजादपुर, मंदिर जब तक न था कहीं।
एक चौंतरे पर कुटिया थी, आजाते थे लोग वहीं।।
हम भी धीरे धीरे लग गए, जाने श्री सदगुरू के पास।
समझ सुमझ तो थी नंहि तब कुछ, सुनते रहते उनकी बात।।
पहुंचे गुनों, काम भी कोई, यदा कदा बतला देता।
हमें होंस सी लगती करते, भाग भाग कर कर देता।।
इक दिन मुझे चमेलासिंह ने, कहा बुलाके अपने पास।
ले यह दूध दे आ सदगुरू को, दिया हमारे हाथ गिलास।।
हम तो चाहा ही करते थे, कोइ हमें बतलावे काम।
अतः दूध लेकर जब पहुँचा, दर में ही हुआ काम तमाम।।
बंगले में गद्दी पर नज़रें, पड़ते ही मत पूछो हाल।
बड़ी सुघड़ छवि बाल मोहिनी, अंखियों पै रही जादू डाल।।
पैर द्वार पर ठिटके लखकर, झिझका दिया मुझे भय ने।
जाग उठी जानें क्या माया, कभी न जो देखी हमने।।
क्षण में फिर श्री सदगुरू दीखे, भय ढीला सा पड़ा तनिक।
चढ़ा अगाड़ी को उन्हें लखकर, पर अंदर थी वही झिझक।।
क़दम चार छः बढ़ते ही फिर, उससे भी बढ़कर दीदार।
उससे अधिक ज्योति जग उट्ठी, था किशोर छवि का आकार।।
लेकिन था इस बार मुकुट सर, चका चोंद का क्या कहना।
अब के इस प्रकार की छवि थी, कठिन हुआ उसका सहना।।
क्षण उपरान्त फेर सदगुरू ही, रह गये आसन पर।
हम थर्राय देखकर उनको, चढ़ बैठा भय सा हमपर।।
पिटे हुवे से खड़े हुवे थे, हम में शक्ति न हिलने की।
लाओ दूध कहकर जब माँगा, तब अपनी हालत बदली।।
डरते डरते दूध थमाया, पीकर जब लौटाया ग्लास।
कह मत देना कहीं बात ये, करी हिदायत हाथों हाथ।।
हम भग छूटे ग्लास उठाकर, अच्छा जी कहकर उनसे।
लेकिन ज़प्त न कर पाऐ हम, झिली न लीला यह हमसे।।

बाहर जाते जाते मन ने, तय कर लिया बतादे बात।
अंदर तुझे द्रश्य यह दीखा, कृष्ण बने सदगुरू साक्षात्।।
जब चमेलसिह आदिक के, सन्मुख मेंने कहना चाहा।
पड़ी कमर में लात हमारे, अभी तुझे था समझाया।।
हज़म ढाइ सर कर लेता है, ढाइ बोल ना कर पाया।
सीधा होता चला गया मैं, फिर न हमारे लब आया।।
महाराज जी तो अंदर थे, निकले न थे अभी बाहर।
खाकर मार लात की उनकी, मुझे बड़ा आया चक्कर।।
बेटा साधारण नंहि सदगुरू, अंदर बैठे मार रहे।
उस दिन उन्हें समझ पाया कुछ, तब से हम हुशियार रहे।।
बहुत दिनों के बाद शेरपुर, मेले पर जा पहुँचा मैं।
अब कै थी इच्छा सेवा की, अतः लगा मैं सेवा में।।
पकड़े भारी काम वहाँ के, जिनका ताक़त से सम्बंध।
रैन दिवस की करी न परवा, जुटे रहे हम अंधा धुंध।।
लेकिन बड़ा ताज्जुब होता, हमें थकन नंहि होती थी।
ताक़त अधिक काम करने की, हम में बढ़ती जाती थी।।
किसी कार्यवश महाराज से, मैं सलाह लेने पहुँचा।
भवन तारतम में जाकर के, आसन को ख़ाली देखा।।
लेकिन फिर भी की प्रणाम, मैंने आसन को जाकर के।
गुट्टू झट दो लगे कमर में, देखा सर ऊपर करके।।
तू मरेगा : इस प्रकार के, शब्द आए झट गादी से।
भौंचक्का हो करके देखा, कौन बोलता है हमसे।।
चारों ओर लखाया भी मैं, बोल पड़े जब ये कानों।
मेरा हाल अजब सा हो गया, पागल सा हुआ सच जानो।।
आश्चर्य की रही न सीमाँ, टूट पड़ा पुल श्रद्धा का।
हैं श्री सदगुरू हाज़िर नाज़िर, किससे दूँ इनकी उपमाँ।।
पहुँच गया मैं उसी रात को, चरण दबाने सदगुरू के।
कूल्ह रहे थे महाराज जी, जैसे पड़ा कोइ थक के।।
कैसे कूल्ह रहे हो मैंने, जाते ही उनसे पूछा।
क्या बतलादें भाइ तुम्हें हम, क्या अपने संग क़िस्सा।।
बहुत मना करते हैं हम तो, साथ मानकर नंहि देता।
उतना करो हो जितना बसकी, लेकिन कोइ नहीं सुनता।।
उनकी थकन हमें दहती है, सारी रात चींसता गात।
आने लगा समझ मतलब, सदगुरू से सुन इतनी बात।।
हमें थकन क्यों नंहि होती है, हल्के लगते सारे काम।

बोरी हल्की लक्कड़ हल्के, हल्के भारी वज़न तमाम।।
ये करते हैं हम में वड़कर, आज समझ हमको आई।
सेवादार नाम के हैं हम, आप करें अपना भाई।।
रोने लगा चरण गहकर मैं, महाराज जी मांफ़ करो।
आप आप हैं हम हम ही हैं, शरमिंदा मत हमें करो।।
काम करो तुम नाम हमारा, ज़ोर न पड़ने देते हो।
जोर सभी सहते ख़ुद पर, हम पर नंहि पड़ने देते हो।।
अगर न ऐसा करें यहाँ हम, तुझ से यहाँ मरे पावें।
सदगुरू ही को है सर्मथ यह, काम सभी के चलवावें।।
भाव बना रह जा साथ को, उधर काम हो जाता है।
सेवा हम कर आए वहाँ कुछ, सब का मन रह जाता है।।

सोंपा हमने उसी क्षण सदगुरू को सर्वस्व।
चूल्हे में झोका सकल अहंकार अपनत्व।।

हमको मौक़ा दिया शेरपुर, सदगुरू ने रूक जाने का।
था मंजूर उन्हें कुछ हमको, क्या हैं हम जतलाने का।।
आ पहुँचा वहाँ एक महात्माँ, काफ़ी रोज़ रहा आश्रम।
मुकुट बांधकर घूंमा करता, देखा करते उसको हम।।
कभी कभी मुरली भी लेकर, हमें बजाकर दिखलाता।
हमीं कृष्ण हैं जैसे, हमको, तरह तरह से समझाता।।
हम पै असर न होता तिलभर, हमें न भाता फूटी आँख।
कभी फाड़ मुंह भगता पीछे, कभी दिखाता बृज का नांच।।
समझा रहा तू क्या अपने को, डरें न हम इन ढोंगों से।
एक मिनिट में तुझे दिखादें, हम क्या हैं, डर है उनसे।।
कृष्ण नहीं बनते ढोंगों से, तुझ जैसों में कृष्ण कहां।
ख़बरदार जो अपने आगे, फिर से ऐसा ढोंग रचा।।
महाराज सुन रहे थे सारी, हमने निडर कही ये बात।
थोड़ी देर बाद देखा तो, मुकुट था वो सदगुरू के मांथ।।
नंगे सिर रह गया महात्माँ, मुरली भी सदगुरू के हाथ।
थी मुस्कान ह्रदय स्पर्शी, सुंदरियाँ भी होवें माँत।।
उठीं मोहिनी लहरें उसमें, मंत्र मुग्ध सा हुवा शरीर।
भनकी जब कानों में मुरली, आतम सुन हो उठी अधीर।।
सुन कर बीन नाग बांबी से, जिस प्रकार बाहर आता।
हाल हुआ यह ही आतम का, अधिक न बतलाया जाता।।

अकसर सदगुरू ने परलौकिक, दिया हमें यों साक्षात्कार।
लीला चलीं महीने भर यों, इस प्रकार बरसे सरकार।।

हरीदास हुआ बावला सुनो पागल के बैन।
जिनका वादा था मिले हमें ऐन के ऐन।।

एक बार होली के टेकै, श्री मजाहिदपुर था मैं।
बाल किशन सेवा करता था, मंदिर में सोता था मैं।।
होली वाले दिन प्रातः को, मंगलारती से पहले।
महाराज आगे आगे थे, पीछे पाँच महात्मां थे।।
मुकुट श्री सदगुरू के मस्तक, पाँचों पिछले नंगे सर।
कंधों पर सब के सोटे थे, लटक रहे झण्डे उनपर।।
घुसे चले आये मंदिर में, मैंने देखा द्रश्य तमाम।
मैं बाहर था तब मंदिर के, करने जाता था स्नान।।
घुस गए जब सारे मंदिर में, इच्छा हुई उन्हें चल देख।
कहां कहां से आए महात्माँ, कैसे कैसे इनके भेष।।
हमें न दीखा कोइ वहां पर, रह गया में ख़ामोश खड़ा।
बाल किशन अंदर था बोला, पट मंदिर का अभी पड़ा।।
ज़रा देखना पधरौनी को, युगल रूप आदिक हैं ठीक।
कहकर इतना बाल किशन ने, परदे की डोरी दी खींच।।
देखा मुकुट लगे थे उल्टे, राज मुकुट महारानी पर।
महारानी का श्री राज पै, इतनी दीखी हमें कसर।।
तुरत बतादी हमने उसको, उसने फिर वह ठीक करी।
बाल किशन भी चक्कर में था, जोड़ी उल्टी क्यों पधरी।।
ठीक किया फिर करी आरती, उलट गये क्यों आज सरूप।
कारण नहीं समझ में आया, किसकी हो सकती करतूत।।
अगले दिन फिर उसी समय पर, श्री सदगुरू आते दीखे।
मुकुट नहीं था मगर आज सर, पांचों वे भी थे पीछे।।
डंडों पर फिर झण्डे लटके, मंदिर में घुस गये तमाम।
हम भी घुसे उन्हीं के पीछे, चाह रहे थे उनका ज्ञान।।
कौन महात्माँ हैं ये पांचों, साथ हैं क्यों ये सदगुरू के।
अपने मन में था कौतूहल, समझें इनकी कुछ सुनके।।
वह जब झाँका मंदिर में तो, आलीशान लगा दरबार।
महाराज सिंहासन पै हैं, बड़ा विलक्षण है सिंगार।।
बांधे हाथ खड़े वे पाँचों, महा प्रभू अब क्या आज्ञा।

और अगर सेवा हो कोई, इन्तज़ार आदेशों का।।
ध्वजा हुकुम वापिस लो अपना, वापिस लो अपने अधिकार।
जो था भार सरों पर अपने, सोंप रहे वापिस सरकार।।
ओझल हुआ द्रश्य फिर क्षण में, मंदिर खाली का ख़ाली।
कहां गई छवि अभी अभी जो, दीखी थी ऊपर वाली।।
बाल किशन के सिवा न कोई, नज़र पड़ी पधरौनी पर।
न थी युगल जोड़ी मंदिर में, बाल किशन से बोला फिर।।
आज युगल जोड़ी क्यों नंहि है, उसने दिया हमें उत्तर।
दो दिन से मंदिर सेवा में, जनें क्यों दिखती हमें कसर।।
समझ लिया अब हमने सब कुछ, दीख गई असली सरकार।
अब नहीं रही ज़रूरत इनकी, अब सदगुरू पै दारमदार।।
मतलब समझ हमें अब आया, सदगुरू महिमां अब जानी।
समझ आई लीला अब क्या है, पर दुनियां ने नंहि मानी।।
सदगुरू रूप नहीं पहचाना, सच कहता है भाइ प्रताप।
वही जान पावेगा उनको, जिसे जनावें वे ख़ुद आप।।
दिखा दिखा छवि ताले ठोके, हिलने दिये न लब आगे।
सुलग रही अंदर ही अंदर, वे जानें जो हैं जागे।।
भेष पुजा करता है तब तक, मिलन न जब तक प्रीतम से।
जब मालिक ख़ुद आ पधरे हों, भेष पुजे फिर क्यों हमसे।।
यह लीला बारीक बड़ी है, शुद्ध चित्त करके सुनना।
जो बातें पड़ जाँए कान में, सार है क्या, उसमें चुनना।।

डब्बों में हैं बंद जो हैं यहां सच्चे मोती।
ख़ुद ही ख़ुद को खोल रहे हैं तू क्यों रोती।।

ले गए एक बार पदमावति, पुरी संग अपने महाराज।
दर्श कराये जगह जगह के, खोले जगह जगह के राज़।।
मिटी दाझ सी बड़ी हृदय की, किये भेद जब सभी अभेद।
साथ साथ रहते हम हरदम, थीं सदगुरू पर बंधी उमेद।।
चले हमें उकसाकर इक दिन, दर्श करावें चलो तुम्हें।
जै न बोलना माला पर, पहनाइ किसी ने वहाँ हमें।।
कितने ही हम साथ हो लिए, पहुँचे पहले गुम्मठ जी।
महाराज जी को लखते ही, माला लाए पुजारी जी।।
गले पड़ी जब श्री सदगुरू के, प्रांण नांथ प्यारे की जै।
निकल पड़ी सहवन निज मुख से, आंख निकालीं सदगुरू ने।।

फिर आये बंगला जी में हम, माला जिसदम वहाँ पड़ी।
अनायास फिर मेरे मुंह से, जै ज़ोरों से निकल पड़ी।।
चले फेर समझाते हम को, भाइ धाम है ध्यान धरो।
धामी नहीं समझते ये सब, जै घोषों को बंद करो।।
चले गये यों सिख बुध देते, देव चंद्र की आइ समाध।
एक पुजारी था उसमें भी, बोला यहाँ झुकाओ मांथ।।
की परनाम श्री सदगुरू ने, जब माला डाली उसने।
निकल पड़ी फिर मेरे मुंह से, प्राँण नांथ प्यारे की जै।।
रस्ते भर फिर दिये लैक्चर, ख़ूब सभी को फटकारा।
धामी लोग बहुत बेढब हैं, तुमको बिल्कुल नहीं पता।।
तुम हम को भी छितवाओगे, करवाओगे हमें ज़लील।
बेशर्मों कै एक न लगती, घर से खड़े हज़ारों मील।।
समझा दिया भाइ धामी हैं, मगर जानवर हो तुम तो।
बात आदमी कै लगती हैं, लगै भला क्यों पशुओं को।।
चले गये बातों से पिटते, क्षेत्र आ गया सब के बाद।
स्वागत किया धामियों ने वहाँ, माला दी स्वागत के साथ।।
गल पड़ते ही श्री सदगुरू के, उठे मरोड़े से मेरे।
बहुत ज़ोर से चिंघाड़ा में, प्रांण नांथ प्यारे की जै।।
मिलने लगीं प्रशादी फिर तो, एक उठावें एक धरें।
चढ़े चले जाते हो तुम सिर, जितना तुमको मना करें।।
योग्य नहीं तुम ले चलने के, हमें कराओगे बदनाम।
जै बुलवाते फिर रहे अपनी, स्वयं उछालें अपना नाम।।
है स्थान दूसरों का यह, अर्थ करेंगे उल्टे लोग।
तुम लोगों को समझ न आती, पड़ें भोगने हमको भोग।।
कहते रहे न जाने क्या क्या, भाग गये हम आगे से।
बहुत देर के बाद कहीं फिर, महाराज जी शान्त हुवे।।
हमने अर्थ लगाऐ हटकर, क्यों हम से जै बुल जाती।
ज़बरदस्त है क्या आतम निज, जो रोके नंहि रूक पाती।।
या उकसा रहे हैं ये ख़ुद ही, ऊपर ही रोका थामी।
ज़ाहिर होना चाह रहे हैं, सुनलें जिससे ये धामी।।
है अवश्य कुछ बात हुआ क्यों, आज उलंघन आज्ञा का।
अगले दिन जब उठी सवारी, तब हमको यह राज़ खुला।।
महाराज जी के कंधे पर, देखा जब हमने सुखपाल।
दौड़ पड़े हम कंधा देने, मन में आया हमें ख़याल।।
मार लिये महाराज हमारे, हम ना जुड़े हटा उनको।

फिर हम से औरों ने ले लिया, हमने ढूँड़ा सदगुरू को।।
हमें न पाऐ बड़े तलाशे, पड़ी सवारी पर जब द्रष्टि।
आँख खुली की खुली रह गई, नैन हमारे हुऐ आकृष्ट।।
देखा तो सदगुरू हैं उसमें, जगा जोत दीखा सुखपाल।
पहचाना हमने प्रीतम को, ठीक था अपना रात ख़याल।।
रूके न हम जो यह है कारण, बोले गये तड़ातड़ जै।
ऊपर ऊपर नहीं नहीं थी, अंदर है हम्बै हम्बै।।
ख़ुद चोरी करते फिरते हैं, छिपते फिरते आंखों से।
हमें धामियों का भय देते, स्वयं धामियों के कंधे।।
बड़ी ज़ोर से चिंघाड़ा में, साथ साथ भगवानी ने।
दी आवाज़ अरे कोइ देखो, बैढा कौन सवारी में।।
पहचानो महाराज शेरपुर, श्री राज जी हैं अपने।
स्वामी रामरतन जी की झट, जै बोली हम दोंनों ने।।
बकती फिरी न जाने क्या क्या, भगवानी जो मुँह आया।
यों चोरों के चोर को हमने, चोरी करते जबड़ाया।।
पहचाना श्री राज आप हैं, आप आप हैं, अपने में।
तुम लोगों को भ्रम है भाई, आप अभी हैं सपने में।।
अपने बीच पधारे हैं वे, शक जो लावे जीव सृष्टि।
करवा दी पहचान न विचलो, खोलो आँखें आतम की।।
श्री मजाहिद पुर मंदिर की, सेवा दे गए अपने आप।
हरीदास आभारी उनका, जला दिये अपने अभिशाप।।
घोड़े से पर चढ़े हुकुम से, ताक़त आई बड़ी हम में।
सेवा में तन मन से लग गए, सब कुछ पाया सदगुरू में।।
लेकिन बड़े अभागे निकले, साथ न ज़्यादा रह पाये।
महाराज श्री राम रतन जी, जल्दी परमधाम धाये।।
रह गए यहाँ तड़पते सारे, चले गये तजकर महाराज।
दोष किसे दें किसे सुनावें, निकला पोच हमारा भाग।।

रिश्ते कच्चे टूटा करते पक्के कभी न टूटें।
जकड़बंध ये आत्माओं के किसी तरह ना छूटें।।

सात वर्ष सेवा को बीते, हमें आई प्रातः आवाज़।
गादी पर से बोल रहे हैं, पहचाने गए हैं महाराज।
क्या अपने सब के सब मर गए, ज़िंदा कोइ नहीं क्या आज।।
पड़े रहें क्या डयौढ़ी ही पै, समझा हमें क्या डयौढ़ी वान।

जो गुलाम के भी गुलाम हैं, उनके हो रहे हैं सन्मान।।
जो स्थान हमारे लायक, है कोई जो बिठलादे।
पड़े पड़े द्वारे युग बीते, हमें कोइ है जो ठादे।।
विफर उठा सुनकर मैं इतनी, चुटियल थीं सदगुरू की बात।
मैं प्रतापसिंह जी पै पहुँचा, बतलाया गुरू पश्चाताप्।।
श्री सदगुरू क्या चाह रहे हैं, समझ गये वे भी मतलब।
डूब मरो सुनकर वे बोले, कुछ करना ही होगा अब।।
गेरे पड़े जहाँ हम इनको, इनके लायक़ नंहि स्थान।
सच पूछो तो एक तरह से, हो रहा है इनका अपमान।।
सदगुरू नंहि ये श्री राज हैं, हमने अब इन्हें पहचाना।
पड़े न रहने दें अब बाहर, अंदर इनको बिठलाना।।
रहा दुपहरी भर मंदिर में, फिर प्रतापसिंह पै आया।
लेजाकर मंदिर के अंदर, सिंहासन उन्हें दिखलाया।।
मुरली और मुकुट बागा, इत्यादिक पाये सब नींचे।
महाराज जी के सरूप, सिंहासन में पधरे दीखे।।
कैसे लगे मैं बोला उनसे, कर दिया हमने अपना काम।
वे बोले, सोचा भी तुमने, हरीसिंह क्या कर रहे काम।।
झगड़ा मोल ले रहे नाहक़, यहां न बिठलाने महाराज।
है किसकी मजाल जो टक्कर, आकर लेवे हमसे आज।।
पीट पीट मुंह सीधे करदूँ, आकर के कोई देखे तो।
हम नंहि डरते इन झगड़ों से, करना है अब, मत रोको।।
एक रोज़ तो होना ही यों, जब होना तो, अभी सही।
कब तक टालेंगे हौनी को, नंहि टलती अब है होनी।।
मंदिर से बाहर प्रतापसिह, मुझे खेंचकर ले आये।
बिठलाकर बाहर चटाई पर, हमें रास्ते पर लाये।।
भोग बिना खाये क्यों लाते, खा पीकर क्यों नंहि लाते।
कपड़े कोरे क्यों लाते हो, पहने हुवे ही पहनाते।।
जानते हो, अपमान है इसमें, स्वीकारे नंहि जायेंगे।
बरती हुई वस्तु यदि दी तो, मारे भी हम जाऐंगे।।
महाराज जो की महानता, कितनी है तुम नंहि समझे।
इक गुलाम की कुरसी पर, हम इनको नहीं बिठा सकते।।
है तौहीन श्री सदगुरू की, यदि बरती हुइ कोई चीज़।
सेवा में लावें सदगुरू की, होनी चहिये हमें तमीज़।।
सेवक की कुर्सी पै स्वामी, को बिठलाना है अपमान।
इनके लिये नई कुर्सी ही, बिछवाओ तब है सन्मान।।

इक गुनाह दूजे बे लज्ज़त, पहले सोचो फिर करना।
जिस करने में ख़्वार हों उल्टे, उससे बेहतर ना करना।।
इसी लिये मंदिर बरता हुआ, प्रांण नांथ की जो उतरन।
सेवक अगर वास्तव में हम, अलग बनाओ सिंहासन।।
वस्तु पुरानी नहीं चाहिये, नहीं चाहिये कोइ आश्रम।
हमें चाहिये नया सभी कुछ, क्यों कि खसम निज सर्वोत्तम।।
शान्त हुवे सुन प्रतापसिंह की, गईं मग़ज़ में जब ये बात।
इस प्रकार माने हम हठ से, दवा मानसिक तब उत्पात।।

खेल न यह इम्तहाँ इश्क है, जिसने समझा खेल।
और भूल से लगा खेलने, समझो ख़ुद को फ़ेल।।

अक्सर तीन बजे उठता में, नित्य कर्म निव्रत होकर।
न्हिला धुलाकर महाराज को, पधरा देता गादी पर।।
पुनः लेट जाता आसन पर, सो भी जाता कभी कभी।
आई इक आवाज़ एक दिन, पता नहीं क्या तुझे अभी।।
बिठला देता हमें ठंड में, ख़ुद जा सोता बिस्तर में।
सेवा किस प्रकार की जाती, सिखलानी है अभी तुझे।।
सजा बजा कर हमें बिठा, देता है अर्ध रात्री से।
आप ठुर्रके भरने लगता, गद्दी पै हमें धर करके।।
ठहर सज़ा दूंगा इसकी तुझे, टांग तोड़नी है तेरी।
कुछ दिन के पश्चात ही हो गइ, गड़बड़ में हालत मेरी।।
उरे परे दिखलाया कुछ दिन, बढ़ता चला गया वह मर्ज़।
विनती बहुत करी सदगुरू से, करी आत्मां से भी अर्ज़।।
भण्डारा आ पहुँचा सर पर, थे प्रतापसिंह भी उस वक्त।
जब निगाह में हम आये उन्हें, देखी हालत होगई सख़्त।।
भाग लिये ले मेरठ हमको, संग और भी कुछ साथी।
कई जगह दिखलाया मुझ को, लेकिन मिली नहीं मांफ़ी।।
धाम चले गये हरीदास जी, मिली मुक्ति इस नश्वर से।
दी समाधि आश्रम में आकर, मिल जुल सबने श्रद्धा से।।
याद रहेगी सेवा तेरी, याद रहे तेरा सहवास।
याद रहे व्यौहार तुम्हारा, याद रहेगा तू हरिदास।।
तुम क्या गये गई सेवा ही, बिखर गया सब सुंदर साथ।
छोड़ आए आश्रम मजादपुर, खड़ा रह गया भवन उदास।।

बीतक ग्रहस्थी महात्मां श्री चमेलसिंह

।। राड़धना ।।

श्री मुख

हम मजादपुर ही ठहरे थे, जो था नूनूँ नम्बरदार।
सेवा की कुइया की उसने, उसके सर था उसका भार।।
रहना पड़ा हमें उतने दिन, कुइया जितने रोज़ बनी।
सभी मजाहिद पुर वालों ने, कुइया में इमदाद करी।।
उन्हीं दिनों इक बड़ी आत्माँ, अपने पास वहाँ आई।
मिलते ही आखें आपस में, वह श्रद्धा हम पर लाई।।
बात लगेगी भली उसी मुंह, अतः सुनो उस ही मुंह से।
सभी अंगना सभी प्रिया हैं, सभी प्रभू की हैं प्यारी।।
किसी किसी को दी विशेषता, है बीतक ता से न्यारी।

माया के स्थूल में, छिपी सभी आतम।
चर्म चक्षु ना जान ही, कहां है परमातम।।

दुनियाँ की असारता बहुतों, को तो जँच भी जाती है।
लेकिन बड़े बड़े ही विनशे, दुनियां छुट नंहि पाती है।।
गाँठ लगी हैं सभी स्वाप्निक, स्वप्न स्वप्न हर हालत में।
है आधीन दूसरे के सब, जो कुछ शक्लो शवाहत में।।
चाहा अपना कभी न होता, होता सब उनका चाहा।
क्षण राजा क्षण रंक क्षणिक में, बन जाता यहाँ चरवाहा।।
स्वप्न किसी का फिरता कोई, दीख रहा जो कुछ दिन रात।
इस प्रकार की दुनियाँ है यह, इक दूजे से हैं अज्ञात।।
इसमें रहकर इसे जानले, इससे जो तोड़े सम्बंध।
वही सूरमा माना जाता, यही छिड़ा है इसमें द्वन्द।।
श्री सदगुरू ने जिन्हें जनाया, ते ही गिने गये पूरे।
स्वयं न जानी गई किसी से, जानत जानत सब बूड़े।।
नाम हमारा है चमेलसिंह, राड़धना है अपना ग्राम।
है मजादपुर जड़ में अपने, सुना श्री सदगुरू का नाम।।

बचपन से ही हमें खोज थी, सब समाज देखे भाले।
आर्य सनातन औ कबीर पथ, पड़े बहुत इनके पाले।।
लेकिन पल्ले पड़ा न कुछ भी, पाये सब अशन्ति के दास।
लेते देखे सांस मरण के, मिले न जीवन के निस्स्वांस।।
गये आश्रम में हम इक दिन, महाराज बैठे पाये।
भले लगे दर्शन करने पर, आसन दे हम बिठलाये।।
प्रश्न किया हमने इक उनसे, यथा प्रश्न उत्तर पाया।
उत्तर भी सुंदर ढंग का था, एक मिनिट में समझाया।।
साहस पड़ा न दूजे का फिर, जान लिया है सब कुछ पास।
शायद यहाँ मिले मन चाहा, लिये घूंमते जिसकी आस।।
इधर उधर की बात चलीं कुछ, तत्पश्चात् चले आये।
प्रथम मिलन में ही सच पूछो, तो वे अपने मन भाये।।
आना जाना शुरू हुआ फिर, सुने वचन जब जब उनके।
तो आंखें खुलती आतम की, ज्ञान और ढंग का सुनके।।
जब तक नहीं कहीं पाया जो, थोड़े दिन में पकड़ाया।
तारतम्य दे करके हमको, महाराज ने अपनाया।।
नियम बना आश्रम जाने का, करते अपना जाप वहीं।
जो सेवा बन आती हमसे, कर आते श्री सदगुरू की।।
हमें नित्य प्रति अर्ध रात्रि में, राड़धने से चल देना।
सुबह कहीं दस बजे निमटते, इतना समय लगा देना।।
आँधी ओले वर्षा हो चाहे, चाहे हो बीमार शरीर।
सेवा को हम श्री राज की, रहते थे हर वक्त अधीर।।
संकट हो कितना ही चाहे, इसमें कमी नहीं आती।
बल्के भावना सेवा करने, की अपनी बढ़ती जाती।।
कभी परिक्षा भी ली अपनी, किया हमें उसमें उत्तीर्ण।
रोग बने बाधक आकरके, समय बड़े आये संकीर्ण।।
प्रभू कृपा से कटे सभी वे, क्रम में कमी न आने दी।
विवश भाग ही गई बिचारी, आकर हमपर बीमारी।।
सभी समय हम रहे भजन प्रिय, स्वांस स्वांस श्री जी का नाम।
सोते हुवे नाम जपते हम, ऐसे हमको मिले प्रमांण।।
घर वाले बतलाते थे सब, तुम यह जपते रहते हो।
इस प्रकार के नाम उच्चारण, सोते करते रहते हो।।
ढाई मील घर था आश्रम से, रहता हमको पता नहीं।
किस प्रकार आते हैं घर से, जैसे हों हम यहीं कहीं।।
घेर लिया इक बीमारी ने, एक बार हमको ऐसे।

उठने दिया न चारपाई से, बांध दिया उससे जैसे।।
होश रहा बेहोशी में भी, मंदिर आज नहीं पहुँचे।
किन्तु कल्पनाओं से अपनी, जाकर सेवा कर आते।।
छः दिन तक हम रहे खाटपर, आश्रम नहीं पहुँच पाये।
दिवस सातवें घर वालों से, आंख बचाकर उठ आये।।
कमज़ोरी इतनी थी चलना, ना मुमकिन था हर हालत।
पर तबियत खेंचे जाती थी, पिया मिलन की थी आदत।।
निकल लिये घर से, तो बाहर, व्यक्ति कोई मिला हमें।
बिठा कमर पै क्षण में हमको, ले आया वो आश्रम में।।
घर वालों ने हमें न पाकर, दौड़ लगाई तेज़ी से।
किन्तु मार्ग में मिले न उनको, हाथ आए हम आश्रम पै।।
किया ताज्जुब वहाँ देखकर, किस प्रकार इतनी जल्दी।
आश्रम में आभी पहुँचे जब, के कमजोरी इतनी थी।।
चिंता अब मत करो हमारी, हमें सहारा है उनका।
जिनके हम बन गये मुलाज़िम, अब शरीर भी है उनका।।
घर वालों का वहीं बुलाकर, इस प्रकार से समझाया।
उसके घर में कमी न समझो, जिसघर प्रभु की हो छाया।।
घर में सब कुछ दिया प्रभू ने, हो इस समय सभी सम्पन्न।
घर बाहर धरती औ इज्ज़त, संतति और वस्त्र धर अन्न।।
हम लायक अब नहीं तुम्हारे, वैसे तुमसे दूर नहीं।
जब चाहो हम वहीं मिलेंगे, घर रहना मंजूर नहीं।।
रहने दो अब शरण चरण की, घर अब हमें कष्ट होता।
वक्त काटने दो आश्रम में, यहाँ भजन अच्छा होता।।
घर वालों ने किये मुक्त हम, श्री राज ने अपनाये।
सेवा में रख लिये कृपा कर, वाँणी बल हम पाये।।
देख लिया सब जान गये सब, अपने आप सभी आया।
अलख लखाया चरण लगाया, सदगुरू ने सब दिखलाया।।
हमें छूट देदी सदगुरू ने, रहो शेरपुर अथवा याँ।
आप प्रेम से रहो जहां भी, मन कहता हो तुम्हें जहाँ।।
हम मजादपुर ही अपनाया, घर के निकट हमारे था।
दूजे अपना पन मजादपुर, रूच अपनी में ज़्यादा था।।
कई बरस सेवा की जमकर, बड़े बड़े पाये संकेत।
मानो बैठे हों सन्मुख ही, प्रीतम ने किया इतना हेत।।
सदगुरू कृपा न वरनी जाती, कर दिया हमको माला माल।
इक ठोकर ने नौ बाधाओं, पार किया कर दिया कमाल।।

हसरत रही न बाकी कोई, देख लिया इस चोले से।
परदा रहा न कोई हमसे, रहा न कोई ओल्टे से।।
मानो पूरी हुई तपस्या, ऐसा गुरू परशाद मिला।
बरस पड़े इकदम से इतने, मानो दोनों हाथ दिया।।
पुनः आइ बीमारी हम पै, आकर गई न फिर वापिस।
घुसती चली गई चोले में, बींध गई बपु की नस नस।।
सेवा रहे चलाते फिर भी, जब तक रही तनिक सार्मथ।
शिथिल हुवे जब अंग हमारे, सेवा करने में असमर्थ।।
पड़े मिले हम द्वारे इक दिन, प्रातः सेवादारों को।
बुलवा लिया उन्होंने घर से, उस दिन निज घरवालों को।।
वे ले गये उठाकर घर को, थी सेवा की हम में चौंप।
किन्तु छिपी थी हृदय हमारे, परमधाम जाने की होंस।।
दस बारह दिन पड़े रहे घर, इक दिन हमने कहा उन्हें।
अंतिम समय हमारा आया, तुम ले आये यहां हमें।।
हमें वहीं पहुँचा के आओ, चोला वहीं तजेंगे हम।
जहाँ कहीं भी सदगुरू होवें, उन्हें बुलालो मिललें हम।।
किसी तरह ले आए आश्रम, डाल दिया चरणों में ला।
बेहोशी आ गई हमें फिर, रहा नहीं फिर हमें पता।।
वेगराज भाई चमेलसिंह, वह ही रहा वहाँ मौजूद।
दिवस तीसरे में सुध आई, आँख खोल करके देखा।
बोले आज धाम जाऐंगे, किन्तु न सदगुरू को देखा।।
गये हुवे थे लेने उनको, मिलना उनका सहज नहीं।
जाने कहाँ कहाँ रहते हैं, एक ठिकाना नहीं कहीं।।
यह आवाज़ कई दिन से थी, के हमको जाना है धाम।
पर सदगुरू की दर्शन इच्छा, ने रोका जाने का काम।।
घंटे बाद फेर दौहराया, धाम गमन की थी इच्छा।
पर सदगुरू दर्शन दे देते, है इतनी अंतिम भिक्षा।।
हो गए फिर अचेत कहकर के, चरणामृत देते हर बार।
घंटा हुआ न था के इतने, सदगुरू आ गए अपने आप।।
पहुँचे दर्शन देने उनको, तुम बिन कब के तड़प रहे।
धाम गमन में सुरता है अब, बाट आपकी देख रहे।।
महाराज जी बैठे आकर, बिन बोले खोली आंखें।
की प्रणाम उनको लखते ही, चरण लिये पग उठवाके।।
हाल चाल पूछा सदगुरू ने, बोले कृपा आपकी है।
महाराज जी अब तो इच्छा, हमें धाम जाने की है।।

महाराज क्षण चुप रह बोले, अच्छा, तो कब जाना है।
कृपा अभी करदो बस अपनी, मन उचाट है जाना है।।
किया इशारा महाराज ने, एक कटोरी जल लाओ।
ज़मीं गऊ गोबर से लीपो, तिसपर आसन लगवाओ।।
दिया उन्हें जल पढ़कर के कुछ, पीया बैठे हो करके।
सब को एक नज़र भर देखा, चरन लिये श्री सदगुरू के।।
कमियों पै मांफ़ी मांगी फिर, लेट गये निज आसन पर।
महाराज जी बोले अपनी, सुरता रखना प्रीतम पर।।
चलने का जब समय आए तो, हमको भी बतलादेना।
जो सरूप भी दीखे तुमको, साथ साथ जतला देना।।
आधा घंटा बैठे होंगे, दी चमेलसिंह ने आवाज़।
समय गमन आ पहुँचा अपना, सावधान होना महाराज।।
कौन दीखता है बतलाओ, लिये हुवे हैं कुछ सुखपाल।
गौर वर्ण हैं, रूप सलोने, दिखने में लगते ख़ुशहाल।।
हैं प्रतीक्षा में मेरी अब, हुक्म करो अब क्या करना।
बैठो अब सुखपाल में चलके, सुरता प्रीतम में रखना।।
थोड़ी देर मौन रह बोले, बैठ गया इसमें महाराज।
कहो इन्हें ले चलें धाम को, जहाँ पधारे हैं श्री राज।।
मौन और स्तब्ध रहे फिर, बोले कुछ क्षण के उपरान्त।
महाराज सुन रहे हो या नंहि, बड़े विलक्षण आ रहे प्रांत।।
शोभा वर्णन के लायक़ है, बतलाई नंहि जाती है।
बड़ी तेज़ गति से जा रहे हैं, पहचानी नंहि जाती है।।
क्षण उपरान्त पुनः बोले अब, चर्तुभुजी हैं सारे व्यक्ति।
शोभा अधिक यहाँ पीछे से, करो न इनमें निज आसक्ति।।
आगे बढ़ो न देखो इनको, मृत्यु लोक का है बैकुण्ठ।
नारायण अयेंगे आगे, निराकार उसके उपरान्त।।
मौन रहे कुछ देर पुनः फिर, बोले, कुछ दिखता नंहि अब।
अंधकार बढ़ता जाता है, आँख हुई अंधी बेढब।।
वायु और ही ढंग की है यह, महाराज जी सुनते हो।
महाराज बोले सुरता को, रोको पी में बढ़े चलो।।
समझो अब समाध में निज को, जब दीखे तब बतलाना।
मौन रहे कुछ देर शब्द फिर, शुरू हुवा उनका आना।।
किन्तु शब्द से पूरा जँचता, दबे दबे से, आते बोल।
महाराज जी अब प्रकाश है, हर वस्तू दिखती अनमोल।।
क्या हम ब्रज से गुज़र रहे हैं, श्री कृष्ण दिख रहे साक्षात्।

बड़े युथ्थ हैं गोपिकाओं के, मैं भी बदल गई अब नांथ।।
बपु स्त्री का बना हमारा, शब्द बड़े धीमे थे ये।
महाराज जी बोले फिर भी, उत्तर वापिस नंहि आये।।
इधर नब्ज़ भी कौहनी पर थी, सदगुरू पकड़े बैठे थे।
इक दो स्वाँस लिया होगा बस, हो गए सदगुरू छोड़ खड़े।।
आसन पै ले लिया उन्हें झट, अंतिम स्वाँस लिया उसपर।
बुझा दीप सांसों का आख़िर, आतम गई पिया के घर।।
धाम गमन यह सुना बहुत ने, सौइयों थे उस वक्त वहाँ।
भागे चले आए उनकी सुन, ख़बर गई यह जहां जहां।।
कहते सुने गये श्री सदगुरू, साकुँडल का था आवेष।
था ग्रहस्थ में छिपा महात्मां, जीव सृष्टि को दिखते भेष।।
शव यात्रा पर लोग हज़ारों, ने श्रद्धाँजीली की अर्पित।
ऐसों का जाना दुखता है, करते जाते समय व्यथित।।
एक बार बोले सब ऐसे, भक्तों की श्रोताओ जै।
दूजी बार इष्ट की उनके, श्री राज प्यारे की जै।।

बीतक श्रीमती इन्द्रावती सहारनपुर

लिये मंत्र काफ़ी दिन बीते, चला गया बढ़ता ही प्यार।
तारतम्य की अनुकम्पा से, रहता उर में प्रेम खुमार।।
पकड़े हुवे हृदय में प्रीतम, चित में रहता उनका वास।
रोम रोम थे बसे राज जी, हर दम रहता हिय उल्लास।।
इन्द्रावती नाम है मेरा, शपथ मुझे श्री चरणों की।
जो बीतक कह रही हूं मैं, यह है सच सच औ अपबीती।।
एक बार थे यहीं श्री जी, सहारनपुर के मंदिर में।
किन्तु किसी ने नहीं बताया, मिला न कोई पता हमें।।
हालत थी खराब लड़के की, जीवन मरण प्रश्न सा था।
डाक्टरों की भाग दौड़ थी, धन पानी की तरह बहा।।
किन्तु न बख़्शा बीमारी ने, रोती रहती उसको देख।
भाग न जानें कैसा है यह, कैसी है मस्तक की रेख।।
पड़ै देखना ना जानें क्या, चिंता खाऐ जाती थी।
क्या उपचार करूँ बुद्धी में, बात एक नंहि आती थी।।
अंती से खुद बोले सदगुरू, तुम्हें पता है इन्द्रा का।
लड़का मरण सन्न पड़ा है, उसको मेरा नहीं पता।।
ख़ाबर नहीं भिजवाई तेंने, हम मंदिर में ठहरे हैं।
लड़के पर है समय भयानक, और जान के लाले हैं।।
ख़ाबर रात में ही भिजवाई, याद किया है सदगुरू ने।
संकट मोचन नाथ सुने जब, भाग पड़ी दर्शन करने।।
साड़े तीन चार का टाइम, होगा जब में वहां गई।
जाग रहे थे महाराज जी, चरण पकड़ कर मैं रोई।।
महाराज जी मुझे बचा लो, लड़के का है वक्त अख़ीर।
लड़के की जानिब से समझो, बैठी हूँ मरघट के तीर।।
तुम बिन कोइ नहीं है दूजा, इस दुख से जो, छुड़वावो।
जनम जनम अहसान न भूलूँ, बेटे को प्रभु बचवाओ।।
करके बंद हाथ की मुट्ठी, बोले अच्छा पल्ला कर।
जीवन दान, दिया जा उसका, बंद दवाई सारी कर।।
लेकर आशीर्वाद प्रभू से, वापिस चली गई इक साथ।
धरदीं सभी दवाई ठाकर, क्या करती जब कर दिया मांफ़।।
फ़र्क शाम तक पड़ा मर्ज़ को, तीन रोज़ में ठीक हुआ।

इस प्रकार की है श्रोताओ, मेरे मालिक की किरपा।।
पन्ना जी इक बार गई मैं, साथ यात्रा पर उनके।
जाम नगर खम्बात् व सूरत, सोन गिरी औ पन्ना के।।
किया तीर्थाटन उनके संग, महिमां बड़ी विचित्र मिली।
गाथा श्री सोन गिर की तो, हमसे कही नहीं जाती।।
बच्चा बच्चा इन्हें वहाँ का, साक्षात् कहता था श्याम।
विदा हुवे जिस समय वहां से, डकराते रह गये तमाम।।
कहाँ लिये जाते कान्हा को, हमें छोड़े कहां जाते हो।
इस प्रकार के क्ंदन हम को, मिले वहां पर लखने को।।
गोकुल से कान्हा को लेकर, जक अक्रूर चला मथुरा।
गोप गोपिका लेटीं मग में, गऊ धन और छरा बछरा।।
सहन न होता था वो बिछुड़न, द्रश्य उपस्थित था वैसा।
आंख अश्रु बिन एक नहीं थी, सीन वहां देखा ऐसा।।
उनके भाव प्रेम को लखकर, हम शरमाऐ जाते थे।
अपने में वह प्रेम नहीं था, सर हम तले झुकाये थे।।
भाव बहुत पावन सदगुरू प्रति, हमें सोन गिरि में पाये।
हम उनके आगे कुछ भी नंहि, अंदर अंदर शरमाये।।
ब्रह्मसृष्टि ऐसी होती हैं, हमें स्वयं पै शक गुज़रा।
शायद जीव सृष्टि ही हैं हम, ऐसा हमको ज्ञात हुआ।।
श्री पदमावति पहुँच गये हम, वहाँ धाम दर्शन पाया।
लीला बहुत करीं अवलोकन, सुंदर साथ बहुत आया।।
हुई रात में इक दिन रामत, पहन पहन आर्कशण वस्त्र।
कच्छ देश की थीं महिलाऐं, बरस रहा था रस सर्वत्र।।
हमने सुनी रामतों की जब, माखन लीला छिड़ी हुई।
बीच बिराजे महाराज जी, उनसे लगकर जा बैठी।।
पूछो मत आनंद वहाँ का, रस में बरस रहा आनंद।
लेता था हिलोर मेरा मन, वाता वर्ण बड़ा स्वच्छंद।।
भेष गवालिनी के धारण थे, शीष सभों के दधि मटकी।
थोड़ा सा माखन तू भी ले, इनकी ओर हाथ करतीं।।
दिख रहे ये भी उस दम कान्हा, बड़े मगन औ हर्षित मन।
करतीं हाथ सभी मक्खन ले, हंस पड़ते श्री राम रतन।।
काफ़ी देर चली यह लीला, बहुत साथ था रामत में।
रामत का रस ले रहे थे सब, मक्खन न था कहीं कर में।।
मक्खन ले बोलीं जब आकर, महाराज जी बोले ला।
भौंचक्के रह गए सब के सब, जब मक्खन से हाथ भरा।।

वह प्रशाद फिर बंटा सभी में, ख़त्म हुवा बंटते बंटते।
मैं उनके चरणों में बैठी, मैं रह गई, बोली उनसे।।
किया हाथ ले इन्हें चाटले, मैंने चाटे उनके हाथ।
स्वाद बताऊँ किस जिभ्या से, मुंह में इतनी कहाँ बिसात।।
मक्खन अपने घर भी होता, किन्तु न होता ऐसा स्वाद।
जीवन भर यह याद रहेगा, मिला न ऐसा फिर परशाद।।
बंगला जी में सुबह श्री जी, बैठे चर्चा कर रहे थे।
बहुत साथ था वहाँ उपस्थित, पान सभी रस कर रहे थे।।
मैं उनकी छवि देख रही थी, मैंने इक दम क्या देखा।
घुंटुवन सरक रहे हैं कान्हा, हाथ एक छोटी लुटिया।।
बड़ा ज़रासा रूप सलोना, मेरे आगे आ करके।
बोले ले परशाद खोल मुंह, लुटिया में थे दूध लिये।।
मुंह खोला मैंने कहने पर, डाला मुंह में थोड़ा सा।
कुछ बूंदें गिर पड़ीं फ़रश पर, औंधी पड़ मेंने चाटा।।
चाट चूटकर लगी सोचने, देखा होगा इन सबने।
क्या मनमें कहते होंगे ये, क्या यह औरत पागल है।।
करने गई प्रणाम सुबह जब, मैंने सारी बात कही।
यह लीला दिखलाई तुमने, क्या हमको पिटवायेगी।।
खोल यहाँ मुंह सोच समझकर, धामी सुनकर पीटेंगे।
करें धाम से बाहर तुझको, तेरी ख़बर अभी लेंगे।।
कहीं हमें भी मत छितवाना, शब्द न निकले आइन्दा।
जो दिखता है पीये जा बस, दुनियां है यह कुछ समझा।।
मैं तू, दोनों, अभी खिदेंगे, पकड़े मैंने फ़ौरन् कान।
जो तुम कहो वही होगा अब, महाराज में थी अनजान।।
डरा डरू के चुप करदी मैं, मैंने फिर मन में सोचा।
कब तक छिपा रहेगा यह सच, आख़िर इक दिन उघड़ेगा।।
बोले समय आयगा आगे, जब हम नंहि हों, तब होगा।
लीला और तरह की हो वह, छिपा हुआ ज़ाहिर होगा।।
अभी गर्भ में है वह सच तो, अभी जनमने दे वह वक्त।
वक्त वक्त पर सब कुछ होता, अभी नहीं है उसका वक्त।।
ख़ैर आपकी जैसी मरज़ी, वैसा ही करना हम को।
नहीं उलंघन हो अज्ञा का, चुप हो गए हम तब तक को।।
फूट गये पर भाग जल्द ही, टूटे सभी सहारे।
फिरी लोचती जैसे मछली, जब पिया धाम पधारे।।
चारों ओर नज़र दौड़ाई, कहीं न दुख्ख किनारा।

कैसे निकल सकेंगे अब हम, किसका गहें सहारा।।
कौन राह बतलावेगा अब, लाड़ लड़ावेगा अब कौन।
दिखने लगी दुनी सूनी सी, जो दीखा सो दीखा मौन।।
हुई प्रतिष्ठा जब समाधि की, पड़ गइ उसमें इक दिन आ।
प्रीतम तुम इसमें आ सोये, हम अब किसमें सोयें जा।।
किसका हाथ गहें अब जाकर, कौन राह बतलाऐगा।
किस चौखट पै सर मारें अब, कौन हमें समझायेगा।।
किया आपने धोका हमसे, यह विश्वास नहीं था पी।
इस प्रकार मजधार छोड़दो, हम को पता नहीं था पी।।
रही मारती सर समाधि में, यों ही तो कहते थे आप।
फिरो मारते सर ईंटों में, करते डोलें आप विलाप।।
इन्हें विचारों में डूबी को, निद्रा ने आ घेरा।
चित हो गई गहन निद्रा में, ले लिया वहीं बसेरा।।
तीन बजे की बेला होगी, प्रीतम की आई आवाज़।
बैठी होके सुन, ओ इन्द्रो, क्यों इतनी व्याकुल है आज।।
क्यों चरित्र दिखला रही है हम, गय हुवे समझे हैं क्या।
महाराज दीखे बैठे हुए, आँख खोलकर जब देखा।।
जगमग जगमग है समाध इक, तेज अलौकिक छाया है।
दुख्ख याद था अपना मुझको, धाम गमन याद आया है।।
पूछ उठी उनसे बस यह ही, एक शिकायत है तुम से।
तुम्हें धाम यों नंहि जाना था, कहके तो जाते हमसे।।
हम धक्के खाते फिर रहे हैं, हमें तो कुछ भी नंहि आता।
कौन लगाऐगा रस्ते पर, चला अकेले नंहि जाता।।
इनसे पूछा करना जबसे, किया इशारा उंगली से।
जब उस ओर घुमाया मुंह, जिस ओर इशारा था उनका।।
तो प्रतापसिंह दीखे मुझ को, मैं बोली ये तो वे हैं।
जो मेरठ से आया करते, क्यों जी इनसे क्यों पूछे।।
इनही को हमने अपना सब, सोंप दिया है अगला काम।
जो शंका हो ये निमटावें, दे दिये हैं अधिकार तमाम।।
बड़ी ज़ोर का फिर प्रकाश इक, उठकर अंतरध्यान हुआ।
मैं बैठी की बैठी रह गई, फिर प्रताप पै ध्यान गया।।
घड़ी जो देखी चार बजे थे, और रही बैठी कुछ देर।
मुझे ढूँडने थे प्रतापसिंह, उठकर फिरी ढूँढ़ती फेर।।
ग्यारह बजे तलक नंहि पाये, अनायास आ टकराये।
पकड़े पैर लपकर मैंने, हम तो तुम से भर पाये।।

पैर छुड़ाने चाहे मुझसे, मैंने कहा पता है अब।
वे बोले यह बात ग़लत है, बात कहो क्या है मतलब।।
महाराज ने सब बतलादी, मैं थी रात उन्हीं के पास।
अब मैं धोका नहीं खाऊंगी, दी है बात उन्हीं ने ख़ास।।
सुपने में नंहि जाग रही थी, मिले हमें जिसदम संकेत।
पास आपके सब कुछ है अब, उनके पास लिये तुम देख।।
तुम्हें बुलाकर पहचनवाया, अब इनसे पाऐंगे आप।
जब मैंने यह बात सुनाई, हंसने लगे भाई परताप।।
बोले देवी माँफ़ करो बस, हमें यहाँ रह लेने दो।
कौन करेगा यक़ीं बको मत, इन बातों को जाने दो।।
फिर भी लिया वायदा मैंने, आना इक दिन मेरे घर।
शंकाऐं जो उदय हुई अब, शान्त उन्हें करना आकर।।
अब जो बीतक सुनी आपने, दी प्रताप जी को मैंने।
रक्खी थी ये छिपा जतन से, वचन बद्ध थी पीतम से।।
गला फाड़कर अब कहदूँगी, सदगुरू श्री राज जी थे।
ताक़त नहीं मुझे चुप करदे, ज़ाहिर हमको करने वे।।
ठुके रहे जो लब पर ताले, बंदिश थी मालिक तक की।
अब वे आड़ पकड़ कर बैठे, अब ज़िम्मेदारी अपनी।।
अब मैं रोके नंहि रूकने की, करूँ उजागर सदगुरू नाम।
ज़ाहिर करके छोडूँगी अब, अगर मैं हूँ उनकी अर्धाँग।।
इन्द्रावती पुकारै प्रीतम, रक्खे रहना अपना हाथ।
अपने में समेट लो सबको, तड़प रहा है सुंदर साथ।।

बिरजा कुम्हार मजादपुर

इक बिरजा कुम्हार जाती से, बरतन आदि बनाता था।
बाशिंदा मजादपुर ही का, इसी गाँव में रहता था।।
बचपन से वाक़िफ़ सदगुरू से, पंडिताई जब करते थे।
रेख न थी मुंह पर सदगुरू के, तब से देखा करते थे।।
पंडित यहां नहीं था कोई, बिरजा सदगुरू पै आया।
लगन एक लिखवानी थी सो, सदगुरू को लेने आया।।
चले लगन लिखकर जब बोले, एक रहेगा इनमें से।
विधवा हुई जाते ही लड़की, बिरजा ने समझा तब से।।
बनकर जब से आए महात्माँ, बिरजा कै इक दिन आये।
चारपाई बिछवाकर बिरजा, ने श्री सदगुरू बिठलाये।।
दूध दाध की बातें पूछीं, बोले मट्ठा ले आओ।
मट्ठा ही पिलवाया उनको, पीकर के सदगुरू बोले।
तोंवी एक हमारी ख़ातिर, इस आवे में पकवादे।।
उसी वक्त बनवाकर तोंवी, झट आवे में चढ़वादी।
आवा था चढ़ने ही वाला, उस ही में वह पकवादी।।
आवा कभी सही नंहि पक्का, ठीक ठाक अब से पहले।
जानें क्या र्दुशीष लगी थी, बड़ा सुघड़ पक्का अबके।।
तोंवी दी लेजाकर उनको, बिन मांगे पाई बख़्शीष।
पकने लगा ठीक अब आवा, कभी न पकता था जो ठीक।।
महा पुरूष खुद दे देते हैं, जिस लायक़ जो होता है।
किस वस्तू की इन्हें चाह है, उन्हें पता सब होता है।।
स्वप्न नहीं साक्षात् समझना, बात एक दिन की है ये।
सपना कभी आंकलो इसको, और समझलो झूँट इसे।।
उत्तर पच्छिम के कोने पर, आश्रम के है इक टीला।
जिसमें नया बाग़ रक्खा अब, खेत है वह भी आश्रम का।।
इक शरीर प्रगटा टीले पर, ऊँचाई इतनी उसकी।
मुंह तक नज़र न पहुँची ऊपर, घुटनों तक ही जाती थी।।
घुटने समझो पाँच मील के, ऊपर और न दिख पाया।
आगे कितनी दूर तलक है, कुछ भी समझ नहीं आया।।
किस प्रकार का मुंह है इनका, और है कैसी आकृत्ती।
बिरजा बिलकुल जान न पाया, थकी जानने की शक्ती।।
वह सरूप उस जगह उदय हो, चला जिधर अब है आश्रम।

पीछे पीछे बिरजा चल दिया, कौन है समझें कम से कम।।
पहले चढ़ करके टीले पर, बड़े ज़ोर से दी किलकी।
ऐसा लगा कि इस किलकी से, आँख खुली त्रय लोकी की।।
चौदह भवन गूंज उट्ठे ज्यों, थी बलंद इतनी आवाज़।
सब ही के कानों के जैसे, दिये हों उसने परदे फाड़।।
उबल पड़ा जल ही जल इकदम, थल का रहा निशान नहीं।
प्रलय उबल आई हो जैसे, बचने का अब काम नहीं।।
सिर्फ़ एक पग डण्डी रह गई, वह सरूप उससे गुज़रा।
एक कुटी तक थी वह बटिया, बिरजा पीछे पीछे था।।
पहुँचा बिरजा जब कुटिया पर, सिद्धासन दीखे महाराज।
साष्टाँग जा लेटा पग पर, कह उट्ठा बख़्शो श्री राज।।
चेतन हुई अवस्था जिसदम, जाने किधर गया वह रूप।
किधर गई वह प्रलय भयंकर, किधर गया सदगुरू संरूप।।
रह गया बैठा बिरजा इकला, बैठे बैठे दिया दिखा।
पहुँचा महाराज जी के ढिंग, उनका जाकर पग पकड़ा।।
जिसदम गया सामने बोले, घबरे तो नंहि बिरजा रात।
मैं कहने भी नंहि पाया कुछ, शुरू करी ख़ुद ही यह बात।।
बिरजा ने अपबीती कहदी, बोले कहीं सुनाना मत।
प्रलय दिखाई थी तुझ को यह, बात रहे ये बस तुम तक।।
कौन पुरूष थे महाराज ये, था शरीर तो बड़ा विशाल।
वे विशाल ही होंगे कोई, तू क्यों पूछ रहा है हाल।।
दिखलादी तुझ को आगे की, राज राज कर क्या लेगा।
सब सरूप सदगुरू ही के हैं, जा सदगुरू की कर सेवा।।
कर प्रणाम बिरजा भग आया, रक्खा भेद सभी यह मौन।
बिना इशारे ही जंचता था, जान गया बिरजा ये कौन।।
अब प्रतापसिंह को बतलाया, छिपी थी अब तक बिरजा में।
कह नंहि सकते कितनी श्रद्धा, उपजी फिर उसे सदगुरू में।।
ज़्यादा दिवस न बीत पाए थे, इसके कुछ ही दिन के बाद।
बिरजा को ध्यानस्त अवस्था, में दीखा इक दिन साक्षात्।।
प्रगटा इक प्रकाश सा पहले, उसमें मंदिर बड़ा विशाल।
जगमगाट हीरे मांणिक में, उमड़ रही जोती की झाल।।
टिकती न थी आँख मंदिर पर, छिटक रहा था ऐसा नूर।
बतलाया जब महाराज को, सुनकर हंसने लगे हुजूर।।
जिसे ध्यान का बतलाते हो, वह प्रत्यक्ष दिखलादेंगे।
जब वह समय आयगा बिरजा, हम तुम को बुलवा लेंगे।।

महाराज जी के निज हाथों, मंदिर की तामीर हुई।
पूर्ण हुआ जब मंदिर बिरजा, को बुलवाकर के पूछा।।
बिरजा कमी कोइ है इसमें, जो तुमने जब देखा था।
देख दाखकर बाहर भीतर, बिरजा सदगुरू से बोला।।
रूप रेख में तो वह ही है, महाराज कुछ कमी नहीं।
चमक दमक जैसी थी उसमें, बस वह इसमें अभी नहीं।।
और बराबर में भी था कुछ, हाँ वह भी बन जायेगा।
जैसा चमक रहा था वह क्या, ऐसा यह हो जावेगा।।
कौन यहाँ देखेगा उसको, हैं तेरे वैसी आँखें।
जैसी आँखें लिये घूमते, फूट जाँएगी ये आँखें।।
बात सत्य थी अक्षर अक्षर, समझ हमारी में आई।
ध्यान अवस्था में ही जब, मेरी आँखें थी चुंधियाई।।
तो प्रत्यक्ष की बात ठीक है, किसपै झिल सकता वो नूर।
झेल वही सकता जिसको, ताक़त बख्शें वे आप हुजूर।।
बंगला छवा मजाहिदपुर इक, था विशाल छप्पर उसका।
हुवे जमाँ सब उठवाने को, हर सामान बड़ा उसका।।
लगे उठाने लोग सेंकड़ों, खेच लाए इक गाड़ी भी।
गाड़ी पै चढ़ चढ़ के ठाया, ऊंचाई कुछ ज्यादा थी।।
पागल था मजादपुर में इक, वह छप्पर पै आ चिपटा।
चढ़कर उस गाड़ी के ऊपर, पागल ज़ोर लगाता था।।
बला गिरा इकदम ऊपर से, औ पागल पै आन पड़ा।
लगा कनपटे पर आकरके, सर पहिये पर टकराया।।
मुंह का इक पासा पहिये पर, आया बला दूसरे पर।
मर गया मर गया शोर मचा इक, भागे लोग छोड़ कर घर।।
क्यों कि पुलिस आवेगी अब, और आकर तंग बनाऐगी।
पकड़ पकड़ जाने किस किसको, थाने में ले जाऐगी।।
महाराज ने रोके भगते, भाग रहे हो क्यों भाई।
पागल तो वह ठीक ठाक है, उसकै चोट नहीं आई।।
उसके ऊपर इक पिशाच् था, मौत हुई है भइ उसकी।
मरने वाला मर गया अब तो, जान बचाओ पागल की।।
बाहर तभी निकाला पागल, सदगुरू ने दिया चरनामृत।
उठा हुआ उसे पीते ही, लगी सिफ़ दो एक मिनिट।।
बातें करने लगा होश की, पागल पन से मुक्त हुआ।
महाराज जी का वह पागल, उसी रोज़ से भक्त हुआ।।
हुआ न पागलपन आइन्दा, ठीक रहा जीवन परयन्त।

क्या क्या चर्चा करूँ प्रभू की, उनकी लीला हैं बे अंत।।
भक्ता निमटे, लेखक निमटे, श्रोता औ उनके भाई।
कागज़ और लेखनी निमटे, निमटे जग की रूशनाई।।
लेकिन लीला नहीं निमटतीं, नहीं निमटते उनके खेल।
नश्वंर जीव सृष्टि क्या जानें, परमातम की क्या हैं केल।।
उनके उनकी बात पिछानें, उनके उनकी जानें सार।
उनके उनकी शरण पहुँचते, पहुँच न सकता यह संसार।।
बिरजा की लो प्रभू बंदगी, सकल साथ को निज परनाम।
इतनी किरपा करी आज तक, आगे भी रखना श्रीमान।।
महाराज श्री राम रतन जी, रतन आप थे निस्संदेह।
आपके साथ हमारी, अब तो सिर्फ़ यहाँ है देह।।

शेरपुर आश्रम की छवि बिगाड़ने का प्रयास

मुल्क बंटा जिसदम आपसमें, हिन्दुस्तान व पाकिस्तान।
सुविधा मिलीं सभी को भारी, गया शेरपुर जो इन्सान।।
दुखियों का दुख सुना प्रभू ने, वस्त्रहीन को वस्त्र दिये।
भूको को भोजन मिलता था, द्रव्यहीन को द्रव्य दिये।।
आश्रय दिया वहाँ जो आया, फैल गया वहाँ जिसका हाथ।
थे दयाल श्री सदगुरू इतने, पूरी करी उसी की बात।।
तब से है विख्यात शेरपुर, सदा वर्त है जहाँ अखण्ड।
विस्मित हुआ देख कर महिमाँ, झुके हरिक के वहाँ घमंड।।
सभी क़िस्म के रहते जग में, भले बुरों का जग बाज़ार।
चीज़ हरिक मिल जाती है यहाँ, यहाँ सार भी और असार।।
मेले के आसार बढ़े फिर, दुगना भरता अगले साल।
सह न पाए कुछ व्यक्ति ख्याति यह, उठी जलन की उनमें झाल।।
बुने गये फिर शेरपुर की, ख़ातिर तरह तरह के जाल।
बना बनूकर एक योजना, मेले पर आया दज्जाल।।
मेले को बिगाड़ने के लिए, कुछ दुर्जन तय्यार किये।
छवी बिगाडू आए इधर कुछ, ह्रदय ईर्षा ज्वार लिये।।
उन सबने की यहाँ प्रार्थना, हम भी आऐ सेवा को।
जो सेवा सब से मुश्किल हो, कृप्या वह हमको दे दो।।
मेहरबान थे श्री सदगुरू तो, इच्छा की पूरी उनकी।
सेवाऐं मिलती यहाँ सब को, जिसने भी जो कुछ चाही।।
मालिक थे उदार चित इतने, निष्कंटक हो पकड़ाया।
तोले सभी एक काँटे में, एक भाव गुरू में पाया।।
महाराज जी बोले उनसे, कितने हो तुम सेवादार।
क्या क्या सेवा कर सकते हो, उस ही का दें हम अख़्त्यार।।
बोले हम रसोई के माहिर, यही है सेवा मल्काहास।
करते करते उमर बीतली, हम हैं बड़े पुराने दास।।
युगलदास से बोले सदगुरू, इन्हें रसोई पकड़ादो।
तुम सब काम जिमाने का लो, इधर उधर की सेवा लो।।
कहने लगा श्री सदगुरू से, मलकाहासी साथ तमाम।
ज़िम्मेदार रसोई के हैं, थामेंगे हम तब यह काम।।
और दख़ल ना दे सेवा में, भंडारों में घुसे न और।
इन शर्तों पर सेवा लें यदि, हो मंजूर तुम्हें इस तौर।।
की मंजूर श्री सदगुरू ने, सब को करी हिदायत आप।

सर्वे सर्वा ये रसोई के, दख़ल न दे कोइ सुंदर साथ।।
सेवा थामी इस प्रकार वह, लेते आप बनाते आप।
मेले वाला दिन जब आया, सुनो साथ उस दिन की बात।।
पहली पंगत जीम चुकी जब, औ दूजी बैठी आके।
अंदर से सामान सभी कुछ, वे ही देते थे लाके।।
बोले दाल ख़तम ही समझो, कहीं परसना कहीं नहीं।
सुंदर साथ बहुत बाक़ी था, उनसे जब ये बात सुनी।।
बड़े आए चक्कर सब ही को, खुलवाया इकदम कोठा।
शक्कर ले ले चले परसने, करी मिठाई की देमार।।
तीन टोकने दाल बनी थी, पहली पंगत खा गई क्या।
महाराज को ख़बर न दी यह, साथी गंण में थी चर्चा।।
सोमदत्त ने बीड़ा चाबा, भण्डारा मैं देखूंगा।
कैसे निमटी दाल ताज्जुब, ख़बर सभी लाकर दूंगा।।
पंगत निमट गई जब दूजी, तीजी आ बैठी पश्चात्।
चावल पै शक्कर ही शक्कर, परसी गई सिर्फ़ इसबार।।
इतने में घुस गया सोमदत, किया निरिक्षण अंदर का।
दाल पाइ दो बड़े टोकने, क्षण भर में सुध ले लौटा।।
सेवादार गये सदगुरू पै, यह हरकत है समझाया।
चुपके से ले श्री सदगुरू को, भण्डारा आ दिखलाया।।
फिर क्या था सदगुरू का पारा, तीनों लोकों पार गया।
सच सच कहदो क्या मंशा था, झट सारों को घेर लिया।।
काँप गये लख सदगुरू आँखें, पता न जाने क्या हो अब।
अगर न माँगी मांफ़ी इसदम, शायद मार पड़े बेढब।।
पकड़ लिया पग इन्द्र भगत ने, भेजा हमें आपके पास।
हमने किया हुकुम से जिनके, नाम है उनका मुरलीदास।।
भण्डारे की छवि बिगाड़ने, के लिए हमको था भेजा।
बदनामी हो जाए आपकी, थी महंत जी की इच्छा।।
सुनकर दी माँफ़ी सदगुरू ने, भगा दिये वे सब तत्काल।
क्या कल्याँण करें वे जग का, ख़ुद है जिनका ऐसा हाल।।
बड़ी दुकानों के पकवानों, का निकला इस ढब का स्वाद।
ठेकेदार धर्म के बनकर, करवा रहे ऐसा अपवाद।।
जिन देखा वह भी पछताया, ना देखा जिन पछताया।
सुंदर साथ संभलकर रहना, हाल यहाँ ऐसा पाया।।
कल्याँणों की किसे फ़िकर है, मालों पर हैं यहाँ निगाह।
डूबो साथ कहीं गड्ढे में, यहाँ किसी को क्या परवाह।।

श्री धूम सिंह ऊमरी

यह दुनियाँ है कभी कभी यहाँ, अनघड़ भी मिल जाते हैं।
अपनी अपनी ही जानें, अतिरिक्त समझ नंहि पाते हैं।।
समझ उन्हें कोसों नंहि होती, बस भी वहाँ न कुछ चलता।
जैसे हंसों की पंगत में, काग रलाये नंहि रलता।।
धूम सिंह इक व्यक्ति ऊमरी, आश्रम में आ जाता था।
महाराज जी कभी हमारे, भी आना, यों कहता था।।
करता रहा निवेदन यों ही, जब जब भी आश्रम आया।
एक रोज़ कुछ जी में आई, और धूमसिंह याद आया।।
उठा कमण्डल ओढ़ चदरिया, ग्राम ऊमरी जा पहुँचे।
तो उसकी बैठक पै हमने, कुछ सज्जन बैठे देखे।।
चादर और लंगोटी के, अतिरिक्त नहीं था कुछ तन पर।
भेष फ़कीरी था ही अपना, क्या प्रभाव पड़ता उनपर।।
कर प्रणाम जब खड़े हुवे हम, और चौधरी को पूछा।
यहाँ नहीं हैं कहीं गये हैं, उत्तर मिला हमें रूखा।।
हम चुप चाप खड़े रहगए जब, क्यों क्या है फिर बोला एक।
हम बोले, मिलना था उनसे, वह बोला भग रस्ता देख।।
माँगो खाओ जाओ गाँव में, और चौधरी क्या देता।
या कुछ दे रक्खा है उसको, जो उससे वापिस लेता।।
दे तो कुछ रक्खा नंहि भाई, ना देने के लायक़ हैं।
हम तो दर्शन को आये थे, दर्शन ही के ग्राहक हैं।।
बोला वो तो वहाँ बैठ जा, लगा समाधी पेड़ तले।
जब आवें दर्शन कर लेना, हम सुनकर उस ओर चले।।
एक नींम था जिसके नींचे, हम जाकर बैठे चुप चाप।
लगे प्रतीक्षा करने उनकी, साथ साथ सदगुरू का जाप।।
संध्या काल निकट ही सा था, ध्यान मग्न हम बैठे थे।
वे रोटी खावेगा क्या, अंदर से एक पुनः बोले।।
सुनकर भी ख़ामोश रहे जब, व्यंग लगे कसने हमपर।
अरे बोलता क्यों नंहि क्या, इतने में पहुँच गया यमपुर।।
हमने उत्तर दिया अगर, मिल जायेगी तो खालेंगे।
भेजा एक ये कहकर के, घर कहदे रोटी दे देंगे।।
चार रोटियाँ मोटी मोटी, जिनके ऊपर कुछ भाजी।
एक व्यक्ति ने मेरे हाथों, ऊपर ही से ला पटकी।।

मैं बोला इतनी क्या करनी, हम को तो लेनी बस एक।
अपने साथी से बोला वह, भइया ज़रा इधर तो देख।।
इतराने भी लगा अभी से, बनना तो देखो इसका।
रोटी वापिस भेज रहा है, जबकि पेट अंदर पिचका।।
वह साथी बोला अंदर से, क्यों रे मंगवाई थी क्यों।
नाज सूंघ कर रह सकता तो, फिर दर दर क्यों फिरता यों।।
खाले बस सिद्धी मत दिखला, मरना है क्या कहीं तुझे।
ढौंग दिखाने को ओ फक्कड़, और द्वार क्या मुंदे मिले।।
अधिक अन्न खाने पर ही क्या, हमें महात्माँ जानोगे।
या ज़्यादा बकवाद करें हम, तभी हमें कुछ मानोगे।।
रोटी एक हाथ में लेके, तीन कमण्डल पर धरदीं।
हमने कहा उठालो इनको, हमने तो वापिस करदीं।।
घर ले जानी हों ले जाओ, चाहे कुत्तों को डालो।
अगर आप लोगों को खानीं, हों तो लो ठालो खालो।।
मोटी तो थी ही वह रोटी, जैसे तैसे निमटाली।
थोड़ी सी कुत्ते को डाली, जितनी खापाऐ खाली।।
धरती पर ही बैठे थे हम, सिर्फ़ नींम था सर ऊपर।
वस्त्रहीन थे, एक चदरिया, ओढ़े थे बस कंधे पर।।
आग न धूँआँ, वक्त काटना, सर्दी का आरम्भ हुआ।
बैठक में से, भी लोगों का, घर चलना प्रारम्भ हुआ।।
इक आवाज़ आइ बैठक से, कहा एक ने दूजे से।
घर बैलों की झूल पड़ी हैं, बाबा को लाकर दे दे।।
गया एक घर सुनकर इतनी, दे झूलें लेकर आया।
और डालकर मेरे ऊपर, उस भइया ने फ़रमाया।।
इन्हें ओढ़ ले वरन् सुबह तक, मरघट का होगा मेहमान।
सर्दी यहाँ बहुत पड़ती है, निकल जाँएगे तेरे प्राँण।।
झूल टाट की और पुरानी, गोबर भी था कहीं कहीं।
पिस्सू और चींचड़ी आदिक, तो थे ही बदबू भी थी।।
हम बोले भइया जी तुमको, कितनी दी आकर तकलीफ़।
लुकी छिपी तो बात नहीं कुछ, सन्मुख सभी रही है दीख।।
क्या करने हैं हमें वस्त्र ये, यों ही रात बिता देते।
नाहक किसी ग्रहस्थी को हम, भइया कष्ट नहीं देते।।
हम तो वक्त काट भी लेंगे, बैलों पर क्या बीतेगी।
जिनकी झूलें लाकर के, तुम लोगों ने हम को दे दी।।
ना बाबा, उनकी उन ही को, दो हम पाप नहीं लेते।

उनके मरे काम बिगड़ेंगे, अपने मरे न बिगड़ेंगे।।
फिर बोला अंदर से कोई, छोंक रहा है क्यों बकवाद।
ओढ़ आढ़ के रात काटले, नहीं ओढ़नी तो उठ भाग।।
पाप पुण्य की बात सुबह तक, बैठ समझ आ जाऐगी।
फूंक हमारे बैलों की या, तेरी निकल पायेगी।।
उठ आया बैठक से बाहर, व्यक्ति लगा देने कुछ ज़ोर।
या तो ठैर और घर जाकर, या इन झूलों को ओढ़।।
खिंचे फिरेंगे नाहक़ हम ही, निकल गई यदि तेरी जान।
तुम तो मोक्ष प्राप्त कर जाओ, फंसे फिरेंगे हम श्रीमान्।।
एक बिछाकर एक उढ़ादी, निमटा ही था सेवा से।
इतने में आ गये चौधरी, जो इस घर के स्वामी थे।।
उन ही के आग्रह पर हमने, इस घर के दर्शन पाये।
खेंच खांच कर बोल उन्हीं के, हमें यहाँ तक ले आये।।
द्रष्टि पड़ी जब उनकी हम पर, तो पूछा अपना परिचय।
उत्तर दिया उसे लोगों ने, कोइ माँगने वाला है।।
ठहर गया है रस्ता चलता, रोटी भी खिलावादी हैं।
रात काटने को इसको दो, झूलें भी दिलवादी हैं।।
नाम ग्राम भी तो पूछा, करते हैं कौन कहां का है।
वैसा ही आदर सत्कार, दिया जाता जो जैसा है।।
बोल चौधरी के ज्यों के त्यों, पहुँच रहे थे मेरे कान।
मंद रौशनी के कारण वश, हमें न पाया वह पहचान।।
दी आवाज़ एक ने हमको, बाबा अपना नाम बता।
ग्राम कौन से का है रहने, वाला अपना ग्राम बता।।
सुबह पूछते तो अच्छा था, अब तो बीत चुकी आधी।
काट लिया कुछ समय और है, कट जायेगा जो बाक़ी।।
हमें पूछ कर के क्या लोगे, जिस लायक़ थे वो पाया।
अरे चौधरी ही क्या देगा, तुम सबने था फ़रमाया।।
अपनी जगह ठीक हैं हम, करो न अपनी कुछ चिंता।
हमसे जहाँ हज़ारों आते, हों फिर हमें कौन गिनता।।
सोंपा था जो काम चौधरी, ने हमको अंजाम दिया।
कभी हमारे भी आना सो, आगए अपना काम किया।।
हुकम और की इन्तज़ार है, हमसे बजा बजाऐंगे।
सेवक को सेवा प्यारी सो, गुरू महाराज दिलाऐंगे।।
सुनकर अपनी बात चौधरी, इकदम मंझे से उछल पड़ा।
पहुँच निकट पहचान हमें, धरती पै साष्टाँग पसरा।।

महाराज जी क्या तुम हो इन, हैवानों के जामों में।
ऐसा स्वागत किया आपका, बेईमान हरामों ने।।
जो पलकों पै हमें बिठावें, उससे यह व्यौहार करें।
जगह नहीं अब कहीं हमें, जहाँ जाकर के हम डूब मरें।।
देखो अभी बताता हूँ, इन बे ईमानों को सत्कार।
अभी मिनिट में सीख जाऐंगे, जहाँ पड़े सर पै दो चार।।
होकर लाल क्रोध में जिसदम, उठा चौधरी जब इकदम।
हमने कहा चौधरी साहब, पहले सुनो हमारी बात तुम।।
दुनियाँ के बाज़ारों में, जितनी भी देखोगे दूकान।
सब पै सौदे अलग अलग हैं, अलग अलग सब पै सामान।।
अपना अपना बेच रहे सब, और कहाँ से ले आवें।
बेचें तो अच्छा वे जब, जब अच्छे देसावर जावें।।
इनका दोष नहीं कुछ भाई, सौदा ही उनपै ऐसा।
बड़े दिसावर वे जाते हैं, जिनपै हो मोटा पैसा।।
अपनी चिंता तनिक न करना, हम सब के अभ्यासी हैं।
इस प्रकार की घटनाऐं तो, अपने लिये ज़रासी हैं।।
शान्त हुवा कुछ सुनकर इतनी, जितने थे उसके आगे।
क्रोध चौधरी का लख करके, पत्ता तोड़ सभी भागे।।
उसके बाद चौधरी जो कुछ, कर सकता था पेश आया।
रोका बहुत मगर प्रातः उठ, मैं आश्रम को लौट आया।।
काफ़ी घटी हमारे संग में, इस प्रकार की घटनाऐं।
ऐसे ही उपहार मिले हमें, कहाँ तलक उनको गाऐं।।

श्री शेर पुर मंदिर बनना और स्थापना

मूला और चुहड़ ने धरती, नाम करादी आश्रम को।
कूऐ से बम्बे तक की सब, धरती मिली जब आश्रम को।।
फिर सब काम जुड़े मंदिर के, पसरी सदगुरू की किरपा।
सहज सहज सहयोग मिले सब, सब ने उसमें दान दिया।।
बड़े चाव से बड़े भाव से, सम्वत् दो हज़ार पूरे।
हुई प्रतिष्ठा निज मंदिर की, श्री राज उसमें पधरे।।
चंदसीने से हाथी आया, वह जलूस उसपर निकला।
सुंदर साथ हुआ ऐकत्रित, सब का चरणों हाथ लगा।।
बाल वृद्ध नर नारी सारे, गाजे बाजे से आये।
सादर श्री राज श्यामाँ जी, निज मंदिर में पधराये।।

श्री श्याम सिंह पुत्र श्री घसीटासिंह
मजादपुर

बात सुनाऐं क्या अपनी हम, ना अच्छे ना अच्छी बात।
अपनी कहते लजा रहे हैं, हम से सभी बड़े हैं आप।।
ना आदम ना आदमियत ही, ना हम पै आचार विचार।
ना कुछ खान पान की सुध का, पल्ले प्रीत प्रेम ना प्यार।।
असुर समझ लो और कहें क्या, अपने लिये शब्द ये हैं।
सींग नहीं बस और सभी कुछ, कसर न आगे कोई है।।
जितने उल्टे काम सभी कुछ, अपने समझो घर जैसे।
कर करके सब देखे हमने, निपुंण सभी में हैं वैसे।।
दुश्मन भी सब ही हैं अपने, मीत हो क्यों हम जैसों का।
साथ नहीं देता है कोई, भी दुनियाँ में ऐसों का।।
मिलै शक्ति मुक्ती दोनों ही, दबें शत्रु आसानी से।
निकट सिर्फ़ हम इस मतलब से, पहुँचे राम रतन जी के।।
लगे बैठने निकट पहुँचकर, द्रष्टि हमारी मतलब पर।
सुनते बात सभी जो कहते, होता उनका नहीं असर।।
आते जाते रहे बहुत दिन, काफ़ी रोज़ सुना हमने।
वे भी ताक रहे थे मुझको, कहा रात में सदगुरू ने।।
कहो श्यामसिंह क्या इच्छा है, क्या लेने आता है तू।
मैंने भी बेधड़क बताया, यह लेने में आता हूँ।।
बोले तू भक्ति कर पहले, हो जाऐंगे ठीक विचार।
भक्ति चाहता हूँ शिव जी की, मेरा हो इनसे उद्धार।।
मुझे मार ही मार चाहिये, बोले परमात्मां को रट।
रट तो लूँ पर ज़ोर पड़ेगा, बोल पड़ा मैं भी झटपट।।
शिव के भी दर्शन कर लेना, पहले श्याम नाम भजले।
सब इनके पीछे हैं पागल, पहले नाम इन्हीं का ले।।
सीख मान कर उस दिन की में, लेने लगा श्याम का नाम।
मानो इन्हें प्राप्त करना है, समझा फिर आराम हराम।।
इक रस, इक मन, इक चित होकर, रटना श्याम श्याम की की।
अधिक समय तक नहीं जल्द ही, होकर के खुश सदगुरू जी।।
एक रोज बोले मुस्काकर, माँग आज क्या इच्छा है।
हम में शक्ति सभी क़िस्म की, ले तुझ को जो भाता है।।
बोला पूर्ण ब्रह्म के दर्शन, करवादो बस यह है चाह।

यह शरीर छुट जायेग फिर, दर्शन के संग होगा दाह।।
रहने दे इस दर्शन को तू, मैं बोला यह करना है।
छूट जाए यदि यह शरीर तो, महाराज क्या परवा है।।
कृप्या आप दरश करवादो, रोका टोका नंहि माना।
हर प्रकार देखा अजमां कर, प्रबल मिली अपनी चहना।।
फिर प्रसन्न हो पसरी किरपा, ब्रह्म दरश हमने पाया।
किन्तु सहन नंहि कर पाये हम, शिथिल हुई अपनी काया।।
पुनः मुझे दी गई चेतना, किन्तु हाल ही और हुआ।
छोड़ छाड़ कर घर धंधा सब, गुरू चरनों में जा पहुँचा।।
छुटी ग्रहस्थी मुझ से इकदम, रूह न जाती उस जानिब।
तरह तरह से ब्रह्म शक्तियाँ, हुई हमारे पर ग़ालिब।।
आज्ञा हुई श्री सदगुरू की, अभी ग्रहस्थी मत छोड़ो।
भार तुम्हारे पर है वह भी, उनसे रिश्ता मत तोड़ो।।
सेवा करो अभी उनकी भी, किन्तु आत्माँ रहे यहाँ।
बस शरीर ग्रहस्थी में रक्खो, आतम इधर शरीर वहाँ।।

श्री मती राजकरनी देवी
रिवाड़ी

गिरते वही जो चढ़ते घोड़े, कैसे गिरें जो हैं पैदल।
क्या पावेगा मंजिल को जो, घर बैठे करता चल चल।।
गिर कर भी फिर चढ़ जाते हैं, नहीं छोड़ते जो अभ्यास।
लगे निरंतर रहते हैं जो, एक रोज़ जा लेते पास।।
कान आँख मुँह सब हैं पी कै, कहते सुनते हैं सब बात।
चाह रही दुलहन क्या पी से, इच्छा पूरी करते नाँथ।।
किसकी ख़ाता यहाँ बतलादें, नज़रों या नज्जारों की।
ख़ाता खेल की ना प्रीतम की, ना प्रीतम के प्यारों की।।
मुक्ती जभी सूझती सबको, फंसी दीखती जब गर्दन।
संयम नियम सूझते सारे, जब दिखने लगता है यम।।
बिछुड़न हुआ पती से अपना, सरन दास था जिनका नाम।
रह गये हम इकले दुनियां में, छोड़ चले गए प्रीतम धाम।।
लगी चोट इतनी तकड़ी के, जिसका जख़्म न भर पावे।
जतन करो जीवन भर चाहे, टूटी जोड़ नहीं खावे।।
अंधी हुई सभी पगडण्डी, एक कदम उठना दूभर।
शिखर टूट कर गिरा फ़िकर का, अगला वक्त कटे क्योंकर।।
नारी नर बिन सदा अपाहज, औ मजबूर कहाती है।
क़दम क़दम ठुकराने का डर, हर निगाह में आती है।।
पतनी की शोभा है पति से, नाता मिथ्या हुआ समाप्त।
रिश्तेदार राज करनी अब, मिले जहां भी कर ले प्राप्त।।
जो क़ीमत भी पड़े चुकानी, मुँह अब नहीं मोड़ना है।
झेलूंगी हर एक मुसीबत, पर सम्बंध जोड़ना है।।
सोच साच कर मन में ऐसा, हमने इक संकल्प लिया।
पगडण्डी परमारथ की अब, गहो इरादा पुष्ट किया।।
गादी पति गोविन्द दास जी, की हमने शरणागत ली।
और उन्होने तारतम्य, देकर के हमे दीक्षा दी।।
सुनी साठ दिन बीतक हमने, श्रद्धा रख स्वामी जी की।
इसी समय अंतर में अपने, पिया मिलन इच्छा उपजी।।
जब तक दर्श न हों प्रीतम के, हमको करना है अनशन।
उस ही दिन जीतेंगे अब तो, प्रीतम दें जिस दिन दर्शन।।
कुछ दिन चला हमारा व्रत यह, थी उन दिनों उकाड़ा में।

बहुधा भजन किया करती थी, लगा एक दिन ध्यान हमें।।
एक बाइ औ एक महात्मा, दो साधू पीछे पीछे।
आते हुवे ध्यान में अपने, इस प्रकार मुझको दीखे।।
सज्जित भेष फ़कीरी में थे, पग में पहने चरण खड़ांव।
कहने लगी बाइ जो संग थी, इन्हे महात्मां ही मत जान।।
महाराज कह दो ख़ाली या, इनको श्री राज कह दो।
ये ही तो हैं महा प्रभू श्री, उठो इन्हे परनाम करो।।
झुकी चरण लेने को जब में, महाराज ने थापी दी।
तीन बार मस्तक झुकवाया, बार बार थापी भी दी।।
कह कहकर सर झुकवाते थे, आशिष देने की ख़ातिर।
करना था उद्धार भक्त का, इस प्रकार उनको आख़िर।।
उठी चरन लेकर के जब मैं, बदला साथ साथ फिर रूप।
श्वेत वस्त्र हो गये एक दम, जंचा एक दम और स्वरूप।।
थे जो साथ अन्य दो उनके, लगे लगाने उनका भोग।
थी मेरी ध्यानस्त अवस्था, हुवा उसी में पी से योग।।
ध्वनी उठी गाजे बाजे की, सुने कान ने सुँदर नाद।
तत्पश्चात् लगा बटने जब, जीम चुके श्री जी परशाद।।
छोले की सब्जी थी उसमें, पी ने जिसका भोग लिया।
महा प्रभू ने स्वयं हाथ से, अपने हमे प्रशाद दिया।।
हटा ध्यान तो हमें प्रतिज्ञा, अपनी पूरी हुई मिली।
अनशन तोड़ दिया उठते ही, इससे आगे नहीं चली।।
हमें कामना थी दर्शन की, सो सम्पूर्ण किया अपना।
किन्तु कामना और जगी इक, यह सरूप चित में रखना।।
बीस वर्ष हमने खुद को इन, संकल्पों में रक्खा कैद।
सेवा पूजा इत्यादिक में, रक्खा अपने को मुस्तैद।।
पाक पटन में मिले एक दिन, दर्शन राम रतन जी के।
उन्हें देख कर जंचा हमें के, हों हमसे ये मिले जुले।।
वही चेष्टा औ आकृत्ती, जो ध्यानस्त अवस्था में।
हमने कभी उकाड़ा देखी, जंचा न कोई फ़र्क हमें।।
हुवा हमें कुछ शक सा उन पर, किन्तु भुलावा दे देते।
अंदर ही अंदर खयाल जो, बनते उन्हें मिटा देते।।
तीन साल आवाज लगाई, महाराज जी ने अंदर।
पति टेरा करते है जैसे, वही भाव पाये अकसर।।
आते सिर्फ़ शब्द कानों में, पर सूरत नंहि आंखों में।
रस भी देते कभी कभी, अंदर ही अंदर बातों में।।

लेकिन झटकाते सूरत को, वही छिपाये फिरते थे।
देखो हम हैं पती तुम्हारे, कभी न सन्मुख होते थे।।
हमने सोचा अभी हमारे, अंदर कोइ कमी होगी।
तब तक नहीं आंएगे सन्मुख, जब तक कमी न निकलेगी।।
हम जा पहुँचे पन्ना जी में, औ अनशन आरम्भ किया।
चौदह दिन उपरान्त आए पी, अंदर मेरे ज्ञात हुआ।।
मैंने पूछा कौन है अंदर, मैं हूँ कह चुप्पी साधी।
चो, चो, शब्द उठा मेरे मुँह, र, मुँह तक नंहि आने दी।।
ताक़त लगी दुतर्फ़ा जैसे, हो हममें खेंचा तानी।
चाह रही मैं चोर कह उठूँ, पर पी कहने नंहि देनी।।
हुज्जत हुई देर तक हममें, कहने दिया ना पूरा चोर।
सन्मुख हुवे प्रगट फिर मेरे, राम रतन बनकर चितचोर।।
इक्किस दिन का था विचार कुछ, पर चौदह में मिला प्रशाद।
बाहर किया हमें गुम्मठ से, करके अपनी पूर्ण मुराद।।
अब हमको लग गया पता के, प्रीतम है किस जगह मुकीम।
कहां बरस रही हैं रस बुंदियाँ, कहां सर्द बह रही शमीम।।
गई रिवाड़ी भागी वापिस, करी व्यवस्था ख़र्चे की।
धर कर सर पर पैर वहाँ से, तुरत शेर पुर ओर चली।।
उतरी स्टेशन नानौता, बने उतरते ही यह भाव।
मूल मिलावे में है प्रीतम, है सबका उस जगह जमाव।।
पहुँच गई सब आतम आगे, पड़ी रही तू ही पीछे।
शर्म आएगी सन्मुख होगी, जिस दम श्री राज जी के।।
साष्टांग हो चली मिलन को, पहुँची जब मैं आश्रम में।
पोच मिली तक़दीर हमारी, मिले न प्रीतम वहां हमें।।
सोचा अभी कमी है तुझमें, इसी वास्ते बचते हैं।
छूने योग्य नहीं मैं उनके, पीछे यों ही हटते हैं।।
अच्छा प्रीतम रज़ा तुम्हारी, पड़ गए अब तो द्वारे पर।
आप कहीं औ कहीं इधर हम, बरसो कभी हमारे पर।।
जितना चाहो और तपा लो, बन तो चुके तुम्हारे अब।
जब तक पता न चल पाया था, थे मजबूर पिया तब तक।।
किन्तु अलग रहना अब मुश्किल, इतना ही है हमें शऊर।
कृपानाँथ बस कृपा करो अब, जल्दी करो न रक्खो दूर।।
थे उन दिनों मजाहिदपुर पी, तीजे दिन आई आवाज़।
किशनदास को कहा शेरपुर, उधर राजकरनी है आज।।
इधर भेजदो पास हमारे, हमें सूचना दी आकर।

अंग अंग हो उठा प्रफुल्लित, हुकुम पिया जी का पाकर।।
भाग्य सराहा सुनी हमारी, भग निकले रख सर पर पाँव।
पहुँच गये हम बैठ रेल में, उधर खतौली है इक गांव।।
सात कोस था दूर वहां से, श्री मजाहिद पुर स्थान।
पहल पहल चल रही उधर में, न थी राह की ही पहचान।।
किन्तु आसरे पर उन ही के, चल निकले उनका नाम।
चूक गई मैं आगे चलकर, मिली न ढूंडी राह तमाम।।
परेशान जब काफ़ी होली, तो इक बूढ़ा नज़र पड़ा।
राह बता कर हमें हमारी, क्षण में अंतरध्यान हुआ।।
इस प्रकार देखा जब मैंने, समझ गई बस वे ही हैं।
फिर हम को डर काहे का था, जब ले जा रहे स्वयं हमें।।
रस्ते भर ब्रज की लीलाओं, का हम को आनंद मिला।
छका दिया हमको पीतम ने, उस प्रशाद को खिला खिला।।
घड़ी आई वह परम सुहानी, जब टेका उस रज पर शीष।
किये हुवे थे पी पदार्पण, जहाँ मिली दर्शन बख़्शीष।।
पहुँची पावन चरणों में मैं, चूमी बार बार वह धूल।
पधरे चरण कमल जिस रज पर, जहाँ ब्रह्म मुनियों के मूल।।
मिली आँख से आँख पिया से, मानो खेंच लिया अंदर।
पी गइ मैं भी उन्हें नज़र में, मैं क्यों करती भला कसर।।
वे मेरे अंदर मैं उनके, अलट हो गए तत्काल।
वे क़ैदी मेरे मैं उनकी, नज़र नज़र में हुवे निहाल।।
आज जानकर सोच समझकर, प्रीतम हैं बैठी आगे।
बड़े दिनों में स्वप्न नगर की, मंज़िल पूरी हुई आके।।
देखा तो स्नेह वही है, जिसकी थी भूकी प्यासी।
और दिखावा भी वैसा ही, जिसकी बनी फिरी दासी।।
दीख गया मैं ग़लत न पहुँची, वही मौहल्ला वही गली।
सर के बल जिस तक आने को, छोड़ घरों को भग निकली।।
दी हमको बख़्शिष किरपा की, और रूह को अपना प्यार।
सोंपा ज्यों घर बार तुम्हारा, औ हम पर भी है अधिकार।।
दिया पूर्ण परिचय जल्दी ही, दिखलाया निज मूल सरूप।
युगल रूप के दर्श पर्श दे, किया हमें पी ने तदरूप।।
भिन्न अभिन्न हुई इकदम मैं, अपने ने हमें अपनाया।
जैसे सब कुछ गँवा दिया था, वैसे ही सब कुछ पाया।।
हुई राजकरनी अति पावन, पाकर पार ब्रह्म स्पर्श।
आभारी मैं रतनबाई की, ख़त्म किये जिसने संघर्ष।।

श्री बिरमाजीत सिंह पुः चतरभोजसिंह मजादपुर

लीलाऐं सब ये किरपा की, भोग रहा जिसको अंकूर।
बिछी है यह चौपड़ किरपा की, फैल रहा किरपा का पूर।।
किरपा की गाथा मुश्किल है, जाने इसे कृपा वाला।
आत्माऐं किरपा की ख़ातिर, थामे बैठी हैं प्याला।।
पैदा हुवे भूप खोड़ी में, बिरमाजीत हमें कहते।
राजपूत जाती से हैं हम, काम काश्तकारी करते।।
मोटा खाना मोटा पीना, मोटा चाल चलन सबका।
मोटी सूझ व मोटी बुद्धी, मोटा ही हसना बसना।।
मोटे लोग भला बारीकी, मैं कैसे जा सकते हैं।
अगर चले भी जावें तो, उसमें से क्या पा सकते हैं।।
सिर्फ़ कृपा के बसकी है सब, बे हुनरे भी पा जाते।
हुनर चाहिये हरिक काम को, किन्तु कृपा से आ जाते।।
ठहरे पशुवत सदा सदा के, भक्ति भाव से कोसों दूर।
बुरी संगतों में पनपे और, अहंकार में हर दम चूर।।
नू नू नम्बरदार गाँव का, बिरमाजीत वहाँ जाते।
महाराज श्री राम रतन जी, भी उसके घर थे जाते।।
कभी कभी बैठे मिल जाते, महाराज जी उसके घर।
पड़ने लगी बात बिन चाहे, सहज सहज कानों आकर।।
कारण बना जानने का उन्हें, सदगुरू सहज सहज जाने।
ज्ञान ध्यान तो समझे नंहि पर, रोज लगे सुनने आने।।
रस सा कुछ आता बातों में, ग़ौर से सुनती थी आतम।
चले गये चढ़ते सीड़ी सी, ऊपर दीखे दम पै दम।।
मिलता था जाने क्या अंदर, जा चिपटे अंदर अंदर।
काम बतावें कोई सदगुरू, उत्सुक से रहते अक्सर।।
काफ़ी रोज रहे ऐसे ही, वक्त एक आ हुवा खड़ा।
हुवा सहारनपुर परनामी, सम्प्रदाय के संग झगड़ा।।
सुनकर चौंक उठी ज्यों आतम, कान पड़ा जब यह ऐलान।
चलो जिसे हो धर्म पियारा, चले न जिसको प्यारी जान।।
राजपूत घर पैदा होके, मरने से यदि डर जावें।
तो वे कायर कहलाते है, नर्क ओर सीधे जावे।।
अपने धंधो पर नित लड़ते, आज धर्म के काज सही।

दिल ने उकसाये चलने को, करनी चाही तय्यारी।।
सफ़र ख़र्च की पड़ी ज़रूरत, घर मांगे जिस दम पैसे।
बैलों का कर दिया इशारा, इन्हें बेच लो जा करके।।
हटे वहां से हो उदास यो, पैसों बिन कैसे जावें।
जाकर ज़िक्र किया सदगुरू से, बोले आप न घबरावें।।
पैसे सबके हम खर्चेंगे, कमी न कोई आने दें।
सदगुरू काम चलावेंगे सब, आप न मांगें रहने दें।।
खुशी खुशी तय्यार हुवे फिर, साथ गये उस मौक़े पर।
जान लड़ा दी हर सेवा में, उठा न रक्खी कहीं कसर।।
हुवे बड़े संघर्ष वहां पर, लेकिन सब विधि विजय रही।
ध्वजा रही ऊंची सदगुरू की, दिग दिगान्त में लहराई।।
विजयी होकर लौटे वापिस, उस दिन से परशाद मिला।
पैसा पल्ले रहा सदा ही, कभी न खाली हाथ रहा।।
एक एक से पाया करता, एक एक से तर जाता।
एक भक्त गर होता घर में, कुनबा पार उतर जाता।।
लांघ दिया भइया को मेरे, लेकर नाम डकैती में।
घुस बंदी से नाम लिया यह, फांसना चाहा लोगो ने।।
ज्ञात न थी कुछ भी लोगों की, कोइ मुख़ालिफ़ नंहि अपना।
सो रहे थे निरद्वन्द पड़े घर, क्या रचना कुछ नहीं पता।।
गिरफ़्तार करने भइया को, उसी रात की बेला में।
घेर लिया घर पहुँच पुलिस ने, भइया सोता था घर में।।
बिरमाजीत यो सदगुरू बोले, जैसे दी जाती आवाज।
हां जी कहकर उठ बैठा मैं, जेल कहीं जाना है आज।।
शब्द जेल का सुनकर चौंका, लगा सोचने बैठा हो।
थी आवाज़ साफ़ सदगुरू की, चेत कराया ऐसे क्यों।।
भइया भी सोता है घर में, उठकर के उसको देखा।
स्वप्न सिर्फ़ समझा फिर उसको, बहम है केवल बस सो जा।।
सो गया जाकर फेर खाट पर, कुछ क्षण में निद्रा आई।
चार बजे प्रातः में अपने, चारों ओर पुलिस पाई।।
घेर लिया घर सारा आकर, पड़े घरों में सोते थे।
आन जगाया घरवाली ने, पुलिस खड़ी क्यों द्वारे में।।
घुसे चले आते है घर में, उठा तड़फ कर मंझे से।
चारों ओर सिपाही दीखे, थाम लिया मुझको कुछ ने।।
घुस गइ घर में सभी पुलिस फिर, मुझको पकड़े खड़े रहे।
पर सदगुरू की लीला देखो, जहां भाइ था नहीं गये।।

अंधे किये सिपाही सारे, वह घर नज़र नहीं आया।
जिसमें भाई पड़ा सोता था, वहां न एक पहुँच पाया।।
तेरा भइया बता कहां है, लीला समझ गया मैं भी।
घंटों पहले चेत करा जो, अब समझा यह लीला थी।।
बोल दिया मैंने भी घर है, देखो, होता मिल जाता।
मुझे नहीं मालूम कहाँ है, मेरा उससे क्या नाता।।
भरते सब अप अपनी करनी, करने वाला भरता है।
भरै बिना करने वाला क्यों, सदगुरू रक्षा करता है।।
मार मार सर चले गये पर, घर वो नज़र नहीं आया।
सदगुरू माया देखी ऐसी, पार न उनका कुछ पाया।।
बड़ी कृपा की इन मूढ़ों पर, पता नहीं कारण क्या था।
जो ऐसों में बैठे आकर, जिन्हें न थी उनपर श्रद्धा।।
वे लाये उद्धार वास्ते, उकसाने भव दलदल से।
फंसी अंगना आन यहाँ कुछ, मतलब साफ़ यही इससे।।
लाग डाट रहतीं आपस में, गाँवों के हैं यही चलन।
उससे इसकी, इसकी उससे, चलती रहती हैं अन बन।।
दबता कोइ न इक दूजे से, लड़ने मरने को तय्यार।
परेशान होवें जैसे हों, सारे अजमाते हथियार।।
पर श्री सदगुरू जिसके सर पर, उसे फ़िकर फिर काहे का।
करते रक्षा स्वयं पहुँचकर, कोइ न कुछ कर पाऐगा।।
एक बार अपने बैलों को, चोर चुराने आ पहुँचे।
हम बेफ़िकर पड़े सो रहे थे, चोरों ने झट आ खोले।।
"बिरमाजीत": बड़े ज़ोरों का, शब्द कान में इक आया।
खुल गए तेरे बैल खड़ा हो, होता खड़ा चला आया।।
भगा घेर को उठते ही मैं, बैल न पाये मुझे वहाँ।
थोड़ी दूर गये थे तब तक, चोरों का ना मिला निशाँ।।
छोड़ भगे मुझको लखते ही, वापिस उन्हें पकड़ लाया।
बड़ी कृपा की श्री सदगुरू ने, हमें उन्हीं ने बचवाया।।
वरन् काम कर गए थे दुश्मन, रह जाते बस लुटे पिटे।
बचे श्री सदगुरू किरपा से, बाल बाल उस रोज़ बचे।।
किन बोलों से करूँ प्रशंषा, किन शब्दों में गुन गाऊँ।
लाऊँ कहाँ से हृदय वो जिसमें, आतम पति को बिठलाऊँ।।
संषय नहीं तनिक भी मनमें, श्री राज जी हैं भरतार।
किन्तु न दीखे इन आँखों, चमड़े की हैं आख़िर कार।।
कभी न माँगी मुक्ती हमने, कभी मांगी घर की सूझ।

कभी न सोचा पीतम हैं ये, रही दुनी की हरदम जूझ।।
बड़े बड़े श्रम किये नाम हित, मंदिर जब निर्माण हुवा।
उलट पुलट धरती कर फेंकी, बड़े ज़ोर का काम हुआ।।
किये रात दिन एक काम में, न्यौछावर कर दिया शरीर।
कल्यांणार्थ होम दिया तन मन, गुरू ने की सीधी तक़दीर।।
धर्म पत्नि विधावति ने भी, उन चरनों से लाभ लिया।
रहनी करी भक्ति मय अपनी, किरपा का धन प्राप्त किया।।
बिगड़ी हुई आक़बत अपनी, विधावति ने करली ठीक।
अलग न समझे महाराज जी, दिखते थे हर समय समीप।।
हे धनिधाम राज राजेश्वर, कष्ट निकंदन मम आधार।
रखना चरण कूल ही अपने, करके आतम का उद्धार।।
बिरमाजीत नमन करता है, सदगुरू देना इतनी भीक।
पड़े आसरे पर हम तेरे, रखना चरनों के नजदीक।।

पधरावनी श्री मजाहिदपुर आश्रम

बड़े हर्ष की बात है निज मंदिर निर्माण।
भवन दिव्य श्री राज का पधरा पृथ्वी आन।।

महाप्रभू की अनुकम्पा औ, श्री सदगुरू की किरपा से।
रक्खी गई नींव मंदिर की, श्री मजाहिदपुर जब से।।
रूकता नहीं काम सदगुरू का, धीरे धीरे बन जाता।
गति गयंद से चलता रहता, पूरा होकर रूक पाता।।
अतः एक दिन आ ही पहुँचा, हुई प्रतिष्ठा मंदिर की।
कटी चिट्ठियाँ भारत भर को, कुल उम्मत आमंत्रित की।।
जाम नगर पन्ना सूरत औ, फूल पूर भइया का साथ।
सभी जगह के संत महंतों, का लगवाया इसमें हाथ।।
इधर उधर आमंत्रित गण को, लेने के लिए दौड़ पड़े।
कुछ बस अडडे कुछ स्टेशन, कुछ को मेरठ से लाये।।
ट्रैक्टरों कारों आदिक कुछ, घोड़े ताँगों से आये।
अनथक भाग दौड़ करके, मेहमानों को आश्रम लाये।।
निमटे ही थे आकर इतने, में इक परचा फिर आया।
मुरली दास जी ने मेरठ से, वह परचा था भिजवाया।।
लेने हमें कार भेजो इक, बोले श्री सदगुरू महाराज।
बसकी नहीं और के सेवा, तुम ही जाओगे परताप।।
न्हाए नहीं खाया भी नंहि कुछ, मिला न अब तक कंहि विश्राम।
अब क्या कहें आपके आगे, वैसे हैं वे उज़र गुलाम।।
उठकर गए सदगुरू मंदिर में, पेड़े लाए उठाकर चार।
पाव पाव भर का था इक इक, पूरा पेट बोझ था भार।।
ले ख़ुराक है मेले भर की, रहे न भूक भाक का काम।
क्या रक्खा जल के न्हाने में, सर्वोत्तम सेवा स्नान।।
तुम्हें ज़रूरत नंहि न्हाने की, औ न ज़रूरत खाने की।
शुद्धी ऊपर ऊपर की होती हैं, हैं सब लोग दिखाने की।।
निधियाँ लेकर ये सदगुरू से, भाग लिये हम मेरठ को।
मोटर लेकर मेरठ ही से, ले आये महंत जी को।।
आ निमटे जब संत लोग सब, औ महंत श्री मुरली दास।
इन्द्रराज ने भी सेवा की, अपनी सेवाओं के साथ।।
अजब समाँ हो गया उपस्तिथ, ठीक प्रतिष्ठा वाली रात।

जल ही जल वह उठा चर्तुदिश, ब्रज जैसा दीखा उत्पात।।
घुटनों घुटनों जल डेरों में, लिये खड़े सर पर सामान।
द्रश्य देखने लायक़ था वो, इस ढब से बरसे घनश्याम।।
भीग गया जब मेला सारा, आइ न वर्षा रूकने में।
भक्त नाँच उट्ठे विभोर हो, टेर लगई मंदिर में।।
प्रभो तमाशा कैसा है यह, आज इरादा है कैसा।
क्या है आज परिक्षा जो यह, द्रश्य उपस्थित है ऐसा।।
बाहर एक आम के नींचे, बनी हुई थी इक कुटिया।
महाराज थे उस कुटिया में, उनके आगे नृत्य किया।।
नाँच रहे मदमस्त भीगकर, गा रहे सारे गला पसार।
इधर बरस रहा संकीर्तन रस, उधर बरस रही जल की धार।।
दो रस का जब हुआ समन्वय, रस का रहा न पारावार।
जल धारा ऊपर थी नींचे, गूंज रही थी ध्वनि अविराम।
आवाहन कर रहे कृपा का, मालिक दो वर्षा को थाम।।
अब यह कीर्तन तभी रूकेगा, जिस दम बंद होगी जलधार।
है हराम रूकना अब हमको, अपने रूकने पै धिक्कार।।
पैज लगी दोनों में जैसे, देखें कौन थकेगा आज।
मंद मंद मुस्कारहे बैठे, अपनी कुटिया में महाराज।।
चला एक घंटा संघर्षण, भक्तनाँथ औ भक्तों का।
पड़ा पिघलना विवश प्रभू को, शान्ता हुई उसदम वर्षा।।
ध्वनि संकीर्तन तभी बंद हुई, हुई जिस सायत बारिश बंद।
है महत्व सब को अप अपना, यह भी था अदभुत आनंद।।
वर्षा थमीं थमा जल विपलव, दैवी, देव, प्रकोप रूका।
करने के लिए कार्य सेवकों, में सेवा उत्साह उठा।।
हुआ साफ़ अस्मान एक दम, चमत्कार सा जाग उठा।
बंटा फेर परशाद सभी को, महाराज ने किरपा का।।
जिस दम मैं स्टेज लगा रहा, था अगले दिन खड़ा हुआ।
तो श्री सदगुरू जी ने आकर, हमको एक आदेश दिया।।
सभी गादियों में इक गादी, रखनी है सबसे ऊँची।
अच्छी तरह सजा भी देना, हम बोले बहुत अच्छा जी।।
हमने इक अंदाज़ लगाया, सुनकर इस निर्देशन को।
जिनके हाथ कलश चढ़वावें, बिठलावें इसपै उसको।।
अतः एक गादी कोने में, सब से ऊंची बनवादी।
गुलदस्ते आदिक लगवाकर, फूलों से वह सजवादी।।
कमर लगाने के लिए तकिये, बड़े बड़े हर गादी पर।

सजवाकर स्टेज श्री सदगुरू, से हम बोले जाकर।।
महाराज जी एक नज़र, यदि कभी कोइ हो बतलादें।
लगें और सेवा में फिर हम, पहले इसको निमटादें।।
देखते हि स्टेज नज़र भर, ठीक बताई सदगुरू ने।
किसके लिये है ऊँची गादी, सदगुरू से पूछी हमने।।
अपनी गद्दी के गादी पति, परम हंस जी पधारेंगे।
जो महंत हैं फूलपूर के, इसपै उन्हें बिठाऐंगे।।
ये अपने सम्बंधी हैं हम, इस गादी से आये हैं।
इनकी महिमाँ है विशेष, आदर से इन्हें बुलाये हैं।।
गादी अपनी अलग बताकर, सदगुरू ने संषय डाला।
सम्प्रदाय परनामी से यह, सम्प्रदाय है अति आला।।
सहज सहज कुछ दिन में जाकर, गद्दी का संषय भाना।
इस गादी की छत्र छाँव में, ब्रह्मसृष्टियों को आना।।
श्री सदगुरू हैं और पंथ के, ज्ञात हुआ इस तरह हमें।
महाराज ने ख़ुद बतलाया, ख़ुद से अवगत किया हमें।।
परनामी में भी परनामी, या परनामी से न्यारा।
उथल पुथल से मुक्त हुवे हम, सुनी ये जब सदगुरू द्वरा।।
पधरौनी सम्पन्न हुई ध्वज, चौबीसी में लहराया।
चौबीसी का राजपूत दल, उत्सव में काफ़ी आया।।
दिया इसमें सहयोग सभी ने, छत्तिस क़ौमों का मेला।
आन पधारे श्री राज जी, आई ऐसी शुभ बेला।।
की सम्पन्न प्रतिष्ठा इस विध, समारोह था बड़ा विशाल।
दस हज़ार लोगों ने जीमा, श्री राज जी हुवे दयाल।।
श्रेय सभी यह रतन बाई को, उनकी किरपा बड़ी महान।
शेर पूर को ब्रज कहते थे, रास मजाहिद पुर स्थान।।

बीतक प्रतापसिंह मेरठ

शास्त्रार्थ भी हुआ झगड़े भी, बात निखर कर यह आई।
परनामी से टक्कर नंहि, ले पाए बिचारे परवाही।।
भाव बदल गए अब अपने कुछ, सदगुरू के हुवे अब अनुकूल।
ठह गये क़िले ग्यान ध्यानों के, उड़ी धर्म की बनके धूल।।
जिज्ञासा हुई और मिले कुछ, मैं तब सर्विस ही में था।
एक महीने की छुट्टी ली, और घूमने निकल पड़ा।।
राजस्थान घूम धामकर, मध्य प्रदेश में जा पहुँचा।
सागर और छतरपुर होके, मध्य प्रदेश में जा पहुँचा।।
उसके बाद गया पन्ना जी, परिचय दिया शेरपुर का।
सदगुरू अपने रामरतन जी, हौबी है किताब लिखना।।
समिग्री चहिये किताब की, लिखना है साकुंडल ग्रंथ।
लेने वही आए पन्ना जी, कृपा करें यदि संत महंत।।
पन्ना लाल जी ने बतलाया, आप मिलें महाराजा से।
उनके निजी पुस्तकालय में, छत्रप्रकाश इक पुस्तक है।।
हस्त लिखित है छत्रसाल की, महाराजा से आज्ञा लें।
वहीं पुस्तकालय में जाकर, उस पुस्तक को आप पढ़ें।।
मिल करके महाराजा साहिब, से हमने आज्ञा लेली।
दुर्लभ है पुस्तक ता कारण, सोच समझ के आज्ञा दी।।
अपने मतलब का मैटर हम, उस पुस्तक से ले आये।
छत्रसाल जी की महिमाओं, को हम देख समझ आये।।
ग्रंथ सकुँल एक वर्ष में, खण्ड काव्य में रच डाला।
छत्रसाल जी की महानता, पर प्रकाश उसमें डाला।।
लड़ी गईं बावन लड़ाइयाँ, औरंगज़ेबी सत्ता से।
हार ना मानी यवनों से कभी, वीर बुंदेले छत्ता ने।।
वर्णन प्राँण नाँथ जी का भी, जब से उनसे हुवा मिला।
जितवाई लड़ाई बावनवी, सर पर धर किरपा का हाथ।।
कारण बने कार्य होने के, कारण में कारज होता।
अतः सकुंडल ग्रंथ सुनाने, महाराज को जा पहुँचा।।
बीतक चल रही थी साँवन था, रौनक़ शेरपुर आश्रम में।
सुंदर साथ बाहर का भी था, दिया सुबह का समय हमें।।
न्हा धोकर जब निमटा करते, तो हमको बुलवा लेते।
भवन तारतम के कमरे में, हम से उसे सुना करते।।

महाराज से साथ पूछता, इन्हें मंत्र किस वक्त दिया।
निगुरू ही है अभी तलक ये, मंत्र किसी से नहीं लिया।।
बात तो सब अपनी कहता है, अपना ज्ञान सुनाता है।
कोइ यहाँ आकर पढ़ता, कोइ पढ़ा पढ़ाया आता है।।
मंत्र आप क्यों नंहि देते इन्हें, माँगे कोइ तो तब देवें।
चीज़ तो हैं नंहि जिसे उठाके, जबरन हम पकड़ा देवें।।
लोग हमें कहते आकरके, आप मंत्र क्यों नंहि लेते।
मंत्र योग्य हम अभी नहीं हैं, होते तो गुरू दे देते।।
ख़ुद नंहि माँगेंगे हम उनसे, जब तक स्वयं न देवें आप।
इस प्रकार हम चुप करदेते, बढ़ने नंहि देते हम बात।।
घटी शेरपुर में इक घटना, बतलाते हैं तुमको आज।
महाराज को घेरे बैठी, कुछ जनानियें, सुंदर साथ।।
सुना रहे महाराज चुटकुले, बीत चुकी थी आधी रात।
महाराज भी मस्त हो रहे, उनको बात सुनाने में।
बैठे थे तारतम भवन के, उस दम सभी बराण्डे में।।
था अखण्ड पारायण उस दिन, ग्रंथ सामने पधरा था।
महाराज का आसन था जहाँ, ग्रंथ वहाँ से दिखता था।।
उधर पाठ पढ़ता था कोई, युगलदास आया मुझ पै।
एक मदद कर सकते हो क्या, वह बोला आकर मुझ से।।
इन ज़नानियों से हम तंग हैं, अपनी समझ नहीं आती।
सोने नंहि देतीं सदगुरू को, ख़ुद जा जा के सो जाती।।
नहीं सोचती कोइ कि थोड़ा, इनको भी चहिये आराम।
वे भी खूँटी से बैठे हैं, करवा रहे ख़ुद नींद हराम।।
युगलदास चिंता मत कर तू, इनको अभी भगाता हूँ।
देखता रह तू महाराज को, जाके अभी सुलाता हूँ।।
जाते ही मैंने उस ग्रुप में, मारा अपने हाथ में हाथ।
बड़े ज़ोर से बोली ताली, अच्छा तो अब सुंदर साथ।।
अपने अपने भवन पधारो, श्री सदगुरू पै करो कृपा।
इनको भी आराम चाहिये, कभी आपने यह सोचा।।
आप जा सोवें बारी बारी, इनपै दे रक्खा पहरा।
कभी कहीं ये सो ना जावें, महाराज ने मुझे देखा।।
तो हमें सुलाने आया है तू, जी हाँ तुम्हें सुलाऊँगा।
जब तक आप न सो जाऐंगे, तब तक मैं नंहि जाऊँगा।।
हमें चाहियें आप, आपको, बड़ा ज़रूरी है आराम।
जो घेरे बैठी थीं तुम को, इनको तो तफ़री से काम।।

फैलाकर टाँगें मैंने झट, तकिये के ऊपर धरदीं।
पैरों से गर्दन तक चादर, सदगुरू के ऊपर ढकदी।।
लग गया टाँग दबाने उनकी, मंदिर की जानिब थे पैर।
लालटैन धीमी करदी कुछ, मिनिट दसिक की हुइ थी देर।।
आई इक आवाज़ फुर्र की, फड़फड़ाए सदगुरू के होट।
जैसे खुर्राटे लेने में, कभी कभी बज उठते होट।।
समझ लिया हमने सो गए अब, मुट्ठी ढीली की अपनी।
थोड़ी देर बाद होटों की, ज़ोरों की आवाज़ सुनी।।
हमने मुँह की ओर निहारा, मिंची हुई थीं दोनों आँख।
मुंह फेरा तो तकिये पर नंहि, थीं सदगुरू की दोनों लात।।
सहन पार करके मंदिर में, ग्रंथ के दोनों पन्नों पर।
दोनों चरण धरे दीखे हमें, जैसे तकिये के ऊपर।।
कभी पैर कभी मुंह सदगुरू का, कौन है यह मेरे भगवान।
बुरा फंसा इसके चक्कर में, है पिशाच्, नंहि है इन्सान।।
पर सामर्थ न रही उठने की, चाहा भाग, न भग पाया।
टेर मदद के लिये किसी को, बोल न इक मुंह तक आया।।
तीन बार दीखी यह हालत, तीनों बार वही पाया।
तीनों बार टाँग कुलज़म पर, फ़र्क न तिल भर भी आया।।
रही न हरकत पुतली ही में, नस में रहा न रक्त प्रवाह।
कह नंहि सकता भय का मुझ पर, कितना था उस वक्त दबाव।।
बड़ी ज़ोर से हुई फुर्र फिर, देखा मुंह फिर सदगुरू का।
देखा टांग पाइ तकिये पर, जा सोजा, यह शब्द सुना।।
सुनते ही भग छूटा उठके, भग प्रताप कहां आन फंसा।
खोलके कमरा ज्यों त्यों करके, आसन पै मैं जा बैठा।।
सोचा व्यक्ति नहीं यह अच्छा, क्या लेगा अपने घर जा।
ग्रंथ जो पूजा जाता है यहाँ, उस ही पै जा रक्खा पैर।
है अपमान जनक यह हरकत, मानो कुलज़म से हो बैर।।
स्वयं मान अपमान स्वयं ही, समझ न आती क्या है बात।
तू प्रताप चल निकल यहाँ से, अच्छे नहीं यहाँ हालात।।
चार बजे उठ करके चलदे, अब दो इक घंटे सोले।
अतः एकदम सोने के लिए, हमने निज बिस्तर खोले।।
फूंक मारकर लालटैन में, हमने ज्यों ही मींची आँख।
लगी दीखने महाराज की, हमको लम्बी लम्बी टाँग।।
घेर लिया भय ने फिर मुझको, ललटैन फिर रौशन की।
डर कम लगता है प्रकाश में, रात काटनी मुश्किल की।।

हुआ इरादा पक्का अब तो, होने दे गर अभी है रात।
पहुँच ही लेगा तू नानौता, जब तक होगी सुबह प्रताप।।
कपड़े रखकर बैग उठाया, बड़े द्वार पर जब पहुँचे।
लोटा लेकर बम्बे बम्बे, जाते हुवे सदगुरू दीखे।।
हम रूक गए टट्टी जा रहे हैं, इनको वापिस आने दो।
किन्तु न वापिस आते दीखे, घंटा बीत चुका हमको।।
तू मुग़ालते में है शायद, वे आके सो गए होंगे।
बैग उठाया फिर चलने को, तो सदगुरू आते दीखे।।
वापिस भगे देखकर उनको, फिर जा पधरे कमरे में।
जब तक सो न जाँए फिर सदगुरू, जाना नंहि यों ठीक हमें।।
बैठ गये हम इन्तज़ार में, कहीं न खड़का नल या डोल।
चुंकारा नंहि कहीं किसी का, भनके नहीं किसी के बोल।।
हालत बनी चोर जैसी निज, कमरे से बाहर आया।
लोटा लिये हुवे टट्टी को, जाते हुवे फेर पाया।।
अब बिलकुल जंच गई सदगुरू का, आज हुआ है पेट खराब।
देर से यों वापिस आते हैं, वापिस आए फेर परताप।।
उसी रास्ते जाना हमको, जिस रस्ते ये जाते हैं।
विवश करें क्या कमरे में फिर, आकरके पड़ जाते हैं।।
इसी तरह की घाल मेल में, बजे घड़ी में अपनी चार।
हम कमरे से बाहर आये, जाने के लिए तीजी बार।।
देखा तो इस बार हजूरी, भी है श्री सदगुर के साथ।
आगे आगे सदगुरू पीछे, लोटा लिये हुजूरी साथ।।
मारे गए अबके भी भइया, टट्टी है या हंगामा।
जब देखो टट्टी ही टट्टी, टट्टी ने रोका जाना।।
अब क्या जाते घंटों में तो, वापिस आके निमटेंगे।
तब तक कौन रहे सोता हुआ, आश्रम में सब उठलेंगे।।
पड़ जा भइया अब चुपके से, थी लाचारी क्या करता।
आँख मींच ले अब थोड़ी सी, में बिस्तर पर जा लेटा।।
किन्तु वही नक्शा टांगों का, सन्मुख आ हो गया खड़ा।
कमर न सीधी कर पाऐ हम, उठना ही मजबूर पड़ा।।
ज्यों गुलेल का मारा कव्वा, चैन से बैठ नहीं पाता।
वही हाल इस घड़ी हमारा, भग चल टिका नहीं जाता।।
एक नींद का इक भय का, दो चक्कर सर पर अपन सवार।
रूकना ही पड़ गया हमें, उस दिन क्या करते अख़िर कार।।
चहल पहल हो गई आश्रम, में न्हा धोकर जब निमटे।

महाराज पहुँचे मंदिर में, सुबह को चर्चा करते थे।।
हमें बुला लेते सुनने को, अतः बुलाने इक आया।
दिया संदेशा आकर के, तुमको सदगुरू ने बुलवाया।।
हमने कहा उसे झुंझलाकर, कहदो जाओ नहीं आते।
चला गया सुनते ही अपनी, अब दो दो देखे आते।।
युगलदास भी था उनमें इक, हमने पूछा क्यों भाई।
क्या देंगे महाराज आपके, जो जोड़ी लेने आई।।
हमें न जाना कहदो जाके, रात हमें तुमने भेजा।
क्या बतलाऐं कथा रात की, जो कुछ भी हमने देखा।।
पेचिश है क्या महाराज को, हो रहा है क्या पेट ख़राब।
लोटा ठाऐ फिरे रात भर, टट्टी फिरते फिरे जनाब।।
कहदी जाके युगलदास ने, ज्यों की त्यों सब अपनी बात।
दस्त उसी को लग रहे हैं तुम, लाओ लिवाके जबरन साथ।।
अब के तीन आए मुझे लेने, चुपके से चलदें अब आप।
वरन् उठाके ले जाऐंगे, सुननी नहीं आपकी बात।।
गिरफ्तार करके ले गए हमें, हाज़िर हुऐ जाकर दरबार।
इस प्रकार आता हुआ लखकर, मुस्कराए हम पर सरकार।।
आज दूर ही से प्रणाम की, मस्तक नहीं नवाया आज।
क्यों नंहि आ रहे थे, वे बोले, न्हाए धोए नंहि हैं महाराज।।
कोइ बात नंहि फिर न्हालेना, अब करलो चर्चा स्नान।
बातों पै बोले नंहि उनकी, देने दो जो दे रहे ज्ञान।।
हुई चर्चा प्रारम्भ छिड़ा कुछ, ऐसे ढंग का आज प्रसंग।
गया चीरता मन बुद्धी को, हिल उट्ठे आतम के अंग।।
ढंग असाधारण, रंग असाधारण, थी असाधारण वह चर्चा।
झुंझलाकर झंझोड़ता जैसे, सोए हुवे को जगा हुआ।।
ज्यों घटाओं के अंधियारों को, सूर्य निकलते हि हर लेता।
वशी करण पर वश को जैसे, वश में अपने कर लेता।।
ज्यों गयंद अंकुश के भय से, सीधा होकर चल देता।
रहा न भय का लेष कहीं भी, चूंस लिया भीतर भीतर।।
धन्य धन्य गुरू देव आत्माँ, ने थामे पग यह कहकर।
चर्चा के उपरान्त स आदर, चरण लिये सदगुरू जाकर।।
कई थेपियाँ दीं खुश होकर, मेहर की वर्षा बरसा कर।
था मिलाप उस दिन बीतक में, सुंदर साथ बहुत आया।
सर देने की रस्म थी उस दिन, छत्ता ने गुरू अपनाया।।
दो पहरी में कीर्तन के लिए, सदगुरू रोज़ बुलाते थे।

भजन भक्ति रस के उन्हें हम नित, नए नए रोज़ सुनाते थे।।
बोल पाए थे एक भजन, इतने में युगलदास आया।
बात कान में की सदगुरू के, बंद कीर्तन करवाया।।
सदगुरू को ले गया उठाके, भवन तारतम के अंदर।
केशवदास भरत सिंह दोनों, आ पहुँचे फिर मेरे पर।।
चलो तुम्हें महाराज बुला रहे, क्यों क्या है मैंने पूछा।
पड़ जायेगी ख़बर पहुँचके, चल तो सही आगे बच्चा।।
भवन तारतम के द्वारे पर, मैं जाकर के खड़ा हुआ।
क्यों बुलवा रहे महाराज जी, जैसे ही अंदर झांका।।
मुझे देखकरके सदगुरू के, मुंह से निकली आजा।
रह गया खड़ा काठमारा सा, जो कुछ हम को दीखा।।
थाल धरे थे सजे मंत्र के, भरा धरा पेड़ों का थाल।
हैं तय्यार मंत्र दाता भी, किसने पूरा है यह जाल।।
अच्छा नहीं किया यह उसने, मैं बिलकुल नंहि हूँ तय्यार।
न्हाए धोए तक नहीं आज यों, अच्छा नंहि लगता महाराज।।
बाहर का स्नान न चहिये, हमें चाहिये अंदर का।
शेरों के मुंह किसने धोऐ, ठीक है बस यों ही आजा।।
मन में सोचा तू कहता था, ख़ुद दें मंत्र तभी लूंगा।
दे तो रहे हैं और अधिक, बुलवाके देना क्या होगा।।
अतः मैं जा बैठा आसन पै, मन प्रसन्न नंहि था अपना।
फिकर दक्षणा का था अंदर, धन नंहि था पल्ले इतना।।
तय्यारी पर लेते तो क्या, देते हम इस अवसर पर।
अब प्रताप खुद ही होना है, गुरू के ऊपर न्यौछावर।।
देना दस या बीस सिर्फ़, तौहीन है करना सदगुरू की।
हमने सर देकर ही केवल, रस्म तारतम पूरा की।।
थी मिलाप की बीतक उस दिन, छत्रसाल ने दी जब छाप।
मची खलबली मुझ में मैंने, भी पहनादी गुरू को छाप।।
मुंदरी पर प्रताप लिक्खा था, हुआ किसी का आज प्रताप।
था प्रताप जिसका उन हाथों, जा पहुँचा है आज प्रताप।।
दो दिन के पश्चात् हमारी, हुई चलने की तय्यारी।
करने विदा साथ सदगुरू के, आए द्वार तक नर नारी।।
डबडबाइ आँखों से छूऐ, चरन और माँफ़ी माँगी।
क्षमाँ चाहते महाराज जी, हुई ग़लती हमसे काफ़ी।।
अब बनकर हम चले आपके, अपनों का अब रखना ध्यान।
अभी बहुत छोटे से हैं हम, आप हैं हम से बहुत महान।।

चला जा रहा हमको लूटे, हम पै अब छोड़ा ही क्या।
कहते ही यह बोल हमारी, जानिब से मुँह मोड़ लिया।।
आँख पूँछते मुड़े इधर हम, आँख पूंछते उधर मुड़े।
आत्माऐं जुड़ चुकीं उधर, पर इधर विचारे तन बिछड़े।।
लगा कि जैसे हम नंहि जा रहे, और कोइ जा रहा चला।
हम हरदम दो से लगते अब, रहा न मैं अब से इकला।।

श्री त्रिलोकीसिंह पु: मंगासिंह भूपखेड़ी

झुके यहाँ माया में सब ही, कोइ आज तो कोई कल।
क्या क्षत्री, क्या वैश्य शूद्, क्या पंडित, झुके सभी दरसल।।
अहंकार भी सब ही को है, मरता नहीं किसी का भी।
बचकर गया न कोइ यहाँ से, मिली दुखों की परशादी।।
इक दम कोइ न जाना जाता, जिसको जाना शनः शनः।
शनः शनः बिगड़ा जो बिगड़ा, बनता भी यहाँ शनः शनः।।
शनः शनः खोया हुआ पाता, शनः शनः गुम हो जाता।
तिरलोकी सिंह नाम हमारा, सुनो हमारी भी चर्चा।।
पैदा हुवे भूप खेड़ी में, खेले कूदे बड़े हुवे।
दुनियाँ को भी लगे समझने, कुछ थोड़ा सा पढ़े लिखे।।
इल्म मगर दुनियाँ का सीखा, दुनियाँदारी योग बने।
उल्टे उल्टे मार्ग पकड़कर, ढोके उल्टे ही खूंटे।।
क्या क्या सीखा क्या बतलादें, क्या क्या इच्छा अंदर थी।
जो भी सुने कहेगा पागल, कभी न पूरी हो सकती।।
जँचता कोइ न अपने आगे, पागल सब को बतलाते।
अगर महात्माँ दिखता कोई, कभी न उसको ठिंगराते।।
महाराज श्री रामरतन जी, की निंदा ही करते थे।
कहा न अच्छा कभी हृदय से, बल्कि बुरा ही कहते थे।।
रखते थे उन दिनों मुरलिया, अकसर प्रातः पड़ती कान।
बड़ी चिंपकती तान हृदय को, श्रोताओं के हरती प्राँण।।
मन से करते उनकी निंदा, किन्तु कान करते तारीफ़।
कह उठते चल सुनें पास से, लेकिन मन है बड़ा हरीफ़।।
फ़ौरन् रोक खड़ा हो जाता, ढोंगी है जाना मत वाँ।
मन सवार हो बैठा उल्टा, अहंकार वश नहीं नवा।।
वानक बन ही गये एक दिन, सूर्य ग्रहण पर जा पहुँचा।
ठीक नहीं बतला सकता के, किस कारण उपजी इच्छा।।
लेकिन पकड़ा गया पहुँचकर, हाथ पकड़ पहुँचा पकड़ा।
याद मोहनी ऐसी थी कुछ, फेंकी औ उसने जकड़ा।।
शुरू हुआ आना जाना फिर, भजन कीर्तन जा सुनते।
मुख से फूल से दिखते झड़ते, सदगुरू जब सत्संग करते।।
समझ न थी पर लगे समझने, प्रेम न था पर जाग उठा।

लगन न थी पर लगने लग गई, सौदा सारा आन जुटा।।
ख़ाली हाट गया मैं लेकर, सूना सूना था बाज़ार।
पैंठ लगी जुड़ने भीतर इक, अंदर अंदर मिला अहार।।
परिवर्तन लख घरवालों में, इक चर्चा आरम्भ हुई।
कहाँ बैठना शुरू किया है, सभी ने यह इक रोज़ कही।।
छुटा न लेकिन आना जाना, भय कुछ दिन तक दिखलाया।
अगर गया आश्रम मारेंगे, कुनबा बुरा पेश आया।।
जितने रोके पके और हम, क्यों के लड़के काफ़ी थे।
बिरमाजीत और तिरलोकी, भगे और हम शेष रहे।।
हम मुक़ाबला कर गए घर का, पी गए जो विष मिला हमें।
सदगुरू ने अपनाऐ इस ढब, फिर नंहि जाने दिया हमें।।
हम नंहि थके थके घर वाले, हो गए हम से सब लाचार।
बैठ गये क्या करते थक कर, मान गये सब हम से हार।।
काम चला बेधड़क हमारा, किया न लुक छिप कर ये काम।
आश्रम आए बिना नंहि रहते, कभी यहीं करते विश्राम।।
महाराज जी बैठे इक दिन, बजा रहे थे बाजे को।
लगे बड़े ही अच्छे हमको, सोचा इनसे यह सीखो।।
अगले रोज़ भोग ला रक्खा, बाजे के गुरू बन आओ।
इच्छा है हम सीखें तुमसे, कृप्या हमको सिखलाओ।।
शिष्य बने पहले बाजे के, सदगुरू ऐसी इच्छा जान।
अंदर अंदर लगे सिखाने, बढ़ा हमें बाजे का ज्ञान।।
लगे बजाने धीरे धीरे, चाव कीर्तन का जागा।
कारण बना शरण रहने का, उन चरनों अब मन लगा।।
एक वर्ष के भीतर भीतर, मंत्र तारतम मिला हमें।
करके कृपा श्री सदगुरू ने, सफ़ में अपनी लिया हमें।।
माफ़िक अपनी औक़ातों के, भेट दक्षणा की उनको।
संतो देवी शाल लाइ थी, श्री सदगुरू को देने को।।
सदगुरू को जब शाल दिया वो, संतो बाई ने लाकर।
एक भाव उपजा मुझ में भी, हम ग़रीब ठहरे आख़िर।।
धन होता तो हम भी देते, प्यार धनी ही कर सकते।
सदगुरू प्यार इन्हीं से ज़्यादा, हमें नहीं इतना करते।।
था ये भाव छिपा मन ही में, बोले झट अंदर की जान।
प्यार अधिक हमको ग़रीब से, दिल से देते उसको मान।।
उत्तर अपने अंतस्तल का, ऐन उसी दम जब आया।
समाधान कितनी ही शंका, का उस उत्तर में पाया।।

कितनी छिपी जानते सदगुरू, उस दिन इलम हुआ हमको।
तमन्नाए बच्चों की होतीं, एक बार मेरी स्त्री।।
जाने किसको लगा साथ में, सदगुरू के ढिंग जा पहुंची।
बच्चा न था एक भी तब तक, उसको इच्छा बच्चों की।।
मुझे नहीं थी कोई तमन्ना, केवल यह उस ही की थी।
थी जो साथ बतादी उसने, स्त्री है तिरलोकी की।।
इच्छा है बच्चे की इनको, चरनों में यों आई थी।
वे बोले सुनते ही उससे, क्या बोली तिरलोकी को।
उसे नहीं इच्छा बच्चों की, यह तो इच्छा है इसको।।
जा बस पूरी हो जाऐगी, जो कुछ तेरे मन में है।
सदगुरू सदगुरू नाम रटेजा, यह धन सब से उत्तम है।।
इस प्रकार आशीष प्राप्त कर, कोख सपूती करने का।
चम्पावती धर्म पतनी को, सदगुरू से सौभाग्य मिला।।
इच्छा पूरी हुई कृपा से, पुत्र रतन पाया उसने।
महिमाँ बड़ी अजब है उनकी, इच्छा पूर्ण करी सबने।।
कर रहे थे सत्संग एक दिन, बैठे हुवे सदगुरू महाराज।
मूल रूप दीखा उनही में, जैसे हों सन्मुख श्री राज।।
बने राजजी बैठे बैठे, दमक उठा उनमें वह रूप।
एक मेक हैं सदगुरू प्रीतम, दोंनों का है एक सरूप।।
एक बार बीतक पर दीखे, कर रहे थे बैठे चर्चा।
स्वामी रामरतन साहिब में, प्रीतम का आमास लखा।।
साक्षात् श्री धामधनी को, चर्चा करते हम पाया।
भूरि भूरि हो उठे देख कर, द्रश्य नैन जब वह आया।।
मंदिर की तामीर हुई जब, हुक्म हुआ ईंटें लाओ।
राज काम करते थे जिस जा, ठा ठा कर दे दे आओ।।
चट्टा एक उठाया जिसदम, उसके नींचे क्या देखा।
ब्याई पड़ी थी साँपन उसमें, जहाँ सरपों का ढेर मिला।।
ढक कर उसे चले आये हम, सदगुरू जी से आन कहा।
कहने लगे उन्हें मत छेड़ो, वे ईंटें कल ठा लेना।।
और तरफ़ से ले आओ अब, हम ने मान लिया कहना।
अगले रोज उठाई जिसदम, एक सर्प भी न था वहाँ।।
लीला सदगुरू ऐसी पाई, ध्यान उन्हें सब ही का था।
सब थे उनकी छत्र छाँव में, स्नेह सभी पै था यकसाँ।।
पहली बार उन्हें ले गए घर, एक बार आमंत्रित कर।
गाजे बाजे से ले गए हम, जाते न थे किसी के घर।।

शोभा बनी देखने लायक़, जिसमें नर नारी सब थे।
द्वारे पर पहुँचे जब सदगुरू, चरण पखारे चम्पा ने।।
शब्द कहाँ से लावें जिनसे, हो उन चरणों की तारीफ़।
हम ही दूर रहे थे उनसे, सदगुरू रहे सदा नज़दीक।।
तिरलोकी हे राज राजेश्वर, बार बार करता परनाम।

श्रीमती शान्ती देवी पत्नी प्रतापसिंह राजपूत क्वाटर मेरठ

करता वक्त व्यक्ति क्या करता, हाथ वक्त के बल शाली।
काम वक्त के कर में रहता, वक्त काम की है ताली।।
इतनी समझ वक्त पर आई, किया वक्त ने परिवर्तन।
पहले बदले पती वक्त ने, अब बदले आकर के हम।।
जिसदम मैं ब्याही आई तो, रहन सहन थे पति के और।
भक्ति भाव था किन्तु बहुत कम, गुरू मुख होकर बदले तौर।।
झगड़े बड़े श्री सदगुरू से, पड़े पकड़ने लेकिन पैर।
फिर हो गये सर्मपित उनपर, पहले था सदगुरू से बैर।।
परिवर्तन इस विधि का आया, हटा पती का चित सब से।
घर बाहर बालक बच्चों में, प्यार नहीं देखा तब से।।
चिंता खाने लगी मुझे फिर, घुन सा लगा ह्रदय के बीच।
जाने कितनों को यह चस्का, ले गया इस दुनियाँ से खींच।।
भार बड़ा है निज ग्रहस्ती का, मैं ठहरी औरत की ज़ात।
छोड़ गये यदि पती बीच में, क्या होगा छुटते ही साथ।।
चाही रोक लगानी मैंने, बड़ी युक्तियाँ अपनाई।
हुईं फ़ेल सब की सब ही वे, एक न पूरी हो पाई।।
जितने रोके बढ़े और भी, निकल गये मानो कर से।
ज़ोर लागये हमने पूरे, किन्तु न रूक पाये हमसे।।
घर धंधों से ध्यान हटा जब, दशा आर्थिक भी बिगड़ी।
जानें कितनी बार हमारी, तकरारें दिन रात छिड़ी।।
ईश्वर कुँवर चंदसीने की, रानी साहिबा से इक दिन।
हमने करी शिकायत पति की, है हमको ऐसी बीझन।।
ध्यान नहीं रखते पति घर का, होता जाता है ढंग और।
बिगड़ रही हालत दिन प्रतिदिन, हुऐ नाश के से तिलतौर।।
पिला दिया क्या महाराज ने, अपनी समझ नहीं आता।
आज और कल और नित्य प्रति, हाल बदलता ही जाता।।
चमत्कार यदि है इनपै कुछ, हमकों क्यों नंहि दिखलाते।
हमभी ज़रा देखते उसको, दर्शन करके झुक जाते।।
इत्तफ़ाक यह आया इकदिन, श्री सदगुरू औ पति मेरे।
साथ साथ रानी साहिब भी, ऐकत्रित ही बैठे थे।।
और नहीं था कोइ वहाँ पर, है मेरठ कोठी की बात।

ज़िक्र किया मेरा सदगुरू से, रानी जी ने सुनते हि साथ।।
बोलीं, एक फ़ैसला करदो, पति पतनी में झगड़ा है।
इधर बहू भी है प्रताप की, औ प्रताप भी बैठा है।।
लिखा पढ़ी में ज़्यादा रहता, ध्यान इसे घर का कम है।
इधर ग्रहस्थी है संग पूरी, यही एक इसको ग़म है।।
बच्चे हैं छोटे छोटे से, इसको थोड़ा समझादो।
ध्यान करे घर धंधे का भी, बिगड़े काम संवरवादो।।
ना ही चला कारखाना कुछ, फंसा दिया उसमें पैसा।
अब तो तुम ही कृपा करोगे, ऐसे काम न चलने का।।
बड़े ध्यान से सुन रहे थे गुरू, था चेहरे पर मेरा ध्यान।
बूआ जी जब कह कर निमटीं, धीरे से बोले श्रीमान।।
हो जायेगा ठीक सभी कुछ, सदगुरू पर विश्वास करो।
वक्त वक्त की बाते हैं ये, ज़रा समय वह आने दो।।
एक बात सोचो पहले यह, जिसका ये करता है काम।
तो इसका उसके ज़िम्मे है, वही करेगा इसका काम।।
आप ठीक हो जायेगा सब, पुनः कहा बूआ जी ने।
बहू चाहती चमत्कार कुछ, कैसे झुकूँ बिना देखे।।
सुन श्री सदगुरू ऐसे उनसे, बोले इससे यह कहदो।
हमसे चमत्कार की इच्छा, अपने मन में मत रक्खो।।
झेल न पाई तब क्या होगा, फिर भारी पड़ जायेगा।
हंसते हंसते कह गए इतनी, घबरा मत दिख जायेगा।।
औरों का क्यों फिरे देखती, तू अपने पति का ही देख।
तेरे लायक़ उसपै काफ़ी, दीखे तुझे एक से एक।।
पलट गई वह बात हंसी में, बहुत सत्य था उनका व्यंग।
लगे दीखने जल्दी मुझको, अपने पती देव के ढंग।।
दीखी उनपर कृपा उतरती, संकट हमपर जब आया।
मैं तो धबरी, किन्तु पती निज, मेरा कभी न घबराया।।
समझ गई किरपा का बल है, वरन् दुख्ख में हर इन्सान।
अस्त व्यस्त क्षण में हो जाता, टिकना उसका मुश्किल जान।।
बहुत बार देखी ऐसी गति, बहुत बार आये अवसर।
बहुत बार पतियाया हमने, किन्तु न देखा भय उनपर।।
श्रद्धा लगी उतरने हम पर, हम भी खिंचने लगे उधर।
मेरे पति प्रतापसिंह जी का, खिंचा हुआ था चित्त जिधर।।
अंदर थीं आकांक्षाऐं पर, चर्म चक्षु शरमाते थे।
गुरू महाराज हमें भी थामो, कहते हुवे लजाते थे।।

वानक बन ही गये एक दिन, वे घड़ियाँ आ ही पहुँची।
जिनमें शरण गये सदगुरू की, और तारतम निध बख्शी।।
मेरी जन्म कुंडली में कुछ, ऐसे थे नक्षत्र पड़े।
सुख संतान नहीं पाने की, जीवित नहीं रहें बच्चे।।
पुत्र रतन छिन गए दो आकर, तीजा जब होने को था।
रानी साहिब ने सदगुरू से, मेरी बावत ज़िक्र किया।।
दिया वस्त्र अपना उतार कर, बोले इसको पहनाना।
सवा साल का जब हो जावे, गुरू चरनों चढ़वाजाना।।
ठीक करेंगे सब श्री सदगुरू, अतः हुआ पैदा लड़का।
जिस प्रकार थी हमें हिदायत, वैसा ही उपचार किया।।
नाम वीर बब्रु वाहन रक्खा गया, पूर्व जन्म से ही उसका ।
सात मास का था यौनी में, जिस दम नाम गया रक्खा।।
पाँच वर्ष की हुई उमर जब, लगा भयंकर उसको रोग।
फिरे लिये हम दुनियाँ भर में, वह भी फिरा भोगता भोग।।
फूंक दिया हज्ज़ारों रूपया, डाक्टरों ने दिया जवाब।
उदयपूर रहे डेढ़ महीना, बचना उसका हो गया ख़्वाब।।
रही न आशा एक सदी भी, मैं मनमें चिंतित रहती।
आए सहारनपुर ले करके, सदगुरू से वहाँ भेट हुई।।
घूम रहे हम लिये हुवे शव, ठहरे मंदिर ही के पास।
अंती बाई बोली पति से, सदगुरू में रक्खो विश्वास।।
बच्चे को लख अंती बोली, गुरू चरनों में डाल इसे।
आजा मंदिर में बैठै हैं, मिलते हैं ये मुश्किल से।।
हम थे तंग कहा करते थे, मालिक इसे उठाले।
इसका दुख देखा नंहि जाता, अपने पास बुलाले।।
आँखें तक थीं बंद वरम से, सूज रहा था लड़का।
नमक बंद था बिलकुल उसका, भूका ही सा रहता।।
बिन प्रोटीन डाइट मिलती थी, आंत सुकड़ गई भूकी।
ना मिठाई ही, मिलती केवल, बिना नमक की सबज़ी।।
तरस गया हर इक वस्तू को, जा पहुँचे हम मंदिर में।
पाँच वर्ष का बच्चा केवल, जा डाला श्री चरनों में।।
लगे पूछने किसका है यह, अंति बोली, तुम्हारा है।
तुम्हें सोंप के चली गई घर, स्वयं उठाओ थारा है।।
मारो चाहे बचाओ ग्राहक, नहीं है अब कोई इसका।
अब तो माल आप ही का है, हम क्या जानें है किसका।।
चरनों से गोदी में ले लिया, थाल भोग का दिया प्रशाद।

तोड़ दिया परहेज़ सभी कुछ, उसे खिलाया अपने हाथ।।
बड़े हाथ की बड़ी बात है, मारे बड़ा न रोने दे।
होते सब अनिष्ट छोटों से, बुरे बड़ों से नंहि होते।।
हवकाये की तरह खा गया, सदगुरू ने जो दिया प्रशाद।
नमक और प्रोटीन डाइट का, मिला साल भर में अब स्वाद।।
मुक्त किया इस तरह व्याधि से, मिला इस तरह छुटकारा।
गया स्वस्थ होता हुआ लड़का, गुन किरपा में है सारा।।
कहने क्या सदगुरू किरपा के, भाग सँवरते किरपा से।
चलता है जीवन जहाज़ यह, केवल बल पर किरपा के।।
बच्चे न थे भाग में जिनके, सन्मुख हैं उनके अब पाँच।
जिसके सर पर कृपा वहाँ, नंहि आ सकती दोजख़ की आंच।।
सदगुरू की रहमत का लेखा, बाँच सके तो पागल बाँच।
वहाँ झूँट कैसे रह सकता, जिस घर में रहता हो साँच।।
कभी जान के लाले जिसके, अफ़सर वही आज लड़का।
अपना कहूँ आज किस मुंह से, अब सुपुत्र है सदगुरू का।।
बड़ी बब्रूवाहन से लड़की, वंशी बाला जिसका नाम।
बहन और दो उससे छोटी, मंणि माला पदमावति नाम।।
पदमावती भक्त कन्या है, उसपै अति सदगुरू किरपा।
इतनी है के कही न जाती, उसको भी उनपर श्रद्धा।।
मंत्र लिया बंशी ने जिसदम, पदमा ने भी रूदन किया।
सात वर्ष की आयू में ही, रोकर गुरू से मंत्र लिया।।
दिया उसे निजनाम बुलाकर, मंत्र प्राप्त करके मानी।
सदगुरू हृदय विराजे उसके, एक रोज़ हम यों जानी।।
कोरा घड़ा भरा पानी से, थी गरमी उस रोज़ बड़ी।
मुझे प्यास थी बड़े ज़ोर की, मेरे मुंह से निकल पड़ी।।
कोइ मर्द पानी पी लेता, पिता कहां गए पदमाँ के।
कोरा घड़ा आज माँसा है, हमें नहीं पीना पहले।।
प्रश्न किया बाला ने हमसे, पहले तुम क्यों नंहि पीती।
समझाया मैंने लड़की को, मैं बेटी यों नंहि पीती।।
पहला ग्लास मर्द पी ले तो, आती नहीं घड़े से बू।
अगर स्त्री पीवे पहले, तो पानी देता बदबू।।
कोरस की बू आती रहती, स्वाद बिगड़ता पानी का।
खड़ी सुन रही थी पदमा भी, उसने फ़ौरन् ग्लास भरा।।
देख रहे थे हम सब के सब, चली वहाँ से भर कर ग्लास।
सदगुरू चित्र जहाँ पधरा था, पहुँच गई ले उनके पास।।

आँख मींच जा भोग लगाया, जब लेकर वापिस आई।
लगी बाँटने चरना मृत जब, बाला ने वह धमकाई।।
करके झूँट बाँटती फिरती, भरा ग्लास था आधा क्यों।
तू आधा पीकर लाई है, निकली उसके मुंह से यों।।
महाराज जी ने पीया है, मेरे झूँट लगातीं नाम।
मैं पीती तो मुंह सन जाता, मेरे मुंह पर दिखा निशान।।
मुंह दिखलाया उसने सब को, तर होते पानी से होट।
सूखे होट पाए पदमा के, जँचा हमें अपना ही खोट।।
पी गए आधा ग्लास हाथ से, उस कन्या के तब जानी।
सदगुरू की किरपा है इसपर, निकली सच पदमा रानी।।
भोग उसी से लगवाते हम, और आरती करवाते।
दिखते उसे जीमते प्रीतम, पदमां के कर से खाते।।
प्रश्न अगर पुछवाते कोई, तो उत्तर देते उसको।
हैं प्रसन्न अति प्रीतम उससे, ज्ञात हुआ ऐसा हमको।।
श्रद्धा बढ़ी मुझे भी लखकर, लख श्री सदगुरू की महिमाँ।
बड़ा स्नेह है उस बच्ची पर, बलि बलि जाता जना जना।।
प्रसव काल था निकट ही अपना, एक बार की है घटना।
मेरे पति प्रतापसिंह जी को, इक शादी में था जाना।।
महाराजा बलभद्रसिंह जी, दतिया स्थित मध्य प्रदेश।
जानी थी बारात उन्हीं कै, इधर चंदसीना स्टेट।।
इन्तज़ाम बारात आदि का, मेरे पति के कर में था।
हर हालत में उस बारात में, पति मेरे को जाना था।।
सदगुरू श्री महाराज महाप्रभु, भी उस शादी में थे साथ।
साथ हमारे पति को लेकर, लौट आए अगले दिन नाँथ।।
दो दिन बाद ठीक शादी के, शेरपुर भण्डारा था।
जिसे छोड़ना ना मुमकिन है, विवश उन्हें आना ही था।।
हाल चाल लेने को मेरा, मैं क्यों के इकली घर थी।
इधर बाल बच्चा होने को, पति को मेरी चिंता थी।।
चलना है मेरठ को होकर, अतः पिया जी को लेकर।
मेरे पास आए सुध लेने, की किरपा इतनी हमपर।।
मैं ख़ुश हुई पती को लखकर, बोली ठीक समय पहुँचे।
मेरी हालत ठीक नहीं है, मुझे देख करके बोले।।
महाराज दरवाज़े पर हैं, मुझे ख़ैरियत लेनी थी।
बोलो अगर कोइ सेवा हो, जाना बिलकुल हमें अभी।।
मेरे मुंह से निकली इकदम, मुझे छोड़ जाते किसपै।

उत्तर दिया एक दम पति ने, और कौन है सदगुरू पै।।
रक्षा वे हि करेंगे अब भी, जो अब तक करते आये।
मैं बोली परनाम हमारी, हम तो तुम से भर पाये।।
बचना हमें नहीं है अब कै, जीवित हमें न पाओगे।
तुमको नहीं मिलेंगे अब हम, लखलेना जब आओगे।।
खता मांफ़ कर देना अपनी, हुईं जो अब तक जीवन में।
सत्य समझना हमें न पाओ, अब कै बचना नहीं हमें।।
सदगुरू द्वारे पर मोटर में, वंचित रही चरण से मैं।
घर बैठे ही हाथ जोड़ लिऐ, पती चले गए छोड़ हमें।।
दे तो गये सान्त्वना काफ़ी, जंची मगर हमको रूखी।
क्या संबंध इसी को कहते, ख़बर न लेना अपने की।।
जीवन मरण प्रश्न है मेरा, पर परवाह नहीं मेरी।
चले गये संकट में बचकर, फ़िकर न की किंचित मेरी।।
इस जीवन से मरना बेहतर, चोट लगी मेरे हिय को।
कोइ नहीं दुनियाँ में अपना, देख लिया इस दुनियाँ को।।
गई हालत बिगड़ती मेरी, इकली तो थी ही घर पर।
बच्चे सब स्कूलों में थे, कुण्डा भेड़ दिया जाकर।।
डाली खाट बराँडे में इक, दर्द पेट में था जारी।
अब तो मरके उठें खाट से, हिम्मत ख़त्म हुई सारी।।
रही झेलती हर आफ़त को, पड़ी रही आँखें मींचे।
झपकी सी इक लगी नींद की, तो श्री महाराज दीखे।।
कुण्डा खुला द्वार का अज़खुद, महाराज अंदर आये।
देख रही मैं परदे में से, अंदर कैसे घुस आये।।
ले मूढ़ा परदे से बाहर, आ बैठे औ कहा मुझे।
तू क्यों मरी फ़िकर में पगली, जब हम हैं क्या फ़िकर तुझे।।
यदि प्रताप नंहि है तो ना सही, चिंता मत करना समझी।
पड़ी हुई मैं प्रसव मंच पर, सरहाने बैठे प्रभु जी।।
सिर्फ़ बीच मामूली परदा, बड़ी शर्म आ रही मुझको।
हाथ बढ़ाया परदे में से, प्रीतम के पग लेने को।।
किन्तु क्रोध था पति पर बेढब, साथ नहीं इनके आये।
मैं सेवा के योग्य नहीं अब, भाव वही मन पर छाये।।
पहले भेज दिया इनको क्यों, आना पहले था उनका।
जैसे मैं अब पड़ी हुई हूँ, स्वागत तो करते इनका।।
देखा फिर मुड़कर के मैंने, सदगुरू नंहि थे मूढ़े पर।
अंदर घुसते से दीखे कुछ, एक चरन पर पड़ी नज़र।।

उठी खाट से मैं धीरे से, परदे से बाहर आई।
बंद मिली कुंडी ज्यों की त्यों, लीला समझ नहीं आई।।
दीखे थे अंदर जाते हुए, मैंने जा अंदर झाँका।
कमरा ख़ाली मिला हमारा, निशां न पाया सदगुरू का।।
जहाँ चित्र पधरा था उनका, सन्मुख पहुँची जब उनके।
तो हंसते हुवे मिले चित्र में, लिये चरन फिर जाकर के।।
धीर बंधी अब चिंता क्या है, साक्षात् जब आ बैठे।
हम ले करके हृदय पिया को, प्रसब मंच पर जा लेटे।।
ठीक चार पर सांयकाल के, पुत्र रतन ने जन्म लिया।
देवर जेठ वक्त से पहले आ गए, अपना अपना काम किया।।
काम सुगमता से सब हो गए, चमत्कार देखा ऐसा।
श्रद्धा चली गई बढ़ती ही, जब देखी उनकी महिमाँ।।
पति मेरे भण्डारे पर थे, ख़बर पहुंच ली प्रातः तक।
महाराज कै पौत्र हुआ है, भेज दिया पति को वापिस।।
ज़िद्द पकड़ बैठी में पति से, करना है मुझ को दष्टौन।
पैसे की उस समय कमी थी, सुनकर के रह गए वे मौन।।
बार बार ज़िद की जब मेंने, बोले पैसा पास नहीं।
ख़र्च और ही अब काफ़ी हैं, पैसों की कंहि आस नहीं।।
सब ही का दष्टौन किया है, अजी सातवां है यह तो।
नहीं करेंगे तब ही क्या है, वृथा न ख़र्चो पैसों को।।
बड़ा नहीं तो छोटा करलो, पर करना है मुझे ज़रूर।
ख़र्च लगी जुड़वाने उनको, हर प्रकार करके मजबूर।।
जोड़ जुड़ा इकसौ सत्ताइस, और पांच आने सारे।
इन्तज़ाम इतना करना है, मैंने बड़े ज़ोर मारे।।
लेकिन वे रहे असमंजस में, दिन थे सिर्फ़ बीच में दो।
बात रात में थी हम सो गए, प्रातः मैं बोली उनको।।
चाय नहीं घर पैकिट लादो, पदमा साथ साथ चलदी।
चार वर्ष की थी पदमाँ तब, मैं बोली आना जल्दी।।
पदमा को बिस्कुट का लालच, वे दुकान पर जा पहुँचे।
लड़की आहिस्ता आहिस्ता, निकल चली पीछे पीछे।।
लेकर चाय मुड़े जब वापिस, तो पदमाँ पै इक बटुआ।
जा पहुँची दुकान पै वह भी, पिता ने उसके जब देखा।।
पदमां किसने दिया ये तुझको, वह बोली हम को पाया।
पड़ा हुआ था वहाँ सड़क पै, पति ने उसको धमकाया।।
कई तरह से पूछा उससे, उत्तर वही पहले जैसा।

पदमा से लेलिया उन्होंने, तभी खोलकर के देखा।।
थे उसमें इक सौ सत्ताइस, और पाँच आने ऊपर।
चारों ओर सड़क पर देखा, व्यक्ति न कोई पड़ा नज़र।।
घर आकर बोले वे मुझ से, जो हिसाब जोड़ा था रात।
वह परचा किस जगह धरा है, लाइये ज़रा हमारे पास।।
रक़म बता पढ़के कितनी है, उस ही से वो पढ़वाई।
जितनी थी बटुवे के अंदर, रक़म हमीं से गिनवाई।।
मैंने पूछा कहाँ से लाये, तो बोले श्री सदगुरू जी।
ने भेजे हैं कर अपनी ज़िद, क्यों के तेरी इच्छा थी।।
तेरी ख़ातिर भिजवाये हैं, कम तो नहीं फेर गिनले।
कर दष्टौन पुत्र का अपने, मन चाही अपनी करले।।
तैंने कष्ट दिया सदगुरू को, अच्छी नहीं करी यह बात।
ढुलक पड़े आँसू आँखों से, श्रद्धा से सुनते ही साथ।।
खटकी बात मुझे भी काफ़ी, देने से तो तो गये उन्हें।
इच्छा ही, उल्टा लेने की, काफ़ी आई शरम हमें।।
टूट पड़ा श्रद्धा का पुल सा, चमत्कार जब यह देखा।
लाख कहो मेरे सदगुरू सा, दूजा नहीं कोइ उनसा।।
जँचा मुझे मेरे घर हैं वे, यह भी अनुभव हुआ मुझे।
एक रोज़ की घटना है यह, बतलाती हूँ मैं तुमसे।।
आ पहुँचे मेहमान बहुत से, सर्दी के मौसम की बात।
दिन में तो कुछ बात नहीं थी, लेकिन जिसदम आई रात।।
सोने की तंगी के कारण, मजबूरी थी क्या करती।
जहाँ श्री सदगुरू पधरे हैं, उनके आगे जा सोई।।
बच्चे ने पेशाब कर दिया, उसी समय सपना दीखा।
बिस्तर अपना लिये बग़ल में, सदगुरू को जाते देखा।।
नाक सिकोड़े खड़े हैं बाहर, कहाँ बिछावें बिस्तर हम।
हमें यहाँ बदबू आती है, मेरी आँख खुली इकदम।।
मैंने पती जगाये अपने, उठियो सदगुरू चले गये।
बच्चे के पिशाब के कारण, बिस्तर लेकर भाग गये।।
मेरी खाट तभी उठवाई, फ़र्श उसी दम धुलवाया।
अगर बत्तियाँ जलवादीं झट, रूठों को यों मनवाया।।
भूली भोग लगाना इक दिन, दिया रात को फिर सपना।
सपने में भूके बैठे हैं, माँग रहे हैं ला खाना।।
लाल आँख हैं गुस्से में हैं, कहा लाओ क्या खावें हम।
फ़ौरन् उठकर लगी बनाने, सन्मुख जो ले जाते हम।।

अनफ़िट कर देते उस ही को, यह नंहि हम वो खावेंगे।
यह अच्छा नंहि लगता हमको, हम तो यह बनवायेंगे।।
बना बनूकर जब फिर लाती, देख उसे होते नाराज़।
हम तो फ़लां चीज़ खायेंगे, थाल उलट देते महाराज।।
सारी रात बनाया खाना, किन्तु उन्होंने नंहि खाया।
सोने दिया न लेकिन मुझको, सारी रातों बनवाया।।
आँख खुली जब प्रातः मेरी, बड़े मरोड़े अपने कान।
सजा रात की याद रही वह, रक्खा फिर आइन्दा ध्यान।।
जान लिया सदगुरू घर रहते, सावधान अब रहते हैं।
ग़लती कोई न होवे बच्चो, हम सब ही को कहते हैं।।
है सदगुरू की विकट कहानी, हैं चरित्र सारे न्यारे।
हाथ जोड़ करती प्रणाम मैं, हैं आतम के उजियारे।।
चेरी सदा शान्ती देवी, गुनहगार हैं सदगुरू हम।
हमें आसरा सिर्फ़ आपका, **पारब्रह्म श्री पुरूषोत्तम**।।

श्रीमती कृष्णा कुमारी व मदन सरूप सेठी दिल्ली

भेष और आवेष और यह, खेल और है सब कुछ और।
और और के चक्कर में आ, भूल गये सब अपनी ठौर।।
कुत्ता पा लेता मालिक को, जब मालिक गुम हो जाता।
दौड़ लगाता गंध सूंग कर, स्वामी को झट पा जाता।।
बुद्धिमान कुत्ता भी निकला, आदमियों के बच्चों से।
स्वामी भक्त कुत्ता ज़्यादा है, इस दुनियाँ के भक्तों से।।
किस श्रेणी का गिनें स्वयं को, निर्णय ख़ुद करलो अपना।
सत्य नहीं ढांपे ढपता है, झूंट नहीं उसका ढकना।।
वाँणी तो पढ़ते पल पल पर, बाँण न अब तक कोइ खाया।
चुभी नोक ना किसी बांण की, बनी वज्र जैसी काया।।
करे शिकायत भी तो किससे, जबकि समझते ख़ुद मुख़्तार।
अपना राज हमीं महाराजा, प्रजा हमीं हम ही सरकार।।
ख़ुद की ख़ुद ताबेदारी में, अहंम ब्रह्म का रचा क़िला।
गादी पती बने जब हम तो, बहनो किससे करें गिला।।
देख लिया यह खेल भुलवनी, क्यों अब इसे बढ़ाते हो।
फीका पड़ा रंग अब इसका, नाहक रंग चढ़ाते हो।।
तामसियो रहने दो बस अब, भक्ष उगल कर मत भक्षो।
देख देख कर फेर देखतीं, अब तो माँफ़ करो इसको।।
प्रीतम लगे डोलते संग संग, करो न ज़्यादा इनको तंग।
बनी बावली ख़्वाबी रंग में, छोड़ छाड़कर अपने रंग।।
जन्म जात परनामी हैं हम, कृष्णा सेठी अपना नाम।
सदगुरू और सब साथी जान को, साष्टांग मेरा परनाम।।
हसन वसन औ रहन सहन सब, ढले प्रणामी साँचे में।
लेकिन धंस रहे गले गले हम, इस माया के खाँचे में।।
उन्निस सौ छपपन में मेंने, मंत्र लिया जाकर बलसार।
गिनती में बढ़ गई सिर्फ़ में, लेकिन हाथ न आया सार।।
परनामी की बेटी थी बस, ब्रह्मसृष्टि थी कहने मात्र।
थी ख़ाली बरतन की भाँति, जैसे बिना मंजा इक पात्र।।
ना सूरत ना सीरत ही कंहि, ना सेवा ना कोइ संयम।
हम जैसों से भला नास्तिक, यकसाँ तो है कम से कम।।
धर्माचार्य महंतों संतों, में श्रद्धा का भाव न था।

जाती न थी कहीं चर्चा में, ना सुनती थी कहीं कथा।।
जाती न थी कहीं चर्चा में, मर्द जहाँ भी दिख जाते।
अच्छा लगता वहाँ न जाना, था स्वभाव हम बचजाते।।
मर्यादा में रंग बंधे थे, हमको यही सुहाता था।
नियम समाजिक अच्छे लगते, लाँघा एक न जाता था।।
पत्र डालकर बहन सुर्दशन, ने जालंधर बुलवाया।
महाराज जी यहाँ आ रहे, न्यौता सा हमें भिजवाया।।
ख़त पर उसके चली गई मैं, महाराज जी पहुँच गये।
काफ़ी भाई स्टेशन पर, आव भगत के लिये गये।।
मेरे पति श्री सेठी साहब, पूर्ण नाम श्री मदन सरूप।
आदत थी अजीब उनकी भी, प्रिय थी उन्हें अवस्था मूक।।
सुनना अधिक न कहना ज़्यादा, आगे आगे कम रहना।
अगर कहीं कुछ कहना हो तो, एक शब्द में कह देना।।
स्वागत के पश्चात् जिमाया उन्हें, जो बाक़ी बचा प्रशाद।
बाँटा उसको सभी साथ में, जँचा मुझे इकदम अपराध।।
माता जी ने दिया मुझे भी, पर मैंने इंकार किया।
बड़ी युक्तियाँ कीं देने की, लेकिन मैंने नहीं लिया।।
बोली मैं, वाक़फ़ हो मुझ से, धृणित काम करवाती हो।
पर पुरूषों की झूँट खिलाकर, पतिता मुझे बनाती हो।।
इसके लिये मुझे माता जी, कृप्या मत मजबूर करो।
अपनी अपनी श्रद्धा है यह, हमें न लेना माँफ़ करो।।
मांजी तो हट गईं अलहदा, मुझे छोड़ कर वहीं खड़ी।
कोई बाँध रहा हो मुझ को, ऐसी मुझ को जांच पड़ी।।
हालत और लगी होने कुछ, परिवर्तन गति तेज़ हुई।
खेंच रहा हो जैसे कोई, महाराज की ओर गई।।
चाहा बहुत सभालूँ ख़ुद को, पर बे ख़ुद हो गया हिसाब।
अपराधी की भांति चली मैं, चला खेंचकर कोइ इताब।।
मजलिस लगी हुई थी जिस जा, महाराज जल्वा अफ़रोज।
मृत समान मन लेकर पहुँची, सिंघड़ रहा था अंदर सोज़।।
गई चीरती जनता को मैं, जन समूह को तैर गई।
धोबी ज्यों पछाड़ता कपड़ा, चरनों पर इस तौर पड़ी।।
आन बान औ मान मर्तबा, उन चरनों में दे मारा।
नाटक में अभिनय हो जैसे, द्रश्य बना ऐसा सारा।।
छोड़ा नहीं किसी ने मुझ को, चकित अवस्था में थे सब।
मुझ से आस न थी सब को यह, जैसा कर गुज़री में अब।।

सुंदर साथ ताकता रह गया, यह क्या लीला हुई नई।
यह लड़की ऐसी तो थी नंहि, क्यों कर ऐसी आज हुई।।
बहन सुदर्शन ने चाहा भी, मुझ को सावधान करदे।
रोक दिया लेकिन सदगुरू ने, इसको यों ही रहने दे।।
आप उठेगी मर नंहि गइ है, हंस कर बोले जिंदा है।
होगी बात कोइ इसपै, जिससे यह ख़ुद शरमिंदा है।।
नज़रें रहे जमाये मुझ पै, बैठा रहा मौन सब साथ।
जैसे कोइ मुक़दमा हो यह, देखें क्या होता इन्साफ़।।
हुक्म छुटा कुछ देर बाद, बोले सदगुरू अब बैठी हो।
रक्खा था परशाद पास, कर में लेकर के बोले लो।।
मानो अभियुक्ता थी मैं, हाकिम ने जैसे मांफ़ किया।
था प्रशाद टोकिन मांफ़ी का, जो मुक्ती के साथ दिया।।
उठी लजी सी नत्मस्तक हो, लिया चरण का प्रथम प्रशाद।
पहली बार भीक ली उनसे, महफ़िल में फैलाकर हाथ।।
फैले कभी न पहले जो वे, हाथ सामने फैल गये।
अहंकार के परमाणूँ, जितने थे मुझ में दहल गये।।
पर सदगुरू को वात्सल्यता, का जिभ्या क्या करे बयाँ।
मुंह में दिया हाथ से अपने, खुलवाया मुंह और ज़बाँ।।
जंचा स्वाद ऐसा प्रशाद का, मिला न ऐसा पूर्व पदार्थ।
स्वाद गंध रस न्यारा ही था, तुलना क्या वो था परमार्थ।।
औषधि परम रोग की समझो, या मुक्ती का समझो यंत्र।
पाते ही हो अभय एक दम, विचरो जग में कहीं स्वतंत्र।।
गई ख़रीदी सी अब कुछ मैं, झटक प्रथम भी नहीं झिली।
अलग अलग जैसे थी पहले, लगती थी अब मिली मिली।।
कई रोज़ ठहरे जालंधर, श्री सदगुरू मैं भी ठहरी।
बातें मिलीं बहुत सुनने को, एक एक से भी गहरी।।
अगले दिन महाराज श्री ने, जालंधर से किया गमन।
हमने भी अपनी राहें लीं, विदा हुवे जब पूज्य चरन।।
प्रथम मिलन औ पहला बिछुड़न, पहली बार खाई यह चोट।
कितना दुख होता बिछुड़न में, जब प्यारा होता है ओट।।
पहली बार हुआ यह अनुभव, जिसदम कोई अपनाया।
हर्ष और दुख दोनों पाये, बिछुड़न मिलन समझ आया।।
केवल जान सके हम इतना, महाराज हैं अच्छे संत।
नहीं बराबर कोई इनके, जितने भी हैं संत महंत।।
जान न पाये और अधिक कुछ, क्यों के आंख न थी अपनी।

महा पुरूष तब जाने जाते, जब कर लेते कुछ कसनी।।
अ, आ, इ, ई, पढ़ी न इक दिन, कैसे बांचे जावें ग्रंथ।
ख़ुद को ही भूले फिरते जब, तो कैसे जानें है कंथ।।
बस उपाय है तो यह है बस, स्वयं जनादें अपने को।
लखे गये ना स्वयं किसी से, चले बहुत से लखने को।।
श्री मदन जी पती हमारे, ज़िला धरम शाला में थे।
है स्थान जिलाड़ी जिसमें, ठेकेदारी करते थे।।
कुछ दिन के पश्चात् मदन जी, पर श्री सदगुरू हुवे प्रसन्न।
एक झलक सी गुरू मेहर की, सेठी जी पै हुइ उत्पन्न।।
स्वप्न में दीखे सेठी जी को, बैठे गोपिकाओ के बीच।
उन्हें देखते ही सदगुरू ने, हाथ पकड़के लीना खींच।।
दी थेपी इक बड़े प्यार से, सेठी जी ने लिये चरन।
बीच झुंड में गोपिकाओं के, बैठे दिप रहे राम रतन।।
कृष्ण चंद आनंद कंद की, जगह श्री सदगुरू पाये।
था तो स्वप्न, चकित थे लेकिन, सदगुरू यहाँ कैसे आये।।
छटा, जगह, वह द्रश्य और थे, और ही ढंग के थे वे रूप।
धन्य धन्य श्री सदगुरू मेरे, हो त्रिभुवन के तुम ही भूप।।
हुवे परिधि से मुक्त नींद की, जब सेठी पूछो मत हाल।
बोले उठते ही मुझ से वे, कृष्णा जी हो गया कमाल।।
निकला दीवे तले अंधेरा, विकट चोर इक हाथ आया।
आता नहीं सहज पकड़ाई, ख़ुद अपने को पकड़ाया।।
कृष्णा सच मानो ना मानो, शायद हो विश्वास तुम्हें।
सदगुरू रामरतन जी अपने, कपटी हैं जतलाऊँ तुम्हें।।
धोकेबाज़ ज़माने भर के, करने योग्य नहीं विश्वास।
उचित है इनसे चौकस रहना, एक नहीं गुँण इनके पास।।
भेष महात्माँ सिर्फ़ बनावट, ढोंग लिये फिरते हैं सब।
चक्कर पर दुनियाँ धर रक्खी, ख़ुद चक्कर में आए अब।।
अब कै अगर इधर आ जावें, कृष्णा कसर न रक्खो।
बख़्शा कौन इन्हें फंस गया जो, इनको भी मत बख्शो।।
सेठी चले जा रहे कहते, मैं भोंदी सी देख रही।
रूके साँस लेने को जब वे, पूछा हो भी आप सही।।
विष सा क्या यह उगल रहे हो, किस प्रकार का है ये व्यंग।
मुझे समझ कुछ भी नंहि आई, शब्द आपके हैं बेढंग।।
हंस कर सेठी जी यों बोले, हम बेढंगे वे बेढंग।
अभी काँचली के अंदर हैं, निकलें जब, तब लखना रंग।।

अरी बवली कृष्ण चंद्र हैं, परम सुभग श्री आनंद कंद।
चक्कर में कंहि मत रहजाना, धाम धनी हैं रामरतन।।
देख चुका खुद रात आँख से, नहीं ज़रूरत परिचय की।
आँखों कै ज़बान नंहि कहदें, और ज़बाँ कै आँख नहीं।।
जो देखा सो देख लिया बस, कृष्णां कैसे बतलाऊँ।
द्रश्य बताऐ नहीं जांएगे, कैसे तुमको दिखलाऊँ।।
दिन था रात, रात तो अब है, मैं जानूं या वे जानें।
बात न यह दुनियाँ वालों की, ख़्वाबी दम क्या पहचाणें।।
बीजाँकुर शाखा उपशाखा, क्यारी कुंज लता पत्ता।
कंण कंण देखी भरी ठसा ठस, श्री राज की सत्ता।।
उनकी मँजु मत्तता पाकर, भँवरों मे थी रंग रलिया।
मधुर हास्य पाकर प्रीतम का, मुस्काती नव नव कलियाँ।।
देख थकें ना नैन बावरे, उन कुँजों की सदा बहार।
बाँके बन बांके उपवन औ, बांकी छवि में थे सरकार।।
खुली आंख यो उनको तजकर, यहां क्या देखोगी अंखिया।
तुमने खुल क्या लिया इधर अब, खुलीं तो नैनों में रखियो।।
सुनकर धाम धनी की गाथा, आंखो देखी प्रीतम से।
उठी गुद गुदी सी मेरे हिय, रोम रोम अपने थिरके।।
हिस्से में शंतोंषवे पल के, जी चाहा के उड़ जाऊ।
जिस डाली से टूट गिरी भू, उसी मूल से जुड़ जाऊ।।
किन्तु कभी चाहा नंहि होता, मन को वहीं मसोस लिया।
हम पै ज्ञात नहीं कब बरसें, पी क्या ऐसा दोष किया।।
बीते बहुत दिवस आशा में, शायद आज कृपा करदें।
बरसे जिस प्रकार सेठी पै, शायद हम पै भी बरसे।।
लेकिन नंहि, कटे दिन यों ही, सहज सहज सावन आया।
बीतक हुइ आरम्भ शेरपुर, सुनने को मन ललचाया।।
हम भी पहुंच गये दर्शन को, सदगुरू चरण पखारे जा।
झूँट कूँट मिल जाए हमें भी, अपने को यह लालच था।।
लेकिन सदगुरू बड़े दयालू, औ उदार थे अपनाया।
अपनी किरपा का प्रशाद, थोड़ा हमको भी चखवाया।।
संषय सा रहता था अंदर, जाने सदगुरू कैसे हैं।
परिचय दिया एक दिन अपना, देख हमें हम ऐसे हैं।।
मूल रूप में सज्जित सब विधि, रूप युगल के खुले कपाट।
धाम और निज धाम दिखाकर, दिखलाए निज अपने ठाट।।
तिलजेती भी ओट न रक्खी, मैं हूँ कौन और तुम कौन।

कौन कौन जिनमें उलझी हो, खेल रहा है संग अब कौन।।
कारण कौन अकारण क्या है, किसमें कौन तो किसमें कौन।
कौन हेय तो कौन गेय है, कौन पराया अपना कौन।।
पूरा ज्ञान व पूरा दर्शन, स्पर्शन की, की किरपा।
कितनी है बलवान कृपा श्री, सदगुरू जी की दिया जता।।
किये विदा निज ज्ञान पूर कर, वापिस हुअे जिलाड़ी हम।
दो के एक, बना कर भेजा, जिस्म अलग है अलग न दम।।
चलते समय कहा हमने पिया, कैसे दिन कट पाऐंगे।
विरह चैन से कब रहने दे, आप बिछुड़ रह जाऐंगे।।
पहने थे धागे की मुंदरी, झट उतार कर के बख़्शी।
इसे पहन ले जो चाहेगी, पूरी मुंदरी, कर देगी।।
ऐसा लगा साथ हैं सदगुरू, विदा अकेले नहीं हुवे।
छोड़ा जब गुरू द्वारा हमने, साथ साथ सदगुरू भी थे।।
रहे जिलाड़ी हम औ सेठी, लेकिन लगे न इकले से।
जंचता रहा बराबर हमको, जैसे हों हम दुकले से।।
महिमाँ अजब पाइ मुंदरी में, जब जो चाहा देख लिया।
आवश्यकता पड़ी अगर कुछ, जब जो चाहा प्राप्त किया।।
दर्शन अगर किसी के चाहे, साक्षात करवाती थी।
लीला जो भी चाही देखें, मुंदरी से मिल जाती थी।।
मुंदरी था लैसैन्स कृपा का, रही पास में वह छः मास।
हर प्रकार पूरी निकली वह, उस पर था पूरा विश्वास।।
एक रोज़ हम औ सेठी जी, कर बैठे इक उल्टा प्रश्न।
पहुंच गई सदगुरू पै वापिस, हम रह गये देखकर दंग।।
उंगली से गायब हुइ इकदम, लगा हमें ज्यों लुट गये हों।
जैसे कृपा चली गइ वापिस, तुम अनाथ से रह गए हों।।
रहते रहे बहुत दिन यों ही, बना एक दिन यों प्रोग्राम।
यहां बुलाओ श्री सदगुरू को, उनके लायक है स्थान।।
पर्वत की उत्तुंण्ग शिखाऐं, है रमणीय द्रश्य सारे।
बड़े प्रफुल्लित होंगे आकर, जगह देख करके प्यारे।।
अतः पत्र द्वारा आमंत्रित, और आत्मिक वायर लैस।
भेज दिया श्री सदगुरू जी पै, इस प्रकार के दो संदेश।।
समय सुनिश्चित पर प्रियतम ने, किया जिलाड़ी को प्रस्थान।
सुँदर साथ सहित पहुँचे प्रभु, दिया पहुंच कर दर्शन दान।।
इससे बड़ी कृपा क्या दूजी, जहां स्वयं पहुँचें प्रीतम।
और न कुछ अतिरिक्त चाहिए, अन्य और सब कम ही कम।।

घर भभूल सा खिल उठा निज, जब पर्दापण हुआ वहां।
जैसे बदल गई ऋतु इकदम, बदला प्राकृत और समां।।
हर्ष और उल्लास मुदित मन, जित देखो तित खुशी खुशी।
चर्म सीम पर खुशी पहुंचती, मायावी पति पाते ही।।
ये तो मिले आत्माँ के पति, क्यो न ले आनंद हिलोर।
जब कि पधारे हो घर पर ही, चारू चरण धर कर चितचोर।।
चहल पहल हो उठी चहू दिशि, नगर निवासी दौड़ पड़े।
ताँता लगा प्रभू दर्शन को, आए आदमी बड़े बड़े।।
सुँदर सुँदर विषय पकड़ कर, चला महाप्रभू का सत्संग।
ज्ञानी विज्ञानी सब आये, चर्चा सुन कर रह गये दंग।।
कभी न सुन औ जान सके जो, सुनने का सौभाग्य मिला।
वक्ता और प्रवक्ता सब ने, सुना न लेकिन होट हिला।।
विषय छेडते जो भी सदगुरू, निर्णय तक पहुँचा देते।
बड़ी सरल बोली थी उनकी, सत्य असत्य जंचा देते।।
पंद्रह बीस रोज ठहरे प्रभु, बहुत लगा जी सदगुरू का।
अपनी तो पूछो ही मत कुछ, हमको क्या क्या प्राप्त हुआ।।
सभी देवताओं के दर्शन, और सभी उनके स्थान।
दिखलाऐ सब वहीं बैठकर, करवाई उन सब की जान।।
कुछ थे रूष्ट देवता हम से, बोल बाल मिन्नत उनकी।
काम निकाले पर भूले हम, दे न पाए मन्नत उनकी।।
थे नाराज इसी कारण से, वे मन्नत सब बटवाई।
जिस जिस का वाजिब था हम पै, उन उन की सब दिलवाई।।
हुवे उऋण देवों को देकर, राज और भी दिया मुझे।
तीन जन्म से कृष्णा सेठी, बोले तुम पति पत्नी थे।।
साथ रहे हो इसी तरह से, आगे भी कोशिश रखना।
फर्क़ न आवे प्रेम नेम में, सब विधि सावधान रहना।।
सर पर हाथ हमारे रक्खा, वर देकर के किया निहाल।
अगर बख़्शते कृपा न सदगुरू, थे कंगालों के कंगाल।।
तिनका भी हद बेहद लाँघे, पहुँच जाए क्षर अक्षर पार।
अगर कनखियों भी करदे टुक, एक इशारा निज सरकार।।
गऐ देखते चमत्कार पर, चमत्कार सदगुरू द्वारा।
खुले बहुत क्या सारे खुल गए, छिपा हुआ जितना सारा।।
प्रस्तुत करती हूँ इक घटना, कर लेना श्रोता अनुमान।
कितने निकट लगे वे अपने, इस घटना से लेना जान।।
मानव उन्हें समझने वालो, तुम भी इधर ध्यान देना।

समझो या मत समझो उनको, फ़र्ज़ हमारा कह देना।।
ठेका सड़क बनाने का था, साथ साथ कुछ क्वाटर भी।
अवधि निकट सी आ पहुँची थी, किन्तु काम में देरी थी।।
कारण जल था दूर बहुत ही, मोटर भर भर लाते थे।
ख़र्च सड़क में ज्यादा होता, पूरा चुका न पाते थे।।
कठिनाई थी अधिक यही इक, अंदर म्याद न हो पाया।
ज़प्त जमानत होने को थी, सेठी साहब घबराया।।
रेखाऐ चिंता की जिस दम, व्यक्त हुई उनके मुंह पर।
तो सदगुरू ने वे रेखायें, अंकित देखी चेहरे पर।।
पूछा पास बुलाकर सेठी, कौतूहल युत से क्यो हो।
उत्तर दिया श्रवण करते ही, महाराज जी मत पूछो।।
जाना पड़ता है पानी लेने, इस पर्वत से नींचे।
बिन पानी के कुटे सड़क क्या, परेशान है इस ही से।।
वर्षा में तो पानी अकसर, गडढ़ों में भर जाता है।
लेकिन अगर न बरसें बादल, एक घूंट नंहि पाता है।।
तीस मील से आता पानी, सब प्रकार है ना काफ़ी।
क्या मज़दूर करें बेचारे, हर प्रकार है लाचारी।।
कारण यह है बस चिंता का, महाराज सुन हो गए मौन।
इस प्रकार की चुप्पी साधी, जैसे सुना न कहता कौन।।
चले गऐ सेठी जी कहकर, लग गए अपने कामों में।
और हमें घर का धंधा था, लग गए हम मेहमानों में।।
बाद कई घंटों के इक, व्यक्ति ने दी आवाज।
लगा नया ही सर से पा तक, लगा पूछने हैं महाराज।।
हमने उसे बताया हाँ है, तो उसने आज्ञा चाही।
चरण हमें लेने है उनके, हम बोले आओ भाई।।
चला साथ औ चरण ग्रहण कर, के वह मानव बोला यों।
हुक्म करो क्यों याद किया, इस सेवक को सेवा ब़ख़्शों।।
किया इशारा श्री सदगुरू ने, सेठी जी से बात करो।
उन ही ने बुलवाया होगा, हम क्या जानें उन्हें कहो।।
उसने सेठी जी को पूछा, हमने उनको बुलवाया।
देखा उसे मदन जी ने जब, तो उसका परिचय चाहा।।
कहने लगा व्यक्ति सेठी से, मेरा नाम इन्द्र है जी।
आए कहाँ से फिर से पूछा, पहचाना कुछ तुम्हें नहीं।।
महाराज बोले पहले ही, जब ये इन्द्र बताता है।
और बात क्या पूछ रहा है, क्यों इसको पतियाता है।।

काम इन्द्र का वर्षा करना, गर चाहे तो करवाले।
कहा से आऐ कहां जाओगे, क्यों गाऐ आले वाले।।
इसका भी परिचय हो लेगा, है भी या बनता फिरता।
बरस गया तो इन्द्र समझना, इन्द्र कहाँ जो ना बरसे।।
सेठी जी मुँह तकते रह गये, शब्द सही थे नपे तुले।
उत्तर क्या दें उनके आगे, बोल बंद हो चुप्प हुअे।।
ना तो घन ना वर्षा ऋतु ही, ना ही चिन्ह नज़र आऐ।
घड़ी एक के बाद न जानें, कौन दिशा से घन आऐ।।
पड़ी टूट कर वर्षा ऐसी, कर दिया चहुं दिशि पनिया ढाल।
शिखा क्षुद्र सी उस पर्वत की, इतना जल ना सकी संभाल।।
छतें बैठ गईं कुछ ऐसी जो, डलवाई थीं जभी जभी।
ताल तलईयां गड्ढे पोखर, हहर हहर कर भरे सभी।।
वह नुक़सान न ज़्यादा इतना, सहन शक्ति से हो बाहर।
अगर बरसता ना तो वह था, अपने क़ब्ज़े से बाहर।।
पकड़े चरण लपक सेठी ने, महाराज अब कृपा करो।
ज्यादा अगर और बरसा तो, ढह सकता है बंद करो।।
मुस्का कर बोले श्री सदगुरू, भाई तुम हो ठेकेदार।
करवाने या रूकवाने का, तुम ही को होगा अख़्त्यार।।
हमें कौन जाने पहचाने, भइया कौन सुने अपनी।
मना करो खुद ही अपनों को, मना हमारी नहीं सुनी।।
इससे हस्तक्षेप न करना, ही उत्तम है सेठी जी।
उधर बात वर्षा थमने की, हुई शुरू भी उधर रूकी।।
एक मिनिट भी लगी न रूकते, वेग मेघ का हुआ समाप्त।
बेबस हुवे पड़े थे कारज, मिनटों में सब हो गये प्राप्त।।
सदगुरू को क्या मानें बोलो, क्या रक्खें उनके प्रति भाव।
कौन निभा सकता है हमको, नहीं हमारा कहीं निभाव।।
एक बोल भी नहीं निकलता, उनको किनके संग तोलें।
किसको दें समानता उनसे, क्या कह दें बस क्या बोलें।।
अति उत्तम है मौन रहें गर, उनके लिए न लब खुलते।
जिसपै नज़र मेहेर की कर दी, चले गये सब अघ धुलते।।
विदा हुवे अगले दिन प्रीतम, पिया पिया छोड़े करते।
रह गये नैन बावरे तकते, सब रह गये आहें भरते।।
सभी रास्ते पग धरने को, झाड़ पूछ कर कर गये साफ।
किससे उपमा दूँ साहिब की, हर प्रकार है केवल आप।।
कुछ दिन बाद दिवाली आयी, होता है पूजन धन का।

सभी लक्ष्मी पूजन करते, है रिवाज कुछ इस दिन का।।
कर रक्खे थे जहां प्रतिष्टित, हमने अपने पूज्य चरन।
बैठ गये ध्यानस्त वहाँ, जब खुली आंख तो पाया धन।।
रूपया नोट स्वर्ण के सिक्कों, से स्थान भरा पाया।
आँखें बंद करी फिर खोली, तो वो ज्यों का त्यों पाया।।
लगे ताकने मुँह आपस में, सेठी जी यह क्या है सब।
सेठी जी बोले कृष्णा यह, जाल फंसाने का है सब।।
सिर्फ़ परिक्षा है अपनी, बस सावधान ही रहना है।
चमक झवक जो कुछ है इसकी, देख इसे नंहि बहना है।।
पंक्ति ख़त्म होते ही मेरी, प्रगट हुऐ सन्मुख महाराज।
हमने चरण लिये दोनों ने, हंसे खिल खिला कर श्री राज।।
ले लो डरो नहीं सेठी जी, धन की इच्छा है तो लो।
जो अशान्त हो शेष भोगनी, वह अपनी पूरी कर लो।।
इच्छा जब तक नहीं मरेगी, घर जाना ना मुमकिन है।
आज लक्ष्मी का आवाहन, करते उनहीं का दिन है।।
लगे देखने मुंह आपस में, एक दूसरे का उस वक्त।
गुरू भक्त गुरू पूजन करते, लक्ष्मी को लक्ष्मी के भक्त।।
प्रीतम परख रहे हैं हमको, बख्शिष कर धन का उपहार।
अगर पड़े धन के चक्कर में, वह जाऐंगे धारों धार।।
महाराज जी क्षमाँ चाहते हैं, हैं हम में बहुत विकार।
हम में इतनी ताब नहीं अब, झेल सकें जो धन की मार।।
हमें चाहिये सिर्फ़ धनी ही, धन लेकर क्या करना है।
धन शोभा है पिया आपकी, लेकर हमें न मरना है।।
हमें अलग ही रक्खो इससे, इस पचड़े में मत डालो।
कब के फंसे हुवे अब निकले, अब तो चरण शरण लालो।।
झुके नमन को पग पंकज पर, उठे तो धन औ धनी अलख।
दे गए दरश माधुरी पल को, पलकों में आ गये निमष।।
ह्दय नांथ अच्युत मम स्वामी, किस प्रकार के हैं मेरे।
चौमुख दिवला ले यदि ढूंडो, मिलें न ऐसे चौ फेरे।।
महा महिम श्री राम रतन जी, श्री राज महाराज धिराज।
शंका में मत पड़ो कोइ भी, अन्य नहीं हैं, हैं श्री राज।।
असली रूप खेल का है यह, अभिनय की है अलट पलट।
चकराये क्यों सभी देखकर, गुथ्थी वही वही है लट।।
शुद्ध करो अपनी त्रुटियों को, राग अलापो मतदों का।
धोके में सब व्यक्ति सरासर, शत प्रतिशत सब को धोका।।

लम्बा करो न खेल अधिक अब, हाथ तुम्हारे में है अब।
लम्बी इन्तज़ार के पीछे, हाथ आए हैं अपने रब।।
सुरताओं को मोड़ो घर को, स्मृतियों के पकड़ो तार।
सुनो बैठकर इसी लोक में, रूहो निज घर की झनकार।।
अब छूटे फिर कब मिलना हो, आत्माओ सोचो तो बात।
कष्ट व्रथा मत दो प्रीतम को, अधिक आएगा क्या अब हाथ।।
पती कहीं औ प्रिया कहीं यह, पती व्रता का नहीं चलन।
रहें पिया के साथ प्रियाऐं, बदलो अपने रहन सहन।।
कोटि बार मैं कृष्ण कुमारी, न्यौछावर उन चरणों पर।
छुटा हुआ घर बार प्राप्त हो, पहुचावें जो निज घर पर।।
मदन सरूप आपका सेवक, महाराज श्री राम रतन।
बार सहस्त्रों वारूं अपना, तुमपर प्रीतम तन मन धन।।

झगड़ा ग्राम रेइ मुज़फ्फरनगर

ग्राम रेइ है पाँच मीलपर, शहर मुजफ्फर नगर निकट।
इसी गाँव की कुछ चर्चा अब, कहनी कुछ इसकी बीतक।।
गाँव तगों का तगे चौधरी, कुछ बनिये भी हैं आबाद।
जिनका पेशा है आड़त का, यहीं शहर में उनका काज।।
अपने महाराज जी की भी, रिश्तेदारी है उसमें।
महाराज जी के मांमां थे, माँ का पीहर रेई में।।
अतः जानते थे सब इनको, आख़िर को ठहरी ननसाल।
आधा घर माना जाता है, नाती का आधा है माल।।
बहुत गये महाराज वहां पर, इस जीवन के बचपन में।
किन्तु महात्माँ बन जब चमके, गये न तब से रेई में।।
रोशन हुवा शेरपुर जिसदम, महाराज जी की चली हवा।
एक सुगन बनिया रेई का, महाराज जी पै पहुँचा।।
हुआ प्रभावित सत्संग पाकर, लगा ज़ोर देने उनपर।
एक बार तो रेइ पधारो, इतनी कृपा करो हमपर।।
किसी तरह से ले ही पहुँचा, ठहराया अपने घर जा।
लोग एकत्रित हुवे वहीं पर, चली वहीं उनकी चर्चा।।
उल्लू रात चाहता रहता, सूरज उसे न भाता है।
क्यों कि आंख मुंद जाती उसकी, पूर्ण अंधेरा चाहता है।।
त्यागी गंण भी थे सत्सँग में, कौन पिछाने हीरों को।
वे सब थे पत्थर के गाहक, सदगुरू नहीं भाऐ उनको।।
उनकी समझ न पहुँची उन तक, आकर कुछ त्यागी गंण ने।
उठा दिये महाराज पहुँचकर, ऐसे ज्ञान नहीं सुनने।।
घर बनिये का ज़ोर उन्हों का, लठ पोंगे से थे तय्यार।
उठ ही आए विवश हो सतगुरू, क्यों बनते उनके संग ख़्वार।।
कमी बड़ी सब से इक यह थी, जिसके थे सदगुरू मेहमान।
डर के मारे भाग गया वह, मिला न उसका पता निशान।।
सद गुरू रह गए बैठे इकले, किसके बल पर मारें ज़ोर।
घर वालों का पता कहीं नंहि, बैठे रह गये जैसे चोर।।
घर लाकर तौहीन करावे, क्षुद्र क़िसम का वह इंसान।
नहीं ठहरना इस गाँवों में, किया इरादा चलने का।
सुंदर लाल और भोंदू मल, ने श्री सदगुरू को रोका।।
चले गये यदि बुरा होयगा, आप हमारे घर ठहरो।
हम देखेंगे इन लोगों को, बेखटके सत्संग करो।।

किया उन्हें मजबूर उन्होंने, टिके घेर में उनके जा।
ठहरे भी सत्संग किया फिर, संग संग इक भण्डारा।।
चले आए पश्चात् आश्रम, किन्तु वर्ष दो के पश्चात।
सुंदरलाल और भोंदू मल, इक सुखबीर और था साथ।।
कीं बातें फिर भण्डारे की, महाराज को लाना है।
चाहे जो हो उनको लाकर, भण्डारा करवाना है।।
जा पहुँचे आश्रम अनुमति को, पकड़ लिये जा करके पैर।
भण्डारा करना है फिर भी, करो हमारे ऊपर मैहर।।
अंतर गत विचार विनिमय के, भण्डारे की तय पाई।
जब तुम नहीं मानते हो तो, होवेगा अच्छा भाई।।
सुदी सप्तमी में असौज की, सम्वत दो हजार पंदरह।
तिथि रक्खी गइ भण्डारे की, लौट आए करके सब तै।।
दिये तीन रूपये चांदी के, महाराज ने भौंदू को।
देकर कहा इन्हें रक्खो तुम, भुनवाने हैं यह हमको।।
इनके नोट कराके भेजो, जो भी कुछ हो इनका भाव।
हाथ हमारे दे सदगुरू ने, ऊपर से यह दिया सुझाव।।
समझ गये हम मतलब इसका, अलमारी में पधराये।
बिकने नहीं आए ये रूपये, भण्डारा करने आये।।
रूपये न थे बीज रूपयों का, मस्तक से करके स्पर्श।
हमने धरे तिजूरी में जा, मन में हुवा बहुत ही हर्ष।।
होने लगी तय्यारी फिर तो, बढ़ने लगा रबड़ की नाव।
कल्पनाओं ये दुगना तिगना, बढ़ता चला आप से आप।।
छोटी सी स्कीम बनी थी, बांछ रूपये सौ सौ की।
पर हज़ार से ऊपर पहुंची, रकम आप से आप जुटी।।
बड़े पुराने देनदार आ, पहुंचे कर्ज़ चुकाने को।
आने लगीं मरी हुई रकमें, देते खुद आकर हमको।।
बात हुई स्पष्ट फेर तो, रूपये यों थे भिजवाये।
अभिलाषा अपने भक्तों की, ये पूरी करने आये।।
सुंदर लाल और भौंदू मल, डर गये ख़र्च देख करके।
अपने बसकी नहीं भाइ जी, दुबक गये पीछे डर के।।
सदगुरू आप सम्भालेंगे सब, हट जाओ हम हैं भइया।
जो होगा देखा जायेगा, गुरू आसरे सब नय्या।।
ख़र्च हरिक बढ़ता जाता था, पैसा भी जुटता जाता।
अपने आप भाग कर पैसा, हाथ हमारे आ जाता।।
दिक्क़त थी तो सिर्फ़ एक थी, मैं इकला करने वाला।

साथी रहा न कोई दूजा, इकले ने देखा भाला।।
सब पूरी पकवान मिठाई, जो भण्डारे का सामान।
करवाया तय्यार शहर में, मेरे लिये रहा आसान।।
भर भर के गाड़ी भिजवाई, साथ हो लिया सुंदर साथ।
डेरे, तम्बू फ़र्श आदि भी, चले उसी गाड़ी के साथ।।
बाहर के साथी जो आये, बैठा दिये गाड़ियों पर।
साथ मजाहिद पुर का भी संग, सोंपा सब समान उन पर।।
तुम तम्बू लगवाओ चलकर, संगवाओ सारा सामान।
इक गाड़ी बाजे वालों की, गरज़ सभी का रखना ध्यान।।
चला मजाहिद पुर वालों का, रेई को लेकर जत्था।
महाराज श्री को ले जाना, काम हमारे जिम्में था।।
मोटर कार किराये पर ली, उसमें लेकर चला उन्हें।
हमसे पहले साथ मजाहिद, पुर का पहुंचा गांवों में।।
नाला एक रास्ते में है, बरसाती पानी बहता।
घुसकर पार उतरते उसमें, मोटर मैं लेकर पहुँचा।।
की इंकार ड्राइवर ने मैं, कार पार नंहि कर सकता।
हमने बहुत दिया आश्वासन, सब मिलकर देंगे धक्का।।
फ़िकर न कर तू किसी बात की, रूकी खड़ी थी गाड़ी भी।
जो अपना सामान लिये थीं, नाले के इस पार अभी।।
सब ने कहा बहुत साथी हैं, हाथों हाथ उठा लेंगे।
इतने व्यक्ति भला मोटर को, पानी में रहने देंगे।।
सुनी नहीं ड्राइवर ने लेकिन, पार करूंगा पुल पर से।
वरना उतर जाओ मोटर से, पानी में नंहि घुसने के।।
दिन छिप चुका अंधेरा कुछ कुछ, बहुत ख़ुशामद की हमने।
भाई उतर चल पानी में से, लेकिन सुनी नहीं उसने।।
छः फ़रलांग गाँव था वां से, किन्तु बात थी रौनक की।
ले चलना जलूस के ढंग से, गाँव सवारी सदगुरू की।।
हुवा काम मिट्टी इतनी सी, अड़चन पर उस मोटर की।
जावेंगे हम भी मोटर से, ज़िद्द हुई फिर हमको भी।।
सात मील के चक्कर पर इक, पुलिया थी उस नाले की।
उससे मोटर लाए तार कर, हमने निज मन में सोची।।
चाहे जितना लगे ख़र्च पर, शान न नींची होवे आज।
दाम बढ़ा कर दिये कार को, पैदल नहीं जाँए महाराज।।
बाजा लेकर आप गाँव के, दूजे रस्ते पर मिलना।
हम आते हैं पुलिया पर से, फेर पड़ो चाहे जितना।।

पुलिया से होकर के जिसदम, हम पहुँचे बाजे के पास।
सुंदर साथ प्रतीक्षा में था, लग भग हो हि चुकी थी रात।।
पट्टी उधर तग़ाओं की थी, हमें जिधर से घुसना था।
अतः गांव के त्यागी गंण ने, घुसने से अंदर रोका।।
थे ऐकत्रित कुछ चुचाकड़े, लड़ने मरने को तय्यार।
खड़े हुवे थे टोल बनाकर, सब पै कुछ कुछ थे हथियार।।
मानो हो षडयंत्र युद्ध का, द्रश्य नज़र आया जब ये।
थे मजादपुर के जो साथी, सुनते ही इकदम चौंके।।
नज़र पिछानी त्यागी गंण की, ये उपाध को हैं तय्यार।
चौकस हो जाओ जितने हैं, लेकिन थे सब बिन हथियार।।
बात अभी तक साधारण थी, बड़े बड़ों में चर्चा थी।
इतने में इक ईंट किसी ने, सदगुरू मोटर पर फेंकी।।
टुकड़े टुकड़े हुवा आइना, बात बिगड़ गई फिर क्या था।
श्याम सिंह ने बढ़ कर आगे, एक तगा को जा पकड़ा।।
छाती में दी लात हाथ इक, उसकी लाठी पर डाला।
कब्ज़े की झटका देकर के, बार उलट कर कर डाला।।
तीन चार की खोपड़ियों को, तोड़ दिया जब मिनटों में।
विरमाजीत, त्रिलोकी, सौमी, ओउम प्रकाश हरी सिंह ने।।
छीनी लाठी उन लोगों की, जो गिर जाता धरती में।
बांस किसी पै ईट किसी पै, छीन छीन उनके हथियार।
रेई की फिर करी पिटाई, उधर सेंकड़ों में दो चार।।
कुछ रक्षा हित रहे कार में, कुछ ने पीटे उनके गाल।
रह गए खड़े हमी वहां इकले, बदल गया इक दम सब हाल।।
घबरा गया ड्राइवर इकदम, मेरा सत्यानाश हुवा।
जल्दी उतरो नींचे उतरो, उसका न्यारा शोर मचा।।
मोटर दो कौड़ी की कर दी, आग लगा दी गर इसमें।
तो मैं किस करवट बैठूंगा, क्यों लाऐ तुम यहाँ हमें।।
बजने लगीं लाठियां जिस दम, ईंट और पत्थर भाले।
भगने लगा साथ भी अपना, अपनी अपनी जानें ले।।
सेकेटरी जगदीश भाग गए, कृष्ण दत्त कान पुर वाले।
और साथ देहली का भागा, पड़े जान के जब लाले।।
मौत नांचती दीखी जिस दम, भूल गये कर्त्तव्यों को।
घेर लिये सदगुरू दुष्टों ने, क्या लाज़िम है अब हमको।।
पीठ दिखावे या मर जावें, जहां गुरू का हो अपमान।
लक्षण नहीं शिष्य उत्तम के, गिरे हुवे दर्जे का ज्ञान।।

लानत है ऐसे शिष्यों पर, लानत ऐसे प्यारों पर।
छोड़ गये मरने सदगुरू को, थू ऐसे सरदारों पर।।
कैसे कहें धार्मिक या, कर्त्तव्य परायण हम इनको।
वक्त परिक्षा का आया तो, भागे जान बचा कर जो।।
नहीं साथ का ना सदगुरू का, ध्यान किया इन लोगों ने।
क्या बीतेगी इन पर पीछे, कैसे छोड़े यहां इन्हें।।
खेलें खेल खेलने वाले, जानों से जो खेले खेल।
समय परीक्षा का था भारी, अतः उन्हीं ने झेली झेल।।
रह गये पांच सात ही लड़के, दूजे खाली हाथ सभी।
किन्तु लाज रखनी सदगुरू को, सो किरपा करके रक्खी।।
पांच पियारे गुरू नानक ने, इसी तरह तो छाँटे थे।
गुरू पर जान कौन देवेगा, सम्प्रदाय से काटे थे।।
हमें करो कुरबान गुरू पर, निकले इस प्रकार कुल पांच।
वो तो थी इस तौर परीक्षा, मगर यहां मरना था सांच।।
जान सुगम है देनी उनको, झिलना है मुश्किल अपमान।
ये लक्षण क्षत्री ही में हैं, न्यौछावर कर जाते जान।।
लेकिन आँच न आने देते, आनों पर वे जीते जी।
भली जान जावे जाने दो, मोह जान से नहीं कभी।।
कुछ लड़के त्यागी लोगों के, जब पिटकर अंदर पहुंचे।
रोष जाग उट्ठा लोगों में, खून चाटते सब दीखे।।
ले ले कर हथियार आदि सब, बना बना कर के टोले।
आए इरादा करके लड़ने, उनसे निज लड़के बोले।।
वापिस जाना नहीं हमें भी, जिन्हे हौसला हो आवे।
दूध पिया यदि क्षत्राणी का वापिस हम भी नंहि जावे।।
तुम्हें कसम है सुनो तगाओं, कसर करो जो हमसे आज।
हम तो जान धर्म पे देंगे, हमें नहीं मरने में लाज।।
एक तगा बोला उनमें से, ये दो जोड़ रहा हूँ हाथ।
ऐसा क्यो करते आपस में, बिगड़ जायेगी ज्यादा बात।।
आप लौट जाओ बस वापिस, इसमें स्वाद न आयेगा।
जो कुछ हुवा गनीमत समझो, झगड़ा अब बढ जायेगा।।
हुवा इशारा अब सदगुरू का, चलो मोड़ लो मोटर को।
रहने दो यह बात यहीं तक, मत आपस में लड़ो मरो।।
बोले फिर सुखबीर सिंह से, जब ऐसी थी बात यहां।
क्यों रे क्यों यह बात छिपाई, है ऐसी स्थिति वहां।।
इन्तजाम से तो आते हम, आना ही होता हमको।

वरना वहीं मना कर देते, सूचित करना था तुमको।।
जब पूछा तुमसे तुम बोले, नहीं गांव में कुछ अड़चन।
द्रश्य और ही मिला यहां पर, तुमसे क्या कह दे अब हम।।
मोटर मुड़ी शहर की जानिब, आनन फानन जा पहुँचे।
रसद और डेरे तम्बू सब, धीरे धीरे आन लगे।।
की रिपोर्ट कोतवाली आकर, हममें से इक साहब ने।
समप्रदाय का जल्सा था निज, होने दिया न रेई में।।
धर्म कार्य है सम्प्रदाय का, मदद पुलिस की है दरकार।
भण्डारा करना है हमको, इन्तजाम थामे सरकार।।
थानेदार, एस. पी. आदिक, फिरे जांच करते काफ़ी।
रेई तक में पहुंचे अफसर, लोगों ने माफी माँगी।।
गांधी नगर कलौनी इतने, तना शामियाना अपना।
भण्ड़ारा अब करो यहीं पर, रेई की हो गई मना।।
वहीं गई परशादी जीमी, तत्पश्चात हुवा जलसा।
जिसमें आए पुलिस अफ़सर भी, और कलक्टर भी पहुँचा।।
सबने सुने वचन सदगुरू के, बड़े प्रभावित हुवे सभी।
ऐसे उच्च महात्माओं को, रोक रही थी क्यों रेई।।
चले गये यों कहते श्रोता, बिना भाग क्यों पावे लोग।
उत्तम पुरूष तभी मिलते हैं, जब सुकर्म का हो संयोग।।
आए शेर पुर भी मांफी को, त्यागी गंण कुछ रेई के।
ये कंलक है धो दो इसको, पैर पड़े आ सदगुरू के।।
ले जाना चाहा रेई में, पर सदगुरू ने धरी न सर।
यों ही जी लेने दो हमको, बोले कृपा करो हम पर।।
जागों को क्यों फिरें जगाते, तुमतो जगे हुवे हो सब।
तुम्हें न सुनने ज्ञान ध्यान कुछ, तुमको क्या इनसे मतलब।।
ये चीज़ें हैं तलबगार की, बस उन ही को मिलती हैं।
अनधिकार की व्यर्थ चेष्टा, कभी न उनसे झिलती हैं।।
सदाधर्म संरक्षण क्षत्री, के हाथों क्यों रहता है।
रक्षा करना यही जानते, और पै नंहि हो सकता है।।
हुवे तीर्थकर सब क्षत्री, राम, कृष्ण, बुध अक्षत्री।
प्राँण नांथ भी अक्षत्री थे, छत्रसाल भी अक्षत्री।।
अब भी धर्म ध्वजा अक्षत्री, पै ही रहे ये लिख लेना।
झूंटी निकले हमें ज़मीं में, खुदवाकर गढ़वा देना।।
भाग जायगा और निकलकर, हुई अगर इनमें बैठक।
ग़ोल परमहंसों का उतरा, है यह बस उनकी बीतक।।

बसंती देवी पत्नी वेगराज राड़धना

सच कहना जूतों पिटना यहाँ, क्यों के है यह झूँटिस्तान।
लड़ता जगत सत्यवादी से, सत्य न सह सकता इंसान।।
ख़ानदान शैतानों का यहाँ, उल्टों का कुनबा सारा।
उल्टों को उल्टी भाती है, उल्टों को उल्टा प्यारा।।
मेरे घर की बात नहीं कुछ, घर घर मटियाले चूल्हे।
गान जागरण गाते फिरते, मगर हैं सब भूले भूले।।
थे चमेलसिंह भक्त जेठ निज, बीज भक्ति का यों आया।
उनकी करनी और कृपा से, फल सारे घर ने पाया।।
छोटे भइया वेगराज सिंह, पत्नी का बासंती नाम।
आ उतरे हम भी खेलों में, आ देखा यह दुख का ग्राम।।
महाराज जी शेरपूर थे, एक बार की है यह बात।
बासंती बीमार पड़ी थी, बीमारी बढ़ रही दिन रात।।
वेगराज बोला पत्नी से, चलो तुम्हें दिखला लाऊँ।
ठीक डाक्टर रहे बागला, उसकी दवा दिवा लाऊँ।।
बीतक के लिए महाराज जी, को भी लेते आऐंगे।
एक पंथ दो कारज दोनों, काम सँवर संग जाऐंगे।।
अतः सहारनपुर जा पहुँचे, मंदिर में मिल गए महाराज।
सुनकर बड़े खुशी हुवे दोनों, क्या संयोग बनाये आज।।
केशो दास अनारो भी थे, बीतक की छेड़ी गई बात।
सुनते ही इन्कार कर दिया, रखने दिया न कंधे हाथ।।
कहा अनारो ने सदगुरू से, मुरदा क्यों आया महाराज।
मुरदा किसे कहा, देखा झट, बोली रखलो इसकी लाज।।
सिर्फ़ तुम्हें लेने आई है, बीतक तुमसे बंचवानी।
अगर मना ही है तो सनलो, हमें न सुननी सुनवानी।।
बोले सुनकर बड़े ग़ौर से, युगलदास झोली लाओ।
हमें मजाहिदपुर जाना है, आप शेरपुर को जाओ।।
यों हम लेकर चले वहाँ से, लिया खतौली से ताँगा।
महाराज भी तांगे में थे, लगा मेह का फिर तांता।।
बौछारें थी उसी ओर जिस, तरफ़ श्री सदगुरू पधरे।
सदगुरू जब भीगे बासंती, ने सोचा क्या जतन करें।।
धोती का पल्ला फैलाकर, ओट करी बौछारों की।
मना किया मालिक ने लेकिन, हमने उनकी नहीं सुनीं।।

सदगुरू ने गादी नींचे की, खेंच हमारी ओर करी।
रक्षक बने एक दूजे के, मैं उनकी तो वे मेरी।।
राड़धने मैं पहुँची जिसदम, दौरा पड़ा पहुँचते ही।
घंटों तंग किया करता था, बेहोशी में रही पड़ी।।
बेहोशी कहने कहने की, किन्तु होश के दीखे खेल।
केलि कला औ हास विलासों, की हो रही थी रेलम पेल।।
सैर सपाटे जगह जगह के, बड़े बड़े आनंद विनोद।
परमधाम जैसे रस बरसे, वैसे ही आनंद प्रमोद।।
आया हमें होश जिस सायत, सुरता गई मजाहिदपुर।
महाराज जी मुझे देख कर, बोले मेरा हाथ पकड़।।
चल परकम्मां करा लाऊं मैं, लेके चले साथ अपने।
परकम्मां करते हुवे दोनों, तरफ़ रसोई के पहुँचे।।
बोले उधर देख ये क्या है, मैंने देखा आँख उठा।
बहुत औरतों के दल दीखे, कौन हैं ये मैंने पूछा।।
बोले बहन तुम्हारी हैं सब, लेकिन सोइ पड़ी हैं अब।
इनमें उठी न कोई अब तक, नींद नशा अब भी बेढब।।
हैं हज़ार बारह की बारह, मस्त नींद में हैं सारी।
चलती फिरती भी है लेकिन, किसी योग्य नंहि बेचारी।।
साथ साथ बोले घुटनों के, बल यह अपना साथ चले।
पैरों के बल बसकी नंहि है, पड़े ग़रीबी के पाले।।
हैं फ़कीर सर से चोटी तक, नहीं सहारा पैसों का।
हमीं सहारे हम ही ताक़त, तरस हमें है ऐसों का।।
फिर भी कुछ परवाह नंहि है, बाँए हाथ का है यह खेल।
वक्त आन पहुँचा अब इनका, मिले कृपा की इन्हें धकेल।।
उम्मते खासुल खास जो ठहरीं, इन ही पर है दारमदार।
वली आखरत की ये ही हैं, हैं हक की ये ही हकदार।।
इन्हें सहारा देना होगा, इन्हें हमारा नहीं पता।
वादे पर आ पहुँचे हैं हम, गफ़लत इनकी नहीं ख़ता।।
खुली हुई हैं आंखें कुछ की, अक़ल न इनकी खुली अभी।
अभी होश की बात न होंगी, बैठी गफ़लत अभी चढ़ी।।
इतना समझाकर प्रीतम झट, अंतरध्यान हुवे फ़ौरन।
रह गये बस इकले ही बैठे, भेद जागनी का पाया।
आतम नाथ समझ में आये, इतना भेद समझ आया।।
क्या रहस्य है इस लीला का, फल पाओ क्या जागे का।
लगा उतरने आत्माओं में, जो रहस्य है आगे का।।

करवाना कुछ चाह रहे है, हम से हमें हुवा अब ज्ञान।
कृपा करी आकर क्यों इतनी, क्यों दे रहे नाहक पहचान।।
काफ़ी दिन के बाद एक दिन, बुलवाया देकर आवाज़।
बासंती गई पधरौनी पै, लगे बोलने यों महाराज।।
इक चिट्ठी भेजी थी पहले, गुम कर गए याँ के शैतान।
जिसमें हमने लिखकर भेजी, अपनी सुध बुध औ पहचान।।
मिले ला दुनी को ला दुन्नी, ताले में भेजा फ़रमान।
मौहर इश्क की क़ैद इश्क की, सका न उसको कोई थाम।।
ख़ैर चलो छोड़ो अब उसको, यह दूजी चिट्ठी है लो।
है हिदायतें इसमें अंतिम, कभी इसे भी गुम करलो।।
इसे मास्टर तिरलोकी को, पहुँचा दो कहते ही साथ।
हुकुम षसम का है कह देना, देकर तिरलोकी के हाथ।।
याद करो वादे को अपने, पूरा कर अपना वादा।
इतनी बात ज़बानी कहना, वक्त नहीं है अब ज्यादा।।
और त्रिलोकी को यह कहना, भेज चमन को मेरे पास।
कान खोल कर के सुन लेना, जो कुछ कहता हूं मैं बात।।
बारह जनें खड़े हो जाओ, बारह को सोंपा है काम।
छः मजादपुर औ खेड़ी के, राड़धने से छः का नाम।।
वक्त काम का आ पहुंचा अब, घबराना मत हम हैं साथ।
बंदे हो तुम सदा हुकुम के, एक हुकुम तुम बारह हाथ।।
नहीं जरूरत डरने की कुछ, पिटने को है सिर मेरा।
मेरी जूती मेरा ही सिर, मेरे तुम यह घर मेरा।।
मेरा होके हटे जो पीछे, मेरा फिर वह काहे का।
हम में रहकर पढ़ा बढ़ा, अब लौटे मेरा काहे का।।
तनिक खड़े तो हो जाओ तुम, खड़ा होय जो अब मेरा।
हुवा हमारे लिए खड़ा जो, उसे समझना है मेरा।।
उसमें मेरी मैं बोलेगी, उसकी मैं ले लूंगा मैं।
सुनी बहुत दुनियां की मैं मैं, सुनो दुनी अब मेरी मैं।।
मेरे ही तो हो तुम सारे, मैंने ही तुमको पाला।
साथ न छोड़ा मैने अब तक, तुम में खुद को खो डाला।।
इस वजूद से नहीं वास्ता, कहीं रहें मत करना ध्यान।
रूह हमारी बीच तुम्हारे, बारह रूह सम्भालो काम।।
मैं तुम में अब फ़र्क नहीं कुछ, मैं तुम में तुम हो मुझमें।
सूंत दिया है मैने तुमको, खेंचा जनती बीच तुम्हें।।
चमक हमारी अब बारह में, बारह ही चमकायेंगे।

झण्डा अमल हाथ बारह के, बारह रतन कहाऐंगे।।
करे राज स्थापित अपना, राज भोज रूहन आया।
वक्त हमारा आ पहुंचा अब, तुम्हें बसंती समझाया।।
शिष्य बड़ाई करें गुरू की, निज गुरू को चमकाते हैं।
नाम उछालें पुत्र बाप का, रौशन कर दिखलाते हैं।।
जो सपूत करते है ऐसा, बेड़ा डूबे हाथ कपूत।
वंश नष्ट कर डाला करते, जाते ऐसे कुनबे ऊत।।
चाह रहे क्या नाम मिटाना, अपना कोइ नहीं क्या आज।
कहने को लम्बी चौड़ी है, दीख रही जो आज समाज।।
कोई लिए फिरता है वाँणी, कुछ कुरान की देते भाख।
इधर उधर दौड़े फिर रहे है, बिन समझे दे रहे है साष।।
साषदार क्या पिछले ही हैं, जो उतरे इन खेलों में।
बिना साष हम ही उतरे क्या, हमें तोल रहे धेलों में।।
शिष्य सभी पिछलों के दीख रहे, अपना शिष्य न कोइ क्या।
क्या हम में गुण न था एक भी, पिछलों ही में गुण था क्या।।
भाड़ बैठकर झोका तुममें, अब तक क्या बेकार गया।
ढके चदरिया में बैठे रहे, क्या वह प्यार नकार गया।।
डूब गया बेड़ा क्या अपना, वंश नष्ट समझें क्या हम।
बहुत देर से सुन रहे हैं हम, जिनको कहते आप षसम।।
झेल न सकता पिया दुनी का, प्रिया और के हो गर पास।
बीत रही होगी क्या हम पै, देख और के संग विलास।।
हमसे नफ़रत, इश्क और से, साथ हमारे यह बरताव।
देखो हमें ज़प्त को अपने, देखो अपना आप लगाव।।
तख़्त बदल गए ताज बदल गये, बदले जितने कहे निशान।
बात हुई मंसूख रात की, उठे रात के सारे ग्यान।।
आप रात के राजा की, अब भी पकड़े फिरते हो बाँह।
नाम उसी का रटते फिरते, बैठ हमारी चरणों छाँह।।
हमसे क्या सम्बंध तुम्हारा, लखो हमारे सम्बन्धी।
हम भी तो कुछ लगते होंगे, क्या सारी हो गई अंधी।।
कट कर जंबा गिरी क्या सबकी, बैठ गये सब सीकर होट।
तुम्हें यही तो समझाया था, सह न पाओ माया की चोट।।
एक न निकला जिसने डुबकी, लेकर हमको जाना हो।
एक न निकला हाथ हमारा, पकड़ा या पहचाना हो।।
याद करो क्या कहा करें थे, कहूँ तो मुझ से कहा न जा।।
बड़ी हमारे संग मजबूरी, चुप भी हमसे रहा न जा।

कहूं तो माँ मारी जाती है, ना कहूं बाप को कुत्ता खा।।
बात इशारों में थी उस दम, अब अस्पष्ट समझ लो साथ।
रम्ज़ इशारों में बोले हम, समझी नहीं किसी ने बात।।
प्यासे के प्यासे हैं सारे, कुआ खोद न पाया एक।
डुबकी उसमें मार न पाये, समझा गया न अपना भेष।।
जतन करो जल का ओ प्यासों, बिन जल नहीं बुझेगी प्यास।
सहज न जाने जायेंगे हम, अपना न था एक भी दास।।
झण्डा उठा बसंती अब तू, डोंडी पीट खड़ी हो जा।
जो रोकेगा हम देंखेंगे, सिर हम पै है पिटने का।।
बे इज्जत तेरे बिल्ऐवज, हम होंगे तू मत घबरा।
बला तुम्हारी हम लें सर पर, बिगड़े जो बिगड़े अपना।।
मस्त हैं सब अपनी अपनी में, फिर रहे हम धक्के खाते।
खुद को फिरे दिखाते सब को, दर्शन पर्शन करवाते।।
दर्शन का परिणाम ये निकला, जो तुमने अब अपनाया।
काढ़ो हमें हमारे घर से, जो हमने खुद बनवाया।।
फ़ोटो तक की नहीं इजाज़त, ऐसी हमसे हुई ख़ता।
चुभने लगे चित्र भी अपने, जंचने लगे आज बेजा।।
काम चलेगा नंहि अब ऐसे, लाओ बसन्ती निज तलवार।
जो दी थी राजाओं वाली, कहा था रखना इसे संवार।।
अब देखेंगे जो आयेगा, हम मयसाने जाते हैं।
एक पुरूष आया है उतथें, कुछ तै करके आते हैं।।
पल भर में वह पुरूष हमारी, नजरों के आगे आया।
बातें की दोनों ने मिलकर, शब्द कान में यों आया।।
महाराज से पूछा उसने, आप कहां से आते हैं।
फूल पूर से बोले सदगुरू, तुमसे मिलना चाहते हैं।।
आठ अंग कटवा कर अपने, पास तुम्हारे आये हैं।
शायद तुमको ज्ञात न हो हम, तुम्हें बताने आये हैं।।
आगे अब प्रोग्राम और है, चुप्प हुवे कह इतनी बात।
आठ अंग कटने की सुनकर, मेरे हौल हुई इक साथ।।
मेरे समझ नहीं आया यह, किसने काटे इनके अंग।
फिरी लोचती काफ़ी दिन तक, दोनों का जब सुना प्रसंग।।
समाधान परताप सिंह ने, किया बहुत ही दिन के बाद।
राज़ हाथ आया यह उस दम, खुली गुज्झ की जिस दम बात।।

राज राज कहते रहो, स्वयं राज़ है राज।
बड़े भाग्य की बात है, खुले जो इनके राज़।।

एक बार इक व्यक्ति हमारे, घर में ऐसा आन घुसा।
जिसने पधरौनी तक जाके, कर में बीतक लई उठा।।
फाड़ रहा हो जैसे उसको, मैने उसको देख लिया।
बोली में इक साथ कड़ककर, क्यों रे तू यहां क्यों आया।।
क्यों छूई ये पुस्तक तेंने, तुझे पता है किसकी हैं।
तेरा हाल बनावेगा क्या, तुझे पता है जिसकी हैं।।
बिना आज्ञा घुसा एक तो, तिस पर घुसा ज़नानों में।
ऊपर से बेअदबी उनकी, जो अपने ईमानों में।।
कैसा हुकुम इजाज़त किसकी, कौन रोक सकता हमको।
किसे जनाने मर्दाने कह, कह कर हमें डराती हो।।
बुला कौन तेरा जो रोके, अपना हुक्म आप है हम।
आते जाते स्वयं हुकुम से, रोके कौन है किसमें दम।।
दिखा रोककर फाड़ेंगे ले, कहते कहते फाड़ धरी।
फेंक दिये दो टुकड़े करके, मैं अवाक रह गई खड़ी।।
गायब हुआ काम इतना कर, किससे कहूं कौन था ये।
मार गया चांटा सा मुंह पर, पिट गए कह भी नंहि सकते।।
फाड़ गया कोइ उन ग्रंथों को, जिनमें है अपना ईमान।
कमर तोड़ दी लात मारकर, गई निकल सी अपनी जान।।
सदगुरू, इष्ट, ग्रंथ इन तीनों, का यदि कोई करे अपमान।
जीवित मत जाने दो उसको, या खुद मिटो है यह ईमान।।
अगर किसी से कह डाला यह, हो जावे तूफान खड़ा।
करा किसी ने भरा किसी ने, बोझ ये मुझ पै आन पड़ा।।
दो टुकड़े बीतक के घर पर, पड़े हैं इस दम भी टूटे।
बात न अपनी समझ आइ यह, अब तक भेद नहीं फूटे।।
समझ आइ अब आकर हमको, सदगुरू को सन्मुख पाया।
लिये खड़े इक बीतक कर में, हमें बुला कर समझाया।।
पूजन करो लो इस बीतक का, भोग आरती ले आओ।
जल्दी देर हो रही है, सुंदर साथ को बुलवाओ।।
मुझ पै चंदन धिसवा करके, पांच तिलक खुद करवाये।
किया तकाज़ा फेर भोग का, मुझ पै पैसे नंहि पाये।।
बोली अभी उधारे पैसे, किसी से ले के आती हूँ।
थोड़ी देर अभी टिक जाओ, अभी भोग लगवाती हूँ।।

कहते कहते हुवे अलक्षित, उस दिन का अब भेद खुला।
अपनी बीतक चलवानी थी, इस प्रकार से दी इतला।।
एक बार पन्ना यात्रा पर, गई मोटरों पर था साथ।
थे प्रताप सिंह मेरठ वाले, भी यात्रा में अपने साथ।।
पन्ना जी में जाकर के सब, गये चोपड़ा मंदिर हम।
वहां कीर्तन किया साथ ने, लगे झूमने सारे हम।।
इतने में श्री महाराज जी, अंदर से आते दीखे।
मैं भी देख रही थी उनको, ले प्रताप कपड़ा भागे।।
आसन बिछता देख लौट गये, महाराज जी अंदर को।
स्वयं उठा लाऐ इक चौकी, लौट आए फिर बाहर को।।
कपड़े के आसन पर चौकी, बिछा आन बैठे महाराज।
और न दीखे किसी अन्य को, मस्त कीर्तन में था साथ।
ख़तम कीर्तन करके जिसदम, निमटे घटी संग इक बात।।
कुछ प्रतापसिंह ने कह डाला, साथी जन से ऊट पटांग।
छूने लगे पैर सब मेरे, हर इक करने लगा प्रणाम।।
मैं शरमों मर गई देखकर, इस प्रकार उनकी हरकत।
सोचा ऐसा करके तो, कर रहे हैं ख़राब इज्ज़त।।
बड़ा बुरा सा माना मैंने, कौन आत्माँ है परताप।
क्यों मज़ाक बनवाई अपनी, अच्छी लगी न उनकी बात।।
चले आए गुम्मठ हम वापिस, मैं गुम्मठ में जा पहुँची।
की फ़रियाद वहाँ मालिक से, मानो एक शिकायत की।।
हमें बताओ कौन व्यक्ति है, किया फ़ज़ीता अपना क्यों।
महाराज का ध्यान किया वहाँ, सुने शब्द फिर हमने यों।।
तू क्या सबका करे फ़ज़ीता, काम फ़जीता है इनका।
बिना फ़जीते कौन उठेगा, उलट पलट यह कर देगा।।
इन से कोइ न बच पावेगा, सब परास्त हों इनके हाथ।
सीधे होते चले जाएगें, इनके पास विकट हैं बात।।
पलवाड़े के राजा हैं ये, यही करेंगे सब को ठीक।
इनके बिना न सीधे होंगे, है इनपै अपनी बख्शीष।।
मेल मिलावें ये ही आगे, करें ये हि छटनी का काम।
आगे और न बोल आए कुछ, दिया हमें यह भेद तमाम।।
एक बार खुद महाराज ने, होकर प्रकट दिया संकेत।
पीछे की बातें अब छोड़ो, अब करना आगे का हेत।।
घर बैठे ही हमें ध्यान में, गुरू ने पन्ना पहुंचाया।
चली जा रही थी गुम्मठ की, ओर नज़र हमको आया।।

द्वारे पन्ना लाल पुजारी, चौखट पकड़े नजर पड़े।
केशव दास अनारो आदिक, दीखे उनके पास खड़े।।
बोले केशव दास पुजारी, वह आ रही है विद्रोही।
इसने झगड़ा मंचवा रक्खा, है यह है समाज द्रोही।।
पन्ना लाल पुजारी बोले, इस औरत की क्या औकात।
इसकी तो चटनी मिनटों में, हम कर देंगे हाथों हाथ।।
निकट पहुंचली थी मैं तब तक, शब्द पड़े मेरे भी कान।
मैं सन्मुख जाकर के बोली, मैं भी तभी तुम्हें लूं जान।।
जब मेरी चटनी कर दोगे, वरन् तुम्हारी शान नहीं।
गांव आपका ज़ोर आपका, अपनी जान पिछान नहीं।।
सर से साड़ी अलग फेंककर, मैं फकेर सर हुई खड़ी।
देख हमारे तेवर ऐसे, बाइ अनारो खिसक चली।।
केशव दास चले जिस दम मैं, बोली उनसे कहाँ चले।
चले जाओगे क्या यो ही अब, बिना हमारे से निमटे।।
आग लगानी ही सीखी क्या, आओ बुझाना सिखलादें।
विद्रोही कैसे होते हैं, थोड़ा सा तो दिखला दें।।
सीखे अभी कान के मंतर, ढोल मंत्र लेते जाओ।
सुपने की ही विद्दत सीखीं, जाग्रत भी सुनते जाओ।।
अभी हमारा जिक्र छिड़ा है, अभी सुनी नंहि पन्नालाल।
होश सभी को आजाऐंगे, जितने धर्मों के दल्लाल।।
ख़्वाबों की बाते जगतों में, नहीं चलेंगी अब आगे।
सुन लो कान खोल कर धामी, परम धाम वाले जागे।।
भाग गये सब मैं इकली ही, रह गइ खड़ी चोंतरे पर।
ध्यान भंग हो गया हमारा, ख़ातम हुई लीला आषर।।
ऐसा हाल हमारा है अब, दिन और रात षसम के साथ।
होती रहती है बातें नित, दिखलाते रहते साक्षात्।।
बतलाते रहते भविष्य की, देख ये होने वाला है।
ख़तम हमारी परदेदारी, ऐसा निज घरवाला है।।
कथा मजाहिदपुर चल रही थी, क्रम से सालांना की भांति।
बांच रहे थे इन्दराजसिंह, एक बार की है यह बात।।
माँगी सिंह नंहि गये कथा में, मैं बोली क्यों नहि जाते।
वे बोले बस तुम ही जाओ, हमें ये ढोंग नहीं भाते।।
मैं बोली यह ठीक नहीं है, गैर हाजिरी उचित नहीं।
मांगी फिर बोला सुन करके, मैं इतना तो ढीट नहीं।।
सुनकर ही मानोगी क्या तुम, हमें कथा सी नंहि लगती।

भवक अहंकारों की दिखती, बक बक ही बक बक दिखती।।
हमें नहीं है श्रद्धा तिल भर, अपनी समझ नहीं आती।
सदा दूसरे की निंदाऐं, हमसे सुनी नहीं जाती।।
चला गया इतनी कहता हुवा, करो तुम्हीं अपना कल्याण।
हम तो लांड़े ही रह लेंगे, हमें न चाहिए ऐसा ज्ञान।।
उसी रोज़ महाराज रात को, बोले आइ हमें आवाज।
भला कथा में मन क्यों नंहि अब, लगता इसका यह है राज।।
कथा नहीं है शग़ल आजकल, बने तफ़रियों के साधन।
पोषण पोषण बने पेट के, खुदी है इन में स्थापन।।
कैसे कथा करी जाती है, नियम वियम क्या है इसके।
हम सिखलावें इन्द्रराज को, सबक उसे अब हम देंगे।।
कान पकड़ के इन्द्रराज का, कथा सिखाई जायेगी।
हम है कौन कहां के है, पहचान बताई जाऐगी।।
हमें किसी ने जाना ही कब, कब पहचान करी अपनी।
जो जिसके जैसा मुंह आया, शुरू करी उसने बकनी।।
हमें यों हि जाना है सबने, यों हि आए औ गये चले।
जीव सृष्टि जो ठहरे हम भइ, इन्द्रराज से पूछेंगे।।
डंडा हमें पिछनवावेगा, डंडे में अपनी पहचान।
डंडा पंथी डंडा जानें, हो डंडे से जब संन्मान।।
प्रांण बसे जिनके डंडे में, डंडा उनका प्रांणाधार।
सोटा नंद जगे सोटे से, क्या जाने वे अपना प्यार।।
पक्का इलम पास सोटे के, जिन पै पड़ा बना पक्का।
सोटे बिना भला क्यो जागें, सोटा ही सदगुरू जग का।।
हम बेकार सिद्ध हुवे जग में, उठी न कौड़ी किरपा की।
इज्ज़त अगर यहां बच पाई, तो बचवावै सोटा ही।।

हिरन हिरन हो जाता, जिस दम पड़ता सोटा।
मालिक किरपा रक्खें, इसका नाम भी खोटा।।

एक बार बीमार हुई जब, तबियत ज़्यादा हुई खराब।
दर्शन दिये श्री सदगुरू ने, और लगे करने यों बात।।
मत घबरा सब ठीक ठाक है, थोड़ा दुख्ख झेलना है।
यही देखने तो उतरी हो, तू तो धाम अंगना है।।
तुम चमेल सिंह की अर्धागिन, वाम अंगनी हो उनकी।
है साकुण्डल की आतम वह, तुम हो उसके जोड़े की।।

महल दीखने लगा तत्क्शण, जिसकी शोभा बड़ी अपार।
द्वारे मिले राज श्यामा जी, फेर मध्य दीखे सरकार।।
सिंहासन पै युगल विराजे, जब दीखे मैं चिल्लाई।
पास हमारे और बहुत थी, जब लीला यह दिखलाई।।
झिला न मुझ से दर्शन उनका, बोली जो थी मेरे पास।
श्री राज श्यामां जी वे रहे, धाम धनी है ख़ासुल ख़ास।।
दर्शन कर लो सभी साथनो, उधर देखने लगीं सभी।
किन्तु दीखते थे मुझ ही को, क्यों के किरपा मुझ पर की।।
सबने कहा कहां है दिखला, किया पकडने को जब हाथ।
द्रश्य अलक्षित हुआ एक दम, गायब हुवे आत्माँ नाथ।।
महिमां किस मुंह से वरनू अब, मेरे मुँह में जबां नहीं।
वरनू भी गर किसी तरह में, कौन यहां पर करे यक़ीं।।
दर्शन धाम धनी के हमको, बहुत बार पिया करवाये।
इक इक मौहौल बगीचे आदिक, में संग लेकर घुमवाये।।
ज्यों के त्यों वे याद अभी है, भूल नहीं सकते उनको।
बख्शी कृपा बहुत ही ऊपर, धन सदगुरू के चरणों को।।
पाया बहुत बहुत चरनों में, किन्तु न हमने संगवाया।
दुख के खेल दिखाये काफ़ी, साथ जहां अपना आया।।
धाम गये जिस दम श्री सदगुरू, सब के सब भग गये वहां।
इक खजान नाई था बाकी, दूजा जमना दास वहां।।
ताली मंदिर की उन ही पर, मैने राड़धने सोची।
चले गये सब शेर पूर को, सेवा की कैसे होगी।।
चल तू ही सेवा कर आ कुछ, राड़धने से मैं आई।
उनसे मांग मूंग कर ताली, कुंडी खुलवानी चाही।।
खुला नहीं जब ताला मुझसे, तो वे दोंनों बुलवाये।
किन्तु न ताला खुला किसी से, मंदिर खोल नहीं पाये।।
विवश सोचने लगी भोग अब, बना बनूं कर ले आऊं।
द्वारे पर बाहर इक चौकी, सजा भोग तब लगवाऊँ।।
भोग बनाया जाकर मैंने, लैम्प जल रहा था उस दम।
बत्ती अगर जलाई उसमें, तो चिमनी टूटी इक दम।।
भोग लगाने पहुँची द्वारे, चौकी सजा थाल रक्खा।
ओंधी हो गइ चौकी अजखुद, जल औ भोजन बिखर गया।।
बड़ा हुआ अफ़सोस ह्रदय में, रह गइ खड़ी पिटी सी में।
इतने में आवाज़ आइ इक, पड़ी हमारे कानों में।।
मिट्टी अभी पड़ी है बाहर, गये न अभी समाधी में।

भोग लगाती फिरती है तूं, समझ न इतनी हुई तुझे।।
जा घर अपने नाहक आई, शब्द कान जब यह आये।
तो ग़लती दीखी फिर अपनी, सब समान हम रख आये।।
धाम गमन के बाद वर्ष पर, श्री पदमावति पहुंचे हम।
साक्षात हम दर्शन पाये, गुम्मद जी में मिले खसम।।
हुआ सार्थक जाना अपना, खिजड़ा मंदिर पर भी थे।
सदगुरू दीखे हमें वहां भी, बलिहारी श्री प्रीतम के।।
उनकी अतुल कृपा की कीमत, कौन चुका सकता प्रांणी।
वार वार बलि चरण श्री पर, बाह हमारी तुम थामी।।
कोइ न उठ सकता तुम ठाये, समरथ आप एक हो बस।
अन्य और तो सभी झूँट के, तुम ही हो अपने सरवस्व।।

। बीतक डोइवाला जिला देहरादून ।

जहाँ बजी हौं धोंस नँगारे, चकचकाए धरती आकाश।
तीनों लोक कोंध कर रह गए, जिसकी एक झलक के साथ।।
उड़ गए ज्ञान धूल से जिसके, आगे आते ही इक बार।
उस ही के हम रहे साथ पर, अक्ल हमारी थी लाचार।।
समझा नहीं गया वह हमसे, फिरे यों हि पीछे पीछे।
सबके अंदर कुछ मत पूछो, अपने अपने मतलब थे।।
चौकस सब अपने मतलब में, अपने में मालिक चौकस।
हमें थी उनकी उन्हें हमारी, तलब एक दूजे की बस।।
उन्हें जरूरत थी दुलहन की, हमें जरूरत दूल्हा की।
इच्छा पूर्ण हुई दोंनों की, भावनाऐं जैसी जाकी।।
हम ही तो उनको नंहि समझे, वे तो आए हमें लख के।
जो जो उसकी अंगनाए थी, उन्हें जगाया तक तक के।।
डोई वाले भण्डारा था, और चढ़ाना था झंडा।
रामसरूप डोई वाले का, न्यौता देने आ पहुँचा।।
महाराज ने कहा साथ से, एक पंथ औ दो दो काज।
जिसे नहाना हो गंगा जी, तय्यारी कर ले वह साथ।।
राड़धना, चोली, मजादपुर, थोड़े चले सलावे से।
मिले सहारनपुर कुछ जाकर, लगभग हो गये चालिस के।।
हरिद्वार शम्शान घाट पर, मंदिर है निज परनामी।
चितकबरी सी एक पुजारन, उसमें सेवा करती थी।।
जाते ही खटपट हुइ उससे, देखा जब उसने जथ्था।
तो घबरा सी गई देख कर, यहां न इतनों का मौका।।
कहीं और ठहरो जा करके, यहाँ हमें ही जगह नहीं।
तुम जथ्था लेकर आ पहुँचे, जगह टटोलो और कहीं।।
देखा जब अदना सी औरत, पत्ते काट रही सबके।
साथी गंण ने लिया मोरचा, फिर उससे आगे बढ़के।।
है स्थान साथ का समझी, घर नंहि तेरे बाबा का।
ख़बरदार चुपकी बैठी रह, होट बंद करके रखना।।
तेरे यहां नहीं आये हम, क्या तू मालिक है इसकी।
तुझे मना करने का हक क्या, कैसे जुर्रत हुई तेरी।।
सुंदर साथ बिछाओ बिस्तर, अंदर रक्खो निज सामान।
करो तयारी खुद रसोइ की, इस पै मत दो कोई ध्यान।।

इन्तजाम चालू हो गए फिर, चली गई बुढ़िया सुन कर।
किसी आदमी को भी लाई, कोइ न बोला पर आकर।।
था स्थान बुरी हालत में, बुरा हाल था कुलज़म का।
सबसे पहले श्री सदगुरू ने, कुलज़म का उद्धार किया।।
पन्ने फटे पड़े थे सारे, जिल्द बांध तय्यार किया।
किया कीर्तन फिर तबीयत से, रंग जमां वह क्या कहने।
अपनी बनी पुजारन जिस दम, रंग अरश लग गए बहने।।
फिर सत्संग छिड़ा सदगुरू का, मानो खुली अरश खिड़की।।
सारा साथ तरंगित हो गया, ऐसी कुछ खुश्बू छिड़की।
आधी रात तलक सदगुरू के, बरसे ज्ञाना मृत के फूल।
समझ लेओ थोड़े शब्दों में, बीतक को नंहि देना तूल।।
अगले रोज दुपहरी सी में, इकले से बैठे थे आप।
आके कुछ तरंग में बोले, बाजा उठा लाओ परताप।।
हम थे बंदे सदा हुकुम के, अच्छा जी कह कर उट्ठे।
शान्ती जड़ौदे का ढोलकिया, था हम उसके ढिंग पहुंचे।।
इच्छा जाहिर की मालिक की, चलो आप ढोलक लेकर।
बोला ना मैं कोई मिरासी, ना हि किसी का नौकर हूं।।
खूब रही यह हांक मार लो, अपना यह नंहि है धन्धा।
अपनी मौज के है नौकर हम, हमें न कहना आइन्दा।।
लौट आए अपना सा मुंह ले, जब आये सदगुरू आगे।
पड़े हुवे थे आंखें मूंदे, मेरे घुसते ही जागे।।
उठ बैठे इक साथ उछलकर, वहा गया ही था तू क्यूँ।
हमें भजन सुनना था केवल, ढोलक फिर बजवाता तू।।
मै स्तब्ध रह गया सुनकर, इस प्रकार के उनके बोल।
इनके कान पड़े यह कैसे, जो कुछ कहे शान्ती ने बोला।।
दूर हुई थीं ये बातें तो, वे सब थे गंगा के तीर।
चिलम उड़ रही थी छींटों की, फूटी जब उसकी तकदीर।।
कह तो गया शान्ती कहने को, मगर बहुत पछताया फेर।
जाने कौन घड़ी थी जिसने, चिनी चिनाई कर दी ढेर।।
धाम गमन तक श्री सदगुरू ने, कभी न ढोलक बजवाई।
भजन कीर्तन में शान्ती के, हाथ न फिर ढोलक आई।।
नजरों से जो उतरा उतरा, क्या ढोलक क्या गाने थे।
ये तो पास बुलाने के लिए, उनके सिर्फ बहाने थे।।
यह शतरंज इश्क की खिल रही, हार जीत की है बाजी।
पर मखौल समझा लोगों ने, दुनिया क्या जाने पाजी।।

कहते सुना वहां वालों को, कह जो छज्जू का झण्डू।।
देख ढोंग क्या रचके बैठा, अंधा कर दिया दुनिया कू।
ब्रज के गोप ग्वाल ने बोलो, दिया कृष्ण को कब सन्मान।
ईसा की येरूशल्लम में, नहीं किसी ने की पहचान।।
मक्के में कब मिला मौहम्मद में, को आदर दुनियां वालो।
महावीर को राज त्यागना, पड़ा जरा देखो भालो।।
क्या यह दुनियां वही नहीं है, वहीं लोग नंहि क्या इसके।
वही अन्न जल नंहि खा रहे क्या, भला होयेंगे ये किसके।।
सब के सब सम्बन्धी धन के, या सम्बन्धी है तन के।
क्या जानें सम्बंध आत्मिक, रस्ते हैं ये मुनिजन के।।
सदगुरू की पहचान बड़ी है, छोटों ही को कब जाना।
छोटों को भी छोड़ो खुद को, ही तुमने कब पहचाना।।
बुरा हाल है इस दुनियाँ का, मत खुलवाओ इसकी पोल।
भीतर सब के सब खाली है, फ़कत समझ भंगी का ढोल।।
खैर चलो छोड़ो यह चर्चा, अगले दिन सारा जत्था।
हरिद्वार से चला रेल से, डोई वाले जा पहुँचा।।
जब कस्तूरी के पहुंचे हम, जो घरवाली रामसरूप।
उसकी कथा निराली ही है, योग्य दर्शन के वह रूप।।
फिरी हरिक के पैरो पड़ती, धन्य धन्य मेरा घर आज।
रोती कभी कभी हंस उठती, मेरै आज पधारे राज।।
एक झोपड़ी बस छोटी सी, कुल्हिया में क्यों आवे ऊंट।
हाल बुरा था सब लोगों का, चारों तरफ धूंप ही धूंप।।
अगर मालिकों से पूछे तो, उत्तर उनसे यह आता।
भला जहाँ खुद राज पधारे, किसी चीज का नंहि घाटा।।
आग न धूंआ ना कुछ करना, नक्शा जब सब समझ लिया।
युगलदास बोला प्रताप सिंह, बोलो अब क्या जाय किया।।
आप बनानी पड़े यहां तो, सुंदर साथ किया तय्यार।
छोड़ो इस मेहमानी को अब, उठा लाओ अपने हथियार।।
पिल गया अपना साथ बनाने, आटा सीदा ले उससे।
दो घंटे के अंदर अंदर, भण्डारे भर पूर हुवे।।
बिल्डिन्ग एक पोस्ट औफिस की, पोस्ट मास्टर सीताराम।
खाली वही करा ली गई थी, ठहरा उसमें साथ तमाम।।
थोड़े इधर उधर भी कुछ थे, वक्त दुपहरी ढलने का।
एक आदमी इक चिट्ठी सी, लेकर सदगुरू पै पहुंचा।।
जिसमें था तहरीर आपसे, समाधान कुछ करना है।

आप कौन हो क्यों आये हो, चाह रहे क्या सुनना है।।
हुकुम हुआ जाओ प्रताप सिंह, को जल्दी लेकर आओ।
आगन्तुक से कहा जरा, ठहरो उत्तर लेते जाओ।।
हाज़िर हुआ हुकुम सुनते ही, जाकर जब परनाम किया।
तो वह परचा हाथ हमारे, आगन्तुक ने थमा दिया।।
पढ़कर इसे सुनाओ सब को, क्या है इसमें लिखा हुआ।
ज़ोर ज़ोर से मैंने वह, परचा पढ़ना आरम्भ किया।।
जिसमें लिखा हुआ था जनता, समाधान कुछ चाह रही।
समय चाहिए उसकी खातिर, बस इतनी थी बात लिखी।।
चला ओर सदगुरू की जिस दम, परचा उन्हें थमाने को।
तो बोले हमको क्यों देते, सोच समझ कर उत्तर दो।।
मैं उत्तर दूँ? और कौन दे, बोल उठे फ़ौरन् महाराज।
मैं रह गया काठ मारा सा, कैसे शब्द कहे ये आज।।
मेरे मुँह से अनायास यह, निकला यदि क़स्बे के व्यक्ति।
सुनना चाह रहे हैं तो अति, आवश्यक है देना वक्त।।
समाधान यदि नहीं किया तो, कैसे जानेंगे हमको।
यहाँ हमारा पंथ नया है, नये दीखते हैं सबको।।
मुझसे यदि उत्तर दिलवाते, हो तो हमने यह सीखा।
जो ललकारा करते उसको, नहीं दिखाते हम पीछा।।
महाराज बोले तो लिखदे, जब भी इन्हें बुलाना हो।
साड़े सात शाम का टाइम, बता दिया आगन्तुक को।।
दो घण्टे के बाद मनादी, होती दिखी जनता में।
सावधान क़स्बे के लोगों, कहा मनादी वाले ने।।
आज आपके क़स्बे में कुछ, गुण्डे ठहरे हैं आके।
जो भोली भाली जनता को, फिर रहे गुण्डे बहकाते।।
साड़े सात बजे सन्ध्या को, उनसे होना है शास्त्रार्थ।
सुनने को सब भाई पधारें, जो भी बस्ती के न्यायार्थ।।
क़स्बे में सनसनी फैल गइ, पिटा ढोल जब इस ढंग का।
ठहरे थे हम जहाँ हमारे, कानों पै भी आन पिटा।।
सुंदर साथ गया सदगुरू पै, यहाँ शाम को हो झगड़ा।
हम से सहन न हो बे अदबी, लोगों ने कुछ अगर बका।।
सुना न मेंने ढोल मगर सब, बात हमारे पै जाली।
हम में ताक़त धंसी खसम की, बात न दीखी भय वाली।।
फ़िकर नहीं लवलेष ह्रदय में, महाराज संग हो शास्त्रार्थ।
कौन जीत सकता है इनसे, नहीं किसी में भी सामर्थ।।

फिरते रहे खेलते ज्यों ही, संध्या को खाकर निमटे।
चिलम तमाखू पी रहे थे सब, घेर दूसरे में जाके।।
इतने में पहुँचा संदेशा, महाराज जी का हम पै ।
आमंत्रित सज्जन आ पहुंचे, सुंदर साथ चला आवे।।
सुनते ही उठ लिये सभी हम, जहाँ बना अपना पिंडाल।
खचा खच्च जनता बैठी थी, इक जथ्था था श्री अकाल।।
एक तरफ़ हम भी जा बैठे, ख़ामोशी छाई अत्यन्त।
निकट वहीं गुरू द्वारा भी था, उनके भी थे वहाँ महंत।।
ताक रहे सब महाराज को, आँख आँख ठहरी उनपर।
क्यों के हैं दूल्हा बरात के, क्यों ना पहुँचे वहाँ नज़र।।
काफ़ी देर बीतली जिसदम, खामोशी अख़्त्यार किये।
तो कुछ साथी जन ने हमको, आँख आँख संकेत दिये।।
सदगुरू से चर्चा छिड़वाओ, इन्तज़ार में है पिंडाल।
छेड़े बिना नहीं बोलेंगे, मैंने जाकर किया सवाल।।
महाराजजी यह पबलिक कुछ, सुनने आई है तुमसे।
पड़ते ही यह शब्द कान में, श्री सदगुरू बोले हमसे।।
हम क्या बोलें किसे सुनावें, तुम पकड़ो उठकर आसन।
वाक्य समझ भी नंहि पाया, थेपी दे दी आनन फानन।।
कहा हुजूरी को आसन, दे करके इसको बिछवाओ।
औ प्रताप सिंह बोलेंगे, संयोजक से यह कहवाओ।।
जब देखी मैंने यह लीला, मानो मेरा दम निकाला।
यह मुझसे क्या चाह रहे हैं, मैं क्यों कर हूं योग्य भला।।
ना तय्यारी ना गुमान कुछ, ना ही वाद विवादी ज्ञान।
आज सभी बेइज्जत होंगे, धरी गधे पै आज कुरान।।
मुझे शत्रु की भांति लगे वे, इस प्रकार का देख सलूक।
होटों पै आ गई फेपड़ी, हुआ छुआरा सा मुँह सूख।।
इसके सिवा न था कुछ चारा, या तो आसन पर चल दे।
या फिर चरण पकड़ सदगुरू के, बिलकूल साफ़ मना करदे।।
लेकर ये दो भाव झुका में, उनके पग पर दोबारा।
हाथ पीठ पर फिर सदगुरू ने, मेरी तीन दफा मारा।।
अंदर फिर कुछ शेरी आई, हाथ नोट बुक ले करके।
साहस सा बटोर अंतर में, आसन तक हम जा पहुंचे।।
की प्रणाम आसन को पहले, जा बैठे ले सदगुरू नाम।
पहला मौका जीवन में, सोंपा इतना मुश्किल काम।।
बैठते हि उस आसन पर कुछ, ऐसी शक्ती सी आयी।

भय जो अपने में अब तक था, इक दम हुआ छाई माई।।
लगे दीखने लोग मूर्ख से, हम सब में लग रहे विद्वान।
हिचक लेष भी रही न अंदर, स्वतः उठा अंदर से ज्ञान।।
नत्मस्तक हो सकल साथ को, भूमिकाए बांधी अपनी।
संसारी ज्ञानों की सब से पहले कर डाली छटनी।।
नेति नेति क्यों कहा वेद में, वेदी तक सीमित संसार।
वेदों से आगे हम बोले, हम पै है सारों का सार।।
कहां से उट्ठा सम्प्रदाय निज, कौन संस्थापक इसका।
प्राण नाथ को समझाया, के सम्प्रदाय है ये इनको।।
शुद्ध सनातन मजहब है यह, है अनन्य भक्ती अपनी।
श्री कृष्ण है इष्ट हमारे, यों व्याख्या आरम्भ करी।।
ब्रह्म सृष्टि क्यों आइ जगत में, इस प्रसंग पै जब आया।
इतने में एक व्यक्ति बीच में, पबलिक में से चिल्लाया।।
पहले हमें अनन्य समझाओ, नई भक्ति कहां से आई।
प्रथम तो हमको लगा बुरा, पर फिर भी हमने समझाई।।
सिर्फ एक को झुकता मस्तक, लगता कुछ नंहि उसका अन्य।
यही भक्ति जानी जाती है, सम्बोधन करके अनन्य।।
हमने फिर व्याख्या जारी की, पांच मिनिट में फिर रोका।
आप नहीं आये हो सुनने, समाधान यों नंहि होता।।
यह कोइ शिष्टाचार नहीं है, नियम नहीं यह जलसे की।
अगर आप को कुछ कहना है, आज्ञा लो संयोजक की।।
बोले गया न जाने किया किया, फिर कटाक्ष इक कर डाला।।
खड़ा हो गया साथ सैक्रेटरी, आर्य समाज डोई वाला।
शंका करो निवारण पहले, चर्चा तब चलने देंगे।
एक डोई वाले का बोला, तेरा उत्तर हम देंगे।।
रामसरूप, रामानंद बोले, हम पै है तेरा सामान।
तू इनको क्यों छेड़ रहा है, हम देंगे तुझको वह ज्ञान।।
पहले तो दो चार उठे फिर, सब के सब हो गये खड़े।
कुछ शराब पीकर आये थे, उनपै साथी टूट पड़े।।
फिर तो शुरू मरम्मत हो गई, थे ख़राब जो जो पुरजे।
परसी गई दाल जूतों में, समाधान यो शुरू हुवे।।
भाग गये कुछ तार फांद कर, खेत खेत बहुते भागे।
साथ डोई वाले का पीछे, वे भागे आगे आगे।।
बैठा रहा अकाली जथ्था, औ महंत गुरूद्वारे का।
वे इच्छुक थे कुछ सुनने के, गुरू मुख गुरू मुख ही होता।।

शिष्टाचार नियम या संयम, निगुरा किस प्रकार जाने।
कहने से सुनना मुश्किल है, सुने वहीं जो कुछ माने।।
भला जहां खण्डन ही खण्डन, मण्डन का लवलेष नहीं।
उसके आगे ब्रह्म वार्ता, जिसका कुछ उद्देश्य नहीं।।
शान्त हुआ जिस दम वह घपला, बोला गुरूद्वारे का सिख्ख।
हम तो सुनने को आये थे, है इन चीजों के आशिक।।
अब चलवाओ अपनी चर्चा, हमें ठीक जंच रही हैं बात।
हम तो सुनकर ही जायेंगे, अब कुछ नंहि होगा उत्पात।।
हमने कहा गया हमसे तो, जो भी था कहने वाला।
अब तो इधर सुनो जो सुनना, सुनो बात उससे आला।।
चिपट गये फिर सब सदगुरू से, दिया उन्होंने फिर सत्संग।
सुनकर सिख्ख सब प्रफुल्लित हो गए, ऐसे छेड़े फेर प्रसंग।।
आए रात को भी सुनने वे, सिख्ख मैनेजर था मिल का।
बड़े प्रभावित हुवे सभी जन, सफल हुआ सदगुरू जलसा।।
कस्बे में मच गया तहलका, रही चर्चा इस झगड़े की।
हिम्मत पड़ी ना फेर किसी की, आकर हमसे मुंह मारे।
चार रोज़ तक ठहरे फिर हम, वहीं डोई वाले सारे।।
इक बुढिया ने जगह दान दी, मंदिर की जहां नींव पड़ी।
स्थापन करके मंदिर हम, चले वहां से मंसूरी।।
इक साथी था जहां मंड़ली, जा पहुंची अपनी पूरी।
सिवा हमारे उस मकान में, और न था जहां ठहराया।
खूब कीर्तन भजन हुवे और, सत्संग का आनंद आया।।
महाराज ने मंसूरी को, स्वर्ग बताया असुरों का।
जम घट यहाँ जुड़ा ही रहता, नास्तिकों और निगुरों का।।
अगले रोज घूमने निकले, सदगुरू को लेकर गन हिल।
तो कुलड़ी बजार से आगे, साथ बहुत थे कानिस्टबिल।।
लगा कि घेरे चल रहे हमको, उनमें था इक थानेदार।
जिसने भेजे पास हमारे, कुछ सिपाही औ हवलदार।।
हवलदार जाना पहचाना लगा, देखते ही हमको।
उसने हमें औ हमने उसको, पहचाना इक दूजे को।।
ठाकुर साहब तुम इनकों क्यों, हम बोले गुरू है अपने।
और ये सब के सब साथी हैं, सुनकर बतलाया उसने।।
कल से तुम सब नज़र बंद हो, पुलिस बुलाइ बाहर से।
वायर लैस हुआ देहरादून से, ख़बरदार किए हम उसने।।
इक गिरोह है बहुत बड़ा जो, आ रहा है मंसूरी को।

फोर्स लगा दो सब नाकों पै, और निगाह उन पर रक्खो।।
घेरे हुवे है अब हम तुमको, गिरफ्तार अब हो जाते।
अगर भेद यह नंहि खुलता, और आप न पहचाने जाते।।
बहुत खैर हुई बच गये ठाकुर, बहुत फोर्स है छिपी हुई।
सीटी बजने को ही थी बस, आते ही लठ बरसाती।।
कौन हो तुम क्यों आए मसूरी, नहीं पूछता कोइ तुमसे।
गिरफ्तार करके मोटर में, भर कर जेल भेज देते।।
पुलिस से बातें करके लौटे, तो सबने पूछा हमसे।
हमने सब वाक़ात बताये, इन्तज़ाम थे जेलों के।।
पुलिस आइ हुइ है नींचे से, सीटी बजने वाली थी।
अगर न मैं पहचाना जाता, बड़ी दुर्गती अब होती।।
था दिवान जाना पहचाना, बात वहाँ की वहाँ रही।
महाराज जी बोले हमने, पहले ही यह कहदी थी।।
असुरों का है स्वर्ग मसूरी, हम जैसों का वहाँ क्या काम।
पर सब की ज़िद थी घुमवादो, देखा क्या होता अंजाम।।
बचा दिये जाओ सदगुरू ने, घूम घाम वापिस आये।
हम से अलग आज साथी सब, लाला जी ने ठहराये।।
अगले रोज़ साथ तो सारा, गया घूमने मंसूरी।
रूकना पड़ा मुझे सदगुरू के, साथ फ़लैट में मजबूरी।।
क्यों के वे नंहि चाह रहे थे, जाना कहीं घूमने को।
मना किया मुझ को तुम मेरे, पास रहो बाक़ी जाओ।।
था कमरा इक अलग थलग, जिसमें श्री सदगुरू लेटे थे।
और कोइ उस दम कोठी में, नंहि था हम दोनों ही थे।।
बारिश बरस उठी मैं उनके, चरण दबाने जा बैठा।
महाराज इक समाधान है, छोटा सा कर दोगे क्या।।
थे प्रसन्न मुद्रा में सदगुरू, बोले क्या है बतलाओ।
प्रीतम आख़त पर आने थे, कब आवेंगे समझाओ।।
इन्द्रावति के ऊपर जैसे, कृष्ण चंद्र का था आवेष।
रतन बाइ पर भी होगा कोइ, या ख़ाली है इनका भेष।।
फूट रही हैं क्या बिलकुल ही, हम बोले बिलकुल महाराज।
अगर दीखता होता कुछ तो, ऐसे नहीं पूछते आज।।
झूट बोल कर सदगुरू ही से, क्या कर सकता कोई उद्धार।
दृष्टि खोल दो चाहे पलक को, करलें हम भी साक्षात्कार।।
खोले होट ये सुन सदगुरू ने, शब्द बड़े पैने निकले।
अभी और समझाना होगा, क्या अब तक भी नंहि समझे।।

क्या कपड़े उतार कर कोई, तैने फिरता देखा है।
कह उड़ेगी दुनिया पागल, नंगा जो यहां फिरता है।।
सौंदर्य्य घुंघट में रहते, पागल यहां यही दस्तूर।
बेनक़ाब जब हुवा सुना है, जल उड़ा था कोहेतूर।।
परदा नशीं रहे परदे में, कौन उघाड़े वे परदे।
परदों के बाज़ार लगे हैं, बिकते यहां सदा परदे।।
बस परदे ही परदे हैं यहां, परदे वाले कम आते।
जब परदे वाले आते, परदे में बैठे रह जाते।।
कोइ न मिलने जाता उनसे, ताक़त किसे उठे परदा।
परदे से परदा लड़ता हैं, टकराता फिरता परदा।।
मिलना यदि, पहुँचो परदे में, परदे में परदे वाले।
फटता हो फाड़ो परदों को, तोड़ो परदों के ताले।।
परदे ही में घरवाली हैं, है परदे में घरवाले।
इश्क से उड़ेगा यह परदा, हाथ इश्क के ये प्याले।।
टिका दिया चरणों में सर, सुन सदगुरू से इतनी बात।
सर उठने से पहले पहले, बदल चुके थे सब हालात।।
पैर हिलाकर दिया इशारा, साथ साथ मुंह से उठ जा।
पाकर के संकेत, हमारा सर श्री चरणों से उड़ा।।
धन्य हुई अंखियां लख करके, बिस्तर पर नंहि थे महाराज।
आंख फटी की फटी रह गईं, शयन कर रहे थे श्री राज।।
लगा कि जैसे मृत्यु लोक के, स्थानों का द्रश्य नहीं।
और और ही था सब कुछ तब, कोंधी बिजली सी इक साथ।
चुंधियाईं अखियां बाहर की, दिव्य द्रष्टि हो गई सनाँथ।।
रूप मोहिनी छवि माधुरी, आभा लख मुस्कान भरी।
दर्श पर्श की प्यासी आतम, एक पलक में तृप्त करी।।
लकवा मारा सा रह गया तन, गिर गई बिजली ज्यों तन पर।
द्रश्य अद्रश्य हुआ पल भर में, रह गए सदगुरू बिस्तर पर।।
क्या देखा किसने दिखलाया, असर पड़ा कैसा हम पर।
विस्मित मैं बाहर बाहर था, था प्रसन्न अंदर अंदर।।
किस मुंह से मैं धन्यवाद दूं, धन्य धन्य कर दिया परताप।
कौन पधारे है सदगुरू में, करा दिया क्षंण भर में ज्ञात।।
नैमत मिली यहाँ यात्रा में, जीवन यात्रा का इनआम।
अंदर गई नज़र उस दिन से, बाहर का हुवा खेल तमाम।।
थोड़ी देर बाद आ पहुंचा, घूम घाम कर अपना साथ।
छिड़ी डोई वाले के ऊपर, थोड़ी देर बाद वहां बात।।

बुरे नहीं बोले प्रताप सिंह, व्याख्यान था नपा तुला।
पर शराबियों ने गड़बड़ की, पूरा सुनने नहीं दिया।।
महाराज जी बोले उसमें, वाँणी की है कमी अभी।
उसे चाहिये पढ़नी वाँणी, हो पाऐगा कुशल तभी।।
मुझे दूसरे कमरे में से, तभी बुलाया गया वहां।
निकल जाओ लो वाणीं में को, गोटा देकर मुझे कहा।।
की मैंने तामील हुकुम की, वाँणी पढ़ना स्वीकारा।
पर आकर जब पढ़ी रूह ने, मुंह पर चाँटा सा मारा।।
दो प्रर्कण भी ठीक तरह से, पढ़ न पाए हम गोटे का।
जाग गई वैराग भावना, जँचा कि तू घर छोड़ेगा।।
बाबा जी इक रोज हुआ, रक्खा है यदि तू पढ़े गया।
इन्हीं विचारों के अंतरगत, मैंने पढ़ना रोक दिया।।
एक हरफ़ भी फिर नंहि देखा, पढ़ी न वाँणी दोबारा।
अन्तरात्माँ ने वाँणी को, छूआ नहीं न स्वीकारा।।
जब भी सदगुरू मेरठ आये, हमने वापिस पकड़ादी।
सदगुरू ने पूछा पढ़ली सब, उत्तर में हाँजी कहदी।।
किन्तु उन्हों ने दूजा गोटा, हाथ हमारे पकड़ाया।
हमने बिना पढ़े ही यह भी, इक दिन उनको लौटाया।।
दिये तीन गोटे हमने भी, बिना पढ़े सब लौटाऐ।
झूँट झूंट कह देते पढ़ लिए, धोका ही देते आये।।
बहुत विचारा मन ने पागल, सदगुरू को दे रहा धोका।
किन्तु आत्माँ नहीं नहीं, कहती रही पढ़ना नहिं ओटा।।
था स्थान मजाहिदपुर का, महाराज आये हुवे थे।
परिक्रमां में बैठे हुए इक, भक्त को मंतर दे रहे थे।।
रानी साहिबा चलसीने की, भी उस दम वहीं बैठी थीं।
जिनसे करी शिकायत मेरी, जो निज बूआ लगती थीं।।
कहा आपका यह प्रताप, धोका दे रहा हैगा हमको।
तीन बार हमने गोटा दिया, कहा कि वांणी से निकलो।।
तीनों बार पढ़े बिन उसने, लौटाया गोटा हमको।
महाराज तुम यहीं बैठे रहो, अभी पकड़ती हूँ उसको।।
थीं मिजाज़ की बड़ी तेज़ वे, जाते ही बोलीं परताप।
यह प्रशाद का थाल उसे दो, चलो ज़रा तुम मेरे साथ।।
मुझे नाज़नी के नींचे, ले जाकर बूआ बैठ गई।
बड़े तेज़ तीखे लहजे में, बात बूआ ने शुरू करी।।
बनता फिरता है ज्ञानी तू, पहले एक बात बतला।

जो सदगुरू को धोका देवे, बता है उसकी कौन सजा।।
रौख नर्क जाए वो निश्चय, कभी न हो उसकी मुक्ती।
इससे नींच कर्म नंहि कोई, सब से गिरी हुई व्रत्ती।।
खूब सोचले और समझले, लौट न जाना वचनों से।
तीन बार सदगुरू ने तुमको, कहा कि निकलो वाँणी से।।
क्या तुम निकले, आज्ञा मानी, तीनों बार झूंट बोला।
बिना पढ़े लौटाई वापिस, भेद ये गुरू ने ख़ुद खोला।।
बाट में बैठे हैं उत्तर की, उत्तर फ़ौरन् इसका दे।
मन में सोचा अब प्रताप तू, पकड़ा गया सत्य कहदे।।
अगर बात यह है श्री सदगुरू, इन्तज़ार में बैठे हैं।
तो बूआ जी चार वजह हैं, जो पढ़ने से रोके हैं।।
जिस वाँणी के लिए पुरज़िद हैं, सदगुरू मैं इसको पढ़ लूं।
और पूर्ण विद्वत्ता इस, वाँणी में मैं हासिल करलूं।।
बूआ जी सच बात तो यह है, आतम अपनी नंहि लेती।
हमने कथा सुनाई जब यह, वाँणी चरणों में देखी।।
तभी से अपनी नज़रों में इस, वाँणी का कुछ मूल्य नहीं।
कारण सिर्फ़ एक यह पहला, जो यह हमने पढ़ी नहीं।।
सबब दूसरा और सुनो जो, वाँणी हमको नहिं भाती।
मुक्ती के लिए बाँणी वाँणी, अक्सर सुनी पढ़ी जाती।।
हमें मुक्ति अब नहीं चाहिये, मिल लिया हमें जो था मिलना।
वाँणी और ग्रंथ आदिक, पढ़करके हमें न कुछ करना।।
ला हासिल हासिल हो गया जब, किस लिए पढ़ें सुनें वांणी।
सबब तीसरा और सुनो जिस, कारण पढ़ी नहीं वाँणी।।
पहली दफ़ा दिया जब गोटा, घर जाकर जिस वक्त पढ़ा।
तू बाबा जी हो जायेगा, पढ़कर उसको हमें जँचा।।
बच्चे छोटे छोटे हैं सब, झाँकें औरों के कौले।
न दे सहारा कोई इनको, सत्यानाश तेरा होले।।
अगर आप और सदगुरू दोनों, को है यही बात मंजूर।
होऊँ पराण्गत पढ़के वाँणी, तो फिर शर्त करो मंजूर।।
ज़िम्मेदारी लो बच्चों की, औ निज घर का थामो भार।
फिर हमने जानी वाँणी ने, होके हम दिखलावें पार।।
अगर काम ही नंहि चलता, बिन बांणी तो है अंतिम बात।
दे देवें बख़्शिष वाँणी की, सर पै धर बख़्शिष का हाथ।।
कुछ भी मुश्किल नंहि सदगुरू को, बाँए हाथ का है यह काम।
बिना बात क्यों करवा रहे हैं, श्री सदगुरू यहाँ खेंचा तान।।

प्रॉंण नॉंथ जी के शिष बारह, परमहंस कहलाये हैं।
पढ़ी कौनसी वॉंणी जिससे, परमहंस बन पाये हैं।।
अगर काम कुछ करवाना है, कहदो उन्हें शक्ति दे दें।
देर लगेगी नंहि करने में, इक दम कहते ही करदें।।
अब सदगुरू मुख से जो निकले, अपने लिए वो है वॉंणी।
औरों की नंहि पढ़ते हैं हम, पढ़ें ब्रह्म की ब्रह्मांणी।।
सुनकर अपनी बात बूआ जी, चुपके से उठकर चलदीं।
महाराज जी इन्तज़ार में, बैठे थे जाकर कहदी।।
उल्टा सबक़ हमीं को दे दिया, उसने नंहि पढ़नी वॉंणी।
जो अब सदगुरू मुख से निकले, मेरे लिए वह है वॉंणी।।
महाराज नंहि बोले सुनकर, रह गइ बूआ भी ख़ामोश।
बात हैं सारी श्रद्धाओं की, अब किसका बतलावें दोष।।

प्रकाशी देवी राड़धना (पत्नी कालू सिंह मुसैल)

सुन सुन कर सुन हो गए बहुते, गुने बहुत गुन गुन ज्ञानी।
मथे यहाँ विज्ञान ज्ञान, की, सबने अपनी मन मानी।।
अपनी तो औक़ात नहीं कुछ, क्या जानें हम सार असार।
गये समझते देख देख कर, वैसे थे हम निपट गँवार।।
ब़ारह वर्ष आयु के थे जब, आते जाते थे महाराज।
सुने प्रशंशा करते बहुते, महाराज हैं खुद श्री राज।।
जिनपै कृपा बरसती इनकी, करें पलक में उसे निहाल।
बिन पूछे बतला देते है, लोगों के अति गुज्झ सवाल।।
लगी परसने इच्छा अपनी, चाहा हमने भी कल्यांण।
हम भी पहुंच जांए घर अपने, छूट जांए झंझट से प्राण।।
हो सर्मथ औ निपुंण जहां कोइ, बांट रहा हो अदभुत माल।
तिस पर बिन कीमत मिलता हो, होती नहीं वहां फिर टाल।।
निकट लगे हम भी जा इनके, मिलै मंत्र थी यह इच्छा।
मौके की तलाश में थे हम, इक दिन मौका आ पहुंचा।।
थे चमेल सिंह कै श्री सदगुरू, मंत्र दे रहे थे इक को।
हमने भी इच्छा ज़ाहिर की, पर इन्कार किया हमको।।
साधन योग्य नहीं है आयू, कर्म काण्ड नंहि सिभलेगा।
उससे कहो अभी कुछ ठहरे, आप समय पै मिल लेगा।।
मैं रो पड़ी मना सुन करके, भरे फैल जो मन आया।
सुना शोर जब महाराज ने, मजबूरन फिर बुलवाया।।
बोले आ चल इधर बैठ अब, बिना बात मत फैल खिंडा।
हमें पकड़कर इक औरत ने, उनके सन्मुख दिया बिठा।।
देने को थे मंत्र और को, सजा धरा था पूजन थाल।
साथ साथ था भोग दक्षणां, पहले हम पै हुवे दयाल।।
विधि वत मिला तारतम हमको, बारह वर्ष उमर के बीच।
इस प्रकार हम हो गए उनके, अंदर अंदर लीना खींच।।
छोटी उमर साधना छोटी, छोटे छोटे उठे विचार।
पलने लगी कामना छोटी, जागे बड़े बड़े उदगार।।
देखा देखी शुरू हुआ सब, मगर राज़ था इसमें और।
नक्शे गये बदलते नित प्रति, आज और हम तो कल और।।
कुछ दिन बाद लगी आवाजें, ज्यों पुकारता हो कोइ दूर।
परकाशी, परकाशी कानों, गया बहुत दिन तक यह सूर।।

समझी काफ़ी रोज बाद यह, क्यों हमको टेरा जाता।
कौन टेरने वाला है यह, औ क्या है इससे नाता।।
तीन साल तक रहा यही क्रम, फिर पांसा दूजा आया।
कभी कभी फिर लगे दीखने, चमत्कार यों दिखलाया।।
चलते चलते कभी राह में, कभी कही बैठे बैठे।
कभी ख़ायालों औ सपनों में, चले हमें इस ढब लेके।।
ज्यों ज्यों कृपा पसरती आई, त्यों त्यों हमसे हुवा विकास।
हावी होते गये हृदय पर, बढ़ते गये आत्म विश्वास।।
दूरी हटती गई निकट से, निकट प्रभू अपने आये।
नौबत इक दिन यह आ पहुंची, परम धाम तक दिखलाये।।
महाराज तब थे मजादपुर, दिन ढलने जैसा था वक्त।
चर्चा छिड़ी हुई थी उस दम, निकट जुटे बैठे थे भक्त।।
इच्छा की इक ने उनमें से, महाराज कुछ दिखला दो।
सुनकर समझ बहुत कम आती, अब तो दर्शन करवादो।।
टरकाते रहे बातों बातों, हेरा फेरी करी शुरू।
छिड़े चुटकले लक्ष पलट को, पलटा देने लगे शुरू।।
लेकिन भक्त न पलटे उनसे, रहे स्वेच्छा पर आरूढ़।
आज देख कर ही दम लेंगे, कुछ भी नहीं आप से दूर।।
विवश मंगाई झोली अपनी, मैं लेने को दौड़ पड़ी।
लगी ढूँडने खुद मैं उसमें, होकर उनके निकट खड़ी।।
मुझे देखकर के वे बोले, इसमें खलक खज़ाना है।
तेरे हाथ नहीं आयेगा, हम देंगे तब पाना है।।
इतना कहते ही हाथों से, छीनी सदगुरू ने झोली।
गोदी में रख करके अपने, फिर अपने हाथों खोली।।
चेतन चूरन के डिब्बे को, बैठ गये ले अपने हाथ।
साथ साथ कुछ अजब अजब सी, लगे सुनाने सदगुरू बात।।
कितने ही आ बैठे लेने, श्री सदगुरू से अजब प्रशाद।
भिकमंगों की कचर कचर सी, होने लगे वाद अपवाद।।
मैं भी कर फैलाए खड़ी थी, मुझे झिड़क कर बोले नाँथ।
यहां नहीं रहने की खाकर, तू क्यों फैलाती है हाथ।।
घर का रास्ता भूल जायगी, जा बैठेगी धाम अभी।
दिया सभी को थोड़ा थोड़ा, कृपा करी फिर हम को भी।।
लेकिन बोले तुम मत खाना, अपनी चाची को देना।
मैने हां कर दी गर्दन से, माना नहीं मगर कहना।।
स्वयं खा गई हटकर वां से, भाग लिये घर को पश्चात्।

कुछ भी पता नहीं था हमको, चमत्कार से थे अज्ञात।।
निमट गई खा पीकर जब मैं, चार पाइ पर जा लेटी।
तो मेरे शरीर की कल कल, किसी शक्ति ने आ ऐंठी।।
इक प्रकाश सा उतरा आगे, बढ़ता ही फिर चला गया।
खिली धूंप सी घर आंगन सब, ना जाने किस ओर गया।।
उड़ी बिना पर के ऊपर को, ऊपर से ऊपर पहुंची।
जंचा मुझे जैसे मर ली, यह दुनियां तुझसे छुट ली।।
छटा और घर और और ही, साथी जन भी दीखे और।
और और ही लज्ज़त आई, बदल गये सारे तिल तौर।।
मिले राज जी के दर्शन जब, तो मत पूछो अपना हाल।
टूट पड़ा पर्वत किरपा का, बरसे इतने दीन दयाल।।
देती थी आवाज़ देख लो, जिसे देखने हो सरकार।
परदा नहीं बीच अब कोई, साफ साफ हो रहे दीदार।।
कितनी देर रही यह हालत, क्या क्या हमने बतलाया।
हम आपे में नंहि थे उस दम, हमको क्या क्या दिखलाया।।
लेकिन बगड़ भरा था सारा, जो सुन रहे थे अपनी बात।
चेतन चूरन की किरपा से, यह बीती थी अपने साथ।।
हमें नज़र आया जो कुछ भी, बेहोशी की हालत में।
होश हुआ जिस वक्त सुबह को, रहा न कुछ भी याद हमें।।
गये बीतते दिन पर दिन नित, उमर गई चढ़ती ऊपर।
शादी हुई ग्रहस्थी बन गए, भार चढ़ा घर का आकर।।
जिनसे बांधी गई ब्याह कर, नौकर पुलिस महकमें में।
गई मुरादाबाद साथ में, हट कर रहना पड़ा हमें।।
बदला वातावर्ण सौहबतें, नया नया पाया सहवास।
पीहर की जंजीर टूट गई, बने दूसरों के अब दास।।
अखरा बड़ा हमें यह चक्कर, क्या करते थी मजबूरी।
दुनियां के दस्तूर यही है, यहां विवशता है पूरी।।
कठिन जाल दीखा ग्रहस्थी का, उन मन होकर स्वीकारा।
हुकुम हुवा जो घरवालों का, चले उसी पर क्या चारां।।
थी विचार की खंदक हममें, मिले न उनसे अपन विचार।
खेंचा तानी सी दीखी इक, कोइ न झुकने को तय्यार।।
याद किया करती सदगुरू को, कैसों से डाला पाला।
यहाँ न पटती इनसे अपनी, भक्ति विमुख है घरवाला।।
समय गया अपना कटता यों, रहे हमें जैसे रक्खा।
कड़वा या मीठा जैसा फल, दिया हमें वैसा चक्खा।।

समय भयंकर आया इक दिन, हुवा बहुत भारी विस्फोट।
चूल चूल हिल उठी हृदय की, जिस दम सुनी लगी वो चोट।।
महाराज जी धाम पधारे, पड़े कान ऐसे संदेश।
उलट गया ज्यों तख़्त सुखों का, उठे छटपटा कर अवशेष।।
ढह से गये भाव के पर्वत, चूर चूर हो गये विचार।
दहक उठी इक दुख की ज्वाला, सिंधड़े उसमें हो लाचार।।
लगे दिनों को धक्का देने, बिना पिया काटा कुछ वक्त।
विषय वासनाओं को तज कर, चिंतन में रहते अनुरक्त।।
एक रोज दीखे श्री सदगुरू, वृक्ष नाज़नी के नींचे।
आश्रम श्री मजाहिदपुर है, बैठे है आंखे मींचे।।
की प्रणाम मैंने जा करके, आंख खोल कर स्वीकारी।
मैं बोली कुछ आज सुना दो, बोले सुन सदगुरू म्हारी।।
क्या सुनना है जो सुनवादो, मैंने फ़ौरन दिया जवाब।
इतना कह अलोप हो गए पी, ख़त्म हुआ मेरा भी ख़्वाब।।
दो दिन इसी तरह फिर दीखे, तीजे दिन बोले हमसे।
अपने पास नहीं है कुछ अब, सत्य बताते हैं तुमसे।।
गर सुनना कुछ हो प्रताप के, पास आप चोली पहुंचें।
उन्हें दे चुके अब हम सब कुछ, जाकर के अब वहां सुने।।
हम प्रणांम खुद करते तुमको, सत्य कही है हमने बात।
गया समय अपना कहने का, रहा न कुछ अब अपने हाथ।।
बात हाथ है अब प्रताप के, उस पै है अब कुल अख़्त्यार।
जिम्मेदारी अब उनकी है, छोड़ दिया उनके सर भार।।
हाथ उन्हीं के उठे जागनी, ध्वजा मारफत फहराऐ।
काम हमारा अब उस पै है, साथ हमारा उससे पाऐ।।
अलख हुवे इतना कह सदगुरू, हमने मन में किया विचार।
बात आज कुछ अजब सुना गए, क्यों प्रताप पर है यह भार।।
अपने मन नंहि चढ़ी बात यह, फिरी छिपाये अंतर में।
आ पहुंचा संयोग एक दिन, जा पहुंची मैं चोली में।।
देखा तो परताप वहीं थे, बात हमें वह याद आई।
अपने श्री सदगुरू जी ने जो, एक रोज थी बतलाई।।
हमें न थी श्रद्धा प्रताप में, साथ साथ नंहि था विश्वास।
क्यों ऐसा बोले श्री सदगुरू, है सदगुरू की झूंटी बात।।
थे प्रताप उस दम मंदिर में, चर्चा में थे लगे हुवे।
कई लड़कियों के संग हम भी, उस चर्चा में जा बैठे।।
लगी ताकने बड़े ग़ौर से, मैं प्रताप सिंह का व्यतित्व।

थोड़ी देर लगा साधारण, फिर दीखा उनका असतित्व।।
महाराज जी दीखे उनमें, साफ़ नजर आये हमको।
की प्रणाम आतम ने इकदम, इस सूरत में लख उनको।।
पांच मिनट तक रहा द्रश्य वो, फिर आया इक साथ यक़ीन।
स्वीकारी हमने ग़लती निज, निकली अपनी ही मत हीन।।
फिर प्रताप के निकट लगे हम, लेकिन उखड़े उखड़े से।
सोचा करते इनही को क्यों, मिला श्री सदगुरू जी से।।
सेवक और दास काफी थे, इनमें बात कौन है ख़ास।
जो श्री सदगुरू के मन भाये, कभी उछट जाता विश्वास।।
इक दिन चोली में प्रताप सिंह, की घर वाली आ पहुंची।
मैं भी उनके पास पहुंचकर, बातें करने जा बैठी।।
वे बोलीं मेरा घरवाला, तुम लोगों ने दिया बिगाड़।
बिना वजह तारीफें कर कर, तुमने इनको दिया उभार।।
महाराज के दास बहुत हैं, वहां मिलें सदगुरू सामान।
हां में हां भी कर बैठे, इन्हें कहाँ उन जितना ज्ञान।।
आप ठीक कहती हैं इनको, लोगों ने फुंगरा रक्खा।
भला साथ जो जनम जनम से, ज्ञान वहीं उनका होगा।।
सेवा में मेवा मिलती है, युगल दास और केशवदास।
शिष्य यही हैं महाराज के, इन पै है सबका विश्वास।।
दीखा हमें रात में सपना, वृक्ष नाज़नी के नींचे।
इकले आसन पर बैठे, श्री सदगुरू जी हमको दीखे।।
निकट गई में उन्हे देखकर, मुझे देखकर के बोले।
क्या कहती थी दास बहुत हैं, हमें जरा यह समझा दे।।
हाथ मार के धरती में, बोले पछता सी कर आप।
हमें एक भी दास न दीखा, बता कौन था अपना दास।।
जितने भी थे सब मतलब के, अपनी चाहत के थे दास।
अपने से लगाव किसका था, दास नाम पर सब बकवास।।
अधिक न निकले पांच चार से, बोले जनती दिखलाकर।
खेंचा तार डाल कर उसमें, खिचें दास सब यो आखिर।।
लम्बे बना दिये जायेंगे, खेंच खेंच जनती में को।
जनती बिना न चमकेंगे ये, करना पड़े यही हमको।।
रहा न सपना ना श्री सदगुरू, अलख हुवे कह इतनी बात।
संषय किया निवारण अपना, हमें न था यह अब तक ज्ञात।।
हम सब कुछ समझे दासों को, दासों पर था श्रद्धा भाव।
किये आप सदगुरू ने अवगत, हुवा हमारा यों बिलगाव।।

हम हैं कौन सृष्टि यह दुविधा, रहती थी अंदर अंदर।
श्री सदगुरू तो धाम चले गए, पूछें अब किससे जाकर।।
लगता है प्रताप सिंह इसका, उत्तर दे नंहि पाऐंगे।
और दीखता भी नंहि कोई, देखो इक दिन जाऐंगे।।
स्वप्न हुआ हमें उसी रात को, रेल खड़ी है इक आगे।
सुना यात्रा की है गाड़ी, टिकट की खिड़की पै भागे।।
लेके टिकट घुसे डिब्बे में, देखा महाराज भी हैं।
दी आवाज़ देखके मुझको, बिठलाया वहीं पास हमें।।
पूछा टिकिट विकिट भी है कुछ, दिखलाकर बोली ये है।
उठना ही मत कोइ कहे कुछ, इसी सीट पै बैठी रह।।
देख टिकिट चैकर आ रहे हैं, देखा तो आ रहे प्रताप।
सब के टिकिट देखते फिर रहे, मेरे भी वे आये पास।।
टिकिट दिखाओ हमने दे दिया, बोले तुम इसमें क्यों हो।
परमधाम का डिब्बा है यह, तुम इससे नींचे उतरो।।
बोले महाराज टी टी से, इनका टिकिट ये वापिस लो।
परमधाम जाना है इनको, इनको टिकिट वहीं का दो।।
फिर भी धमकाता रहा टी टी, सदगुरू बोले उठिये मत।
घुड़को पड़ा घुड़कने दे इसे, कुछ भी कहे बोलिये मत।।
फ़स्ट क्लास का डिब्बा है यह, टिकट है इसका थर्ड क्लास।
हम देंगे भुगतान फ़स्ट का, जावेगी पर अपने साथ।।
महाराज जी के कहते ही, दे गए टिकट हमें परताप।
कर गए समाधान सपने में, निर्णय करी छिपी हुई बात।।
मूर्ख जो सपना कहता इनको, आतम आतम करें मिलाप।
मिलन न इन स्थूलों में यहाँ, होतीं अंदर अंदर बात।।
अगर ख़्वाब की बातें हैं ये, तो सच क्यों हो जाती हैं।
कह जाते हैं बात ख़्वाब में, सुबह सत्य हो जाती हैं।।
बात सुनो अब सत्य ख़्वाब की, थी उन दिनों मुरादाबाद।
इधर मजाहिद पुर के साथी, राड़धने वालों के साथ।।
झगड़ पड़े आश्रम मजादपुर, में जब हो रहा था शास्त्रार्थ।
सिद्ध था होना बड़ा कौन है, प्रांण नाँथ या आतम नाँथ।।
उठे लट्ठ इन ही बातों पै, हो गइ ख़ैर न बज पाया।
राड़धने खेड़ी का साथी, वापिस चुप्प चला आया।।
उसी रात को हमें मुरादा, बाद एक सपना आया।
बैठे हैं महाराज रेत में, इकले हमें नज़र आया।।
गाँव भूपखेड़ी के बाजू, आबादी के पिछवाड़े।

ऐसे ही बैठे ज़मीन पै, बिन कूड़ा करकट झाड़े।।
बहुत हुई महसूस देखके, महाराज जी तुम ऐसे।
बिना सरोसामान रेत में, पड़े हुवे हो यहां कैसे।।
बोले अब हम यहीं रहेंगे, जब अपना घर कहीं नहीं।
कह रहे हैं मजादपुर वाले, बैठ बनाके और कहीं।।
हम ही ने बनवाया था वह, धन भी हम ही ने लाया।
हमीं निकाले गए अब वहां से, अब यह रेत हमें भाया।।
ओझल हुए दिखलाकर इतनी, हमको वहीं मुरादाबाद।
बात सत्य निकली ज्यों की त्यों, ख़बर पहुँच ली कुछ दिन बाद।।
कहो कौन कहता इसे सपना, सपने में झूंटा सामान।
अज्ञानी कहते हैं सपना, जिन्हें नज़र आते अज्ञान।।
लखो चाहे जिस करवट सत को, सत्य रहेगा हरदम सत।
सत्य दिखे सत की आँखों से, झूंटे का क्या लगता सत।।
गुरू पूनम पर सहारनपुर में, चर्चा कर रहे थे परताप।
चुभ गइ अपनी आत्माओं को, उनके मुंह से निकली बात।।
दूध पीऊ मजनू बहुतेरे, दिल देने वाला बस एक।
कहते सभी स्वयं को मजनूं, लैला का गाहक हर एक।।
मुश्किल असली को पिछानना, जिसके लिये आंख हैं और।
यही बात चुभ गई रूह में, आँख कौन सी हैं वे और।।
जिनसे असली दिख जाते हैं, अतः मैं मेरठ आ पहुँची।
दी आवाज प्रकाशी आ ले, देख आँख यह है ऐसी।।
परकाशी में से परकाशी, का बाहर हुआ एक सरूप।
परकाशी ने परकाशी का, देखा अदभुत रूप अनूप।।
नकली परकाशी ने असली, देखी इन आँखों द्वारा।
रूपवान दीखा कुरूप को, था असत्य से सत् न्यारा।।
आई फिर आवाज़ प्रकाशी, पहचाना भी कौन हैं ये।
देख रही हूँ बड़े ग़ौर से, समझ न आई अभी मुझे।।
अंदर धुकड़ पुकड़ थी मेरे, हाँ करदूं या कर दूँ ना।
इतने में प्रतापसिंह जी ने, अंतिमेत्थम् मंत्र कहा।
यही है वह हाहूती फल, नासूत में जो तुम्हें मिलना था।।
मिले हुवे हैं झूंट सत्य, कैसे प्रतक्ष यह दिखलाया।
अलख हुवे दिखला प्रतापसिंह, घर में बैठी बैठी को।।
चमत्कार इससे ज़्यादा क्या, होता जो दीखा हमको।
थोड़ी ही प्रस्तुत करती हूँ, बीतक श्री के समझो फूल।।
परकाशी की लो प्रणांम प्रभु, तुम चरणों की हूँ मैं धूल।

शेरपुर में प्राँणनाँथ ध्वज तीन बार गिरना

गये शेरपुर भण्डारे पर, एक बार की है यह बात।
कई रोज़ पहले पहुँचे हम, था पारायण इक सौ आठ।।
पक्का झण्डा अलग चढ़ाओ, बनी योजना यह इक रोज़।
कुछ परकाशी कुछ साथी जन, ने थामा सेवा को बोझ।।
अतः मारबल का चबूतरा, झण्डे के लिए बनवाया।
क्यावन फुट लोहे का पाइप, बनवाकर के मंगवाया।।
लोहे की चादर के ऊपर, पंजे का चिन्ह छपवाया।
फ़िट करके पाइप पै झण्डा, तार चौतरफ़ा बंधवाया।।
पाइप खड़ा हो गया तो उसपै, ध्वजा बाँधने एक चढ़ा।
पाइप टूटके ध्वजा सहित, वह व्यक्ती नींचे आन पड़ा।।
लेने देने पड़े जान के, निकली हवा सिकटरी की।
महाराज ने एक कटोरी, जलकी पढ़कर के प्यादी।।
बच तो गया कृपा से उनकी, चोट आइ लेकिन गम्भीर।
मरने में कुछ कसर नहीं थी, पर अच्छी निकली तक़दीर।।
ले गए ठीक ठाक करवाने, अगले दिन फिर चढ़वाया।
लेकिन झण्डा चढ़ा न फिर भी, फिर धड़ाम नींचे आया।।
अब के ख़ुद जगदीश चंद जी, लेकर गये मरम्मत को।
लाए बनाकर मरज़ी माफ़क, बेर तीसरी झण्डे को।।
ठीक दुपहरी थी जिसदम वे, लगे चढ़ाने ध्वजा की नाल।
लेकिन ध्वजा गिरी फिर नींचे, हुआ वही पहला सा हाल।।
जगन्नांथ जी मथुरा वाले, महाराज, हम तीनों ही।
भवन तारतम में बैठे थे, सोच रहे थे बात यही।।
पूछा सदगुरू से महंत ने, महाराज यह क्या है बात।
तीन बार गिर चुकी ध्वजा यह, समझ न आये कुछ हालात।।
प्रांणनांथ की ध्वज है यह तो, फिर गिर गिर क्यों पड़ती है।
तीन बार कोशिष करली, क्या कारण जो नंहि चढ़ती है।।
तीन बार गिरनी ही थी यह, अबकी बार न गिरने की।
गया वक्त तीनों सूरत का, ध्वज है अब चौथी अपनी।।
जितने कारकून लग रहे थे, था सब ही का पतला हाल।
एक तरफ़ जगदीश खड़ा था, थका थका सा हुआ निढाल।।
समझ न आ रही थी क्या हो अब, महाराज ने बुलवाया।
लेते हो तुम राय किसी की, श्री सदगुरू ने धमकाया।।।

कहीं दुपहरी में चढ़ते हुए, झण्डे तुमने देखे हैं।
नहीं गिरेंगे तो क्या होगा, चिन्नह सवेरे चढ़ते हैं।।
लगवाते हैं हाथ बड़ों का, किसी का तुमने लगवाया।
बन के बड़ा देख लिया अपना, ही मज़ाक तो उड़वाया।।
जाओ हमारी बिना आज्ञा, हाथ न ध्वज को लगवाना।
ठीक करालो टूट फूट, बनवालो जो हो बनवाना।।
जब हम कहें तभी बनवाना, जाओ अब आराम करो।
बिना वक्त झण्डे नंहि चढ़ते, नाहक़ इससे मत तिंघड़ो।।
ज़िद मत करो जाओ झण्डेसे, इसको हाथ लगाना मत।
ढूंड़ रहा था वह भी मौक़ा, लिया था वह भी काफ़ी थक।।
चला गया करके प्रणाम वो, पडा़ रहा यों ही सामान।
किन्तु बात यह खुली न पूरी, तीन दफ़ा क्यों था अपमान।।
किसी समय पर खुला भेद ये, तह तक पहुँची तब ये बात।
ध्वजा तीन तीनों सूरत की, चौथी ध्वज सदगुरू महाराज।।
बशरी, मलकी, हक्की तीनों, रूप मौहम्मद बतलाये।
चौथी सूरत कही ख़ुदाई, जो चौथी लीला लाये।।
हो यक़ीन इस ध्वज के नींचे, चढ़ै हक्क हादी के हाथ।
धर की लीला छिड़ी हुई है, ख़ुदा ख़ुदा की देगा बात।।
एक बार फुल्लू से बोले, शेरपूर में श्री महाराज।
अपना राज देखना जब हो, अभी है औरों ही का राज।।
कितनी अलट पलट होगी तब, जिसका नहीं तुम्हें कुछ ज्ञान।
कुछ भी झगड़े नहीं हुवे जब, बदला हिंद व पाकिस्तान।।
महाराज ने कहदी निजमुख, पर फुल्लू मुंह बाया सा।
तकता रह गया सूरत उनकी, समझ न पाया कह गए क्या।।
संकेतों में बात थी उनकी, ग़हरे से भी गहरे गुझ्झ।
साधारण व्यक्ती को कैसे, हो सकती थी इसकी सुझ्झ।।

नवतन पुरी यात्रा

धनीदास जी मेले पर, श्री नवतनपुर आये इक बार।
दिया यथोचित आदर उनको, हुवे प्रभावित आख़िर कार।।
सुंदर साथ बहुत आया था, मेला भी था ज़ोरों का।
बड़े बड़ों का मिलन हुआ जहां, किस्सा नंहि कमज़ोरों का।।
बड़ामान सन्मान दिया कइ, साथ थे उनके और महंत।
वक्ता और प्रवक्ता भी थे, बड़े बड़े साधू और संत।।
फहरी ध्वजा उन्हीं के हाथों, आ बैठै जब आसन पर।
खचा खच्च पिंडाल भरा था, दिया गया मुझ को अवसर।।
मैंने भी अनुकूल समय के, पढ़ा एक कविता का पाठ।
आवाहन था छत्रसाल का, जिसमें छत्रसाल की बात।।
कविता छत्रसाल की जिसदम, मैंने पढ़ी जोश में आ।
वर्णन छत्रसाल जिसमें था, सुंदर ढंग से खुला हुआ।।

कविता छत्रसाल

शूरातिशूर, वीरातिवीर, धीरातिधीर पन्नादिधीष।

तेरी चाल अलग, तेरी ढाल अलग, तलवार अलग थी छत्रसाल।।
तेरा रण ताण्डव था दर्शनीय, रण हुंकारें अवलोकनीय।
रिपुदलनहेतु घुसना दल में, था छत्रसाल उल्लेखनीय।।
दस मुंड इधर दस मुंड उधर, दस भाग रहे आगे आगे।
तेरी बात अगल, तेरी जात अलग, तेरी घात अलग थी छत्रसाल।।

तेरे भले भाई की फुंकारें, तेरी जुल्फ़िकार का सर्राना।
तेरी ललकारों की धाक विकट, भय खाकर रिपु का गिर जाना।।
कुछ टापों से कुछ दांतों से, कुछ धक्कों से यमपुर धाये।
तेरी मार अलग, लल्कार अलग, प्रहार अलग था छत्रसाल।।

मर्दों में मर्द राबों में राब, शाहों में शाह थे सर्वोत्तम।
तुम इक मिसाल बनकर उतरे, था मुकाबले का किसमें दम।।

सन्मुख आते ही ज़ेर हुआ, तेरी चोट न सह पाया कोई।
वीरत्व अलग, शूरत्व अलग, व्यक्तित्व अलग था छत्रसाल।।
थे धर्म भीरू भावुक पूरे, थे बेमिसाल सेवक राजन।
सदगुरू सेवा उल्लेखनीय, उल्लेखनीय इष्टाराधन।।
थे आप सरोवर भक्ति रस, औ सगर थे बल पौरूष के।
तेरा रंग अलग, तेरा ढंग अलग, तेरा द्वंदं अलग था छत्रसाल।।

धर्म अवलम्बित के मुकुट आप, विक्राल काल खल मानव के।
अन्यायी के तुम न्याय दण्ड, रण ताण्डव तुम दल दानव के।।
तुम आदमियत थीं आदम की, थी शक्ति अमर पर आतम की।
तेरी देख अलग, तेरी रेख अलग, तेरा भेष अलग था छत्रसाल।।

थे आप सभासद अमर लोक, श्री परमधाम की श्रेष्ठ कला।
तुम्हें बीच झुण्ड बारह हज़ार, श्री परम पुरूष का प्यार मिला।।
तुम यकता थे अपने पन में, थे भक्ति प्रेम के परवाने।
तेरी शक्ति अलग तेरी भक्ति अलग, अनुरक्ति अलग थी छत्रसाल।।

परनाम कीर्तीसुत तुमको, परनाम तुम्हें हे साकुण्डल।
परनाम तुम्हें है भले भाई, सादर प्रताप करता पल पल।।
ओ ओजस्वी तलवार तुम्हें, परनाम निवेदन करता हूँ।
तेरा दान अलग, ईमान अलग, इन्सान अलग था छत्रसाल।।

वाह वाह श्री धनी दास के, मुंह से निकली कई दफ़ा।
कविता के पश्चात् बुलाकर, निकट मंच पर हमें कहा।।
इतना अच्छा लिखते हो तुम, हो समाज गौरव साक्षात्।
तुम्हें निमंत्रण देते हैं हम, इस मेले पर आवें आप।।
हम सदगुरू की ओर इशारा, करके बोले ये जानें।
जहाँ ले चलें चले जाएगे, इनका हुकुम नहीं टालें।।
इन्हें भी हम आमंत्रित कर रहे, महाराज तुम भी आओ।
आमंत्रित सब साथ आपका, संग प्रतापसिंह को लाओ।।
ऐसे ऐसे हैं समाज में, जिनका अब तक पता नहीं।
ख़ास तौर से आमंत्रित सब, रूक मत जाना आप कहीं।।
दीं थेपी गल हार डालकर, आ गए हम करके परनाम।
थे प्रसन्न गुरू अंदर अंदर, देख शिष्य का अपने मान।।
जब समाप्ती हुइ मेले की, रूका रह गया काफ़ी साथ।

पहुचाना सामान बहुत कुछ, निमटाया सब हाथों हाथ।।
चुकता कर करके हिसाब सब, सोंप आए सब के सामान।
निपटा कर सदगुरू किरपा से, पारायण का कार्य महान।।
साथ इकट्ठा बैठा हुआ था, लेने को परशाद विदा।
बोले सदगुरू आज मांगलो, हमसे जिसकी जो इच्छा।।
कल जाना सब आज कोइ नंहि, आज करो इच्छा पूरी।
बंधे बंधाऐ खुलगए बिस्तर, रूकना पड़ गया मजबूरी।।
न्हा धोकर खा पीकर निपटो, फिर इक इक करके आना।
मनो कामना पूरी होगी, मिले आज वह नज़राना।।
चहल पहल हुई अजब किस्म की, इक दूजे से पूछ रहे।
तू क्या मांगे, तू क्या मांगे, सभी जानना चाह रहे।।
समय सुनिश्चित पर श्री सदगुरू, निज गादी पै आ पधरे।
एक एक करके साथी जन, महाराज पै जाते थे।।
सब ही ने माँगा सदगुरू से, याचनाऐं की सब ही ने।
सदा वरत देखे चलते हुए, बाँटा कुछ कुछ सब ही ने।।
पर ये देन थी और क़िसम की, और क़िसम का था परशाद।
और तरह से दिया जा रहा, और तरह का इसमें स्वाद।।
पता न किस किसने क्या मांगा, आया नम्बर अपना भी।
हमने भी जा टेका मथ्था, मांगा हमसे गया नहीं।।
अपने हाथ उठाकर मथ्था, आंखों आंखों हमें कहा।
मांगो अगर मांगना हो कुछ, बोलो अगर हो कुछ इच्छा।।
आंखों ने कह दिया आंख को, नहीं चाहिये कुछ हमको।
अगर दे सको तो दे दो बस, चाह रहे हैं हम तुमको।।
चुनरी पड़ी हमारे सर पर, डाली सदगुरू अपने हाथ।
तीन बार दोनों हाथों की, लप्पो भर भर दिया प्रशाद।।
कहा न जाता क्या दे डाला, दाता अपना बड़ा अजीब।
भर के धर दिया घर का घर सब, किन्तु हुई नंहि हमें तमीज़।।

नवतनपुर की यात्रा को

थोड़े दिन में नवतनपुर, मेले का भी अवसर आया।
संदेशा जिसको चलना हो, साथी जनपै भिजवाया।।
मिली सूचना चलने के लिए, बहुत साथ तय्यार हुआ।
सर्व प्रथम चलसीने से, काफ़ी से ज़्यादा साथ चला।।
मेरठ हुवे ऐकत्रित पहले, फिर ठहरे देहली जाकर।
साथ वहां से हुआ साथ, फिर ठहरे सब जैपुर आख़िर।।
बहुत साथ हो गया वहां से, औ जथ्था बन के निकला।
मैं पीछे से चला अकेला, जाकर नवतन पुरी मिला।।
पुण्य भूमि श्रीमती रतन के, दर्शन किये नवाया शीष।
श्री सदगुरू की कृपा हुई तो, निश्चय मिले यहां बख़्शीष।।
दूर दूर से भक्त उपस्थित, हुवे श्री नवतनपुर धाम।
थी अटूट श्रद्धा लोगों में, गाते धनी धनी ही नाम।।
महाराज श्री रामरतन की, काफ़ी ख्याति वहां पाई।
जने जने ने दिये निमंत्रण, घर घर परशादी खाई।।
चौदस को प्रातः मंदिर में, आरतियां हो रही थीं जब।
महाराज की हालत बिगड़ी, मंदिर ही में थे वे तब।।
छूटी नब्ज़ त्यौरियां चढ़ गई, थाम लिये गिरते गिरते।
आधा घंटा बाद नब्ज़ में, हरकत हुई पुनः फिर से।।
सदगुरू चोला रहा प्रांण बिन, जाने क्या थी यह लीला।
चोला छोड़ चले जाते थे, कई बार हुइ यह लीला।।
तोते से उड़ गये सभी के, घटी जिस समय यह घटना।
क्या बीती भक्तों के जी पै, जिसने देखी पूछो ना।।
निकल गया वह समय कुशल से, आइ सवारी की बेला।
था सरूप सुखपाल के अंदर, पीछे पीछे था मेला।।
शोर मचाया इक देवी ने, देखो हाथी पै महाराज।
दीख रहे थे बस उस ही को, वंचित था सब और समाज।।
हमने शोर सुना जब उसका, द्रश्य और दीखा उस ठौर।
ग़ायब था सुखपाल जगह पर, उसकी जल्वा ही था और।।
इक सुंदर हाथी के ऊपार, अस्वारी है बड़ी विचित्र।
जो चाँदी की बनी हुई है, बने उंभरवाँ उसपै चित्र।।
अंदर है सिंहासन शोभित, पधरे जिसपर श्री महाराज।
दो सुंदरियां चँवर ढोल रहीं, यों थे ब्रह्म मुनी सरताज।।

दीख रही दुनियाँ को अपनी, हमको दीख रही अपनी।
औरों को चाहा दिखलाना, किन्तु किसी ने नहीं सुनी।।
क्षण उपरान्त अलक्षित हो गए, किया प्रमाणित ये हैं हम।
पर दुनियाँ रीती की रीती, रह गइ दीखे नहीं खसम।।
देहाती मेला आया था, चहल पहल ढीली हुइ जब।
महाराज के पास हुज़ूरी, भेजा धनीदास ने तब।।
ली अनुमति आकर सदगुरू से, अगर आपकी आज्ञा हो।
लगवावें स्टेज रात को, न्यौता है प्रतापसिंह को।।
चौदस के दिन क्यों कि हमारे, यहां नहीं होता प्रोग्राम।
महाराज ने आज्ञा दे दी, चला गया करके परनाम।।
बुलवाया मुझ को सदगुरू ने, फ़ौरन् इक व्यक्ति के हाथ।
सुंदर साथ भरा बैठा था, की मुझ से यह जिसदम बात।।
सिर्फ़ तुम्हारे लिये लगी है, आज यहां स्टेज सुना।
ख़ुद अपनी तारीफ़ न करते, इसका ज़रा ध्यान रखना।।
करो जाओ अपनी तय्यारी, उठ गया मैं करके परनाम।
कविता की तय्यार वहीं इक, लेकरके सदगुरू का नाम।।
आठ बजे स्टेज लग गई, लगी महंतों की गादी।
जामनगर के सेठ लोग भी, सुनने आये थे काफ़ी।।
मैंने खेंचा चित्र समय का, अपनी कविता के द्वारा।
सदगुरू जिनके लिये आए, वह काम अधूरा है सारा।।
शब्द बाँण का प्राँणनांथ के, बोलो किसने आँका मोल।
ढोल बज रहे रीते थोथे, भरी हुई है बेढब पोल।।
पापों का हो रहा ताण्डव, उबल रहा विषयों का ज्वार।
चिपटे सभी वासनिक रस से, निंगल रहे दुख के अंगार।।

।। कविता ।।

अभी कहां फैला है जगमें, पूरा श्री सदगुरू संदेश।
अभी जगत का कोना कोना, दुख से सिसक रहा है।।
अभी ढली नंहि निशा भुलवनी, दुर्ग न ढह पाया अघ का।
अभी तिमिर है अंधकार है, अंधा है तारा हम का।।
अभी बहे फिर रहे शव ही शव, बाढ़ ग्रस्त है सब संसार।
अभी गरज रहे मौत के बादल, अर्थी पर हर एक सवार।।
अभी होश में कोइ नहीं है, किसको दे जाकर संदेश।
अभी सच्च पूछो तो प्रांणी, तल को सरक रहा है।

अभी कहां फैला है जग में।।

यहाँ टटोला जिसको जाकर, वह गुरूओं का गुरू मिला।
कहते मिले कि हम गहरे में, लेकिन जल दो घूंट मिला।।
नौका नौ सूराख़ों की है, जाना चाहें किनारे।
बाहर सब कहते हम जीते, अंदर हारे हारे।।
माटी के पुतलों में बोलो, कैसे फूंकूँ वांणी।
सात तहों में मनकी जहाँ, अंधियारा थिरक रहा है।

अभी कहां फैला है जग में।।

एक हाथ में कृपा महाप्रभु, एक हाथ में वाँणी।
आज जगत की छाती पर, बारह हज़ार ब्रह्माणी।।
भवसागर मथ डाला तिल 2, पर नवनीत ना पाया।
क्या बल और फूंक दिया इसमें, बलवति करदी माया।।
मुझे एक संदेह बड़ा है, कैसे क्षमाँ करेंगे।
जब कि शर्मदारों के सरसे, अंचल सरक रहा है।

अभी कहाँ फैला है जग में।।

निकल चुका दिन इधर कभी का, उधर हाल ये जग का।
ब्रह्म प्रिया यदि जगत न जागा, आना किस मतलब का।।
श्री सदगुरू संदेश उठाओ, फैलादो चर्चा घर घर।
मुक्ती का है भार जगत का, ब्रह्म प्रियाओ सब तुमपर।।
धनुष उठाओ बाँण चढ़ाओ, बींधो जग को वांणी से।
स्वयं बोझ इतना वांणी में, भूतल पिचक रहा है।

अभी कहां फैला है जग में।।

वांणी है तरकश बांणों का, अनगिन बांण भरे हैं।
महा प्रभू ने चुन चुन कर ये, जग के लिये धरे हैं।।
धनुष तानना बांण चढ़ाना, बींध निशाना देना।
साधारण सी बात न समझो, प्रांण किसी के लेना।।
इसको भी तालीम चाहिये, युक्त युक्तियों से हो।
मेरे भी कभी बांण लगा इक, अब तक कसक रहा है।

अभी कहां फैला है जग में।।

ज़रा प्रभू की ओर निहारो, नैना इधर लगे हैं।
आसन डाले लिये समाधी, पदमावती पड़े हैं।।
वांणी कृपा बख़्श कर तुमको, बोले लो ले जाओ।
हमसे कुछ समबंध नहीं अब, तारो जिसे तुम चाहो।।
किन्तु कार्य निप़टाना जल्दी, कहीं न फिर सो जाना।
इधर हाल यह है निजनामी, से जग बिदक रहा है।

अभी कहाँ फैला है जग में।।

किस प्रकार मैं करूँ प्रशंशा, अपने मुंह अपनी ही बात।
बहुत हार औ बड़ी थेपियाँ, बहुतों ने सर फेरे हाथ।।
बड़ी प्रशंषा की सेठों ने, सदगुरू ने दी शाबाशी।
धरमदास ने माला, थेपी, और प्रशंषा की काफ़ी।।
निज विचार पर बड़े प्रभावित, हुवे भाई सब खम्बाती।
खम्बातीयों ने दिया निमंत्रण, तुम्हें ले चलेंगे ख़म्बात।।
बोले तभी अहमदाबादी, पहले आप अहमदाबाद।
फिर छुट्टी है बड़े शौक से, आप चले जावें खम्बात।।
बहुत मना की श्री सदगुरू ने, अपने संग है काफ़ी साथ।
नाहक परेशानियां होंगी, पर मनवाली अपनी बात।।
स्वीकारा सदगुरू ने आखिर, पहुँचे प्रथम अहमदाबाद।
होता हुआ वहां से जथ्था, पहुँच गया आखिर खम्बात।।
दिया बहुत सम्मान व आदर, जब पहुचा वहां सुंदर साथ।।
प्रेम बाइ जी के मंदिर में, भजन कीर्तन औ सत्संग।
हुआ रात में बड़े ज़ोर का, आया वहां बड़ा आनंद।।
है विख्यात बड़ा वह मंदिर, साक्षात है प्रेम प्रतीक।
प्रेम बाई की याद दिलाता, झुकता वहां हरिक का शीष।।
कथा प्रेम बाई अति पावन, भक्ति भाव की है उपमां।
प्रेम बालिका आठ वर्ष की, तब की है यह आत्म कथा।।

कथा प्रेम बाइ खम्बात

थे शिव भक्त पिताजी उनके, उठा प्रेम बाई अंकूर।
अंदर ही अंदर आतम को, प्रांण नांथ का हुआ शऊर।।
महिमां यदा कदा कानों में, पड़ जाती थी कहीं कहीं।
प्रांणनांथ का चित्र कहीं से, छोटा सा मिल गया वहीं।।
माँ बापों की आंखों से वह, चित्र छिपाकर पधराया।
धीरे धीरे फिर सेवा का, भाव प्रेम में उठ आया।।
चोरी चोरी भोग लगाती, उसके बाद स्वयं खाती।
जो मंदिर में होता है कुछ, भजन भाव भी कर आती।।
घटना घटी एक दिन ऐसी, था शिव रात्री का त्यौहार।
बना खीर पूरी का भोजन, सुंदर सुंदर बने अहार।।
घर का घर शिव अनुयायी था, अतः भोग जाता शिव को।
उस झूंटन से पहले पहले, प्रेम चाह रही अपने को।।
युक्ति सोच रही थी बैठी, पहले जीमें अपने नांथ।
अच्छे अच्छे भोग बने हैं, भड़के प्रेम बाइ जज़्बात।।
माता इधर उधर जब हो गइ, फदक रही थी चूल्हे खीर।
भरी कटोरी आंख बचाकर, चोरी की सूझी तदबीर।।
शक्ति सोचने की खो जाती, उचित और अनुचित का ग्यान।
लुप्त प्राय सा हो जाता है, यही आशिकों की पहचान।।
इश्क और बुद्धी की संगत, कभी नहीं रह सकते साथ।
वहां बुद्धि का काम नहीं कुछ, जहां इश्क की होतीं बात।।
अशराफ़ील इश्क की बातें, खोल न पायें जो थे गुज्झ।
लादुन्नी में सिर्फ़ इश्क ही, क्यों कह पाती अक्षर बुद्ध।।
बस्ता यहां इश्क दुनियां का, देखे हमने इश्क प्रकार।
इश्क कहा न जाए शब्द में, शब्द मात्र बुद्धी आधार।।
शब्दों में विलास बुद्धी का, जाए न वरना प्रेम विलास।
अनुभव पर ख़ामोश है वांणी, विषय आत्मां का यह ख़ास।।
प्रांण नांथ जी पन्ना जी में, कर रहे थे उस दम सत्संग।
इधर प्रेम ने भोग लगाया, गरम खीर भोजन के संग।।
शक्ति प्रेम की मत पूछो कोइ, दोनों पख होते मजबूर।
आशिक को माशूको की, हर हाल बात होती मंजूर।।
प्रांण नांथ को पड़ा जीमना, जलता हुआ प्रेम का भोग।
सी करके गिर गए मसनद पर, दौड़ पड़े इकदम सब लोग।।

बोल न निकला बहुत देर तक, सब भौचक्का हुआ समाज।
क्या हो गया श्री जी बोलो, थी हरेक मुंह यह आवाज़।।
काफ़ी देर बाद मुंह खोला, दिखलाया मुंह का छाला।
कैसे पड़ा बताओ तो कुछ, क्या कहदें है इक बाला।।
जलता भोग लगा बैठी वह, बच्ची है छोटी अनजान।
हमें जीमना पड़ा प्रेम वश, बच्ची में था प्रेम महान।।
पड़े सभी अस्मंजस में सुन, निकट खड़े थे वल्लभ भट।
उन्हें यकीन न आया सुनकर, लगी बड़ी घटना अटपट।।
बोले श्री जी से आकरके, ग्राम कौन उस बाई का।
रहती है खम्बात बालिका, गली मौहल्ला बता दिया।।
सिद्ध व्यक्ति थे श्री भट्ट जी, सोची उसने पता लगा।
सिद्धी थी शरीर सूक्षम की, मिनटों में जा सकता था।।
आज्ञा हो तो पता लगाऊं, उसने श्री जी से पूछा।
जा सकते हो बड़े शौक से, भट्ट तत्क्षण अलख हुआ।।
करामात गुटके की मुंहमें, धरते ही होता ओझल।
बैठे रहे सभी ज्यों के त्यों, झूंट सांच का निकले बल।।
पहुँचा भट्ट प्रेम के घर पर, जाकर द्वारा खटकाया।
आइ प्रेम ही द्वार खोलने, नया व्यक्ति सन्मुख पाया।।
किसके लिये द्वार खड़काया, सकुचाकर बोली बाई।
बेटी क्या है नाम तुम्हारा, बोली प्रेम, प्रेम बाई।।
पिता तुम्हारे अंदर हैं क्या, या माता जी हों घर में।
उनसे मैं मिलने आया हूँ, रहते हैं हम पन्ना में।।
सुनकर पन्ना नाम प्रेम की, आंखें विस्मय से चमकीं।
रूचि आई बातें करने की, बात थी वह उसके मनकी।।
माता पिता नहीं हैं घर पर, किसी कार्यवश बाहर हैं।
बोले भट्ट सुअवसर पाकर, बेटी एक बात पूछें।।
भजन भाव किसका करते हैं, पिता तुम्हारे औ माता।
शिवजी के हैं पिता उपासक, उनही के संग हैं माता।।
महादेव जी तुमको भी, अच्छे लगते होंगे बाई।
बोले जब आचार्य भट्ट यों, प्रेम बाइ सुन सुकचाई।।
ताड़े भाव भट्ट ने बातन, है ज़रूर अंदर कुछ राज़।
क्या क्या भोजन बना तुम्हारे, घर बतलाओ बाई आज।।
सुनकर प्रेम बाइ बोली यों, पूरी खीर तीन सबज़ी।
भोग लगाया होगा शिव का, बोले बाई से भट जी।।
थाल गया लगकर मंदिर में, आज उन्हीं का है त्यौहार।

इतना और बतादो बिटिया, पूछा भट जी ने पुचकार।।
झूंट न बतलाना कुछ हम से, तुमने किसे लगाया भोग।
खीर गरम थी या ठंण्डी थी, कर रहे तरकीबों से खोज।।
गोपनीय थी बात ये उसकी, खुले न, थी उसकी इच्छा।
रह गइ बैठी प्रेम मौन जब, दुविधा जनक भाव देखा।।
सत्य बात है प्रांण नांथ की, फौरन् उसे ये साफ़ जंचा।
बात खोलना नहीं चाहती, है ज़रूर अंदर अंकूर।
पूर्व जन्म की भक्त प्रेम है, ऐसों से नंहि दूर हुज़ूर।।
बोले भट्ट बाइ जी सुनलो, पता है हम क्यों आये हैं।
तुमने अपने हाथ गरम, भोजन से इष्ट जलाये हैं।।
खीर गरम इतनी थी उनके, खाते ही पड़ गए छाले।
तुमने ऐसा काम किया है, बस अनर्थ ही कर डाले।।
खाना पड़ा प्रेम वश उनको, बीती जो जो बतलाई।
सुन अपना अपराध प्रेमकै, आँसू की धारा आई।।
क्योंकर खीर चुराई मैंने, कैसे उनको जिमवाया।
प्रेम बाई ने रो रो करके, सारा क़िस्सा बतलाया।।
मांफ़ी मांगी हाथ जोड़कर, कहना उनसे करें क्षमां।
आइन्दा ऐसा नंहि होगा, है कसूर पहला अपना।।
देकरके आशीष सान्त्वना, लेकर पूरा निर्णय भट्ट।
अलख हुवे मुंह में धर गुटका, पहुँच गये पन्ना जी भट्ट।।
मील हज़ारों आनन् फ़ानन्, करामात से सिद्धी की।
भट्ट भाइ जब वापिस पहुँचे, सभा सभी ज्यों की त्यों थी।।
निर्णय अपना सभा सदों को, सत्य बात थी बतलाया।
भक्ता है वाकई विलक्षण, दर्शन योग्य उसे पाया।।
श्रद्धा टूट पड़ी भक्तों में, प्रांण नांथ जी पै उस वक्त।
वल्लभा चार्य पूर्ण रूपेण, प्रांण नांथ के हो गए भक्त।।
साफ़ा, पेटी, पटुका, वागा, देकरके बोले श्री जी।
जाओ करो खम्बात जागनी, हमने वो तुमपर छोड़ी।।
प्रेमबाइ को मेरा जोड़ा, देकरके समझा देना।
किस प्रकार सेवा होती है, बच्ची है, बतला देना।।
वही वस्त्र श्री प्रांण नांथ के, बड़े सुरक्षित रक्खे हैं।
हमां शुमां को दर्शन उनके, वहां न होते दुर्लभ हैं।।
एक वहाँ कुलज़म है ऐसा, चार चौपाई हैं ज़्यादा।
दर्शन से पहले करवाते, नोट न करने का वादा।।
सदगुरू रामरतन साहिब की, किरपा बड़ी अजब देखी।

उनके प्रति श्रद्धा लोगों में, वहां बड़ी भारी देखी।।
द्रवित भाव अवरूद्ध कण्ठ से, जने जने ने किया विदा।
इस प्रकार जथ्था चल करके, आन बड़ौदा में पहुंचा।।
विद्याधर के यहां बड़ौदा, किया एक दिन का सत्संग।
उसके बाद सिधारे सूरत, ज्यों दीपक के साथ पतंग।।
वापिस हुआ बड़ौदा से मैं, जथ्था गया फेर बलसार।
इतनी ही कर पाया उनके, साथ यात्रा मैं इस बार।।

सीताराम पोस्ट मास्टर डोइवाला
पत्नी प्रकाश देवी

पशु और मानवता का जगमें, मल्ह युद्ध होता रहता।
कभी पशू ढह जाते हैं यहां, कभी यहाँ मानव ढहता।।
मनसे जो निर्मित है उसको, मानव यहां पुकारा है।
वैसे तो पशु ही पशु हैं यहां, पशुवत यह संसारा है।।
जीव सृष्टि पशु ही को कहते, देवासुर सब पशु की छाप।
यहाँ पुरूष की छाया भी नंहि, पुरूष हुआ यहां किसको प्राप्त।।
यहां पाशविकता या पशु हैं, कभी उतरते ऊपर के।
अगर उतर आते तो ये पशु, उनकी एक नहीं सुनते।।
अंश भेद के कारण उनसे, अपने गात न मिल पाते।
समझें कौन सुनावें किसको, एक मेक नंहि हो पाते।।
भाग बदलते देर न लगती, कूड़ी के भी बदलें भाग।
हो मंजूर अगर मालिक को, पैदा कर देते अनुराग।।
किसी जगह महाराज श्री की, महिमां अपने कान पड़ी।
सुनते ही उनकी महानता, आतम होती गई खड़ी।।
जाग उठा अनुराग हृदय में, भजन भाव को जी चाहा।
किसी तरह से उनका फ़ोटो, दे निछावरी मंगवाया।।
पती विमुख थे भक्ति भाव से, रक्खो पति में ईश्वर भाव।
ऐसे ही विचार थे उनके, पति ही खेवे जीवन नांव।।
पोस्टमास्टर जब निज औफ़िस, को अपने चले जाते थे।
तो सदगुरू फ़ोटो को बक्से, से निकाल हम लाते थे।।
पधराकर चौकी पर विधिवत्, ध्यान लगा बैठा करते।
जैसे भी हम से हो पाता, भजन भाव हम नित करते।।
अरसा बीता चोरी चोरी, करते यों सदगुर का ध्यान।
चोर कभी पकड़ा भी जाता, समय पकड़वा देता आन।।
जाते समय पोस्ट औफ़िस को, गुच्छा भूले ताली का।
औफ़िस जाकर जेवें खोजीं, गुच्छा उनको नहीं मिला।।
विवश लौटना पड़ा पुनः घर, मुख्य द्वार रह गया खुला।
मैं ध्यानस्त जहां बैठी थी, पति आकर हो गया खड़ा।।
सदगुर फ़ोटो देख सामने, पारा चढ़ा सात अस्मान।
किससे इश्क हो रहा है यह, बता कौन है यह इन्सान।।
जब लपके ढाने को फ़ोटो, इकदम मैंने कबजाया।

ख़बरदार अपमान न करना, इष्ट हैं अपने बतलाया।।
कौन है बतला कहां से लाई, इसे वहीं पहुंचाके आ।
यहाँ नहीं रहने दूं इसको, जिसका है उसे देके आ।।
अच्छा मैं पहुंचा दूंगी वहीं, अगर आपकी यही इच्छा।
पर अपशब्द न बोलो इनको, सहन न हमसे होने का।।
घर में घुसकर के बक्से में, मैं जल्दी से धर आई।
कभी खोलके ना निकाल ले, ताला भी संग जड़ आई।।
चले गये ले ताली दफ़्तर, बक्से में पधरे महाराज।
शाम को जब आये दफ्तर से, तब भी दिखते थे नाराज़।।
ढीला हुआ क्रोध मुश्किल से, मौसम गरमी का सा था।
बाहर ही सोते हम दोनों, काफ़ी सहन खुला हुआ था।।
जिस कमरे में अपनी जोखो, धन सम्पत्ती रहती थी।
अगल बगल दर के चरपाई, हम दोनों की रहती थी।।
अर्ध रात्रि उपरान्त हमारे, घर के अंदर चोर घुसा।
ताला तोड़ रहा था जब वह, कान पड़ा मेरे खड़का।।
आवाज़ों से परखा मैंने, चूहे नंहि हैं, यह है चोर।
अपने पती झंझोड़े मैंने, सो रहे हो अंदर हैं चोर।।
घबराकर उठतो बैठे पर, चो चो ही निकला मुंहसे।
कह न पाए वे चोर भी पूरा, घबरा गए इतना भय से।।
इतने में अंदर से भगदड़, सी मचतीं हुइ कुछ आई।
पीट रहा इक पिटता जाता, पिछले से अगला भाई।।
थी दीवार सात फुट ऊंची, चढ़ा भाग कर के अगला।
भागा भींत कूदके अगला, वापिस लौट लिया पिछला।।
और घुसा वापिस फिर घर में, पोस्टमास्टर रहा था देख।
उसे लगा यह तो गिरोह है, चोर नहीं है कोई एक।।
पोस्टमास्टर तब चिल्लाया, लुट गए कोइ मदद को आओ।
घर में है गिरोह चोरों का, भइयाओ कोइ हमें बचाओ।।
मिनटों में भग आए आदमी, घर भर गया आदमियों से।
बोले चोर कहां हैं पकड़ें, अंदर कहा इशारे से।।
हमने देखा है घुसते हुऐ, एक निकलके भाग गया।
एक लौट आया उनमें से, अब भी भीतर घुसा हुआ।।
लोगों ने ललकारा उसको, चुपके से बाहर आजा।
वरना बहुत पिटाई होगी, अपने आप नहीं निकला।।
बड़े द्वार खड़काऐ सबने, निकला नहीं मगर बाहर।
ढेट किसी में भी नंहि इतना, जो देखे अंदर घुसकर।।

सीताराम कहे जा रहा यों, कितना ढेटा है यह चोर।
बैठा हुआ देख कर हमको, डरा नहीं है अति शहज़ोर।।
घुसा चला गया घर के अंदर, खौफ़ ज़रा भी नंहि माना।
निश्चय और आदमी हैं संग, इसीलिये भय नंहि माना।।
हो सकता हथियार हो कोई, उसी ढेट पर बैठा है।
कुछ जवान तय्यार हुवे हम, देखेंगे यह कैसा है।।
चार जने भाले ले घुस गए, खोजा ख़ूब बैटरी से।
किन्तु चोर की धूल तलक भी, हाथ न आई लोगों के।।
ताला था ज़रूर टूटा हुआ, औ धरती पै पड़ा मिला।
झूंट नहीं है बात चोर की, पर कहां अंतर ध्यान हुआ।।
मैंने की पड़ताल बक्स की, कहीं माल तो नहीं गया।
पल्ला उठाके जिसदम देखा, ज्यों का त्यों ही सब कुछ था।।
उसी बक्स में पति के डर से, फ़ोटो छिपा गई गुरू का।
जिस करवट रक्खा था मैंने, उस ही करवट हमें मिला।।
लीला इकदम समझ आ गई, जिसको कहते हैं ये चोर।
चोर नहीं वे श्री सदगुरू थे, जो भागा पिटकर था चोर।।
तोड़के ताला जिसदम उसने, बक्से का खोला पल्ला।
उसमें सदगुरू बैठे ही थे, उन्हीं ने उठके लठ पेला।।
मैं बोली पति देव से अपने, तुम पिछान सकते हो क्या।
अगर चोर आजाए सामने, फ़ौरन हाथ पकड़ लूंगा।।
कुरता धोती सिर गंजा है, बांना है सफ़ेद उसका।
सो तो नहीं रहा था मैं तब, चेहरा साफ़ पिछनता था।।
मैंने फ़ोटो दिया हाथ में, इसे ग़ौर से लखना तो।
बाल हैं इसके सर पर क्या कंहि, धोती कुरता भी देखे।।
बाना भी सफ़ेद है सारा, अभी नहीं पहचाना क्या।
जो डण्डे से पीट रहा था, उसमें इसमें फ़र्क है क्या।।
कभी चोर को चोर पीटता, सुना है क्या चोरी करते।
मिल जुलकर होती हैं चोरी, कभी न आपस में लड़ते।।
चोर भला वापिस क्यों आता, घुसकर कहां चला जाता।
यह सदगुरू लीला है सारी, अब भी समझ न पाऐ क्या।।
बोला सीताराम यही थे, जान गया अब सारा हाल।
वरन आज ही कर दिए थे हम, चोर ने घुसकरके कंगाल।।
ग़लती हुई बहुत अनजाने, हम से हुआ गुरू अपमान।
सदगुरू के बचाए हम बचगए, अपने तो सदगुरू भगवान।।
कभी न अब हम रोकें तुमको, पधराकर घर में इनको।

करो अर्चना वंदन इनका, जैसे जी चाहे पूजो।।
भक्त न था मैं, ना अभक्त ही, धन्धे सेती रखता ध्यान।
सोहबत ही ना मिली किसी की, जो मैं करता ऐसे काम।।
करना खाना मौज उड़ाना, जाना अधिक नहीं इससे।
चस्का ही जब न था हृदय में, पूछें भी जाकर किससे।।
परनामी का नाम न जाना, देखी शक्ल न सदगुरू की।
गीत अगर गावें तो कैसे, हमको कुछ भी ख़बर न थी।।
एक रोज़ हम सपना देखा, कहा किसी न आकर के।
साफ़ा बांध रहा था वो जन, उसने आके कहा मुझे।।
महाराज श्री राम रतन जी, ने तुमको बुलवाया है।
भेजा है मुझको लेने को, ये तांगा भिजवाया है।।
तांगा देखा खड़ा द्वार पर, बैलों पर थी पीली झूल।
एक बैल था एक सींग का, दूजा था उसके प्रतिकूल।।
मैं चल दिया बैठकर उसमें, एक बाग में जा छोड़ा।
द्वार सामने था आश्रम का, न था किवाड़ों का जोड़ा।।
घुस कर अंदर लगा देखने, लगी हुई थी फुलवारी।
जिसकी शोभा बड़ी अज़ब थी, महक रही थी गुलक्यारी।।
एक चोतरा जिस पर मंदिर, सन्मुख पहुंचा जब उसके।
औरत एक निकल कर आई, बाहर इक दम मंदिर से।।
किसे देखते हो भाई तुम, मेरे मुंह से निकल पड़ी।
महाराज श्री राम रतन को, वो औरत हम से बोली।।
बैठ जाओ देखो वो आसन, मैं बैठा लेकर उसको।
बैठ गई वो भी इक लेकर, लगा देखने मैं उसको।।
मुझे बिठाकर के शायद यह, उन्हें बुला कर लावेगी।
कोइ व्यक्ति मिलने को आया, संदेशा पहुंचावेगी।।
किन्तु नहीं बैठी वो सन्मुख, कंधे साड़ी पड़ी हुई।
रूप बहुत ही सुंदर उसका, वो स्त्री मुझसे बोली।।
क्या कहना है उनसे बोलो, मैंने कहा बुला लाओ।
उन ही से कहना जो कहना, तुम उठ कर उन तक जाओ।।
मुझे बात श्री राम रतन जी, से करनी है ये कह दो।
एक व्यक्ति आया मिलने को, जाकर उनको बतला दे।।
रतन बाई मैं ही तो हूं वो, महाराज भी कहते हैं।
औरत मरद चाहे जो समझो, सब भेषों में रहते हैं।।
टूटा स्वप्न बात इतनी पर, मेरी इक दम आंख खुली।
है प्रकाश देवी निज पतनी, मैने प्रातः उसे कही।।

उसे पता था महाराज का, नाम जानती थी उनका।
महिमां उनकी उस ज्ञात थी, अतः मुझे मजबूर किया।।
सरला पोती महाराज की, उसकी शादी पर अपना।
कुनबा चला शरण को उनकी, और ननौते जब पहुंचा।।
उतरते हि गाड़ी से नीचे, हुई फ़िकर फिर तांगे की।
था सामान हमारे संग में, छोटे छोटे बच्चे भी।।
किस प्रकार पकड़े आश्रम अब, स्टेशन में से निकला।
मिला एक तांगा वहां हमको, बैलवान भी हमें मिला।।
जा पूछा हमने उससे यह, भइया तांगा किसका है।
जो लेके चल देगा इसको, भइया तांगा उसका है।।
उत्तर बड़ा सरल सा पाया, बैठ जांए क्या हम इसमें।
उसने कहा बैठ जाओ जी, जा बैठे हम सब उसमें।।
जिस दम चला बिठाकर हमको, याद हमें आया सपना।
पीली झूल बैल के ऊपर, साफ़े बांधे गड़वाला।
एक सींग का एक बैल था, एक बैल का रंग काला।।
ऐन बैन नक्शा सपने का, घर वाली से बोला मैं।
यह तो वही बैल तांगा है, जो था मेरे सपने में।।
जब पहुंचे आश्रम के द्वारे, वही आश्रम ज्यों का त्यों।
जो सपने में दीखा हमको, भला भूलते उसको क्यों।।
वही चौंतरा वो ही मंदिर, वैसी ही सब फुलवारी।
पुरूष रूप में पाये सदगुरू, रूप सपन में था नारी।।
जब पहुंचे चरनों में उनके, हंसे देख हमको सदगुरू।
दिखला दिया आपने आश्रम, खेंच लिया हमको आखिर।।
दिखला तो ये वही दिया था, बोल जबां से जब निकला।
सौ फीसदी श्री सदगुरू की, श्री महिमां का पता चला।।
फिर टेका मथ्था चरनों में, बार बार परनाम किया।
थेपी दी इक बड़े प्रेम से, कैसे थे क्या कहें पिया।।
सरला बेटी की शादी पर, तारतम्य हमको बख्शा।
घर का घर बीमार चला, आता था इक दम ठीक हुवा।।
निकला हो बबाल घर से ज्यों, होते गये काम सब ठीक।
बहुत महात्मां देखे लेकिन, इनकी बड़ी अजब बख्शीष।।
तारतम्य लेकर घर पहुंचे, चोरी हो गइ कुछ दिन बाद।
गया न कुछ अपनी कमाइ का, पिछला रहा न बाकी पास।।
बाप और दादा का जो कुछ, था सो चोरी गया सभी।
मिले दुबारा जब सदगुरू से, हमने चोरी की पूछी।।

बोले यह तो जाना ही था, जाने दो नंहि आता रास।
नीयत रक्खो अपने ही पर, काफी तुम लोगों के पास।।
लड़का बड़ी पोस्ट पकडेगा, सदगुरू ठीक करेंगे सब।
ध्यान करो अब तो आगे का, अगले से रक्खो मतलब।।
इन्जीनियर हो गया बड़ा सुत, जिसका नाम सुशील कुमार।
शशि बाला उर्वशी कुमारी, त्रिभुवन, मोहन, पवन कुमार।।
ये बच्चे बख्शे बख़्शिष में, मां प्रकाश देवी इनकी।
है सम्पन्न चरन गुरू पाकर, लाख बार जय सदगुरू की।।
दुनियाँ और आक़बत दोंनो, सुधरी उनकी किरपा से।
जब ये पिण्ड छुटे आतम से, विनती इतनी है तुमसे।।
रखना चरन धूल में अपनी, महाराज यह इच्छा है।
धाम धनी हो आप हमारे, सीताराम आपका है।।

श्रीमती राज प्यारी पत्नी धर्मवीर मेहता
जमना नगर

धन के लिये लोग मुंह बाऐ, धक्के खाते देखे हैं।
चाहे जो हो धन मिल जाऐ, सदा तडपते रहते हैं।।
क्षण भंगुर सुख दे सकता धन, धन निमटा दुख आ जाता।
छिपा हुवा है धन में ही दुख, मुका कि बाहर आ जाता।।
घूम रहा धन के संग दुखड़ा, इस धन का फिर क्या करना।
मरे हुवे तो वैसे ही हैं, इसके साथ नहीं मरना।।
नाम राजप्यारी है अपना, धार्मवीर हैं पति मेरे।
इसमें झूंट नहीं तिल भर भी, हमें गरीबी है घेरे।।
सभी जतन करते है अपना, छुटकारा दुख से होवे।
वक्त चैन से कटे हमारा, सुख नींद यहां सोवें।।
खोज तभी होती ऐसो की, दुख्खों की जब पडती लात।
वरन् कौन जावे ऐसों पै, जिनकी सुख से कटती रात।।
जगह ग्लेशियर है पर्वत पर, वहीं रहा करते थे हम।
पहले थे पंजाब निवासी, बसे यहां आकर के हम।।
रह रह सता रही थी गुरबत, वक्त काटने मुश्किल थे।
ताजे वाले भाइ और हैं, ठेके दारी करते थे।।
उनका काम बहुत अच्छा है, हर प्रकार वे हैं खुशहाल।
उनसे तुलना नहीं हमारी, हम हैं हर प्रकार तंग हाल।।
खुशहाली का स्वप्न देखते, लेकिन हाथ न आती थी।
गुरबत में लिपटी निज आतम, तड़फ तड़फ रह जाती थी।।
महाराज श्री राम रतन जी, ताजे वाले आते थे।
अपने उन कुटुम्भ वालों को, आकर तृप्त बनाते थे।।
अपनी इच्छा भी कुछ जागी, हम यदि उनके हो जावें।
हो सकता है संकट अपने, ऊपर से सब टल जावें।।
अतः प्रतीक्षा की उनकी औ, रक्खा दिन उनका वह याद।
इच्छा होते ही निज मन में, उठने लगे अनूठे वाद।।
किस प्रकार के होंगे जाने, किस प्रकार होगा व्यौहार।
किस प्रकार उनसे बोले हम, किस प्रकार रक्खें आचार।।
शनः शनः वह दिन भी आया, जिसकी हमें प्रतीक्षा थी।
मंत्र श्री सदगुरू से लेंगे, ऐसी अपनी इच्छा थी।।
किन्तु दाम पल्ले कुछ कम थे, धर्म बीर पति लड़ते थे।

हमें नहीं करना धरना कुछ, ऐसे कहते रहते थे।।
मेरे चोट लगा करती थी, ओं सुनकर रो देती थी।
कमी हर तरह की है हममें, यो मन समझा लेती थी।।
आ गए जब पहुंची लेने को, किया निवेदन चरनों में।
तो इन्कार किया सुनते ही, बिलकुल फुरसत नहीं हमें।।
थोडी देर बाद फिर बोले, अच्छा परसों आऐंगे।
सुंदर साथ साथ है जितना, उनको भी संग लाऐंगे।।
फिर लड़ पड़ा साथ घरवाला, सुना साथ सब जाऐंगे।
कहने लगा बता अब इतना, ख़र्च कहां से लाऐंगे।।
थी सुदेश देव रानी मेरी, उसने उसको ताने मार।
मार मार कर मार बात की, किया बमुश्किल से तय्यार।।
क्या सदगुरू सुन देख न रहे हैं, पर फिर भी पहुंचे हम तक।
जब करना उद्धार किसी का, सुनें किसी की क्यों बक बक।।
सत्तर व्यक्ति हमारे पहुंचे, हो प्रसन्न चित बख्शा मंत्र।
पेंतालिस रूपये उठ्ठे बस, था उस वक्त उन्हीं का तंत्र।।
सारा ख़र्च भोग इत्यादिक, पेंतालिस में साध लिये।
इस प्रकार से कृपा सिंधु ने, हम सब अपनी शरण लिये।।
भजन ध्यान दिन चैर्या नित नित, गई चपकती अपने में।
कभी कभी आने लग गए अब, महाराज जी सपने में।।
एक रोज़ भौचक्की सी मैं, रह गई जब देखे महाराज।
क्यों के मैं खाना खा रही थी, जिसमें पड़ी हुई थी प्याज।।
सन्मुख बैठ गये आ करके, बोले खुद ही खाओगी।
हम भी तो बन गये तुम्हारे, हम को नही खिलाओगी।।
मुझे लाज सी आई सुनकर, महाराज इसमें है प्याज।
बोले तेरे हाथों का तो, खा लेंगे हम यह भी आज।।
था तो सब झूंटा पर मैंने, आगे उनके सरकाया।
बिला हिचक बे धडक पिया ने, रूच रूच वह भोजन खाया।।
जीम जामकर हुवे तिरोहित, बाकी फिर में जीम गई।
थी इक नई बात मुझको तो, जो देखी और सुनी नहीं।।
मैं सुदेश पै पहुंची जाकर, कह डाली सब आपबीती।
सुनकर अपनी दास्तान को, देव रानी मुझ से बोली।।
भोग लगाया कर अब उनको, और आरती वंदन कर।
चाह रहे तेरे घर रहना, बीबी इन्तजाम अब कर।।
मैंने किये काम सब जारी, दिन चर्य्या बदली मेरी।
पाठ किया करती रोजाना, आदत कुछ ऐसी गेरी।।

रस सा आने लगा भजन में, चैन न पड़ती बिना करे।
अंदर ही अंदर कुछ मिलता, गई उतरती परे परे।।
बैठी थी ध्यानस्त एक दिन, पड़ा शेरपुर मुझे नजर।
ध्वनी कीर्तन की चल रही थी, हल्वा बटा खात्मे पर।।
बांट रहा था जो प्रशाद वो, कह उट्ठा क्या है कोइ और।
महाराज ने मुझे दिखाया, देख वो बैठी है उस ठौर।।
मुझ तक भी आया वह देने, हाथ ध्यान में फैलाया।
पड़ा हाथ पर जब प्रशाद वह, ध्यान नहीं फिर रह पाया।।
गरम गरम हल्वा लगते ही, चली गंई आंखें खुलतीं।
अब्दुल्लापुर शेरपुर की, हमने वह प्रशाद जीमीं।।
कितना ध्यान फ़िकर है कितना, कितनी दूर मगर हैं पास।
किस प्रकार फिर उन्हें भुलादें, कैसे रहें न उन के दास।।
भाव बने कुछ और और अब, प्रीतम हैं यह जान लिया।
हर प्रकार हैं हम इन ही के, अंग अंग ने मान लिया।।
ध्यान करें क्यों ना फिर अपना, जब हर तरह उन्हीं के हैं।
अपना दुख सुख और कौन है, जिसके सन्मुख पहुंच कहें।।
बैठी थी इक रोज़ पाठपै, प्रीतम थे आगे मेरे।
मैं बोली क्या नहीं सुनोगे, यों ही दुख्ख रहें घेरे।।
शरण आपकी आकर भी क्या, बने दुखों के ग्रास रहें।
पाते रहें दुख्ख पर दुख जब, आप हमारे पास रहें।।
रहें झोंपड़ों में जर जर से, जहां आग चोरों का डर।
बचें न कुत्ते बिल्लों से भी, कब किरपा होगी हम पर।।
बोले गर थोड़ा भी होता, ज़्यादा तो हम कर देते।
लेकिन पास नहीं कुछ तेरे, इसमें हम क्या कर सकते।।
एक चीज़ ही रख सकती हो, दो रखने का हुकुम नहीं।
जो कुछ तुम्हें चाहिये, है वो, मन को मत ले जाओ कहीं।।
मैंने पति से पूछा अपने, गर पैसा हो कुछ भी पास।
अपना काम रूड़क सकता है, दिया हमें पी ने विश्वास।।
बोला वह हैं पैसे हम पै, जमां बैंक में है पैसा।
उत्तर दिया पिया जी ने के, झूंटा है वह है बकता।।
उसके पास नहीं कौड़ी भी, तुझे झूंट बहकाता है।
तू भोली भाली है तासे, तेरा मन बहलाता है।।
मैंने जाँच करी फिर जाकर, सच निकली प्रीतम की बात।
एक नया पैसा भी नंहि था, वहां बैंक में उसके पास।।
मैंने किया नसीहत उसको, क्यों फ़रेब दिखलाते हो।

क्या पाया यों झूंट बोल कर, धन बतला फुसलाते हो।।
उत्तर दिया न उसने इक भी, चला गया करके निजकाम।
जहां मुलाज़िम था मेरा पति, था सिमेन्ट का वह गोदाम।।
गिर गइ ढांग पती पर मेरे, वहां सिमेन्ट के बारों की।
जिसके नींचे दबे बिचारे, चोट लगी बड़े ज़ोरों की।।
मरने जैसी हालत हो गइ, टूट पड़ा दुख का पर्वत।
उनका ऐसा हाल देखकर, मेरी भी बिगड़ी हालत।।
करी प्रार्थना पी से जाकर, महाराज यह क्या बीती।
कहने लगे झूंट बोला था, भोगेगा जो की ग़लती।।
करनी भरनी ही पड़ती है, चिंता मत कर होगा ठीक।
आठ रोज़ का भोग मिला है, सिर्फ़ इसे देने को सीख।।
बाल न बांका होगा इसका, सबक दिया है थोड़ा सा।
मुझ को भी संतोष हुआ तब, उनका ऐसा वचन सुना।।
आठ रोज़ का भोग भोगकर, धर्मवीर जी घर आये।
मैंने भी जो कह पाई सो, उन्हें बिठाकर समझाये।।
दुनियां दार नहीं हैं सदगुरू, उनसे झूंट नहीं चलता।
कोशिष करो समझ लो उनको, चलो न उनके संग उल्टा।।
ठोकर दी है समझाने को, अब भी अगर नही समझे।
तो फिर स्वयं सोच सकते हो, क्या व्यौहार करें तुमसे।।
कदम उठा फिर समझ समझ कर, समझ समझ सब करते काम।
लेने लगे बैठ कर थोड़ा, श्री राज जी का भी नाम।।
ठोकर जब लगती पैरो को, पैर आप उठकर चलता।
इक दो बेरी का कहना तो, बिल्कुल समझ नहीं चढ़ता।।
ज्यों त्यों करके मेरे पति ने, दो सौ रूपये जोड लिये।
महाराज जी को जब दीखे, तो हमको संकेत दिये।।
अब तुम काम जोड़ दो अपना, घर चिनना आरम्भ करो।
जब तक कहू रोकने को ना, काम न अपना बंद करो।।
बिन पैसे घर बन जाऐगा, चले हुकुम के साथ अगर।
पैसा यही बढेगा समझे, कृपा करें सदगुरू तुम पर।।
बारह वर्ष पूंछ नलकी में, किसी शख़्श ने थी रक्खी।
पर जब उसे निकाला बाहर, टेढ़ी की टेढ़ी निकली।।
रोका काम बीच में उसने, कही न लेकिन चलने दी।
जोर किया काफ़ी से ज्यादा, किन्तु किसी की नहीं सुनी।।
कर न पाये अब तक हम पूरा, पड़ा हुआ है बिना पटा।
रोए बड़े आगे सदगुरू के, लेकिन उनका ध्यान हटा।।

बरसों बाद जुड़े फिर पैसे, तो वह लोहा ले आया।
उस पै कृपा करी चोरों ने, ले गए उनके मन भाया।।
फिर कुछ जुड़े सिमट ले आया, रक्खा रक्खा बिगड़ गया।
पर घर ही नंहि बन पाया फिर, फिरी न वापिस फिर किरपा।।
जो लाता गायब हो जाता, अपनी नहीं चला पाया।
पड़ा हुवा है अब भी यो ही, जैसे मुरदा मुंह बाया।।
कृपा बिचारी की क्या गलती, तड़प रही वह आने को।
उसे दोष कैसे दे दें हम, घूंम रही अपनाने को।।
हम ही जब इस योग्य नही तो, सदगुरू कैसे दे देवें।
वे तो चाह रहे हैं हमसे, जो इच्छा हो ले लेवें।।
उन्हे छोड़ उनके हालों पर, मैने पकड़ा अपना काम।
मेरे हृदय बसे रहते थे, रूह में रहते थे श्री मान।।
बैठा करती जब भोजन को, महाराज पहले आते।
बाल रूप पीछे से आता, साथ बैठे दोंनो खाते।।
अपने हाथों कभी हमारे, हंस हंस जीमा करते थे।
महाराज बोला करते कुछ, बाल न बोला करते थे।।
मेरा हाल अजब सा रहता, फूली नहीं समाती थी।
घर धंधे अटपट रहते कुछ, भूल बहुत आ जाती थी।।
एक बार चूल्हे रख सब्ज़ी, जा बैठी मैं न्हाने को।
फैर न आई भूल गई मैं, लकड़ी तक सरकाने को।।
नहा धोकर बाहर जब आई, चूल्हा पट्ट पड़ा पाया।
लकड़ी थी चूल्हे से बाहर, नज़र और ही कुछ आया।।
सब्जी देखी बनी पड़ी है, नमक मसाला है उसमें।
किसने काम किया यह सारा, आश्चर्य सा हुवा हमें।।
आता जाता लखा न कोई, किसने ध्यान किया इतना।
इतनी जल्दी बनी किस तरह, काम हुवा कैसे अपना।।
पूरी जांच करी जब मैंने, तो प्रीतम की मिली कृपा।
सब्जी आज बना दूं इसकी, बिगड़ जायगी आइ दया।।
बैठी भोग लगाने जब तो, मुस्का मुस्का कर खाया।
कैसी बनी आज की सब्जी, पूछा तो नंहि बतलाया।।
एक रोज जब भोग लगाया, बोले झूंट खिलाती हो।
मैं बोली झूंटा कैसे है, मेरी समझ न आती है।।
थाल सजा कर तुम ही को तो, सर्व प्रथम लेकर आई।
नहीं दिया है अभी किसी को, झूंटा में कैसे लाई।।
बोले जो घर में थी अब तक, झूंट उसी ने कर डाली।

हुक्म हुवा चल उठा यहा से, वापिस ले जा यह थाली।।
पहले से लड़की थी मेरी, मैंने उससे जब पूछा।
झूंट उसी ने की थी मुझसे, लड़की ने इकबाल किया।।
डाट पीलाई मैने उसको, आइन्दा को पकडे कान।
नहीं भरोसे रहना इनके, इनका ठीक नही ईमान।।
सावधानियाँ बरती आगे, दिया न मौका फिर उनको।
बड़ी चोंप रहती जब तक मैं, जिमा न लेती प्रीतम को।।
कुछ दिन बाद हमारी तबीयत, बिगड़ गई बीमार हुई।
खाना और पकाना छूटा, उठने से लाचार हुई।।
संकट देख पिया से बोली, यह क्या किया हमारे साथ।
और प्रार्थना करती रहती, दुख क्यो दिया हमें यह नाथ।।
बोले कर्म बुरे हैं पिछले, दुख दे उन्हें जलाते है।
घबराना मत इस प्रकार हम, भव से तुम्हें बचाते हैं।।
जन्म न होने दें अब आगे, अपने में ले आना है।
तुम भी सुख की चाह न रक्खो, सुख दुख से हट जाना है।।
निर्मल होलो भोग भोग कर, पापों का क्षय होने दो।
मिलना भी कुछ नहीं तुम्हें अब, तमन्नाओं को रहने दो।।
थोड़े दिन में ठीक हुई कुछ, अभी सम्भल नंहि पाई थी।
डबल निमोनियां पड़ा एक दम, जिसे न मैं सह पाई थी।।
रोते रोते वक्त बिताती, इकली पड़ी रहा करती।
मरने के नज़दीक पहुंचली, पाप भोग भरती भरती।।
तड़प रही थी पड़ी खाट पर, एक रोज़ इकली घर में।
खाया तरस नज़र आए प्रभु, उनकी दीखी शकल हमें।।
उठने की सामर्थ न थी पर, उन्हें देख उठना चाहा।
उठती हुई देखकर मुझ को, प्रीतम ने यों फरमाया।।
लेटी रहो वहीं ज्यों की त्यों, अब आवश्यक नहीं अदब।
तन्दुरूस्त जब हो, कर लेना, नहीं ज़रूरत इसकी अब।।
अच्छी अब हो जाओगी बस, आड़े दिन हो गये व्यतीत।
जौ मैं कहूँ दवा वो पीलो, उससे हो जाओगी ठीक।।
सौंफ़ बनफ़्शा लोंग इलाची, और दारचीनी ये पांच।
इक गिलास पानी में लेकर, थोड़ी देर लगालो आँच।।
सिर्फ़ एक दो फेरी पीलो, निकल जाएगे शेष विकार।
और न दिन अब अधिक लगेंगे, नाम मात्र को बस दो चार।।
निस्संदेह हुआ ऐसा ही, पी नुस्ख़ा पका पका।
चौथे दिन मेरे शरीर में, दुख्ख नहीं लव लेष रहा।।

हम से नहीं सराहा जाता, कितना प्यार हमें करते।
उत्तर नहीं प्रेम का ऐसे, इस कारण हम हैं डरते।।
एक रोज़ बाज़ार गई मैं, लखे लोग लेते सामान।
साथ साथ पत्नी भी उनके, डोल उठा मेरा ईमान।।
आया कुछ ख़याल सा मनमें, अपने ही हैं फूटे भाग।
सभी मौज मस्ती ले रहे यहाँ, अपने ही सुख पर है आग।।
खाना पीना और पहनना, अच्छे से अच्छा सब का।
पर लगाम है लगी हमारे, हमें हुकुम नंहि है रब का।।
महाराज यह क्या किस्सा है, अपनी समझ नहीं आता।
सब ही उड़ा रहे गुलछर्रे, हमको क्यों छेका जाता।।
दुनियां की ये धरमपत्नियां, भी ख़ुश हैं हमसे ज़्यादा।
क्यों के इनके पति करते हैं, इनकी सब पूरी इच्छा।।
हम दो दो पतियों की पत्नी, फिर भी इतना पतला हाल।
इक पति परम धाम का स्वामी, और पत्नी इतनी कंगाल।।
अंदर तो रहते थे हरदम, हमनें इक आवज़ सुनी।
राज पियारी ख़ूब समझ ले, तुझे नहीं कुछ भी मिलनी।।
मैं बोली मेरे लेते ही, क्या धन सब मुक जायेगा।
या जो ज़्यादा प्यारी तुमको, उनको नंहि मिल पायेगा।।
सोचो खाता देख और को, हम उनका मुंह तकते हैं।
हमें शर्म आती अपने पर, दिल हम भी तो रखते हैं।।
इतना बड़ा पिया पाकर भी, इतने बड़े रहें मजबूर।
कुछ तो सोचो कुछ तो समझो, कुछ तो देलो ध्यान हुजूर।।
स्वर्णकार खोटे सोने को, लेकर उसे गलाता है।
जितना खोट स्वर्ण में होता, पहले उसे जलाता है।।
ठंडा करके फेर पीटता, पिट पिट कर फिर बढ़ता स्वर्ण।
फेर तपाता फेर पीटता, बहुत बार यह करता कर्म।।
फिर जंती में देकर उसको, खेंचता रहता कस करके।
बार बार खिंचकर जंती से, लायक़ होता ज़ेवर के।।
तब आभूषण बनता उसका, अंत गले तक तब पहुंचा।
स्वामी अंग लगाता है तब, प्यार उसे उस वक्त मिला।।
क्या सोने को दुख नंहि लगता, जब खाता चोटों पै चोट।
सब सहना पड़ता है उसही, का तो निकल रहा है खोट।।
चमकदार बन सुंदरियों के, गले लिपट जाता है फिर।
अंग अंग पर आसन मिलता, अंग अंग है उसका फिर।।
सुंदरियां आभूषण पर, अक्सर जानें दे देती हैं।

पति से ज़्यादा स्नेह सुंदरी, आभूषण से करती है।।
हो इस वक्त आप इक साधू, साधू बनकर रहना है।
सोटा लोटा और लंगोटा, यह साधू का गहना है।।
दे डाला उपदेश मार्ग में, पानी पानी कर डाली।
चाह चातकी चहक रही थी, पकड़ ज़िवह झट कर डाली।।
मौन हुआ जो मांग रहा था, मौन हुई मैं उसके साथ।
पेट न लेकिन मौन हुआ ये, रहा मांगता हाथों हाथ।।
मौन न कच्चे बच्चे अपने, मौन नहीं कर्ज़े वाला।
मौन न चक्कर लेन देन का, मौन न अपना घरवाला।।
मैं ही मौन करी जाती हूं, किया न कोई दूजा मौन।
इज्ज़त बे इज्ज़त होती को, देख आप भी रहते मौन।।
फंसी छदूंदर मुंह विसियर के, निंगल जाए तो हो कोढ़ी।
वही यहां ना मर्द कहाता, पकड़ी हुइ जिसने छोड़ी।।
इम्तहान पर इम्तहान हैं, फंस गए ऐसे पेच कुपेच।
लेन देन वालों में होती, मेरी नित नित खेंचम खेंच।।
चैन न माया का पति पाकर, चैन न आतम पति पाकर।
मुझे जगह भी नहीं दीखती, डूब मरूं मैं जहां जाकर।।
काटो कटें ये दिन जैसे भी, अंदर अंदर रो लेती।
चाह जागती अगर कहीं, दो अश्क बहा खुश हो लेती।।
मर कर देख लिया सांसों में, फिरी लिये फूटी तक़दीर।
घर शमशान बनाकर देखा, किया आह से भश्म शरीर।।
भाग बमुश्किल बनाके देखा, मगर न ठहरा भाग गया।
दो पतियों की पतनी ऐसी, जैसे विनश सुहाग गया।।
विधवा हमसे अच्छी लगतीं, कमसे कम उनको है सब्र।
किन्तु सुहागन मैं ऐसी हूं, जैसे चलती फिरती कब्र।।
धर्मवीर ना धर्मवीर ही, बल्के धर्म भीरू निकले।
कहते कुछ कर आते हैं कुछ, हम भइ ऐसी राह चले।।
काटे दिन काफ़ी ज्यों त्यों कर, गई शेरपुर मैं इकबार।
किन्तु ग़रीबी बुरी ग़रीबी, इस से बुरी न कोई मार।।
सब कुछ जान बूझ कर भी मैं, फिर सदगुरू जा झगड़ी।
बैठे क्यों मुंह फेरे हमसे, कब तक ऐसे रहूँ पड़ी।।
कर्ज़दार जीने नंहि देते, हम से उतर नहीं पाता।
दो देकर हटते हैं इतने, चार सरों पर चढ़ आता।।
उधर पेट की धुन है ला ला, उधर कर्ज़ वालों की ला।
चरण थामकर बोली प्रीतम, ज़रा ध्यान दो दम निकला।।

चलता नहीं काम अब यों तो, कुछ तो करना ही होगा।
बार करो या पार मामला, दुख्ख न जाता अब भोगा।।
तुम्हें न दी जाऐगी माया, तुम्हें चाहिये जो, है पास।
बार बार क्यों तंग करती हो, क्यों करवाती अपनी हांस।।
मैं ज़िद सी कर बैठी उनसे, जब तुम ही नंहि सुनते बात।
तो फिर और कौन है अपना, जिससे करें प्रार्थना नांथ।।
जब ज़्यादा ज़िद करती देखी, जालंधर की है आनंद।
औ बनारसो दिल्ली वाली, करने लगी बोल निज बंद।।
बहस न शोभा देती इनसे, जो कहते हैं ध्यान धरो।
उस ही में सुख होगा तुमको, जो कहते हैं वही करो।।
मुद्रा मेरी और पिया की, दोनों की बदली इकसाथ।
ऐसे लगने लगे, पिया जी, मानो रूंठ गये हों नाँथ।।
चली आइ वापिस घर अपने, पर अंदर था हमें मलाल।
महाराज जी को मेरी इन, बातों पर हो गया ख़याल।।
आते ही निज दशा बदलदी, कर्ज़ा दिया उतरवा सब।
लगा पेट भी भरने अपना, रहा न पर पी से मतलब।।
धोये गये हाथ प्रीतम से, हवा हुवे सब नज्ज़ारे।
बालम फिर दीखे नंहि हमको, बहुते सर दे दे मारे।।
हाय रे दुखड़े कह रह जाती, छीन लिया प्रीतम मुझसे।
अगर न तू होता मेरे घर, काहे को छुटते मुझसे।।
मातम सा रहता घर हरदम, चेहरे कभी न खिलते थे।
यही याद खाती रहती हमें, यों हम नित नित मिलते थे।।
ताजे वाले महाराज जी, का जाना होता प्रति वर्ष।
पाठ बिठान पहुंचे तो तब, मैं भी पहूँची करने दर्श।।
आत्म सर्मपण कर चरनों में, मैंने देखा नज़र उठा।
उनकी और हमारी नज़रों, दोनों में संर्घष छिड़ा।।
आँख मिलाकर बोली मैं क्यों, आँख चुराते अब हमसे।
हम हैं इन नज़रों से जिन्दा, करवट मत बदलो हमसे।।
मजबूरी में अगर शब्द कुछ, ऊंचे नींचे कह डाले।
वह भी तुम्हीं सहोगे क्यों के, हम हैं मंद बुद्ध वाले।।
हमें आपकी क़सम दुखों ने, अंधा औ ना काम किया।
भाँति श्वान के लिपट गये दुख, दुनियाँ में बदनाम किया।।
इधर आप ना खुश हो बैठे, सहन शक्ति से जो बाहर।
तुम्हें बदल कर सुख ले लूं मैं, भला करूंगी क्या पाकर।।
कृपा करो बस इधर निहारो, वापिस लो सब अपना सुख।

हमसे आप न छुट सकते अब, देदो हमें हमारा दुख।।
कहने लगे रामप्यारी जी, बनते हैं जब कहीं मकान।
उसको पूरा करने के लिए, आते बड़े बड़े सामान।।
तय्यारी के बाद ज़रूरत, की हर चीज़ें आती हैं।
फिर उसमें कंहि बैठा जाता, आतम मौज उड़ाती है।।
बड़ी देर लगती है इसमें, कहने जितना काम नहीं।
ज़ोरों की तो पूछो ही मत, बनना कुछ आसान नहीं।।
तुम भी इक मकान हो जिसको, पूरी तरह बनाना है।
बन जाने के बाद किसी को, फिर उसमें बिठलाना है।।
वही चीज़ होंगी सब तुममें, जल्दी का कुछ काम नहीं।
उन्हें बुलाने लायक़ बनलो, इतने सस्ते श्याम नहीं।।
विनती करी पाठ मेरे भी, घर पर तुम्हें बिठाना है।
अमंत्रित करती हूँ, तुमको, तीनों दिन ठहराना है।।
ताजेवाले पाठ ख़त्म कर, जब सदगुरू वापिस आये।
जमना नगर हमारे घर पर, आकर पाठ बैठवाये।।
बड़े हर्ष उल्लास सहित, वे पाठ हमारे हुवे समाप्त।
हुई श्री सदगुरू से हमको, चलते समय चीज़ इक प्राप्त।।
जिसको बता नहीं सकती में, पर सब काम चले उससे।
बिगड़ी दशा सुधारी उसने, बड़े काम निकले जिससे।।
काफ़ी रोज बीत गए ऐसे, चलता रहा बराबर काम।
सदगुरू भी दर्शन देते पर, बदले बदले से श्रीमान।।
पहले जैसा प्यार नहीं था, ना पहली सी रही निगाह।
परिवर्तन था इक अजीब सा, ज्यों अब नहीं रही परवाह।।
फिर तकलीफ़ हुई इक मुझको, बहुत किये उपचार मगर।
नहीं ठीक ही हो पाई में, तन में बढ़ती गई कसर।।
इक बुढ़िया बोली इक दिन, के इक देवी है तेरे सिर।
जब प्रसन्न उसको कर देगी, चैन पड़ेगी तुझ को फिर।।
किसी भगत या स्याने पै जा, तेरा है सब उनके हाथ।
दुख्ख भोगती क्यों फिरती है, नहीं किसी बसकी बात।।
एक भगतनी थी उसके सिर, देवी आया करती थी।
थी विख्यात नगर भर में, सबके इलाज वो करती थी।।
अपनी भी मति फिरी चले गए, जा पूछा उससे उपचार।
उत्तर प्रत्युत्तर देने को, दिन था उसका मंगलवार।।
पहुंचे भी हम मंगल ही को, किन्तु न देवी सिर आई।
किसी बात का उत्तर अपना, वह भगतिन नंहि दे पाई।।

और बहुत इच्छुक बैठे थे, विसमित ये सब ही उस रोज़।
देवी प्रगट नहीं होती क्यों, थी सब ही को इसकी खोज।।
इन्तज़ार दो घंटे करली, थकली मैं बैठी बैठी।
लेकिन भगतिन के ऊपर वह, देवी उस दिन नंहि प्रगटी।।
दो घंटे के बाद मुझे महाराज, नज़र अंदर आये।
डाट बताकर पूछा मुझसे, क्यों जी यहां कैसे आये।।
क्या हमसे भी ज़्यादा हैं येह, देवी जिससे पूछ रही।
कहां गये विश्वास तुम्हारे, यहां सर आकर मार रही।।
हम भी तो देखें यह देवी, किस प्रकार आती है आज।
बाहर मेरे पति बैठे थे, जो आये थे मेरे साथ।।
धमकाया उसको भी जाकर, धर्मवीर यहां क्यों आया।
रख भी बांधे फिरता मेरी, क्या विश्वास बेच खाया।।
जिसके पास हमारी रख है, वहां नहीं कुछ आ सकता।
देवी हो या देव कोइ भी, इतनी ताक़त नंहि रखता।।
क्या ताक़त देवी आ जावे, जब तक तुम बैठी हो यां।
दिन अच्छे जानो तो चलदो, एक मिनिट मत रूको यहां।।
ज्ञात हुआ जब हमें हमारी, वजह से देवी नंहि आई।
हम भगतिन से बोले चाहे, जितने सर मारो माई।।
जब तक हम हैं घर में तेरे, देवी, देव न आ सकते।
ताक़त नहीं हमारे होते, देव आंए सन्मुख जग के।।
मार रही सर दो घंटे से, और चाहे दो घंटे मार।
अपनी ताक़त के सन्मुख, हैं देव यहां के सब लाचार।।
इतना कह चलदिये वहां से, अपने घर का मार्ग लिया।
थे शरमिंदा अंदर अंदर, हमने यह नंहि ठीक किया।।
महाराज जी के होते हुए, हम ऐसों में आन मरे।
चले पिटे से वापिस घर को, जैसे हों हम हत्यारे।।
बचे राह में गिरते गिरते, इक गड्ढे में पानी के।
पड़ा सांप पर पग आ करके, पर श्री सदगुरू ने बख़्शे।।
काला नाग घास में था इक, जो चारे को आती थी।
बड़े रूप हैं श्री सदगुरू, डरा डरूकर फिर बख़्शी।।
क़दम कदम ग़लती करते हम, दो दिन सही न चल पाये।
हर ठोकर पर दिया सहारा, थामा जब भी ठुकराये।।
लक्षण यही बड़प्पन के हैं, सहन बड़े ही करते हैं।
निर बुध जो ठहरे ये छोटे, पग पग ग़लती करते हैं।।
महा प्रभू इच्छा अब यह है, धाम आपके साथ चले।

सब कुछ है अब हाथ आपके, चाहे जो कुछ आप करें।।
कोटि कोटि परनाम तुम्हारी, राज पियारी करती है।
आठ पहर चोंसठ घड़ियां नित, नाम तुम्हारा भजती है।।
राज पियारी नाम धरा तो, यों ही करते रहना प्यार।
हूं पापोश आपकी पीतम, पहने रखना इन्हें संवार।।

पं बिहारी दास पुत्र श्री डोगर दास मनफूलपुर
तः दिपालपुर मिन्टगुमरी
पंजाब

महाराज की बात कहूं क्या, इन बातों को समझे कौन।
उनको कहने से पहले ही, रसना कह उठती रह मौन।।
क़दम क़दम कुछ करते थे वे, बात बात में था कुछ राज़।
हर इक के वे समझ न आये, भोले से दिखते महाराज।।
किन्तु काम हर इक पेचीदा, बहुत देर में लगा पता।
साधारण दुनियां क्या समझे, जीव सृष्टि की नहीं ख़ता।।
नाम बिहारीदास हमारा, पिता हमारे डोगर दास।
थे मनफूलपुर के वासी, ग्राम मिंट गुमरी के पास।।
रामानंद महात्मां थे इक, शिष्य श्री सदगुर जी के।
देव योग से गाँव हमारे, श्री रामानंद जा पहुंचे।।
रहने लगे वहीं मंदिर में, सहज सहज सेवा ले ली।
भाव बहुत ही शुद्ध थे उनके, बड़ी मान्यता थी उनकी।।
इक सुनार की गैया बयाई, हिम्मत राम नाम उसका।
बौली, खीस, प्रथम जो निकला, उसने मंदिर में भेजा।।
ताकि भोग लग जावे उसका, महाप्रभू के आवे काम।
बड़े भाव से पहुंचा लेकर, भक्त बिचारा हिम्मत राम।।
जब बौली को भोग लगाकर, :हिः रामानंद ने बरताया।
जो भी गया टेकने मथ्था, बौली का प्रशाद पाया।।
श्याम लाल नामक इक पंडित, उसी ग्राम में रहता था।
किसी वजह से रामानंद से, वह अनबन सी रखता था।।
ज्ञात हुई जब उसको बौली, आज भोग में बरताई।
फिरा गांव सारे में बक़ता, जिस जिसने बौली खाई।।
हरिद्वार जावें वे सारे, करना है प्रास्चित उन्हें।
होता है अपवित्र खीस ये, वरन् करेंगे अलग तुम्हें।।
ऐकत्रित करके बिरादरी, रहने दूंगा नहीं यहाँ।
दण्ड दिलाऊँ पंचायत से, सब ही को भयभीत किया।।
इक गुमाश्ता था पंडित का, माछीराम नाम का था।
गुण्डा था अव्वल दर्जे का, पंडित को सहयोग दिया।।
लगा डराने वह भी सब को, हरिद्वार न्हाके आओ।

डण्डे सोटे लगा दिखाने, तब तक यहाँ न रह पाओ।।
तुम लोगों ने पाप किया है, ख़ारिज हो बिरादरी से।
वापिस लिये न जाओ तब तक, जब तक आओ नंहि न्हाके।।
लोगों में आतंक छा गया, शुरू हुई घर घर चर्चा।
माछी राम दण्ड देने को, पंचायत कर ही बैठा।।
क्यों बौली खाई इन सबने, पंचो इनसे उत्तर लो।
अगर न आयें गंगा न्हाके, गाँवों से बाहर करदो।।
सुनी बात जब रामानंद ने, बौली के ऊपर सबको।
पंचायत दण्डित कर रही है, पहुँचे उनकी रक्षा को।।
रामानंद बोले जाकर के, इन्हें तंग क्यों करते हो।
मैंने दिया इन्हें खाने को, आप दण्ड यह हमको दो।।
श्यामलाल बोला तुमको क्यों, सज़ा इन्हीं को देंगे हम।
इन लोगों ने कैसे खाया, क्यों नंहि समझा है दुष्कर्म।।
तुमसे मतलब नहीं हमारा, हम अपनों को कहते हैं।
आप कौन हैं हम क्या जानें, जांए जहां पर रहते हैं।।
गये महात्मां जी तो वापिस, किन्तु मान कर दुख मनमें।
तंग हुवे तब मेरे कारण, उठी हूल सी आतम में।।
छोड़ छाड़ खाना पीना, आसन पै जाके रामानंद।
सदगुरू का धर ध्यान लेट गए, था अदभुत अंतर में द्वंद।।
स्वयं उठावें सदगुरू आकर, उसी वक्त उठना है अब।
इस प्रकार प्रंण धारण करके, रटने लगे महात्मां रब।।
गुरू महाराज सहारनपुर थे, हुई इधर जिसदम यह बात।
भरत सिंह भी पहुंच लिये थे, सहारनपुर सदगुरू के पास।।
लेजाना था उन्हें शेरपुर, वहां ज़रूरत थी उनकी।
लेकर चले उन्हें स्टेशन, भरत सिंह पै झोली थी।।
बड़ी लैन पै पहुंचे जिसदम, भरतसिंह औ श्री महाराज।
महाराज ने झोली ले ली, भरत सिंह से अपने हाथ।।
भरत सिंह तुम जाओ शेरपुर, हमको जाना है पंजाब।
काम ज़रूरी आ निकला इक, हर हालत जाना है आज।।
भरत सिंह की समझ न आया, राय राह में क्यों बदली।
क्या कारण जो अनायास ही, चले इधर को सदगुरू जी।।
कारण पूछा नहीं बताया, ना ही साथ लिया उनको।
भरतसिंह मजबूर हो गया, पड़ा छोड़ना सदगुरू को।।
टिकिट मिंटगुमरी का लेकर, चले अकेले ही महाराज।
भरत सिंह घर गया अकेला, समझ न पाया क्या है राज़।।

आधी रात थी जिसदम सदगुरू, पहुंचे रामा नंद के पास।
था अचेत आसन पै अपने, देखो श्री सदगुरू की बात।।
चरन पकड़ चेले का अपने, बड़े प्यार से चेताया।
आंख खुली जब रामानंद की, सन्मुख सदगुरू को पाया।।
हाथ देख कर निज पैरों पर, हालत मत पूछो हिय की।
सदगुरू चरनों पड़े उछल कर, रोने लगे बंधी हिड़की।।
भक्त वत्सलों के वत्सल ने, उठा गले से लिपटाया।
मोच लिया संकट, संकट, मोचन ने उनको अपनाया।।
बात न मुंह से हुई एक भी, हुईं बात अंदर अंदर।
अंदर ही अंदर कहडाला, चुप चुप हुवे प्रश्न उत्तर।।
कुछ दिन ठहरे महाराज जी, हमने भी दर्शन पाये।
दर्शन करने हम भी आये, ग्राम निवासी सब आये।।
नाम बिहारीलाल हमारा, उसी ग्राम के हैं वासी।
साधू संत बहुत देखे थे, बड़े बड़े ही संन्यासी।।
लेकिन ऐसे मिले न अब तक, जैसे हमने ये पाये।
बोल बड़े ही पाए नुकीले, बड़े हमारे मन भाये।।
पांच चार दिन ठहरे सदगुरू, लेकिन जब घर ओर चले।
रामानंद महात्मां को भी, सदगुरू लेकर साथ चले।।
व्यक्ति रोकने चले गांव के, इनको क्यों ले जाते हो।
मंदिर की सेवा आदिक में, बाधा क्यों गिरवाते हो।।
यहां न रहने दूं अब इनको, अपनी सेवा तुम जानो।
साथ जाएगा रामानंद अब, प्रथम किसी को पहचानो।।
दी जाती सेवा उत्तम को, रामानंद नहीं उपयुक्त।
इन्तज़ाम दो किसी अन्य को, जिससे हो जनता संतुष्ट।।
सदगुरू चले आए इतना कह, रामानंद साथ थे ही।
ठुकरादीं मांगें लोगों की, नहीं किसी की सुनके दी।।
हटते ही रामानंद जी के, इन्तज़ाम सब मंदिर का।
एक तरह से चौपट हो गया, बना बनाया पट्ट हुआ।।
उधर महात्माँ रामानंद के, हटते ही श्री माछीराम।
बड़े सख़्त बीमार पड़ गये, हो गया मंझे पर विश्राम।।
सौ इलाज सौ हुवे मालजे, किन्तु गया बढ़ता ही रोग।
गिरती गई अवस्था तन की, मिलने लगे नारकी भोग।।
यम शाला का स्वाद मिला सब, एक वर्ष पापड़ बेले।
जो था पैसा पास फुका सब, असहः दुख्ख सारे झेले।।
हम सब का प्रोग्राम बना इक, इससे पांच माह पश्चात।

हरिद्वार भी नहा आएंगे, शेरपूर भी उसके बाद।।
चौदह व्यक्ति चले हम घर से, प्रथम शेर पुर में आये।
महाराज श्री शेरपूर थे, हम सबने दर्शन पाये।।
रहन सहन देखे आश्रम के, कर्म धर्म देखा हमने।
लेकिन समझ न आया कुछ भी, कुछ भी तो ना जान सके।।
क्यों कि धर्म था नया हमें वह, समझ एक दम क्यों आता।
देखा न था कभी पहले वह, इक दम हमको क्यों आता।।
हमें महात्मां भजन दास ने, किया इशारा आकर के।
आप लोग सब मंत्र तारतम, ले लो सदगुरू से जाके।।
चले जाओगे फेर समझते, देर न लगने की इक पल।
तब तक समझ न आ सकती है, आजाऐगी फेर अक़ल।।
हमने करी प्रार्थना जाकर, हमको भी अपनालें आप।
मंत्र हमें भी दे दो अपना, बतलादो हमको कुछ जाप।।
एक बिशम्बर दास पुजारी, था निज मंदिर में उस वक्त।
हुकुम दिया सदगुरू ने उसको, देखो जितने हैं ये भक्त।।
इन्हें तारतम लिखके देदो, घर पै याद कर लेंगे ये।
श्री बिशम्बर दास पुजारी, ने लिख लिख के मंत्र दिये।।
एक बिहारी एक बहाली, और एक थे बाघीराम।
तीनों ही ने मंत्र लिया वहां, श्री सदगुरू के बने गुलाम।।
वापिस लौट लिये हम घर को, तारतम्य निधि करके प्राप्त।
समय बीतता गया वर्ष इक, धीरे धीरे हुवा समाप्त।।
लड़की की शादी पर मैंने, महाराज जी बुलवाये।
निश्चित समय श्री सदगुरू जी, गांव हमारे में आऐ।।
माछीराम बहुत ही तंग था, न तो प्रांण ही घुटते थे।
बीत चुका इक साल खाट पर, ना ही अच्छे होते थे।।
बदबू के मारे उस घर में, जिसमें थे तब माछीराम।
हुआ न जाता खड़ा विपल को, इतनी थी उस जगह सड़ांद।।
हाल कहा उसका सदगुरू से, और प्रार्थना भी की साथ।
अब तो उसपै कृपा करो बस, सबने जोड़े उनके हाथ।।
सबकी बात मानकर सदगुरू, गये जहां था माछीराम।
ऐसी बदबू थी के खाना, जो खाया था हुआ हराम।।
सड़न मृतक जैसी थी उसमें, सबने ढाटे मार लिये।
अगर धूप जलवाई गई वहां, और बहुत उपचार किये।।
लेकिन बदबू दबी न फिर भी, जल लेकर श्री सदगुरू ने।
पढ़कर दिया पिलादो इसको, दिया उसे जाकर इकने।।

पीते ही प्राणांत हो गया, छूट गया चोला इक साथ।
निकला रौख नरक झेलकर, क्या कहदूं सदगुरू की बात।।
मुक्त हुआ माछी किरपा से, फेंक दिया इक ठोकर ने।

श्रीमती लाजवंती पत्नी लालचंद गोविंदनगर ब्लाक नः 13 ग्रह नः 302 – कानपुर

मैं हूं लाजवंती पत्नी श्री, लालचंद साकिन कानपुर।
तेरह ब्लाक तीन सौ दो घर, कालौनी गोविंद नगर।।
सर्व प्रथम परनाम राज जी, उसके बाद साथ जी को।
कुछ महिमां कहनी सदगुरू की, कृप्या देकर ध्यान सुनो।।
देश विभाजन के पीछे हम, बसे कानपुर जाकर के।
छोटी सी हस्ती है अपनी, छोटे से अपने धंधे।।
परनामी पिछले ही थे हम, प्रेम नेम से पहला था।
कानपूर भी जाकर हमने, नियम नहीं अपना छोड़ा।।
था गोविंद नगर मंदिर इक, क्वाटर में सेवा पधरी।
आते जाते रहे वहीं हम, जो सेवा बन पड़ी करी।।
रामरतन जी की महिमां का, न था किसी को वहां पता।
एक बार दिल्ली आई मैं, उनका चर्चा यहां सुना।।
चर्चा में आर्कषण सा था, उलट पुलट हो उठा ह्रदय।
दर्शन को जी लगा चाहने, भाव मिलन के हुवे उदय।।
किन्तु कारी कुछ नंहि थी, भावें न भावें उनको।
इसी बात से हम कुछ डर गए, जाने नहीं दिया हमको।।
इक चित कहता शेर पूर चल, इक कहता पहले ख़त डाल।
उत्तर अगर ठीक आया तो, फिर चल ही देंगे तत्काल।।
चिट्ठी लिखी श्री सदगुरू को, मतलब था हम आवें क्या।
पर दुर्भाग्य हमारा देखो, उत्तर वापिस नहीं गया।।
बढ़ने लगी परेशानी फिर, माया बहन साथ में थी।
सोच विचार किया कफ़ी, आखिर चलने की राय बनी।।
चलो शेरपुर हो ही आयें, पीड़ हमें है उनको क्या।
आवें न आवें दर्शन को, उनका कौन हर्ज होता।।
पता वता लेकर दिल्ली से, जा उतरे हम नानौता।
कभी गये तो नंहि पहले, किस प्रकार पहुंचा जाता।।
खड़े रह गये स्टेशन पर, उतर उतर गाड़ी से लोग।
भाग गये अपने अपने घर, रह गए हम भरने को डोब।।
निमटी थी बारिश हो करके, जिधर द्रष्टि जाती पानी।
कुली नहीं मज़दूर नहीं कंहि, आई याद हमें नानी।।
माया बहन कहो अब क्या हो, धरो सरों पर अपना बोझ।

यहां न पुरसां हाल कोइ भी, किसकी कर रही हो अब खोज।।
मुंह उतरे भय खाकर अपने, जा पूछा रस्ता इक से।
सीधे बटिया बटिया हो लो, आगे चलकर नहर मिले।।
वहां सवारी मिल सकती हैं, इन्तज़ार यहां है बेकार।
उठा लिया सामान सरों पर, चले कींच में को लाचार।।
गिरते पड़ते पानी पानी, बटिया बटिया चले गये।
घंटे बाद बड़े धक्के खा, इक नाले पै जा पहुंचे।।
रोने लगे देख नाले को, नाला क्या थी मौत समक्ष।
जिधर घुसे पानी डुबाऊ था, काल नज़र आया प्रत्यक्ष।।
मार्ग तलाशा कहीं न पाया, बोझ सरों का धरें कहां।
चारों ओर कींच और पानी, तिल जेती ना जगह कहीं।।
लगा कि स्टेशन कोसों है, शक्ति न वापिस जाने की।
दूर दूर तक कहीं न आदम, नंगी खड़ी मौत दीखी।।
माया मुझे और मैं उसको, दोष दे रहे आपस में।
वह कहती तेंने मरवाया, मैं कहती उसको तेंने।।
रो भी रहे और लड़ भी रहे, द्रश्य देखने लायक था।
इतने में इक लड़का बोला, जनें कहां से उदय हुआ।।
क्या नाला उतरेगी बाई, इधर आओ यह है रास्ता।
मानो यम घर से लौटे हों, बड़ी कृपा होगी भइया।।
नौ दस वर्ष उमर थी उसकी, गोरा गोरा सा था वो।
बोला आकर लाओ बोझ दो, साथ साथ मेरे होलो।।
दूर ले गया हमें घुमाकर, थी खजूर इक नाके पर।
बोला तुम्हें इधर आना था, ग़लत पहुंच गई आप उधर।।
नाला पार कराकर हमसे, बोला वह देखो पुलिया।
धीरे धीरे वहां पहुंचलो, फिर है नहर नहर रस्ता।।
भाव आए अपने अंदर ये, अगर न मिलता ये लड़का।
बह जाते या कोइ लूटता, वापिस जाना मुश्किल था।।
कुछ पैसे दे दें लड़के को, गम्मत लगे मिलाने हम।
मुड़े उधर जब पैसे देने, तो वह लड़का पाया गुम।।
ना निशान ना पता कहीं पर, हम रह गए भौंचक्के से।
होकर के लाचार चले फिर, दोंनों अपने रस्ते से।।
फिर भी आध पौन घंटे में, गये नहर के पुल तक हम।
कहा धरी थीं वहां सवारी, सूनसान ना मानस गंध।।
भैंना आज मौत है निश्चय, मर मर कर तो पुल पकड़ा।
होश वाख़्ता हो गए वहां तक, पीछे जाना नंहि बसका।।

घंटा भर सस्ताये पुल पर, फिर लाचार चले पैदल।
किस सायत हम निकले घर से, किस करनी का है ये फल।।
राज राज करते जाते हम, बैठ बैठ मंज़िल नांपी।
पड़े आवले निज पैरों में, ज्यों त्यों कर आश्रम पहंची।।
सिजदा क्या गिर पड़े द्वार पर, हम समान इक मैयत की।
इस प्रकार गुरू द्वारा पकड़ा, और चरण रज सदगुरू की।।
सुंदर साथ वहां काफ़ी था, घेरे रहते सदगुरू को।
लगते हमको नये नये से, दूर रहा करते हम तो।।
मध्य साथ के सदगुरू होते, हम इक ओर बैठ रोते।
कभी कहीं तो कभी कहीं यों, चार रोज़ बीते रोते।।
संतो बोली श्री सदगुरू से, क्या यह ही है यहां रिवाज।
रूला रूला स्वागत करते हो, अच्छी बात नहीं महाराज।।
लाज कानपुर वाली जब से, आई रोती रहती है।
देख रहे हम, बोले सदगुरू, तू क्यों बीच घुसड़ती है।।
तभी साथ से उठकर बोले, चलो बाग़ में बाहर सब।
खेल खिलावें आज अनोखा, नंहि खेला होगा अब तक।।
भाग गया सब साथ बाग़ में, महाराज को लेकर साथ।
हम भी धीरे धीरे जाकर, जा बैठे फाटक के पास।।
सारा नाथ मस्त खेलों में, हम अपने रोने में व्यस्त।
रोना और अधिक भड़का जब, खेलों में दीखे सब मस्त।।
भाग्यहीन दीखे हम सब में, सब पर कृपा बहुत पाई।
यहां न होगी पूछ हमारी, आतम बेहद घबराई।।
वहां घास पर मुंह ढक करके, लेट गई मैं बक करके।
खेल ख़तम करके जाते हुए, ठोकर दी चलते चलते।।
लगते ही उस ठोकर के इक, आग भड़क उट्ठी अंदर।
लाजवंती चल भाग यहां से, यहां तुम्हारी कहां क़दर।।
तिरस्कार ही तिरस्कार है, लगी खोजने आकर साथ।
जो स्टेशन तक पहुंचादे, किन्तु न आया कोई हाथ।।
बज उट्ठी घंटी लंगर की, ले गया साथ मुझे भी खेंच।
उस परिंद सी हालत अपनी, जिसके पंख हुवे हों केंच।।
चले गये मजबूर साथ में, जीमे नहीं मगर जाकर।
कूए पै आ बैठे चुप से, रोने लगे वहां आकर।।
रोने का वह तार हमारा, नहीं टूटने पाता था।
दशा देख अपनी अपने पर, रोना आ ही जाता था।।
थी इन्द्रो इक दिल्ली वाली, महाराज से जाकर के।

करी शिकायत लाजवंती, कूअे पर बैठी रो रही है।।
रोने दो उसको तुमको क्या, लख रहे हैं लखने वाले।
तू कर अपना काम यहां क्यों, गा रही है आले वाले।।
पंगत उठी जीमकर जिसदम, मैं भी चलदी मिल उनमें।
बिन खाये पीये हो ओंधी, जा लेटी इक कमरे में।।
गुरू वार का दिन था उस दिन, वक्त कीर्तन का आया।
भेज संदेशा वाहक हमको, महाराज ने बुलवाया।।
उसने दिया संदेशा हमको, मैंने उत्तर दिया उसे।
भय लगता है मुझको उनसे, जाया नंहि जावे हमसे।।
किया मना भी मगर चली भी, गई तारतम भवन प्रथम।
जहां सेज थी प्रांणनांथ की, सिजदा रहे बजाते हम।।
आंसू नहीं रूके थे तब तक, जारी था रोने का काम।
थोड़ी देर बाद आसन से, आई हमको इक आवाज़।।
जाती क्यों नंहि मंदिर में तुम, सदगुरू तुमको कर रहे याद।
आसन ही ने भगा दिये हम, नहीं बैठने दिया वहाँ।।
चलना पड़ा उधर ही हमको, प्रीतम थे उस वक्त जहाँ।
जिधर तारतम भवन उधर भी, द्वारा है इक मंदिर का।।
जब मंदिर में घुसी उधर से, उधर ही मुंह था सदगुरू का।
नज़रें पड़ीं हमारे ऊपर, जो रहस्य की थीं अत्यंत।।
कह गई एक झवक में क्या क्या, जिनके अर्थ बड़े बे अंत।
दीखी आँख एक ही उनकी, डोरे लाल सफ़ेदी में।।
खा जाऐगी जैसे लाली, इस प्रकार भय लगा हमें।
चाहा बैठ जाऊं मंदिर में, निज मुंह को आँचल से ढांप।।
उधर न कर पाई मैं मुंह फिर, मिंच सी गई हमारी आंख।
वही आंख, जब बैठी ढक कर, अंदर भी दीखीं मुझ को।।
पल में परेशान करदी मैं, फिर प्रीतम अंदर दीखे।
खाने की कुछ चीज़ लिये थे, लगे खिलाने आकर के।।
बहुत खिलाना चाहा मुझ को, मैं मुंह फेर लिया करती।
बड़ा रहा संघर्ष देर तक, मैंने मुंह में चीज न ली।।
एक रूप सत्संग में था और, एक हमारे संग जुटा।
इतने रही वहां बैठी मैं, संर्घषण में वक्त कटा।।
उधर हुआ सत्संग बंद तो, इधर उठे हम मंदिर से।
और झौंपड़ी में जा लेटे, रोने धोने शुरू किये।।
आ रहे हैं महाराज किसी ने, आकर मुझ को चेत किया।
उठ के बैठी ही उनके लिए, जल्दी आसन एक बिछा।।

आसन मेरे पास कहां है, भला कहां से बिछवादूं।
मैं यह सुनकर बाहर निकली, महाराज भी आ पहुंचे।।
आसन बिछा दिया बाहर ही, बाहर ही वे आ बैठे।
मैं भी बैठ गई बाजू में, इस प्रकार बोले पश्चात्।
क्यों जी तुम रोती क्यों रहतीं, इस रोने का क्या है राज़।।
क्या तुम को कुछ कहा किसी ने, कृप्या हमको बतलाओ।
यों कैसे हम जान सकेंगे, कुछ तो हमको समझाओ।।
मैं छिपाए मुंह को आँचल से, घुटनों में सिर दे करके।
बैठी रही ख़ामोश न बोली, दिया न कुछ उत्तर हमने।।
मानो मूरत कोइ काठ की, या हो माधौ मिट्टी का।
वे सवाल खुद ही करते रहे, ख़ुद उत्तर देते उसका।।
लेते रहे चुटकियाँ सी कुछ, देते रहे हमें शौ सी।
बिना बताये हमें ज्ञात फिर, कैसे होवे देवी जी।।
मुंह खोलो निज कुछ तो बोलो, कुछ तो हमको उत्तर दो।
जब हम बोले ही नंहि तो, उठते हुवे बोले क्षमां करो।।
चले गये उठ कर आगे से, मुझे और रोना आया।
कुल दुनिया का रोना जैसे, मुझ इकली को पकड़ाया।।
गादी लगी शाम को उनकी, भवन तारतम के आगे।
सुंदर साथ हुआ ऐकत्रित, हम भी पीछे जा बैठे।।
नज़र न आये हम सदगुरू को, गादी के बिलकुल पीछे।
बात साथ से करते करते, अपने हाथ किये पीछे।।
खेंचा मेरा हाथ पकड़कर, और बैटरी ले अपनी।
करने लगे आरती मेरी, उनकी तो ठहरी तफ़री।।
रोना अपना और सवाया, रोते रहे रात भर हम।
सोता रहा साथ सारा ही, चार बजे होंगे जिसदम।।
श्री सदगुरू ने हमें पुकारा, लेकर नाम बुलाया पास।
हम उठकर पहुंचे आसन तक, एक और को दी आवाज़।।
खड़ी हुई दूजी जब आकर, कहा कटोरी जल लादो।
जिसदम जल ले आई तो वह, उससे बोले इसको दो।।
मुझे कटोरी देदी उसने, चरनों के आगे धरदी।
करके चरन बैठ गए आगे, बोले, इनको धो और पी।।
पी गई धोकर कहते ही मैं, हुई बड़ी अचरज की बात।
रोना धोना भाग गया सब, शान्त हुआ सारा इक साथ।।
लगा मुझे ऐसा इकदम के, कभी न रोई जैसे तू।
हंसी ख़शी दिन बीत रहे हैं, दुख से दूर रही है तू।।

जैसे स्वप्न भयंकर से छुट, जान बची, समझा करता।
हाल और होता जगने पर, बीती पर मुस्का देता।।
पंदरह दिन फिर टिके वहीं हम, करूं कृपा की क्या चर्चा।
बड़े बड़े आनंद आए फिर, बड़ी बड़ी देखीं लीला।।
बस निहाल ही हो गए समझो, परिचय पूर्ण मिला उनका।
हैं श्री अक्षरातीत महाप्रभु, सिर्फ़ भेष है सदगुरू का।।
एक रोज़ बैठे थे प्रीतम, कर में लिये सुमरनी को।
मैं बोली इक आज तमन्ना है, अपनी पूरी कर दो।।
कह डालो जब मुंह पर आली, उनके मुंह से झट निकली।
हमें सुमरनी देदो अपनी, हम ने उनसे कह डाली।।
तुझे सुमरनी से क्या करना, मैं बोली पी का सुमरन।
इतना और बता किस कारन, करना चाह रही सुमरन।।
ज़रा झिझक सी आई पहले, फिर बोली पी की ख़ातिर।
उन्हें प्राप्त करने का साधन, एक यही तो है आख़िर।।
महाराज जी बोले तो तुझे, अभी तलक नंहि मिले पिया।
अब सुमरन तू किया करेगी, शुरू जाप अब हो पी का।।
सुनते ही उनके शब्दों को, धौला मुंह हो गया मेरा।
मेरे मुंह से क्या निकली यह, पी सन्मुख बैठा तेरा।।
पढ़ कर मेरे भाव को सदगुरू, मुझ से बोल पड़े झटपट।
इधर ध्यान दे पगली पाठे, और सुमरनी तब ही तक।
जब तक इष्ट मिला नंहि करते, क्या वे मिले नहीं अब तक।।
बात बड़ी सीधी सच्ची थी, बैठ गई बुद्धी में झट।
मिल तो लिये हमारे मुंह से, बात आइ बाहर झटपट।।
तो फिर अब पाठे काहे के, हमको इसका अर्थ बता।
तुझे सुमरनी क्यों चहिये अब, जब तेरा सन्मुख बैठा।।
सारी कह गए दो बोलों में, जबां न उठ पाई आगे।
जनम जनम के कारज सर गए, शक्की भूत सभी भागे।।
लाजवती की बिगड़ी बन गइ, सदगुरू ही इक ठोकर से।
किरपा ने निहाल करदी मैं, जाग उठी अब सोकर के।।
अब तो यही प्रार्थना है बस, बार बार करती परनाम।
जुड़ी चरन से रहने देना, लाजवती को हे धनिधाम।।

श्री ओउम् प्रकाश पु: परसासिंह मजाहिदपुर

बहुत बड़ी माला सदगुरू की, बहुत बड़ी है उनकी ज़ात।
दाने गिने न जावें हमसे, गिना न जावे उनका साथ।।
ओर छोर होवे तो पावे, ना महिमां का पारावार।
हम जैसे जानें किस ख़ू पर, कर गए मुफ़्त अपन उद्धार।।
समझ आए कुछ बड़ी देर में, बड़ी देर में पाया राज़।
कौन छिपा बैठा इस बपु में, साक्षात् पाये श्री राज।।
नाम है ओउम् प्रकाश हमारा, श्री परसा सिंह पितु अपने।
राजपूत जाती से हूं मैं, ग्राम मजाहिदपुर जन्मे।।
सदगुरू के चरनों तक हमको, गायन की लत ले आई।
चसका था गायन सुनने का, अंकुर निज अंदर था ही।।
यहां कीर्तन होता था नित, साथ और आता था एक।
पर वह साथ छोड़ गया अपना, हमें लिया सदगुरू नें खेंच।।
रह गए चिपक श्री चरनों से, ज्यों लोहा चुम्बक के साथ।
ताक़त न थी अलग हो जाऊं, इस प्रकार का पकड़ा हाथ।।
एक वर्ष उपरान्त मंत्र, पाने को शुभ अवसर आया।
बड़े प्रेम से श्री सदगुरू ने, चरण कूल निज बिठलाया।।
घर वाले लठ पकड़ा करते, मार पड़ा करती हमपर।
लेकिन बाज़ नहीं आते हम, हम पै होता नहीं असर।।
आश्रम के बाजू में कोल्हू, अपना ही है इक दिन हम।
पिट रहे थे बापू के हाथों, सुन रहे थे महाराज रूदन।।
थोड़ी देर बाद फिर आगए, महाराज बोले क्यों रे।
अभी पिटा था, अभी आ गया, पिटने का डर नहीं तुझे।।
बैठा सुनता रहा मौन हो, दिया न मैंने जब उत्तर।
बोले जा अब नहीं पिटेगा, मानो रोक लगी हमपर।।
कभी न बोले मात पिता फिर, धमकाया तक नहीं कभी।
पिटने छितने से तो मुक्ती, अपने को उस वक्त मिली।।
आते जाते रहे वहाँ हम, चढ़ता गया वहाँ का रंग।
आज और कल और नित्यप्रति, परिर्वतन के बन गए ढंग।।
एक बार खाई खुद रही थी, झगड़ पड़े अपने घर के।
थी ज़मीन बाजू में अपनी, बाप रोकने को उट्ठे।।
नौबत बनी लड़ाई की जब, हमें पक्ष था आश्रम का।
धर्म युद्ध है आज पिता से, युद्ध हमारा होवेगा।।

हमने लट्ठ सम्भाला अपना, और फावला ले करके।
लग गए खाई बांधने जाकर, बाप नहीं बोले हमसे।।
मरना और मारना पेशा, रहा सदा रजपूतों का।
जान जाय या रहे कभी भी, धर्म नहीं छोड़ा जाता।।
कभी धर्म संकट आ जाते, उग्र सामने मानव के।
जिसमें टिकना दुर्लभ होता, रह जाते हैं बहकर के।।
महिमाँ है विचित्र सदगुरू की, जबाँ न कर सकती उल्लेख।
वे ही केवल समझ सकेंगे, लिया जिन्होंने उनको देख।।
महाराज यह कहकर इक दिन, बंगले में जाकर बैठे।
कोइ हमारे पास न जाना, और बोलना मत हमसे।।
भजन दास चरणामृत लेकर, जा पहुंचे सदगुरू के पास।
हाथ कर दिया महाराज ने, परसदिया उसपर परशाद।।
बैठे रहे लिये कर यों ही, मुंह तक हाथ न पहुंचाया।
भजनदास ने इन्तज़ार की, पर परशाद नहीं खाया।।
बोला भजनदास अजी लेलो, महाराज का हाथ हिला।
हम ले चुके हाथ है ख़ाली, कर ही से संकेत किया।।
ख़ाली हाथ हिला सदगुरू का, भजनदास ने जब देखा।
तो विस्मय सा हुआ उसे कुछ, खिंची अचम्भे की रेखा।।
द्रश्य देख रहे थे हम भी यह, चकित हुवे हम भी लखकर।
महिमां बड़ी अजब सदगुरू की, बलि बलि जाऊ में सदगुरू पर।।
हमें मिला सब कुछ उन ही से, और बहुत कुछ दिखलाया।
यात्राऐं की बहुत साथ में, चारों खूंटों घुमवाया।।
कहें काहे से ज़बां न मुंह में, जिससे हो उनकी तारीफ़।
साक्षात् परमातम थे वे, श्री राज जी विस्वे वीस।।
ज्ञान न कुछ पहचान न कुछ, था अपने को अंधा विश्वास।
लगे रहे संग लिये आसरा, मिला हमें उनका सहवास।।
जिसके लिये तड़पती दुनियां, सहज सुलभ हमने पाया।
सब कुछ मिला हमें प्रीतम से, हम पै रही छत्र छाया।।
पिया ओउम् परकाश तुम्हारा, भेज रहा तुमपर अर्ज़ी।
रखना अपने ही चरनों में, तुम बिन कोइ न हमदर्दी।।

श्रीमती पूरनबाई पतनी तिरलोक चंद रिवाड़ी

बूंद बूंद से भरें सरोवर, घूंट घूंट में रित जाते।
रोके रूका न जाता अब तक, रूके न अब तक जो आते।।
आने वाले की मरज़ी है, जहां मिलै मन आ जावे।
देन है यह देने वाले की, जो जी आवे दे जावे।।
सदियों फोड़ फोड़ सिर मरते, किन्तु न मिलता इक किनका।
इक पल में पा जाता है वह, जो सम्बंधी पीतम का।।
अपने को ख़ुद वे जानें बस, और सभी की है बकवास।
या वे जानें जिन्हें जनादें, या वे जानें जिनके पास।।
वक्त चींथड़ों में कटते निज, पर हैं उनके घर श्री राज।
बात न सामानों की उनके, मनमें बसते हैं महाराज।।
पूरनबाई नाम हमारा, रेवाड़ी है अपना ग्राम।
पती श्री तिरलोक चंद हैं, नवतनपुरी लिया निज नाम।।
वक्त काटने को कटते हैं, लेकिन सम्भल सम्भल करके।
जीने को जीते भी हैं ही, लेकिन कुछ मर मर करके।।
बड़ा बुरा है दाग़ ग़रीबी, बड़ी दूर से जंच जाता।
इससे सब बच बच कर चलते, निकट कोइ विरला आता।।
यह तो कृपा कहूंगी उनकी, कहवालो सौ बार कृपा।
के हम जैसों को सदगुरू ने, अपने साये में रक्खा।।
बात बहुत हैं पर क्या कहदें, देनी हैं उनमें से कम।
एक मामला ऐसा उट्ठा, जिससे परेशान थे हम।।
एक ज़रूरत पर अपना घर, हमने गिरवी दे डाला।
बैठ गया कब्ज़ा करके वह, उस घर में लेने वाला।।
और एक हिस्सा उस घर का, बचा लिया अपनी ख़ातिर।
उसने दबा लिया उसको भी, उसपर चला मुकदमां फिर।।
पड़ना पड़ा किराये का घर, लेकर यों थे परेशान सब हम।
बैठ बैठ कर रोज़ राज जी, से अरज़ी करते थे हम।।
हे सदगुरू महाराज हमारा, सिवा आपके बोलो कौन।
कैसे दिवस कटेंगे यदि तुम, सब कुछ देख रहोगे मौन।।
सदगुरू थे पधरे हुवे अंदर, महाराज श्री रामरतन।
हम क्या जानें और किसी को, थे न्यौछावर उनपर हम।।
पड़ी हुई थी घर पर इकदिन, परेशान सी शैया पर।
घर बिन कैसे रहा जायगा, कृपा न करते क्यों हमपर।।

दरवाज़े बंद थे अंदर के, संकल कुंडे से मजबूत।
नींद अचानक आ गइ मुझको, आन चढ़ा सर निद्रा भूत।।
दी आवाज़ बाहर से पूरन, पूरन खुलगए साथ किवाड़।
अंदर आकर जो लिहाफ़ मैं, ओढ़ रही थी दिया उधाड़।।
पकड़ हाथ बोले बैठी हो, देखा तो निकले महाराज।
बोले उठ सामान बांध ले, ताला खोल दिया है आज।।
ढंडवालो अपने मकान को, दावा हो माफ़िक तेरे।
गाजे बाजे ढोल ढमाके, बजते कान पड़े मेरे।।
चली गई मैं बैठी होती, कान पड़े जब ये संदेश।
खड़े सामने देखे सदगुरू, रामरतन साहिब हृदयेश।।
उठकर चरन लिये झट मैने, अंतर ध्यान हुवे पश्चात्।
कमरे में रहगई खड़ी मैं, लोप हुवा इक साथ प्रकाश।।
द्वारा मिला खुला निज चौपट, सोचा है इन ही का काम।
और शक्ति किसमें है इतनी, हाथ लगावे मुझ को आन।।
फूली नहीं समाई फिर मैं, खिली हृदय की बंद कली।
नहीं रात भर आँख लगी फिर, अक़ल हुई विचली विचली।।
प्रातः कर स्नान गई जब, करने सदगुरू का परनाम।
मथ्था टेक के ज्यों सर उट्ठा, उत्तर में बोले परनाम।।
सदगुरू चित्र देखती रह गइ, आइ किधर से यह आवाज़।
चित्र मुझे हंसता सा दीखा, मैं बोली क्या लीला आज।।
नमन किया झुक बार बार फिर, साक्षात में कौन कसर।
इक अदभुत सी मिली देन यह, टूट पड़ी किरपा हम पर।।
हैं प्रतक्ष उस दिन से घर पर, अपना ले करके सब भार।
बैठे हैं घर श्री राज जी, पल पल मिलता है दीदार।।
शक होवे होने दो जिनको, हमें न शक तिलभर श्रीमान।
जान लिया हैं श्री राज जी, हुआ पूर्णतः इनका ज्ञान।।
लड़का एक गोद था मेरे, लगी उसे कुछ बीमारी।
ठीक हुवा नहीं गया डूबता, दवा गोलियां कर हारी।।
गई शेरपुर लेकर उसको, सर टिकवाया चरनों पर।
आते ही भीतर दस दिन के, ले गई मौत उठा ऊपर।।
कर न पाई मैं सहन चोट यह, फिरी लोचती सारे दिन।
हूक हृदय में उठती थी इक, रोना आता था पल छिन।।
लगी हुई थी मैं रोने में, महाराज जी को देखा।
देकर डाट मुझे ज़ोरों की, झुंझलाकर मुझ से पूछा।।
रोना ही था तो गुरू चरनों, पर क्यों लेकर गई उसे।

रोती है उन ही की खातिर, जान छुटी तेरी जिससे।।
लाख इलाजों में भी मरता, साथ साथ तंग कर जाता।
रोके रूकता नहीं किसी के, था तेरा वह दुख दाता।।
मुक्त हुवा वह तू भी छूटी, धन्यवाद दे सदगुरू को।
मर जाती वरना मल धोती, रोना दिखलाती किसको।।
सार बात का उनसे पाकर, शान्त हुआ रोना अपना।
कौन कृपा कर सकता इतनी, किया पिया जी ने जितना।।
किया मुक्त, मुक्ती मुझ को भी, एक तीर में दो दो मार।
बातूनी बातें क्या जानें, वे बक़ूफ़ हम ठेठ गंवार।।
बेशक इल्म लिये बैठे हैं, साथ साथ शक का भण्डार।
बना लिया शायद दुनियां ने, इस वाँणी को कारो बार।।
पावे रतन जो ग़ोता मारे, नहीं किनारे पर पाते।
रतन रतन कहते रहते पर, रतन हाथ में नंहि आते।।
महाराज श्री रामरतन जी, को पधरा रक्खा है घर पर।
हम ज़िंदे उनकी किरपा से, जो पल पल रहती हमपर।।
महाराज जी की चर्चा पर, रेवाड़ी का है कुछ साथ।
नाम न लेने देता उनका, होने लगते हैं नाराज़।।
बिगड़ी बात एक दिन काफ़ी, बंद हुआ मंदिर जाना।
नित्य कर्म कैसे हो पूरा, जो चलता है रोज़ाना।।
रोने लगी बैठ घर इक दिन, महाराज क्या होगा अब।
तुम्हें भला क्यों कर विसारदें, तौहमत है हमपर बेढब।।
फ़तवा हमें कुफ्र का देते, कुछ कुछ कहता सुंदर साथ।
आई इक आवाज़ पिया की, कहने लगे बुलाकर पास।।
मंदिर क्यों जातीं जब यों है, हम तो हैं मौजूद यहां।
वहां दिखावा ही तो है यह, नित्य कर्म सब करो यहां।।
अपनों के ढिंग अपने हैं तो, जो तेरा है तेरे पास।
जिसका जो वह वहीं रहेगा, पगली तू क्यों हुई उदास।।
बोले कर सिंगार खड़ी हो, और बांध पांवों घुंघरू।
नांच देखने को मन करता, करदो अपना नृत्य शुरू।।
किया आज्ञा का पालन झट, शक्ति कहाँ से आ उतरी।
सुबह चार तक रही नाँचती, ऐसी उसदम हवा भरी।।
जग सोया मैं रही नाँच में, परमानंद यहीं पाया।
विध विध नाँच नची मैं रातों, किया जो साजन को भाया।।
बोले मंदिर में यह कब है, जो तुमने घर पर पाया।
वहां दिखावा करने जाते, समझ हमारी झट आया।।

मैंने चरण चूमकर उनके, बोली सत्य कहा महाराज।
बख़्शिष है यह सिर्फ़ आपकी, और कृपा का है परशाद।।
थोड़े थोड़े रोज़ छोड़कर, नचवाते रहते प्रीतम।
घटी बहुत घटनाऐं ऐसी, रही मैं ताबेदार हुकुम।।
क़ायम करीं अंगनाऐं यों, समझो उन्हें हरिक के पास।
हरिक पाएगी उनके हाथों, ज्ञान ध्यान औ हास विलास।।
हम निर्द्वन्द उसी दिन से हैं, नहीं रहा उन संग बिछोह।
अनल विरह की पास न अपने, यह प्रशाद बख़्शा हमको।।
कृपा बड़ी है दया बड़ी है, नज़र है हमपर प्रीतम की।
किस मुंह से मैं करूं बड़ाई, लीला है विचित्र उनकी।।
पूरन नित नित बलि बलि जाती, पल पल वंदन करती नांथ।
जैसे अब तक रक्खी किरपा, रक्खे रहना सर पर हाथ।।

श्री सदगुरू से बीतक लेना

एक बार सदगुरू साहिब का, चरन थामके हम बोले।
अगर आपसे हम कुछ मांगे, महाराज जी दे दोगे।।
देने लायक़ होगी देंगे, अगर हुवे देने लायक़।
लायक़ हैं प्रभू आप ही केवल, और न कोई इस लायक़।।
हमें आपकी बीतक चाहिये, प्रभु लिखने की इच्छा है।
लिखने लायक और बहुत कुछ, बीतक में क्या रक्खा है।।
यह क्या कहा कि क्या रक्खा है, बीतक में चरित्र होता।
जिनपै चलना नंहि आता यहाँ, उसे देख कर पग उठता।।
बड़ी सहायक होती बीतक, देती रहती सदा सबक।
और मार्ग दर्शन करती है, मुमुक्षओं का नित बीतक।।
याद दिलाती रहती बीतक, थे बुर्ज़ुग अपने ऐसे।
धन्य वही जो महापुरूषों के, पद चिन्हों की राह चले।।
महा पुरूष हर एक छोड़कर, ही जाता है अपनी छाप।
हमें जगत के लिये चाहिये, कथा आपकी आतम नांथ।।
मुश्किल से स्वीकारा सदगुरू, ने हम मेरठ आयेंगे।
बीबी की कोठी पै ठहरें, बीतक वहीं सुनायेंगे।।
अतः सुनिश्चित समय महाप्रभु, कोठी पै मेरठ आये।
हमें हमारे घर से सदगुरू, ने फ़ौरन हम बुलवाये।।
जिस कमरे में बैठे हम, पहरे पै रानी चलसीना।
किया नहीं विश्वास किसी का, बैठ के ख़ुद पहरा दीना।।
क्या मजाल जावे अंदर कोइ, अंदर हम औ श्री महाराज।
सुनी गई ऐकान्त वास में, हक की हक्क़ानी आवाज़।।
बोले कुछ उदास से होकर, करवा रहा तू जो कुछ आज।
जितना ज़ोर पड़ै उल्टी में, पड़ा है उससे ज्यादा आज।।
उल्टी में तो एक रोज़ का, खाया उल्टा जाता है।
पर तू हमसे जीवन भर की, कै करवाना चाहता है।।
ज़ोर पड़ रहा हैगा तुमपै, झूंट नहीं कह रहे हैं आप।
मांग रहा मैं भी मजबूरी, दुनियां की है यह सौगात।।
महाराज जी बोले हमने, भ्रमण किया है तीन प्रकार।
परिक्रमां स्थूल से है इक, जिसमें है शरीर आधार।।
बुत की सीमां बुतों तलक है, बुत का बुत से हुआ मिलाप।
परिक्रमा दूजी सूक्षम से, जिसमें मन का कार्य कलाप।।

तीजी परिक्रमां रूहनी, आतम से आतम का योग।
मिली आत्मां आत्माओं से, हो पाया जिनसे संयोग।।
परिक्रमां दो दीं सदगुरू ने, कहा तीसरी पर ऐसे।
अभी नहीं फिर देंगे तीजी, उसका समय नहीं है ये।।
यही ग़नीमत समझी हमने, कम से कम अब दो देदी।
मिल जायेगी कभी तीसरी, जब उनकी किरपा होगी।।
बीतक बीती को कहते हैं, किस किस पै क्या क्या बीती।
किसकी अब बन बैठी आकर, और अंगना किसकी थी।।
कथनी वो जो कथी गई हो, बात यहां जिसकी जैसी।
वैसी ही यह लिखी गई है, चर्चा वैसी की वैसी।।
बैठे थे कुछ चिंतित से, महाराज एक दिन आश्रम में।
बात शेरपुर की ही है यह, और वहीं से मिली हमें।।
निर्णय है यह दो पक्षों में, होवे जो भी इसमें सत्य।
ज़रा ग़ौर से सुनो साथ जी, खोजो इसमें क्या है तथ्य।।
कितनी है गम्भीर बात यह, खोल रहा जो तुमको आज।
गये छोड़कर क्यों वे तुमको, करो आज इसका अंदाज़।।
तुम्हें किसी को तो फ़ुरसत नंहि, ना फ़ुरसत जब थी ना अब।
बस प्रताप ही को फ़ुरसत थी, इसका साफ़ यही मतलब।।
फिरा यों हि सदगुरू के पीछे, समय किया यों ही बरबाद।
एक बात का समय है तुम पै, है प्रताप की सब बकवाद।।
श्री जगदीश आहूजा ने भी, घुड़का सदगुरू को बेढब।
क्या करते हैं आप इन्हें क्यों, लिखवाते अपनी बीतक।।
बीतक एक चला करती है, है श्री प्रांणनांथ जी की।
फिर भी बीतक दी तुमने तो, फाड़ फेंकदी जायेगी।।
ईश्वर कुंवर चंदसीने ने, जब यह वार्तालाप सुना।
उनसे सहन न हो पाई यह, ख़बर दार फिर मत कहना।।
यह तो बीतक नहीं फटे जो, इस धोके में मत रहना।
वही फाड़ कर फेंक दिया, जावेगा कान खोल सुनना।।
जिसमें हिम्मत हो कोइ करके, देखो तो इसका अपमान।
हाथ राजपूतों के है यह, हो जावें इस पै कुरबान।।
आइन्दा मुंह से ना निकले, दिया जो तुमने आज सबक।
सहन न हो यह यहां किसी से, क्या छेड़ी आके बकबक।।
महाराज इक शब्द न बोले, रही हृदय में हृदय व्यथा।
श्री सदगुरू पै क्या बीती, क्या सुनकर उनपै असर पड़ा।।
महाराज बोले, सदगुरू से, मांगे थे हमने दो साल।

पर मंजूरी नहीं मिली, अपना पूरा नंहि हुआ सवाल।।
चोली का मंदिर बनजाता, पोतियों के हो जाते ब्याह।
दख़ल हुकुम में कुछ नंहि अपना, थी अपनी यह अंतिम चाह।।
सुंदरसाथ सुना कुछ तुमने, तोले कुछ सदगुरू के बोल।
बोल बोल में राज़ छिपे हैं, कोइ न इनको सकता खोल।।
जिसकी बात वही जाने बस, या जिससे वह कहवादे।
दख़ल खुदा की बातों में, किसकी मजाल आकर दे दे।।
हाथ बटन पै है अक्सर, यह कहते उन्हें सुना होगा।
और रील चालू होगी अब, यह भी बोल उन्हीं का था।।
बड़े अर्थ करती थी उम्मत, बड़ी हुई इसपर चर्चा।
लेकिन परदे के पीछे क्या, है यह कभी नहीं सोचा।।
लगी हुई थी खेल कूद में, पूरी की पूरी उम्मत।
हाल ख़ुदाई बंदों का क्या, है बस कोई पूछो मत।।
बुरा मान सकता है कोई, लिक्खा अगर भीतरी हाल।
यह घर किसी और का है भइ, यहां राज करता दज्जाल।।

खोपड़ा फोड़ सौदा

महाराज जी आए हुवे थे, श्री मजाहिदपुर इक बार।
और बाहर के साथी जन भी, आए हुवे थे संग दो चार।।
पहुंच गये हम भी मेरठ से, चलसीने से रानी जी।
ठहरे कई रोज़ सब के सब, अच्छी खासी मौज रही।।
सत्संग और कीर्तन चर्चा, रोज़ रही अमृत वर्षा।
यथा भाव सब ही ने अपनी, तृप्ती का रस पान किया।।
समय शाम का तख़्त बिछा था, जिसपर लेटे थे महाराज।
ईश्वर कुंवर विचित्र कुमारी, थी दोनों ही उनके पास।।
मैं भी जा बैठा चटाइ पर, सुनने को सदगुरू की बात।
मौन पड़े थे बहुत देर से, आस्मान को रहे थे ताक।।
पहले तो उठकर बैठे हुए, फिर बोले पछता सी कर।
यहाँ साथ मतलब से आता, दुख का मारा ज्यादा तर।।
मुक्ती के लिए कोइ न आता, पास हमारे बीबी जी।
इक सौदा हम पै ऐसा है, जिसका ग्राहक कोइ नहीं।।
लेने वाला नहीं कहीं तक, दूर दूर तक देख लिया।
समझ न आती इस सौदे को, बीबी किसको जाए दिया।।
बीबी ईश्वर कुंवर ये सुनके, बोलीं दामन फेलाके।
महाराज जी लाओ मुझे दो, जा मांगा आगे जाके।।
तेरे बसकी नहीं थामना, फिर ऐसी नंहि रहने की।
पल्ले में पड़ते ही उसके, तू पागल हो जायेगी।।
पागल हुई तो हो जाने दो, मेरे कहां धरी औलाद।
जो आकर के मुझे रोएगी, लाओ मुझे दे दो महाराज।।
झूंडों में से निकल निकलकर, आन खड़े हों छाती पर।
म्हारी थी ऐसी क्यों करदी, जैसी थी वैसी ही कर।।
पीछे हट तेरे बसकी नंहि, क्या लेगी कर अपना काम।
इस सौदे को क्या थामेगी, तू पहले आपे को थाम।।
उधर बात हो रहीं बीबी से, हम में उठी फुरहरी सी।
उठ रही सिहरन सी शरीर में, नहीं बैठने दे रही थी।।
चल उठ चल उठ हो रही अंदर, कौतूहल सा था बेहद।
जैसे कोई भण्डार लुट रहा, लूटता क्यों नंहि तू भी बढ़।।
जैसे बिना खिवैया कोई, उगम गाइ फिर रही हो नाव।
अख़िर उठना पड़ा विवश हो, सदगुरू के जा पकड़े पांव।।

यह नालायक़ भी गाहक है, पल्ला फैला अपना भी।
अगर हों लायक इस सौदेके, चाह रहे लेना हम भी।।
यह सौदा ऐसा है जिससे, धड़ पर शीष नहीं रहते।
बिना शीष का धड़ है अपना, भला शीष हमपै कब थे।।
शीष दक्षणां में दे दिया था, मंत्र दिया था जब तुमने।
कुछ भी न थी दक्षणा पल्ले, केवल शीष दिया हमने।।
धड़ ही धड़ है अब प्रताप पै, धड़ अपना यदि लायक हो।
तो कृप्या वह क्या सामान है, ग्राहक हैं हम भी दे दो।।
सुन अपनी ख़ामोश हो गये, थोड़ी देर बाद बोले।
ख़ैर न समझे धड़ परसर की, जो भी इस सौदे को ले।।
सौ बातों की एक बात है, हज्ज़ारों का एक निंचोड़।
नाम भी ऐसा काम है जैसा, कहते इसे खोपड़ा फोड़।।
बोला नहीं फेर कोई भी, सब पर छाई ख़ामोशी।
नौकर बोला आकर के, आ गई सवारी बीबी जी।।
बीबी जी चलदीं चलसीना, महाराज ने विदा किया।
हमें न जाने दिया साथ में, तू क्यों जाता रोक लिया।।
करके विदा रानियों को, आ बैठे उसी चौंतरे पर।
हम से निज झोली मंगवाई, टंगी थी गादी के ऊपर।।
उसमें से डब्बा निकालके, चूरन लिया एक चुकटी।
चुटकी से कुछ कम निकालके, श्री सदगुरू ने हमको दी।।
फैला दिया हाथ हमने भी, चूरन हमने भी लेली।
गौरी आरती खान पान फिर, इन कामों से जब निमटी।।
गादी लग गई महाराज की, बाहर मंदिर के आगे।
बिछे फ़र्श कीर्तन के लिए, बैठ गये सारे जाके।।
भजन नोट बुक से निकालके, मस्ती में आके हमने।
ध्वनी कीर्तन की बोली इक, साथ दिया अपना सबने।।
गूंजी जब उन्मत्त तरंगें, उदय हुवा कुछ ऐसा रंग।
शब्द जो निकले मुक्त कंठ से, था अजीब ही उनका ढंग।।
स्वयं हमें अनुभव हो रहा था, आज स्वरों में मधुर मिठास।
दर्शा रहे हम महाराज को, यही हैं पीतम ख़ासुलख़ास।।
देख देख छवि महाराज की, डिगा जा रहा था ईमान।
ऐसी झलकमार रही उनमें, जैसे सन्मुख हों सुबहान।।
उठा अजब तूफ़ान इश्क का, बदले जिसमें द्रश्य हरेक।
महाराज बन गये राज जी, इधर रह गये बस हम एक।।
रूप ग़ज़ब का ग़ज़ब ढा रहा, सिंहासन की छटा विचित्र।

क्या वरनूं सिंगार सुरंगी, वरनन नंहि हो रहे वे चित्र।।
उड़ गये द्रश्य अलख हुवे सारे, दिखले लगे फेर सारे।
देखा तो कोइ उठा रहा था, हाथ पकड़कर के म्हारे।।
बैठ गया मैं कमर लगाकर, इक थमले से आसन पर।
ध्यान हटाये हट न रहा था, लगी निगाहें सदगुरू पर।।
ओमप्रकाश ने छेड़ी ध्वनि इक, पड़ी कान में मधुर तरंग।
चोट शब्द की लग रही हमको, मारे दे रहा ब्रह्मानंद।।
क्या कहदें हम उस दिन क्या थे, हम बैठे थे हुवे पूरन।
क्यों कि श्री सदगुरू हाथों का, खाए हुवे थे हम चूरन।।
अजब कश्मकश में निज आतम, बाद एक के इक जल्वा।
बैठे धिरे हुवे जल्वों से, होश हमारा हुवा हवा।।
दीखी झट दो सेज बिछी हुइ, श्री राज लेटे इक पै।
कद्दे आदम हार बिछा था, फूलों का सुंदर उसपै।।
लगा मेरी आतम को जैसे, इन्तज़ार हो रही मेरी।
सेज जो ख़ाली पड़ी हुई है, चल उठके यह है तेरी।।
इधर स्त्री भी हो गई मैं, उठी और सोने चलदी।
किन्तु उधर आवाज़ उठी यह, ठाओ मेरा आसन जल्दी।।
भग गये अंदर आसन लेकर, कर लिए दर मंदिर के बंद।
हमले पर ज्यों किसी बाज़ के, उड़ जाते इक साथ परिंद।।
आसन अपना बाहर रह गया, लोग लुटा गए आसन पर।
सुंदर साथ सभी मंदिर में, हमीं एक उस दिन बाहर।।
हमें द्रश्य पै द्रश्य दीख रहे, पड़े देख रहे उनके सीन।
झटका मेरा हाथ पकड़ के, तोड़ी जा रही जैसे नींद।।
दिखला रहे आंख खुलवाके, देख जागकर कौन खड़ा।
आंख खोलकर देखा तो हमें, द्रश्य और ही नज़र पड़ा।।
साक्षात श्री राज रूप में, खड़े हैं रामरतन महाराज।
कह रहे हैं आ पीछे पीछे, तुझे घुमाके लावे आज।।
हो लिए हम उठ उनके पीछे, बिछे ज़मीं पै फूल ही फूल।
समां अजब है द्रश्य अजब हैं, और तरह के हैं स्थूल।।
घुसे एक द्वारे से अंदर, भवन एक है बड़ा विशाल।
बीचो बीच खड़े हुवे जाकर, मीलों ऊंचा है वह हौल।।
लटक रहे फ़नूस चौतरफ़ा, जिनसे बिखर रही चमकार।
जो फ़ानूरा है सिंहासन पै, उसकी तो है छटा अपार।।
सिंहासन पै महाराज हैं, चारों ओर है सुंदर साथ।
लेकिन सभी टूल्ह रहीं बैठी, कोइ नहीं कर रही है बात।।

हमने पूछा महाराज जी, कौन हैं ये क्या इनका हाल।
होती कौन बहन है तेरी, देख जुथ्थ का अपने हाल।।
इन ही की तो सुरता हो तुम, पड़ी हो नींचे खेलों में।
आब ही अपनी खो बैठीं सब, घुल मिल आज कुमेलों में।।
झूंटे हो गए अब दावे सब, रही न वापसी की उम्मीद।
मिलें न आकर परातमों में, तब तक खुले न इनकी नींद।।
दिखलाया झंझोड़ कर इक को, बिना आंख खोले हंसदी।
हाथ हटाते ही फिर सो गइ, देखी कुछ हालत ऐसी।।
सैर कराकर परमधाम की, ले आये वापिस महाराज।
लेकिन इस से निज आतम में, भड़क उठी मिलने की आग।।
पड़ना मौत हुआ बिस्तर पै, परिक्रमां लग गए करने।
मिलने को व्याकुल थी आतम, श्री राज हैं मंदिर में।।
रह के पास जुदा क्यों रहें अब, अंदर घुस बैठा यह भाव।
चाहे कुछ हो मिलना है अब, डोल गये हम जैसे नांथ।।
बड़े द्वार पीटे चौतरफ़ा, भागा फिरा मैं बहुतेरा।
किन्तु किसी ने दया न खाई, फिरा तड़पता तन मेरा।।
बुझी न अपनी आग मिलन की, ज्यों का त्यों ही रहा वियोग।
मारे ज़ोर इश्क ने काफ़ी, बना नहीं मिलनी संयोग।।
निकट जौनसे द्वारे के, रहता था सदगुरू का बिस्तर।
पड़ गये साष्टांग औंधे मुंह, हम उस द्वारे से सटकर।।
जागा उस दिन इश्क क्योंकि, परदे जो उधड़ चुके सारे।
परिचय न थी थी यों मजबूरी, जानके क्यों अब अलग रहें।
मर लिए दुखड़े सहते सहते, अब आगे किस लिये सहें।।
पड़े पड़े द्वारे पर सो गए, जब थक कर हो गये निढाल।
डाली गई हम पै रज़ाई फिर, देखके अपना ऐसा हाल।।
पर किवाड़ नंहि खुले, सुबह जब बजे आरती के घंटे।
हम तो परमधाम में हैं यह, सोच रहे थे पड़े पड़े।।
सजदे में हैं श्री राज के, दिख रही छवि आंखों आगे।
कुछ कुछ थी अचेतना सी भी, कुछ कुछ थे जागे जागे।।
परमधाम नंहि उतरा चित से, आत्माओं में बसा रहा।
यह विश्वास न बिलकुल भी, के हूं ज़मीन पै पड़ा हुआ।।
जब समाप्त हो चुकी आरती, फिर किवाड़ वह खुलवाया।
पड़ा हुआ था धूल धूसरित, झाड़ पूंछकर उठवाया।।
जब दीखे महाराज झपटकर, लिपट गया उन चरनों से।
अहो भाग्य मिल गये राज जी, ना जाने किन करमों से।।

खूब रोए पड़कर चरनों में, खूब धोए आंखों के मैल।
उस दिन सदगुरू समझ आ गये, समझ आ गया को है गैल।।
समझ आ गया अपना आपा, समझ आ गये खेल सरूप।
समझ आ गई सूरत हक्की, पधरा गुरू में जिसका रूप।।
परिचय के उपरान्त जनमता, इश्क ये है शत प्रति शत सत्य।
और सत्य में वास ब्रह्म को, शेष सभी कुछ समझ असत्य।।
जानके भी अनजान बने रहें, हम से ज़्यादा मूरख कौन।
परिचय दिया बोलने के लिए, बोलेंगे अब रहें न मौन।।

मंदिर धोबी घाट सहारनपुर बनना

मुल्क बंटा जिसदम आपस में, हिन्दुस्तान व पाकिस्तान।
सुविधा मिली उसी को जो भी, गया शेरपुर को इन्सान।।
आश्रय दिया वहां जो पहुंचा, फैल गया वहां जिसका हाथ।
वही वस्तु मिल गई उसे वहाँ, हुआ न कोई वहां निराश।।
सभी क़िस्म के रहते जगमें, भले बुरों का यह बाज़ार।
चीज़ हरिक मिल जाती है यहां, यहां सार भी यहीं असार।।
कक्कड़ गंज बाज़ार सहारन, पुर में था इक घेर महान।
जो अनाज मण्डी में स्थित, उसही में थीं आठ दुकान।।
पाकिस्तान चले गये मालिक, उसके, माल हुआ सरकार।
जो हिन्दु आऐ थे उधर से, थे उस धन के वे हकदार।।
मोहन लाल सहारनपुर के, आड़त का धंधा जिनका।
जायदाद लेने की ख़ातिर, मन ललचाया मोहन का।।
रिफ्यूजी ही ले सकते थे, अपने क्लेमों के बदले।
अतः योजना रचकर सदगुरू, को फुसलाने जा पहुंचे।।
आग्रह किया श्री सदगुरू से, घेर ख़रिदवादो महाराज।
आधा दे दूंगा मंदिर को, आधा मुझे छोड़दें आप।।
बड़ा ख़ूबसूरत लालच दिया, अर्पण की दो मुही ज़बान।
अंदर क्या है छिपा जाल में, ज्ञान को मूंड गया अज्ञान।।
एक चाल के चलने वाले, कैसे चलें दो ढंगी चाल।
फांस रहा है शिष्य गुरू को, बुना गया इस ढंग से जाल।।
रिफ्यूजी ही थे अधिकारी, हक न और को लेने का।
खड़ा किया जगदीश चंद को, वह जायदाद दिवाने का।।
किन्तु शर्त थी मंदिर के लिए, देना होगा आधा घेर।
हों मंजूर अगर यह शर्तें, बोली बोलेंगे हम फेर।।
मोहन मान गया सब शर्तें, तब छेड़ा गया उसका काम।
क्लेमों पर वह घेरा ख़रीदा, औ मोहन के कर दिया नाम।।
बीस लाख क़ीमत जिसकी हो, बारह सौ गज़ का मैदान।
मध्य ठेठ बिज़नैस सेंटर के, भला डिगे क्यों ना ईमान।।
टरकाया काफ़ी दिन फिर तो, सर पर लालच हुआ सवार।
जायदाद यह ना दी जावे, नुक़्ते खोजे गये हज़ार।।
और तरह की आँखें हुइ अब, और तरह की हो गइ चाल।
खाल चाहो तो दे सकते हैं, पर बसकी नंहि देना माल।।

छूटी बातें आंख मिलाकर, दांए बांए मुंह करता बात।
कतराने लग गए मिलने से, अगर पहुंचता सुंदरसाथ।।
आख़िर इक दिन खुली बात यह, मंदिर छत पर बनवादें।
जैसे ढंग का आप बतावें, वैसा ही हम चिनवादें।।
तत्व निकल आया बातों से, रही न परदे की अब बात।
जगह न देने की नीयत ने, कर दिए ज़हरीले हालात।।
सुंदरसाथ बटा दो दल में, इक उनके इक सब के साथ।
रह गइ दालें दलिया होकर, ठीक किसी के नंहि जज़्बात।।
एक वर्ष के बाद स्वतः ही, रक्खा इक दूजा प्रस्ताव।
इतनी जगह मोल लेदूंगा, जहां कहीं भी तुम बतलाओ।।
महाराज तो मौन हो गये, अंदर ही अंदर था क्रोध।
मौन अवस्था मरज़ी समझी, करी जगह की खुद ही खोज।।
धोबी घाट खेत में से कुछ, हिस्सा आख़िर मोल लिया।
महाराज श्री राम रतन के, नाम रजिस्टर दर्ज किया।।
नाम कराते ही गुरू के फिर, उदघाटन की बात उठी।
किसी तरह गुरू को लेजाकर, उस मंदिर की नींव खुदी।।
हाथ फावला दे सदगुरू के, धरती में भी लगवाया।
फ़ोटो ग्राफर के जरिये, उदघाटन फ़ोटो खिंचवाया।।
इस प्रकार वहां हुआ महूरत, गुरू के कर कमलों द्वारा।
कार्यभार मोहन ही पै रहा, जो कुछ अब तक का सारा।।
क्यों कि समझते थे सम्पत्ती, दान करी हुई है अपनी।
देख रेख में रहे हमारी, बात वहां यह आन बनी।।
खोल लिया स्कूल बनाकर, के थोड़े कमरे वमरे।
चतर सैन छोटा भाई था, जो उसके अध्यक्ष बने।।
केन्द्र बना व्यवसायिक वो यों, धर्म कर्म का नाम नहीं।
नज़र हटी साथी जन की भी, श्रद्धा उसपै नहीं रही।।
पीछे हट गये दाता गण सब, जहां न मंदिर ना स्थान।
भला कौन देता है जाकर, ऐसे स्थानों को दान।।
ना हिसाब ही ना किताब ही, पूछ ताछ भी नहीं रही।
सदगुरू ने भी नज़र हटाली, जब अपनी सम्पत्ति नहीं।।
पर्व गुरू पूनम जब आता, मनता है नित खाले पार।
यह सौभाग्य सहारनपुर को, अंती मंदिर को अधिकार।।
गुरू पूनम दी सहारनपुर को, मेला दिया शेरपुर को।
बीतक श्री मजाहिदपुर को, तीनों निधि दीं तीनों को।।
गुरू पूनम पै मैं प्रताप भी, इत्तफ़ाक की है यह बात।

नींव पड़ चुकी उस मंदिर की, जहा है इस दम धोबी घाट।।
जिसका कार्यभार मोहन के, हाथों में ही अब तक था।
अंती के मंदिर से उनमें, कुछ तनाव सा रहता था।।
पे नंहि जाते अंती मंदिर, वे नंहि जाते धोबी घाट।
दो हिस्सों में बंटा सहारन, पुर का सारा सुंदर साथ।।
शुरू हुई दोनों मंदरों में, गुरू पूनम की तय्यारी।
बनी रसोई दोनों जानिब, फूट साथ में थी भारी।।
पर्व गुरू पूनम अंती के, मंदिर में सम्पन्न हुआ।
धोबी घाट पधारें सदगुरू, उन सब की भी थी इच्छा।।
किन्तु मना करदी सदगुरू ने, झिड़के ले जाने वाले।
मारे वे भी झिड़क झिड़क, जो सुफ़ारशें करने वाले।।
आप मुरादी ख़ुद फ़रियादी, किसी से पूछी पहले बात।
पर्व मनालें क्या हम भी वहाँ, कैसे हों दो दो इक साथ।।
हम हैं मलिक नाम नाम के, मोहन है मलिक वहां का।
मोहन ही को पूज पाज लो, गुरू पूजन करो मोहन का।।
किसके गुरू हम कौन है चेला, यहां दिख रही आपक धापा।
कोई किसी को नहीं पूजता, पुजवावें अपना आपा।।
भगो यहां से हम नंहि जाते, गुस्से से हुवे सदगुरू लाल।
कौन मनावै जाके उन्हें अब, किसमें इतनी धरी मजाल।।
हुआ रूआसा सा मोहन ख़ुद, सब साथी जन हुवे हताष।
अब सदगुरू वहां नहीं जायगे, हो गया सब को यह विश्वास।।
युगलदास भी थक कर बैठा, मानी नंहि सदगुरू ने बात।
चिपट गये सारे अब मुझसे, किसी तरह ले चलो प्रताप।।
मिट्टी हो गई लागत सारी, अगर न सदगुरू पहुंचे आज।
मैंने मोहन खेंचा धरके, तुमने खोया यहां समाज।।
समझे तुम स्थान बाप का, ना हिसाब ना कहीं किताब।
पूछ ताछ भी नहीं किसी से, तुमने ख़ाना किया ख़राब।।
मैं हिसाब लूंगा अब चलके, फ़ौरन लूं रूपया सारा।
जमां ख़र्च समझाना होगा, अपनी रोकड़ के द्वारा।।
तब तो मैं ले चल सकता हूँ, वरना मैं नंहि डालूं हाथ।
चार्ज आज ले लूं मंदिर का, हो मंजूर अगर यह बात।।
तो मैं श्री सदगुरू से निमटूं, वरना बसकी नंहि यह काम।
बहुत सख़्त नाराज़ हैं तुमसे, हमतो करते तुम्हें प्रणाम।।
अगर छुड़ाना हो मस्तक से, मोहन यह काला टीका।
इतनी बात हमारी मानो, चार्ज छोड़ दो मंदिर का।।

वरना यह कलंक सर चढ़कर, मोहन तेरे जायेगा।
परमधाम के बदले तुमको, नरक धाम ले जायेगा।।
की क़बूल मोहन ने फ़ौरन्, हमसे अभी चार्ज ले लो।
मुक्ती हम भी चाह रहे हैं, ख़ुद चाहे जिसको देदो।।
मैंने मोहन को घर भेजा, आकर की सदगुरू से बात।
अड़चन आज सुलझ सकती है, परेशान हैं सुंदरसाथ।।
गुरू पूजन है एक बहाना, सब हिसाब लेंगे हम आज।
ले लिया है मोहन से वादा, देगा रूपया और हिसाब।।
साथ साथ इक त्याग पत्र भी, बना लिया मैंने सब प्लान।
दो दल आज एक हो जावें, अगर कृपा करदें श्रीमान।।
चले चलें बस सिर्फ़ आप तो, बाक़ी रहने दें हम पै।
उस मंदिर की बाग डोर अब, रहनी नंहि चहिये उनपै।।
महाराज जी ने मंदिर का, जब समझा झगड़ा मुकता।
तब कुछ उनकी आई समझमें, क्रोध तभी उनका उतरा।।
ले गए फिर उनको उस मंदिर, पहले तो हुइ गुरू पूजा।
फिर हिसाब की बारी आई, पैसा औ हिसाब रक्खा।।
हमने कहा नक़द यदि कुछ हो, सदगुरू चरनों में धरदो।
चारज छोड़ दिया मंदिर का, हस्ताक्षर इसपै करदो।।
महाराज यों नाखुश इनसे, हुवे साथ के यों दो भाग।
किन्तु बात अब आकर निमटी, हुई दस्त बरदारी आज।।
दस्तावेज़ जो बैनामे की, वह भी उनसे मंगवाली।
थे प्रसन्न चित उस दिन सारे, ख़ुश मोहन की घर वाली।।
हुआ ठाठ से भजन कीर्तन, पुजा गुरू पूनम त्यौहार।
सुंदर साथ हुवा शामिल सब, मिटे आपसी सब तकरार।।

हरनंदी सुपुत्री रघुवीर सिंह मुरलीपुर

बहुतों की खुलती सूरज से, बहुतों की मिच भी जाती।
है दाता की देन निराली, दुनियां दिया हुआ पाती।।
तुझ मुझ में को दिलवा देते, तुझ मुझ़ ही से छिनवादें।
आज भोग रहे राज भोग, कल दर दर दाने मंगवादें।।
जो मालिक दे लेना पड़ता, दख़ल न उसमें दे सकते।
पती व्रताऐं जो होती हर, हालत पति का दम भरते।।
ग्राम मनापुट्टी ब्याही में, जमादारसिंह पति का नाम।
क्वारी ही को मुरलीपुर में, प्राप्त हुआ मंतर निजनाम।।
महाराज श्री रामरतन जी, ने हम पर किरपा की थी।
ख़ास हमें मुरलीपुर ही में, मंत्र तारतम निधि बख़्शी।।
ध्यान अवस्था में कइ बेरी, सदगुरू साक्षात्कार हुआ।
अक्सर आपत्ती आदिक पर, श्री सदगुरू ने चेत किया।।
ग़रज़ कृपा करते रहे हमपर, जब भी कभी दुख्ख आया।
धन्य धन्य समझा अपने को, लख निज पर सदगुर छाया।।
संचित कर्म बहुत ऐसे हैं, हटते नहीं बिना भोगे।
जिन्हें भोगना ही पड़ता है, यथा कर्म दुख आरोगे।।
मुरलीपुर में भण्डारा था, दिन था उस दिन चौदस का।
थी मैना पुट्टी में उस दिन, घर मेरे ससुरालय का।।
जहां गुरू फ़ोटो पधरा है, मैंने उतना सजा लिया।
और पूरी पकवान बनाकर, भोग बनाना शुरू किया।।
थी बुढ़िया इक दादस मेरी, वह बोली मेरे पति से।
ज़रा देखता रहिये भइया, देवेगी यह झूंट तुझे।।
पहले उसे जिमावेगी यह, जो बैठा अल्मारी में।
उसके बाद तुझे लावेगी, लड्ड जमाइये दारी में।।
पती होता भगवान पत्नी का, उसको फेर जिमाऐगी।
तुझ से अच्छा वो है इसको, झूंटा तुझे खिलाऐगी।।
लक्षण देख बहू के अपनी, चुभ गई मेरे पति कै बात।
भोग लगाके जब मैं पहुँची, कहा पती से खालें आप।।
भरा हुवा बैठा था वो तो, मेरे मुंह पै एक दिया।
पधरौनी से फ़ोटो लेकर, महाराज का फेंक दिया।।
चूर चूर हो गया आईना, मुझ से कैसे झिल पाता।
पती हमारा ना वाक़िफ़ था, क्या जाने क्या है नाता।।

आंखें मिंच गई मेरी लखकर, जा बैठी फ़ोटो के पास।
रोने लगीं आंख और आतम, लेकर लम्बी लम्बी सांस।।
उट्ठी नहीं आठ दिन तक मैं, बैठी रही उसी स्थान।
त्याग दिया खाना पीना सब, जी में थी के खोदूं जान।।
नर नारी आते समझाते, कहते सब अपनी अपनी।
सुनती रही सभी कुछ बैठी, किन्तु वहां से नहीं उठी।।
नौवे दिन मेरे पति ने वो, फ़ोटो ठाकर सदगुरू का।
एक पड़ौसन के चूल्हे में, क्रोधित होकर जा झोका।।
हाय हाय रह गइ करती मैं, चारा क्या ठाड़े की बात।
ख़बर पहुंच ली मेरे पीहर, लड़की के संग है उत्पात।।
झगड़ पड़े पीहरिया जाकर, बातें उठीं बहुत लम्बी।
कोइ ऐब तो किया नहीं निज, भाई बंधु ने उन्हें कही।।
हम जैसे हैं वैसी यह है, हम ऐबी तो यह भी है।
पीहर के अनुरूप चल रही, लड़की भइया अपनी है।।
धर्म नहीं छोड़ेगी अपना, तुम्हें छोड़ सकती है ये।
इस प्रकार रक्खो रहलेगी, वरन् रहेगी घर अपने।।
चले आए समझाकर उनको, और मुझे भी समझाया।
नित्य कर्म जो छोड़ दिया था, बिन सरूप ही चलवाया।।
अंदर समझ गुरू को अपने, दिखलावा अब रहने दे।
इन्हें अगर चिढ़ है सदगुरू से, तो यों ही कर जाने दे।।
बिन फ़ोटो औ बिन सरूप के, करने लगी पुनः सेवा।
चार माह के बाद जहाँ पर, सदगुरू फ़ोटो फूंका था।।
हो गइ विधवा वह औरत तो, उसका सत्यानाश हुआ।
मेरे पति को उस ही दिन से, एक भयंकर रोग लगा।।
बोल चाल बंद रही हमारी, सहज सहज गिरता आया।
चार साल तक उस कुकर्म ने, खटिया पर गू गुड़वाया।।
आख़िर को प्राणान्त हो गया, तड़प तड़प कर छुटा शरीर।
किया हुआ सब भरा यहीं पर, अपनी भी फूटी तक़दीर।।
तीन लड़कियां छोड़ीं पीछे, कृष्णा मुन्नी औ मिथिलेष।
हम ही बस रह गये अकेले, साथ साथ रह गये कलेश।।
इतना था सम्बंध हमारा, इससे अधिक न चल पाया।
अपनी करनी अपनी भरनी, अंत सब्र ही काम आया।।
मालिक देते रहे सहारा, कभी कभी दर्शन देकर।
उनही पर रह गया आसरा, वे ही थे अपने आख़िर।।
क्या करती कुछ बस नहीं मेरा, नकली पिया छोड़ भागा।

हर प्रकार हरनंदी का अब, असली से रह गया नाता।।
कोटिश करूँ प्रणाम निवेदन, हरनंदी मलिक तुमको।
हो नाविक अपनी नैया के, पार लगाना है तुमको।।

मांगी राम पुः गंगा सहाय उर्फ़ कुतबी ग्राम राड़धना

अम्बर में मुंह करके थूको, वापिस मुंह पर आता है।
सूखे हडड चबाकर कुत्ता, अपना मुंह छिलवाता है।।
था उजडड और रूखा इकदम, क्या जानें हम भक्ती भाव।
दुनियां के ही देखे भाले, जो भी उल्टे सीधे दाव।।
अक़ल इन्हीं के योग्य हमारी, धर्म कर्म से इकदम दूर।
जाने अपने ही मतलब की, बस इतना ही हमें सहूर।।
मांगी राम नाम है अपना, राड़धना है अपना ग्राम।
हर प्रकार से छोटे हैं हम, छोटा सा खेती का काम।।
वहीं एक फत्तान रहता है, राजपूत जाती से है।
सेवक महाराज जी का वह, परनामी कहलाता है।।
किया एक भण्डारा उसने, लोग गये उसमें काफ़ी।
खान पान मौजें देखीं जब, तो मेरे मनमें उपजी।।
लोगों को खाने के लाले, इन्हें सूझती हैं मौजें।
ऐश लूट रहे हैं मुश्टण्डे, बज रहे हैं ढोलक तबले।।
मौज उड़ाते जिसके सेवक, वह भी लूट रहा है ऐश।
गुरू और चेलों के भरके, गोली मारूं आया तैश।।
शिष्य उड़ावें मौजें जिसके, वहां सरासर है व्यभिचार।
नहीं आचरण शुद्ध एक का, दोनों ही कै गोली मार।।
ताजी मारा तुर्की काँपा, इनके गुरू के मरते ही।
सब गुण्डापन दब जायेगा, फिर हिम्मत नंहि होने की।।
किया इरादा हमने पक्का, जमीं हमारे मन में बात।
ज़िन्दे नहीं छोड़ने सदगुरू, देखूंगा इनका उत्पात।।
बात हमारे मन ही की थी, थे मनसूबे मन ही के।
खोली नहीं किसी दूजे को, रक्खी बस अंदर अपने।।
भाव सुद्दढ़ होते ही अपने, उसी रोज़ आया इक रोग।
जिसने पकड़ झंझोड़ा मुझको, पड़े भोगने उसके भोग।।
सात माह का लड़का था इक, दो ही दिन में हुवा ख़तम।
बना मानसिक रोग हमारा, हो गया हमको पागल पन।।
वह दुख मुझसे बयां न होता, जिसका मैं हो गया शिकार।
चैन किसी भी तरह न पड़ती, अपना ही ख़ुद बना आहार।।
जैसे फटी खोपड़ी मेरी, इतनी थी ख़ुश्की अंदर।

सूख गया जल दुनियां भर में, रहा नहीं कहीं क़तरा भर।।
थी दुकान दर्ज़ी की जिसमें, पड़ा हुआ था मैं बीमार।
वह कर चला ख़ून कूऐ से, लाल लाल देखी इक धार।।
मुंह से निकला कौन दुष्ट है, कूऐ जिसने सुखा दिये।
सोख लिया पानी दुनियां का, जल कूओं के रक्त किये।।
मारो उसको मारो उसको, कह चरपाई से भागा।
कूऐ में छललांग लगादी, इक जनून मुझ में जागा।।
कूऐ की मन से टकराकर, टूट गईं हडडी पसली।
खेंच लिया जल्दी लोगों ने, की मेरी मरहम पट्टी।।
ठीक महीने बाद हुआ में, आश्रम पर पहुंचा इक रोज़।
कर आऊं परनाम उन्हें मैं, जी में आई यह उस रोज़।।
जा बैठा अभिवादन करके, बैठा था कुछ सुंदर साथ।
किस्सा शुरू किया सदगुरू ने, मुझ से मिलती जलती बात।।
मानो कथा हमारी ही थी, छेड़ दिया हो अपना राग।
लगा न हमको हेर फेर कुछ, मेरा क़िस्सा मेरा राग।।
ज़िकर हूबहू मुझ से मिलता, सुनता रहा चुप्प बैठा।
मार रहे ज्यों भिगो भिगोकर, हम को जंचता था ऐसा।।
जब आख़ीर हुवा क़िस्से का, बोले सदगुरू उसकी जान।
अब की दफ़ा बचादी हमने, अब जाने उसका ईमान।।
किन्तु नहीं है ठीक अभी वह, बोल कहे जिसदम ऐसे।
जिक्र हमारा ही जारी है, समझ गया सारी वैसे।।
लेकिन बोला नहीं रहा चुप, पूरे हैं यह जान लिया।
ख़बरदार करने की ख़ातिर, यह मुझको संकेत दिया।।
मांफ़ी मांग भूल पर अपनी, तेरी भूल सरासर थी।
जाने बिना श्री सदगुरू को, तेंने यह गुस्ताख़ी की।।
शरमिंदा था मन ही मन मैं, किन्तु न मांग सका मांफ़ी।
आँख सामने नंहि हुई अपनी, चाही बहुत न मिल पाई।।
जान गया मैं महापुरूष हैं, पर मैं अहंकार के वश।
मांफ़ी मांग न पाया उनसे, होने दिया न टस से मस।।
एक बार फिर पहुँचा आश्रम, महाराज जी भी वहीं थे।
आम पड़े हैं चूऐ नींचे, सदगुरू सन्मुख बैठे हैं।।
चू चू कर गिर रहे हैं काफ़ी, खाने को मन ललचाया।
एक पेड़ के नींचे जाकर, कर में मैंने उठा लिया।।
किन्तु हाथ में आते ही वह, आम नहीं छिलका पाया।
आम जानकर और उठाये, हाथ किन्तु छिलका आया।।

पहुँचे हम प्रशाद लेने को, जब वहाँ न मिल पाया।
भाग यहाँ से बोले हमसे, तू विश्वास न ला पाया।।
तुझे न मिल सकता यहां कुछ भी, चलदे यहां से रस्ता नाप।
यहां हमारों ही को मिलता, इसका मंशा था यह साफ़।।
हमने सोचा ठीक बात है, जहां न सर तक झुक पाया।
हृदय साफ़ कर एक बार भी, गुरू के द्वार नहीं आया।।
फिरा खोदता नींव नाश की, आपा ही आपा जाना।
उत्तम कोइ न हम से दूजा, इस प्रकार करके माना।।
जीमां एक बार जा आश्रम, तो आई हमको आवाज़।
तेरे सर पर राहु चढ़ा है, इन्तज़ाम कर है नाराज़।।
और ब्रहस्पति घर वालों पर, बोला मैं, मैं क्या जानूं।
होगा इल्म आप ही को मैं, छिपे हुवों को ना मानूं।।
कर दिया सावधान फिर भी, उन्हें जान न पाये किंचित हम।
क्या कर देंगे राहु ब्रहस्पति, रह गए बैठे गुम के गुम।।
प्रथम मरा लड़का निमोनिये, से होकर इकदम बीमार।
दो दिन में प्राणान्त हो गया, काम न आया कोइ उपचार।।
बाप हुआ पागल फिर अपना, आठ फ़रवरी सन् छप्पन।
काफ़ी किये इलाज मगर नंहि, बच पाया हो गया निधन।।
जोतषियों से पूछा तो गिरह, राहु की ऊपर बतलाई।
ब्रहस्पति और इष्ट भी हैं, नाराज़ बहुत यह समझाई।।
करें शर्तिया नाश न बच, सकते हो इनके चक्कर से।
अगर बचावे ऊपरला ही, तभी बच सकोगे इनसे।।
चचा मरा फिर पेचिश होके, था घर का कारी धारी।
पकड़ लिया अब हमें रोग ने, अब समझो अपनी बारी।।
भूल में पर्वत से टकरा गए, सोचा था ढह जायेगा।
यह गुमान कोसों भी नंहि था, उल्टा तू मर जायेगा।।
सागर तट पर भी रह कर हम, रह गए प्यासे के प्यासे।
दुनियां की खल रहे पेलते, तेल ही ना निकला हमसे।।
रह गए मांगी सिंह मांगते, लेकिन हाथ न कुछ आया।
कोरे घड़े में जैसे चूहा, ऐसे ही खुद को पाया।।

महाराज श्री के मुंह से कहलवाना हम ब्रह्म हैं

महाराज श्री राम रतन जी, की गाथा मैं क्या गाऊँ।
है व्यक्तित्व गुरू का कैसा, जग रोशन क्या बतलाऊँ।।
महिमा उनकी कही न जाती, उपमां ज्यों गुड़ गूंगे का।
स्वाद पता पर जीव नहीं है, यों कर कहा नहीं जाता।।
मैं प्रताप आश्रम ही पर था, श्री मजाहिदपुर स्थान।
श्री सदगुरू भी आए हुवे थे, बाहर के भी कुछ श्रीमान।।
आश्रम के चबूतरे पर कुछ, सज्जन कर रहे थे चर्चा।
महाराज श्री प्रांणनांथ हैं, कुछ कह रहे ऊंची आत्माँ।।
इत्तफ़ाक हम भी जा पहुंचे, सुनकर बहस और झगड़ा।
रूक न पाए सुनकरके उनकी, बीच में मैं भी बोल पड़ा।।
जिन बातों पै आप बहस रहे, यों नंहि हो निर्णय इसका।
जिसके ऊपर आप झगड़ रहे, वो तो अभी यहीं बैठा।।
निर्णय करो पूछ के उंससे, आप कौन को बतलाओ।
झगड़ रहे हैं हम आपस में, अपना परिचय करवाओ।।
सुन इतनी हंस पड़े लोग सब, आपने निर्णय ख़ूब किया।
भला वे क्यों बतलाने लग गए, अंदर का अपना चिट्ठा।।
मुलज़िम कभी बताता है क्या, किन्तु जिरह में ऐडवोकेट।
मुंह से उस ही के कहवाता, है गुनाह उसका प्रत्येक।।
राज़ अगर रह गया राज़ ही, फेर वकालत काहे की।
और अदल से वंचित रह गए, फ़ेर अदालत काहे की।।
आप सभी उठकर वहां पहुँचें, महाराज जहां बैठे हैं।
आप जाओ पहले पीछे से, हम भी उठकर आते हैं।।
माइ अधिक थीं भाई कम थे, जा बैठे सदगुरू के पास।
धीरे धीरे हम भी जा ही, बैठे इन सारों के बाद।।
सुन रहे थे सत्संग सत्गुरू का, सभी लोग बैठे चुप चाप।
जब चुप हुवे तो हम बोले, इक संसय दूर करो महाराज।।
क्या संषय है सदगुरू बोले, हमने कहा है यह संषय।
देते समय आपने बीतक, कहा था यह तुमने हमसे।।
दादा गुरू नारायण दास जी, पूर्ण ब्रह्म ही हैं साक्षात्।
बिलकुल ठीक कहा है हमने, इसमें क्या संषय की बात।।
जब दादा गुरू सोन गिरी में, निज शरीर तजने को थे।
तीन बार आग्रह की तुमसे, भाइतू हम से कुछ ले ले।।

मना किया दो बार आपने, आग्रह तीजी बार वही।
अब नंहि बोलें इस शरीर से, ले ले, अंतिम बार कही।।
आप समझ गए ये जा रहे हैं, कर पूरी यह इच्छा आज।
तुम बोले, यदि आप हमें, देना ही चाह रहे कुछ आज।।
जैसे आप दीख रहे हो अब, दिखते रहना ऐसे ही।
जैसे बोल रहे हो हम से, सदा बोलना ऐसे ही।।
तथा अस्तु कहकर दादा गुरू, हो गए सदा सदा को मौन।
छोड़ दिया नश्वर शरीर यह, चले गये तजकर यह यौन।।
लेकिन दादी जी ने अपने, चूड़ी बिछवे नंहि त्यागे।
और आपको साष्टांग, परनाम भी करती थीं आके।।
तुम तो पुत्र समान थे उनको, क्या यह अनुचित नंहि है बात।
यह व्यौहार समझ नंहि आया, केवल यह समझादें आप।।
बोले हमें महात्माँ करके, कर जाती थी वे परनाम।
वे भी तो सदगुर पत्नी थीं, करना चाहिये तुम्हें प्रणाम।।
माता का दर्जा था उनका, तुम थे उनके पुत्र समान।
ऐसी ग़लती क्यों हो रही थी, किसे कहें तुम में अनजान।।
क्या वे महा आत्मां नंहि थी, आपसे दर्जा कम कैसे।
मर्यादिक संसार है यह यहां, बात बनेगी नंहि ऐसे।।
लोग करें चर्चाऐं तुमपै, धारणाऐं हैं जुदा जुदा।
आप बीच में हैं जब अपने, समाधान चहिये इसका।।
बोले, मरा न करती रूहें, इनके होते हैं आवेष।
उठकर वहीं बैठ जाती हैं, करना हो जहाँ कार्य विशेष।।
तो यों कहो, सदगुरू तुम में थे, साफ़साफ़ क्यों नंहि कहते।
गये कहीं नंहि श्री दादा जी, साक्षात् तुम में रहते।।
दिखते थे तुम में मां जी को, यों प्रणाम करती थीं वे।
मस्तक झुका न तुमको उनका, थे अपने पति को सजदे।।
स्वीकारी सदगुरू ने बातें, महाराज बोले भाई।
गये नहीं चोला बदला है, उस चोले से यहाँ आई।।
हम बोले इक और है संषय, उसको भी ज़रा समझादो।
सोन गिरी के शमशानों में, भेजा जब गुरू ने तुमको।।
तो दा दा गुरू डेढ़ मील ख़ुद, भोग प्रशाद ले जाते थे।
तो अक्सर ध्यानस्त अवस्था, मैं तुमको वे पाते थे।।
जाते ही पहले वे तुम पै, अर्पण करते गज़रे हार।
और सजाकर के फूलों से, प्रेम पूर्वक कर सिंगार।।
फिर अपने हाथों प्रशाद तुम्हें, दा दा गुरू खिलाते थे।

क्या यह सेवा नहीं आपकी, ऐसा वे क्यों करते थे।।
जबकि विश्व में इस प्रकार की, सुनी न देखी कहीं प्रथा।
शिष्य गुरू सेवा करते, नकि, करते गुरू, शिष्य सेवा।।
उलट फेर यह किस प्रकार का, अपनी समझ नहीं आता।
कर्म काण्ड या धर्म काण्ड में, ऐसा लेख नहीं पाता।।
है विपरीत ये मर्यादा के, होती भंग यों मर्यादा।
आश्चर्य की बात नहीं तो, और बताओ है यह क्या।।
बोले, है महानता उनकी, दिया शिष्य को इतना प्यार।
बेमिसाल बनके दिखला गए, प्रेम के थे सदगुरू भण्डार।।
माना थे भण्डार प्रेम के, किन्तु तुम्हीं पर क्यों रीझे।
आप ही को क्यों दिया प्रेम यह, औरों को भी कुछ देते।।
औरों के लिए बड़े सख़्त थे, थे मिज़ाज के बड़े कठोर।
पुत्र वधू की बीमारी पै, आप ज़रा सा करना ग़ौर।।
मरने नंहि दें जीवित करदें, आश्वासन दिये चले गये।
कहते गये चिता तक यह ही, अंत फूंक कर ही लौटे।।
आप स्वयं घबरा गए थे तब, है कंहि अन्य प्रेम व्यौहार।
इसमें है कंहि भेद छिपा कुछ, खोलो इसे ज़रा सरकार।।
आप छिपा रहे हो रहस्य यह, भेद अभी है कहीं छिपा।
ब्रह्म कहा सदगुरू को तुमने, पार ब्रह्म भी तो आना था।।
ब्रह्म है सेवक पार ब्रह्म का, शायद वही है यह लीला।
पार ब्रह्म आवेष आप में, ब्रह्म कर रहा यों सेवा।।
क्यों धोका दे रहे दुनियां को, इम्तहान ले रहे हो क्या।
देखें हमें कौन पहचाने, नाटक यही नहीं है क्या।।
सेवक पहले आया करते, स्वामी पीछे से आते।
लाख छिपाओ तुम अपने को, तुम्हें न अब छिपने देंगे।।
है सरूप साहिब में लिख्खा, दीद ख़ुदा का करे जहान।
ख़ुदा ख़ुदा को पहचानवावे, हक्क करावे हक का ज्ञान।।
ज़रा निहारो पिछली लीला, देव चंद्र जी सदगुरू थे।
प्राँणनाँथ जी शिष्य थे उनके, किन्तु शिष्य ही उधर पुजे।।
जैकारे श्री प्राँणनाँथ के, सदगुरू के कभी नहीं बुलते।
सत्य बात यह जग रोशन है, साफ़ साफ़ क्यों नंहि कहते।।
पारब्रह्म सर्वोत्तम पावन, परम पुरूष श्री पुरूषोत्तम।
पूर्णाति पूर्ण, पूर्ण से भी पूरन, सर्वोपरि परमातम हम।।
घर की लीला, घरवाले संग, उदय हुआ क़ायम ब्रह्माण्ड।
उतरे अंगनाओं की ख़ातिर, साक्षात् श्री राज महान।।

मौन ही रह गए सदगुरू सुनके, इस प्रकार अपने उदगार।
फुस्फुसाए यह धीरे से ही, ठीक है यदि हैं यही विचार।।
रहने नंहि दोगे तुम अब हमें, कह इतनी हो गए ख़ामोश।
स्वीकारी गई बात हमारी, हमें हुआ बेहद संतोष।।
मेरठ जा पहुँचे श्री सदगुरू, श्री मजाहिदपुर के बाद।
बहुत रोज़ से याद कर रहा, था मेरठ का सुंदरसाथ।।
श्री सदगुरू मेरठ कोठी पर, ही ठहरा करते अक्सर।
आज हमारे घर रसोइ है, न्यौते श्री सदगुरू जाकर।।
साथ साथ सब साथी जन को, हम आमंत्रित कर आये।
थोड़े से दिन चढ़े बिठाकर, रिक्शों में घर ले आये।।
मंत्र दिया बाला बिटिया को, हम भी लें फैली पदमां।
लोटी लोटी फिरी सहन में, उसे भी आख़िर मंत्र दिया।।
पदमां से बोले श्री सदगुरू, रोज़ जपा करना यह नाम।
अपने धनि श्री श्यामां श्याम, अपना वासा है निज धाम।।
बहुत दिनों से इच्छा थी यह, बब्रूवाहन लड़के की।
मिले वज़ीफ़ा उस दिन मुझको, जिस दिन घर हों सदगुरू जी।।
महाराज सत्संग कर रहे थे, बबरू जिसदम घर आया।
लगा कूदने उन्हें देखकर, क्योंकि वज़ीफ़ा था लाया।।
थी कमाइ पहली जीवन की, की जाकर सदगुरू को भेंट।
महाराज जी भी खुश हो गये, भाव बब्रूवाहन का देख।।
कैसे रूपये हैं बेटे ये, आया हूँ में फ़स्ट क्लास।
पहला नम्बर है सारी, मेरठ में मेरा हाँ महाराज।।
ये पचास रूपया माहाना, मिला करें हर माह मुझे।
इससे तो यह साबित है कि, आप हो इक अच्छे बच्चे।।
ख़ुश होकर सरकार ने तुम पै, दिया इस तरह का इनआम।
जिससे हिम्मत और हौसला, बढ़ै करो नित अच्छे काम।।
पर यह तो बतलाओ हमें क्यों, देना चाह रहे रूपये।
जीवन की कमाइ है पहली, चाह अच्छी जगह लगे।।
और बात दूजी इक यह है, आपने ही तो की किरपा।
बिना कृपा के हरगिज़ भी तो, फ़स्ट नहीं आ सकता था।।
मैं पीछे, हो प्रथम आप ही, इस धन के अधिकारी आप।
रूपये पाँच उठा लिए बाक़ी, पेंतालिस बबरू के हाथ।।
सर पर फेरा हाथ कमर पै, थेपी देकर किया निहाल।
मौज करेगा जा जीवन भर, उस बच्चे पै हुवे दयाल।।

महात्माँ नानक चंद मुरली पुर

नानक चंद नाम है मेरा, मुरली पुर है घर अपना।
एक बगीचे में कुटिया सी, डाले पड़ा रहा करता।।
कृष्ण कृष्ण रटते रहते हम, और न कुछ हम पै आता।
शिष्य किसी के हुवे न थे हम, नाम कृष्ण का ही भाता।।
कोइ पर्व था ब्रत रख करके, अर्ध चढ़ाने जब पहुँचे।
शिव मंदिर था निकट वहीं इक, अर्ध चढ़ाकर जब निमटे।।
तो आवाज़ आइ इक हमको, जो स्पष्ट समझ आई।
शिव मंदिर, यह नहीं कृष्ण का, यहां न फिर आना भाई।।
भजन करो अपने आसन पर, आना जाना नहीं कहीं।
भजन आप जिसका करते हो, बैठो आसन मिलै वहीं।।
बांधी बात गाँठ वह हमने, कर ऐकाग्र चित्त हमने।
अपना आसन वहीं बाग में, रक्खा ध्यान कृष्ण छवि में।।
उस आकाशी वाँणी से, हम में श्रद्धा संचार हुआ।
एक रोज़ श्री श्याम सुंदर का, हमको साक्षातकार हुआ।।
स्वतः हमारे बढ़े क़दम फिर, पुरष्कार वत् दर्शन था।
लगने लगा हमें के मानो, अपना बस उद्धार हुआ।।
इक दुकान पर सौदा लेने, मुरली पुर ही मैं पहुंचा।
राजा राम प्रणामी था इक, वो दुकान पर बैठा था।।
प्रश्न किया उसने इक हमसे, भजन पाठ जो करते हो।
कोइ गुरू भी किया आपने, या बस अब तक यों ही हो।।
मेरे गुरू स्वयँ वे ही हैं, हमें गुरू का करना क्या।
मार्ग स्वयं बतलाते हमको, पता नहीं गुरू क्या होता।।
राजा राम लगा कहने फिर, गुरू होते भगवान सरूप।
गुरू के बिना नहीं निकलोगे, माया है यह अंधा कूप।।
बोले हम, वैसे ही हों गर, जैसे होते हैं भगवान।
तब हम गुरू बना सकते हैं, नहीं बनाना गुरू, इन्सान।।
चलो मजाहिदपुर मेरे संग, दरश तुम्हें करवायेंगे।
साक्षात् परमात्म रूप से, हम तुमको मिलवायेंगे।।
क्यों जावें हम, यहीं आएँगे, कब तक, बोला राजाराम।
हमने कहा बहुत जल्दी ही, तजी उसी दम वह दूकान।।
कहने तो कह आया मैं, लेकिन उन्हें बुलने को।
चालिस दिन का अन्शन ले लिया, बात सत्य करवाने को।।

केवल जल पर जीवन साधा, और न हम कुछ खाते थे।
कृष्ण कृष्ण की रटना हरदम, आसन छोड़ न जाते थे।।
ज्यों ज्यों बढ़े दिवस अनशन के, त्यों त्यों उनसे प्यार हुआ।
तीन महात्माओं का इक दिन, हमको साक्षात्कार हुआ।।
की प्रणाम हमने आदर से, चरण लिये उठ आसन से।
सर ऊपर जब उठा चरण से, तीनों सज्जन अलख हुवे।।
कमज़ोरी तन में काफ़ी थी, हलना अब दुश्वार हुआ।
पूरा हुआ दिवस चालीसा, फिर इक साक्षात्कार हुआ।।
तीन व्यक्ति आऐ मुरली पुर, कुछ क्षण बाद सुना हमने।
राजाराम वहीं बगिया में, पहुँचा संदेशा देने।।
पहुँचे हम तो चार पाइ पर, वे ही तीनों पधरे थे।
जो हमने ध्यानस्त अवस्था, में भी अपनी देखे थे।।
महाराज वे हैं वह बोला, पग जब लिये पहुँच कर के।
श्याम रूप देखा जो इकदिन, वैसे ही वे नज़र पड़े।।
सचमुच श्याम रूप ही पाये, वास्तवो में हैं भगवान।
मनोकामना पूर्ण हुई निज, किया आत्मां ने सन्मान।।
मंत्र हमें मिल जाता, हमने, करी प्रार्थना सदगुरू से।
कहा मजाहिद पुर में आना, वहीं मंत्र तुमको देंगे।।
पहुँचे लेने मंत्र वहीं हम, जब देने बैठे हमको।
श्याम रूप था श्री सदगुरू पै, मंत्र दिया जिसदम हमको।।
उच्चारनिज नाम कृष्ण जी, जिसदम सदगुरू ने मुंह से।
कृष्ण रूप सदगूरू में पाया, उसी रूप में बैठे थे।।
मंत्र प्राप्त करके सदगुरू से, हमने उन्हें प्रणाम किया।
बड़े प्रेम से वरद हस्त सर, पर रख आशीर्वाद दिया।।
एक बार पत्तल थी सन्मुख, बैठा सुंदर साथ सकल।
बाल कृष्ण आ बैठे आगे, जब बोला आनंद मंगल।।
लगे लगाने भोग थाल में, मैं ख़ामोश रहा बैठा।
पंगत लगी जीमने सारी, महाराज से ज़िक्र किया।।
नानक चंद न जीम रहा है, बैठा रहने दो, बोले।
उसका ध्यान छोड़दो तुम सब, खालेगा, हम देखेंगे।।
महाराज जब बाहर आये, बाल रूप तब हुआ अलख।
लगा जीमने मैं फिर उसमें, छिपी रही यह बस हम तक।।
गये जीमकर पग लेने जब, छेड़ी पीने इक चर्चा।
वहीं चाँदनी चौक दिखाया, थी विचित्र ही वह लीला।।
रोने लगे सभी जितने थे, की सदगुरू ने इक दम बंद।

लगी चोट सी छाती में इक, हुवा तिरोहित जब आनंद।।
तड़पन रही बहुत तक वो, बसा ख़यालों में वह द्रश्य।
मुरलीपुर मंदिर की सेवा, पर हमको कर दिया नियुक्त।।
एक रोज़ दोपहरी में मैं, निमटाकर रसोइ का काम।
जिस कोठे में पधरौनी थी, जा लेटा करने आराम।।
बाबा कुछ खिलाओ भूका हूँ, द्वार ये कहके खड़काया।
अंदर ही से सुनकर मैंने, भिकमंगे को धमकाया।।
कोइ वक्त है यह भिक्षा का, शर्म नहीं आती भागो।
चौका चूल्हा उतर चुका है, और कहीं जाके माँगो।।
भिक मंगों को काम और नंहि, इन्हें है बस दिन भर यही काम।
इतना नहीं सूझता इनको, वक्त है करने का आराम।।
क्या बकते हो उठो एकदम, अगर नहीं है खाना तो।
आश्रम है घर नहीं बाप का, अभी बनाकर इनको दो।।
उठा उछलके में इकदम से, किसकी आई यह आवाज़।
देखा तो पधरौनी में से, बोल रहे थे श्री महाराज।।
आँख लाल दीखी फ़ोटो में, चेहरे पर था क्रोधावेष।
इस प्रकार का देख करश्मां, हुकुम न मानूं कहां था ढेट।।
जा किवाड़ खोले उठ करके, देखा भिक्षुक ग़ायब था।
उसे ढूंड़कर वापिस लाया, सादर उसको बिठलाया।।
बना बनूकर खाना उसको, प्रेम पूर्वक खिलावाया।
याचक फिर बिना जिमाये, दिया न जाने आइन्दा।।
बांधी गाँठ ये पल्ले कसके, भिक्षुक ख़ाली नहीं गया।
उनकी रूप माधुरी पर मैं, बार हज़ारों न्यौछावर।।
जिस प्रकार हमको अपनाया, यों हि कृपा रखना हमपर।
नानक की प्रणाम लो प्रीतम, रखना अपने चरनों में।।

श्री सुमेरसिंह पुत्र जैराम मुरलीपुर

निश्चय दुनियाँ नहीं किसी की, यह हमने उस दिन जाना।
चरण श्री सदगुरू जब पाये, आतम ने उस दिन माना।।
निर अक्षर हम समझ न कुछ भी, समझ मगर इतनी बख़्शी।
ग़लत रास्ते छोड़ छाड़ कर, परमारथ मंजिल पकड़ी।।
चाहे शेरपुर चाहे मजादपुर, हम पैदल ही जाते थे।
तीन चार दिन में गुरू द्वारे, सिजदा पहुँच बजाते थे।।
सेवा करी रसोई आदिक, हर भण्डारे पर जाता।
जितना काम हमारे बसकी, उतना सदा बजा आता।।
सीधे साधे तेर मेर हम, नहीं जानते क्या होती।
सेवा सेती मतलब रखते, मिलजाती हमको जो भी।।
चला चली तो लगी हुई है, इक के बाद एक जाता।
इक से एक न रूक पाता है, रहने रहने तक नाता।।
सदगुरू चले गये बपु तजकर, अपनी तो बिसात ही क्या।
पर भुगतान भुगतवा करके, अपने चरनों में रक्खा।।
सदगुरू की समाध पर सेवा, में थे हम सारे संलग्न।
ढूला गिरा टूट कर नींचे, गिरे तीन हम उसके संग।।
ढुडडी टूट गई गिर करके, जहां रीढ़ का होता जोड़।
कमर उसी के बल रूकती है, टूटा ढुडडी पै से जोड़।।
गये सहारनपुर औ दिल्ली, लेकर मुझ को सुंदर साथ।
लेकिन बचना कठिन बताया, ठीक न थे अपने हालात।।
छोड़ गये मुरलीपुर मुझको, श्री सदगुरू जी के ऊपर।
अभी तलक तो ज़िंदा हूँ मैं, अब जानें आगे सदगुरू।।
मल औ मूत्र खाट पर ही सब, करवट तक दूजों के हाथ।
सेवा बहुत करी बच्चों ने, किन्तु बिगड़ती ही गई बात।।
वक्त निकट आया जब मेरा, मेरठ इक को भिजवाया।
श्री प्रतापसिंह मेरठ वालों, को मैंने घर बुलवाया।।
पास हमारे जब आये वे, हमने की उनसे अरदास।
हमने तुम इस लिए बुलवाऐ, अब जीने की नहीं है आस।।
अभी भोग बाक़ी हैं क्या कुछ, कब तक और सड़ाओगे।
अब बसकी नहीं रहा झेलना, कब तक घर भिजवाओगे।।
पल्ला थामके मेरा बोला, अपने सदगुरू से कहदो।
अपने पास बुलालें हमको, अब तुम हमें टिकिट दे दो।।

टिकिट ही लेके उठने दूंगा, तब तक नंहि छोड़ूँ पल्ला।
मेरा काम नहीं यह भइया, ना सदगुरू ना मैं अल्ला।।
मैं भी तेरे जैसा ही हूँ, वह बोला मत बहकाओ।
आज टिकिट लेके छोड़ूंगा, मुझे टिकिट देके जाओ।।
बहुतेरा समझाया उसको, लेकिन फिर भी नंहि माना।
लगी रही रट टिकिट टिकिट की, सुना न उसने समझाना।।
अतः कटोरी जल मंगवाया, पढ़ करके दे दिया उसे।
चौबिस घंटे में सुमेरसिंह, अपने धाम पधार गये।।
नाम शहीदों में लिखवा गए, न्यौछावर हुवे सेवा पर।
ऐसे भक्त मुक्त होते हैं, जो मरते उनके ऊपर।।
वंदन करता है सुमेरसिंह, स्वीकारो हे किरपा धाम।
पड़ा हुआ हूँ भुगतानों में, तुम ही कर सकते कल्यांण।।

शेरपुर आश्रम में रात में चोर

महात्माओं पै अगर न हो कुछ, झुकता नहीं किसी का सर।
मतलब जहाँ सिद्ध होते वहाँ, नाक रगड़ते जा जा कर।।
थर्राता जग करामात से, और शक्ति से घबराता।
अगर न हों ये महात्माओं पै, कोइ नहीं रहने देता।।
सुरता और असुरता का, संघर्ष यहाँ होता रहता।
यदा कदा होता रहता है, कभी मुकाऐ नंहि मुकता।।
श्री शेरपुर के आश्रम की, उत्तर भारत में चर्चा।
काफ़ी से ज़्यादा होती है, बहुत है आश्रम में पैसा।।
बहुत चढ़ावे चढ़ते हैं यहाँ, कमी न सोना चाँदी की।
ताँता रहता दाताओं का, चहल पहल गहमा गहमी।।
चोर आए इक रोज़ रात में, माल चुराने आश्रम का।
किन्तु द्वार पर जब आऐ तो, इक सिपाही उनको दीखा।।
कंधे पर बंदूक लिये हुए, खड़ा है द्वारे पर तैनात।
साफ़ दीख रही थी वर्दी तक, क्यों छिटक रही चाँदन रात।।
इन्हें पता लग गया कहीं क्या, हम आ रहे चोरी करने।
पुलिस इसी लिए बुलवाई है, वरन काम क्या आश्रम में।।
चले चोर पीछे से घुसने, जब जाके उचकी दीवार।
तो चबूतरे पर बैठे हुऐ, दिखे सिपाही उनको चार।।
लखकर चोर भाग गए सरपट, भगलो वरना मारे गए।
निश्चय ख़बर हमारी है इन्हें, इसी लिये बुलवाये गए।।
चोरों में से एक सुबह को, आया ताकि पुलिस का खोज।
निकले आया दरवाज़े में, चिलम पी रहे थे कुछ लोग।।
चोर भी पीने लगा बैठके, काफ़ी देर बाद बोला।
रात पुलिस क्यों थी आश्रम में, भजनदास सुनकर चोंका।।
तू तो किशन पुरे का है तुझे, कैसे पता है आश्रम का।
रात पुलिस थी या यहां नंहि थी, मारा क्या फेरा फटका।।
लगता है रात आया था तू, एक बात सुनले बेटा।
कभी भुलावे में मर जाओ, गारद का रहता पहरा।।
हर सिपाही गोली गट्ठे से, रहता है हरदम तय्यार।
रात में आ भी मत जाना यहां, मारे जाओ कभी बेकार।।
ऐबदार बख़्शे नंहि जाते, चलता है यहां बड़ा हुकम।
मक्खन समझके टींट निंगललो, गले में फंस मर जाओ तुम।।

उठकर चला गया सुन इतनी, बोला नहीं न मारा दम।
किशनपुरा और घिसर पड़ी के, लोगों से वाक़िफ़ हैं हम।।
महाराज जी थे आश्रम में, घटी थी जब ऐसी घटना।
तीन माह के बाद आए फिर, लेकिन वानक वही बना।।
फिर सिपाही दीखे चोरों को, पहरे पर पाई महिमां।
महिमां सदा किया करती है, महात्माओं की परकम्मां।।
बात खुली यह चोरों ही से, मिले सिपाही दोनों बार।
आ आके वापिस हो गए हम, क्या करते आख़िर लाचार।।
महाराज जी के रहते हुए, तिनके तक का भी नुक़सान।
कर न सका कोई आकर के, थी उनमें कुछ शक्ति महान।।
महाराज जी के सन्मुख, इक बार एक आया जथ्था।
ट्रस्ट बनाने का उन सब का, भी उस समय इरादा था।।
किन्तु श्री सदगुरू के सन्मुख, जब रक्खा गया वह प्रस्ताव।
हम सब का है, ट्रस्ट बनाकर, इन्तज़ाम करने का भाव।।
केवल विराजे रहिये आप, इन्तज़ाम हम देखेंगे।
हर सेवा के लिये व्यक्तियों, की नियुक्तियाँ कर देंगे।।
तुम्हें ख़ुदा का इन्तज़ाम, लगता है पसंद नहीं आया।
इसी लिये यह जथ्था हम पै, किरपा करने को आया।।
युगलदास आसन ठा अपना, यहाँ रहेगा अब से ट्रस्ट।
देख भाल हमसे अच्छी, इनपै आती है हम हैं भ्रष्ट।।
आश्रम से हम नहीं हैं भइया, हम ही से है यह आश्रम।
आश्रम निज आसन के नींचे, जहाँ बैठ गए वहीं आश्रम।।
महाराज की बात समझकर, ट्रस्टी उठ उठ कर भग गए।
टिके नहीं पल भर आश्रम में, महाराज बैठे रह गए।।
नाव जड़ी जाती लोहे से, रहा काठ के संग लोहा।
इकला लोहा नहीं तैरता, काठ के संग तैरा लोहा।।
लोह समझता हम तैरा रहे, नहीं काठ के बल तैरा।
सदा सत्य की ध्वज पहरी हैं, झूंट का झण्डा नंहि फहरा।।
धाम चले गए जब श्री सदगुरू, ट्रस्ट बना आश्रम का फेर।
करने लगे व्यवस्था ट्रस्टी, ट्रस्टी ही ट्रस्टी चौफेर।।
बिकने लगा धर्म पैसों से, नज़रों में सब की पैसा।
जहाँ हो राजनीति और पैसा, भला धर्म फिर वहाँ कैसा।।
वहाँ धर्म पैसों से मिलता, और पैसों से तुलता भक्त।
जिसके पास न होता पैसा, जाना जाता वही अभक्त।।
लाले उसकी रोटी तक में, पेड़ों के नींचे विश्राम।

धनियों के लिए डेरे कमरे, निर्धन को ख़ाली अस्मान।।
भेद भाव बंदर बटेज से, धर्म नहीं पैदल चलता।
नकली को सन्मान और, असली का किया गया अपमान।
बड़े बड़े गादी पति ज्ञानी, फ़रामोशियों में ग़लतान।।
नकली मूल मिलावे पुज रहे, मूल पुरूष की की तौहीन।
अविश्वास सब का असली पर, नकली पै ला रहे यक़ीन।।
असली असली को झुकता है, मरते नकली नकली पै।
प्रगट हुई पहचान देखलो, पड़ गए ओले नकली पै।।
बहे फिरे जब मूल मिलावे, और आपके नकली राज।
कहाँ चले गए प्राँण नाँथ जी, क्यों न बचाई आके लाज।।
हाहाकार मची उम्मत में, कहाँ चले गए उस दम इष्ट।
कैसे हैं ये ब्रह्म आपके, और आप कैसी ब्रह्मसृष्ट।।
हुई आब बेआब जहाँ फिर, फिरो बनाते सौ सौ बात।
किन्तु परख पहचान हो चुकी, परखी गई आपकी ज़ात।।
चारा कुछ न चला जब सब का, याद आए फिर क्यों महाराज।
क्यों मांगी मांफ़ी जाकर के, क्यों फिर कहा उन्हें श्री राज।।
माड़े की हर चीज़ है माड़ी, माड़ा हर हालत माड़ा।
ठाड़े की पहचान तभी हो, मुंह पै जब मारे ठाड़ा।।
पड़ी बड़प्पन में हर इक के, शेरपुर में जिसदम ख़ाक।
बचा हो शायद ही कोइ ऐसा, जिसने ना रगड़ी हो नाक।।
गिड़गिड़ाए रो रो समाध में, मचा एक दम हाहाकार।
कहते थे जो संत रतन को, कह रहे वही धाम सरकार।।
गए रोते औ भूके मरते, क़सम खाइ अब नंहि आना।
दो दो वक्त के भूके जिनको, मिला न खाने को दाना।।
जब सड़ांद उठ गई प्रशादी, ढोरों तक ने नंहि खाई।
धीरे धीरे धर्म पतन की, ओर चला जाता ढलता।।
भावनाऐं धन में बस जातीं, लक्ष में रह जाता पैसा।
जैसा होता नाँच कूद, लेना देना भी फिर वैसा।।
चोरों को जिस आश्रम में, दिखते थे कभी पुलिस वाले।
कृपा जहाँ पहरा देती थी, चैन से सोते घर वाले।।
वहाँ डकैती पड़ी लूट कर, ले गए आश्रम का सामान।
मार पीट गए बेअदबी की, साथ साथ ले गए धन धान।।
इस घटना से साबित है यह, वहाँ आज महाराज नहीं।
रहते होंगे कभी शेरपुर, किन्तु वहाँ पर आज नहीं।।
इष्ट एक होता ज़्यादा नंहि, सदगुर भी होता है एक।

हाल वहाँ के मत पूछो कुछ, इष्ट और गुरू जहाँ अनेक।।
हाथी के दो दाँत एक, खाने का एक दिखाने का।
रामरतन और प्रॉणनाँथ, इक अपना एक ज़माने का।।
इक हज़ार इक पारायण पर, देख लिया अजमां करके।
महाराज जी कहीं नहीं थे, धर दिए अलग उठाकर के।।
मूल मिलावे धूल मिलाये, फिके फिरे काग़ज़ के राज।
त्राहि त्राहि मच गइ मेले में, गिरी ऐसी मेले पै गाज।।
धंसे दरे क़ालीन बिछावन, घुटनों घुटनों ग़ार तले।
दरवाज़े झण्डी छत बंदी, भीग भीग गिर गये तले।।
खाने के भण्डार व भट्टी, आदिक में भर गए पानी।
जगह न पाई सिर दुबकालें, झाए चल रही तूफ़ानी।।
वक्त सत्यता की कुंजी है, बिगड़ी क्यों यह शोभा आज।
किसी जगह ग़लती ज़रूर है, है अवश्य कोई नाराज़।।
गड्ढे खोद खोद के बूंदी, और पूरियाँ दबवाई।
बहुत कनस्तर भर भर ले गए, बहतों को परशाद तलक।।
भी नसीब नंहि हुआ शेरपुर, याद रहेगी यह बीतक।
घटनाऐं अपनी भाषा में, कुछ कहकर ही जाती हैं।।
सत्य है क्या, क्या झूंट है निर्णय, घटनाऐं कर जाती हैं।
किन्तु जानकर भी अनजाने, बने हुवे रह जाते लोग।।
धंसे धंसाऐ फ़रामाशियों, में अक्सर मर जाते लोग।
अंधकार उजियाले पर, ईमान लाए जंचती नंहि बात।।
विजातीय होने के कारण, रह नंहि सकता उसके साथ।
उल्लू अंधकार की सीमां, किसी तरह नंहि लंघ सकता।।
क्योंकि आंख ही नंहि हैं उसपै, नूर उसे कैसे दिखता।

दरोग़ा रंजीत सिंह को समाधी की जगह दिखाना

दारोग़ा रंजीत सिंह जी, लेखक बीतक के चाचा।
उनका औ सदगुर साहिब का, था सम्बंध बड़ा अच्छा।।
सर्विस से अवकाश प्राप्त, करके वे घर आ पहुँचे थे।
अतः शेरपुर महाराज के, साथ एक दिन जा पहुँचे।।
काफ़ी रोज़ शेरपुर ठहरे, हुईं बहुत घुट घुट के बात।
बड़ी गूढ़ बातें खोली औ, करी दरोग़ा जी से बात।।
बोले सदगुरू इक दिन उनसे, ज़रा हमारे संग आओ।
भवन तारतम की छत पर, चढ़कर बोले यह बतलाओ।।
जगह समाधी के लिए कैसी, है यह खेत दिखाया एक।
पैसे देकर ले लें इसको, किसी और का है यह खेत।।
लफ़्ज समाधी सुनकर के, रणजीत सिंह चोंके इक साथ।
किसकी बननी यहाँ समाधी, समझ नहीं आई कुछ बात।।
अगर किसी की कभी बनी तो, क्यों के अंदर है स्थान।
दुनिया है समाध को बहुते, बतला देते हैं शमशान।।
ऐसी चीज़ अलग ही अच्छी, आश्रम भी होगा नज़दीक।
तुम तो सिर्फ़ सलाह दो अपनी, बाहर या भीतर है ठीक।।
सदगुरू की यह बात ताड़ली, कहने लगे दरोगा जी।
इसमें तो संदेह नहीं कुछ, नालायक़ हैं हम काफ़ी।।
उल्टा सीधा अर्थ लगा तो, लिया आपने जो पूछा।
तुम हमको धोका देने की, सोच रहे हो सदगुरू क्या।।
नाँथ आप पै तो मुंह धोये, बैठी है यह हक की जात।
वचन बद्ध हो तुमतो, सबको, ले जाना है अपने साथ।।
फिर यह मुंह से बात आपके, क्या कारण है क्यों निकली।
आप छिपा रहे हैं रहस्य को, कह क्यों नंहि देते असली।।
कुछ मुस्का कर बात छिपाकर, बोले श्री सदगुरू महाराज।
तुम यह बात कहां ले पहुँचे, लगे समझने इंसमें राज़।।
है स्थान यहाँ कारण भी, कभी कभी घट जाते हैं।
बहुत महात्माँ स्थानों में, धाम गमन कर जाते हैं।।
जगह ज़रूरी निश्चित करनी, पहले ही रहता आसान।
खड़ोखड़ी पूरे नंहि होते, अंत समय के ऐसे काम।।
क्या थानेदारी की होगी, यह है दूरंदेशी बात।
होनहार आनन फ़ानन में, होतवता रहती अज्ञात।।

अक़ल दरोग़ा जी की फेरी, सदगुरू की हेरा फेरी।
गडढे से निकालकर बातें, फिर गडढे में जा गेरी।।
बतला भी दी और परदा भी, किये बाद के लिये गवाह।
खोल गये अपनी तिलतिल पर, किसने नांपी उनकी थाह।।
हर इक को हर चीज़ न मिलती, जो जैसा तैसा सामान।
किया श्री रंजीतसिंह को, अपनी निज वर्दी का दान।।
टोपा और निज बंडी देकर, बोले लो सदगुरू सौगात।
असली थानेदार आज से, किया फिराया सर पर हाथ।।
हुवे आज से अफ़सर असली, नक़ली से हो गए बरख़ास्त।
सुनली अर्ज़ तेरी सदगुर ने, जा मंज़ूर हुई दरख़्वास्त।।
लेकर के सौग़ात आलिया, आली जा से घर पहुँचे।
कभी न लौटा वापिस ख़ाली, जो उनके होकर पहुँचे।।
इस मिलाप के बाद जल्द ही, धाम चले गए थानेदार।
जीते रण रणजीतसिंह जी, कर दिए श्री सदगुरू ने पार।।

महात्मां श्री बिहारी दास चोली

राजपूत जाती से हूँ मैं, आखापुर है अपना ग्राम।
नाम बिहारी दास हमारा, रक्खा श्री सदगुरू ने नाम।।
चले निकलकर जब हम घर से, गये प्रवाहिक संतों में।
बने पहुँच कर वैरागी हम, उत्तम वे ही जँचे हमें।।
बरते संयम नियम उन्हीं के, हाथ न लेकिन आया कुछ।
कैसे हो कल्याँण हमारा, आतम अपनी थी इच्छुक।।
अतः श्री सुखदेव तीर्थ पर, खिचड़ी वाले बाबा जी।
रहते थे जहाँ वहाँ जा पहुँचे, उनकी शरण पहुंचकर ली।।
सेवा की उनकी काफ़ी दिन, जटा जूट रहते थे हम।
नियम पूर्वक करी साधना, जप तप साधन औ संयम।।
थोड़ा सा कुछ हाथ लगा पर, आतम तृप्त न हो पाई।
एक रोज़ आख़िर छोड़ी वह, ज़्यादा देर नहीं भाई।।
विचरे फिर उद्दण्ड बहुत दिन, अनायास चोली आये।
वहाँ मिले श्री रामरतन जी, दर्शन करते ही भाये।।
बोले हम से कुछ शंका है, हो तो कुछ कहदो हमसे।
बारह गाँव खूंदते हैं हम, उठ कर नित प्रति प्रातः से।।
लेकिन मिलती नहीं शान्ती, शंका है तो यह है बस।
इसी खोज में घूम रहे हैं, मिला न कोई महापुरूष।।
महाराज जी बोले सुनके, अगर बात है इतनी सी।
बांए हाथ का काम हमारे, यह शंका मिट जायेगी।।
हमने थामे चरन उसी दम, तो हम हैं सेवक महाराज।
हमें न जाना और कहीं अब, मन में थी इतनी ही दाझ।।
देकर मंत्र हमें अपनाया, बोले जपो यही इक नाम।
शंका और विशंका का अब, नहीं पास आने का काम।।
बारह वर्ष मजाहिदपुर में, रहे पुजारी सेवा की।
रख कर हाथ हमारे सर पर, त्रुटियाँ अपनी ठीक करी।।
जब मंदिर सम्पूर्ण हो गया, भेज दिया चोली आश्रम।
था स्थान हमारे लायक, रहे फेर चोली में हम।।
काली नद नींचे बहती है, टीले पर आश्रम श्री राज।
महाराज जी हममें रहते, ठीक किये सदगुरू ने काज।।
बाल रूप इक दिन दिखलाया, छटा देख कर वह उनकी।
मानो पाप धुले अपने सब, राह सुधर गइ जीवन की।।

सेवा मिली हमें चोली की, रम गए एक मेक होकर।
सदगुरू सदा पास ही रहते, रखते थे किरपा हमपर।।
कभी अगर जी चला हमारा, इधर उधर हम चले गये।
तो बीमार हुवे हम इकदम, मरने से भी परे हुवे।।
दे मारा करते धरती में, जब मैंने चलना चाहा।
रहना पड़ा वहाँ मजबूरी, थी उनकी ऐसी इच्छा।।
सिद्ध किया हुआ दाना था इक, थी हमपै ऐसी माला।
उस दाने में शक्ति थी इक, रूद्राक्ष की थी माला।।
उसी शक्ति को कुतरू कहता, था मैं अक्सर लोगों में।
कभी गले से बाहर नंहि, रहती थी माला गर्दन में।।
हमने इक साथी को कुतरू, का भय देकर डरा दिया।
फिर इकरोज़ कहा यह उससे, तुझे पता है हम हैं क्या।।
बचके रहिये बेटा हमसे, हम हैं साले गजब खुदा।
उसी रोज़ स्थान पै चोली, महाराज जी आ पहुँचे।।
संग माइयाँ दिल्ली वाली, और कानपुर वाले थे।
बंगला सिर्फ़ झोंपड़ी का इक, और झोंपड़ी में कोठार।
केवल इतना ही छावा था, यही आश्रम का आधार।।
महाराज जी पै वह कुतरू, वाला साथी जा रोया।
धोंस हमें कुतरू की देता, हमको साले समझ ख़ुदा।।
हमे रोज़ कुछ कुछ कह कहकर, बक बक करता रहता है।
कहे तो कुतरू छोड़ूं तुझपै, हमें डराता रहता है।।
तभी बिहारी दास बुलाया, सदगुरू ने उससे पूछा।
हम ने सुना खुदा हो गया तू, बात सत्य है इसकी क्या।।
बड़े क्रोध आवेष में आकर, तभी बिहारी यों बोला।
और ख़ुदा नंहि हैं तो क्या हैं, तुमने कर दिया हमें ख़ुदा।।
महाराज जी बोले हमसे, तो प्रताप निज आसन ठा।
दो दो ख़ुदा एक स्थल में, कभी न रह सकते भइया।।
जब देखा आसन उठता हुआ, घबरा गया बिहारी दास।
चरनों में आ लेटा इकदम, ग़लती हुई हमसे महाराज।।
कल जिव्वा हूँ जीभ हमारी, महाराज बकवाती है।
जीभ के कारन पिटते फिरते, जीभ हमें पिटवाती है।।
ला तो यह माला हमको दे, जिसमें कुतरू लटक रहा।
महाराज जी ने चरनों से, उठते ही यह उसे कहा।।
ज़्यादा तुझे यही तंग करता, कहवाता है यही ख़ुदा।
इक दम बोला तभी बिहारी, इसे तो मैं नंहि दे सकता।।

भाग गया इतनी कहता हुआ, सदगुरू बोले तो अच्छा।
इतना कह ख़ामोश हो गये, भाव रह गया पोशीदा।।
थोड़ी देर बाद ही माइयों, में उट्ठी इक नई उमंग।
महाराज जी आज तो हम, नदिया में न्हांए तुम्हारे संग।।
धाम में ज्यों जमना जल क्रीड़ा, करते हुवे नहाते हैं।
महाराज तय्यार हो लिये, अगर आप यह चाहते हैं।।
पहुचे सभी नदी पै इकदम, साथ बिहारी दास भी था।
घुसे सभी जल में न्हाने को, शुरू हो गई जल क्रीड़ा।।
एक दूसरे पर छींटे दे दे, कर खेल रहा था साथ।
देखें कौन देर तक डुबकी, मारे यों बोले महाराज।।
काली नदी नाम है इसका, जिसमें हो रही यह लीला।
डुबकी मार मार सब उभरे, किन्तु बिहारी जब उभरा।।
मारी चींख़ बिहारी ने हाय, मेरी माला कहाँ गई।
महाराज जी हंस के बोले, उसे आज काली ले गइ।।
हमने मांगी हमें नहीं दी, तुझे पसंद आई काली।
बन गई ख़ुदा आज से काली, तुम बेटे हो गए ख़ाली।।
संग के संग दे दिया तजुर्बा, संग के संग तोली औक़ात।
संग के संग ही प्रगट दिखाया, ख़ुदा कौन है सुंदर साथ।।
जिसने भी जुंविश की सन्मुख, जो भी कोइ बोला उल्टा।
मिनिट नहीं लगती थी उनको, करने में उसको सीधा।।
चोली उठी बिहारी के बल, बहुत की चोली की सेवा।
मंदिर बनने से पहले तक, सिर्फ़ बिहारी टिक पाया।।
लक्षण जो भी महात्माओं में, होते उसमें सारे थे।
शकर कंद गाजर वो लेता, उन्हीं को खा खा दिन काटे।।
हालत बहुत व्रद्ध हो गइ थी, कुछ बीमारी सी आई।
चोली में अपने घर पर ही, सेवा कर रहा इक भाई।।
आश्रम ले गए उसे उठाकर, चोला तजा वहीं उसने।
बड़ के नींचे बनी समाधी, हाथ बटाया सब ही ने।।
हे गुरूदेव दया के सागर, चरन आपके आन पड़े।
महाप्रभू हो साक्षात तुम, आप बिहारी के अपने।।

श्री बशीर उद्दीन पठान मेरठ

कुबूल हो मेरी ख़िदमत, क़दीम ख़ादिम हूँ।
ग़लत फ़हम हूँ बहुत, यों हि आज नादिम हूँ।।
हज़ार हज के बराबर है, तेरा नाम फ़क़त।
यही है हस्तिऐ फ़ानी, यही यहाँ दौलत।।
तलशो यार में फिरते, हज़ारों दीवाने।
कहाँ सहर हो कहाँ शाम, बस ख़ुदा जाने।।
मंज़िलों की कुछ न पूछो, क्या मुक़ामों की सनद।
रास्ते हर एक में है, अपनी उसकी एक हद।।
परवरिश हुई हिन्दुओं में, हिन्दुआनी है ज़मीर।
ज़ात से हूँ मैं मुस्लमां, नाम है मेरा बशीर।।
पैदा हुआ स्वामी पाड़े में, ख़ास मौहोल्ला मेरठ का।
वालिद श्री हवीउल्ला खाँ, एक पठानी हूँ नुत्फ़ा।।
भक्ति भाव पैदायश से है, रंग रंगाया ही उतरा।
दुनियाँ भी कुछ देख चुकाहूँ, देख चुका सब भला बुरा।।
ग्यारह वर्ष आयु में मैंने, गुरू धारण कर डाला एक।
जिसने दी इक मुझे साधना, रैन दिवस कर डाली एक।।
करते रहे निरंतर साधन, जो कुछ भी गुरू ने बख़्शा।
लेकिन हाथ न आया कुछ भी, ग़लत रहा सारा नक़्शा।।
किया न कुछ भी तीस बरस तक, चालिस वर्ष उमर आई।
धारण किया दूसरा मुरशद, कुछ सिद्धी उससे पाई।।
कई देवता सिद्ध किये फिर, भैंरौ दुर्गा औ काली।
हनूमान जी और भवानी, सब से पीछे शंकर जी।।
सिद्ध हुवे उपरोक्त देव गण, बड़े काम निकले इनसे।
मुश्किलात दुनियाँ वालों की, बड़ी बड़ी हल कीं हमने।।
जान सके हम हिन्दुतत्व को, इन्हीं देवताओं द्वारा।
कृपा पात्र हम बने सभी के, छिपा हुआ जाना सारा।।
सदगुरू रातरतन को कैसे, जाना यह बतलाते हैं।
खोज निकल आई क्यों इनकी, किस्सा सत्य सुनाते हैं।।
सोना देवी है निज शिष्या, मेरठ की रहने वाली।
आयू पेंतालिस के लगभग, भजन बहुत करने वाली।।
ऊपर ही ऊपर को उसका, लक्ष चढ़ा करता दिन रात।
प्रश्न किया करती अटपट से, हमसे बनता नहीं जवाब।।

मैं सिद्धों के टोले का था, वह भक्तों के लय वाली।
अपना उसको मेल नहीं था, हमने इकदिन कह डाली।।
सोना तू गुरू और धार ले, अपने बसकी मुक्ति नहीं।
क्यों कि सिद्धियाँ और भक्तियाँ, आपस में संयुक्त नहीं।।
दोनों की हैं बात अलग ही, इससे गुरू और कर तू।
हम से चले न काम तुम्हारा, वक्त गंवावै मत अब यूं।।
तुम्हीं ढ़ँड़कर दो उनको भी, हमें भला कैसे पाऐं।
देखे, सुने, न जाने हमने, कहाँ ढूँड़ने हम जाऐं।।
हमने शिव की जोत उठाई, शिव दीखे तब किया सवाल।
सोना का गुरू कौन बतादो, उनका दो कुछ पता निकाल।।
चकित रह गया सुनकर शिव की, उसके गुरू हैं परमात्मां।
इस प्रकार का उत्तर पाके, तिलमिलाइ मेरी आत्मां।।
प्रश्न किया मेंने फिर शिव से, क्या वे दुनियां में हैं आज।
हाँ हैं ग्राम शेरपुर ब्राह्मण, सदगुरू राम रतन महाराज।।
सोना जहाँ पढ़ाती है अब, जिनके घर में है स्कूल।
है प्रतापसिंह नाम उन्हों का, उनको कर अपने अनुकूल।।
भेट करावें वे सदगुरू से, सोना पहुँचे उनके पास।
महाराज श्री राम रतन के, पास जाँए वे लेकर साथ।।
हमने बतलादी सोना को, सदगुरू तेरे तेरे पास।
जिनके घर स्कूल है तेरा, वहीं मिलेंगे तुझे प्रताप।।
जा बस उन्हें पकड़ले जाके, बना पड़ा है तेरा काम।
ख़ुदा मिले घर बैठे तुझको, कहना अपना उन्हें सलाम।।
सोना क़ा तो काम बना ही, हुआ हमारा भी उद्धार।
रहमत हुई ख़ुदा की गर तो, कभी हमें भी हो दीदार।।
श्री प्रताप सिंह की पत्नी से, जा पूछी सोना ने बात।
ठीक बात है सदगुरू से, मिलवा देंगे वे हाथों हाथ।।
अभी जल्द ही श्री सदगुरू, चलसीने भी आने को हैं।
क्यों कि वहां पर भण्डारा है, मिलवा देंगे वहीं तुम्हें।।
सोना ने प्रतापसिंह जी से, मिलकर पूछी अपनी बात।
हमें मंत्र दिलवादो अपने, श्री सदगुरू से भाई साहब।।
ठीक है चलसीने आ जाना, सदगुरू से मिलवादेंगे।
साथ हमारे जाके क्या लो, हम तो पहले जाऐंगे।।
अतः समय पै पहुँची सोना, सदगुरू के दर्शन पाये।
जो तारीफ़ सुनी सदगुरू की, सचमुच ही वैसे पाये।।
की प्रतापसिंह जी ने बातें, उनसे मेरे बारे में।

तारतम्य देना है इनको, आई शरण तुम्हारे में।।
भेजो इन्हें मजाहिदपुर को, स्वयं उन्होंने बतलाया।
दिवस तीसरे वहीं पहुँचकर, मंत्र तारतम दिलवाया।।
दासी बनी श्री चरणों की, पहुँच गई उनकी सफ़ में।
लेकर के यह धन सदगुरू से, आ पहुँची फिर मेरठ में।।
एक बार सदगुरू मेरठ, पहुँचे तो बता दिया शिव ने।
ठहरे जहाँ वहाँ का रस्ता, तक भी दिखला दिया हमें।।
उसी वक्त सोना देवी को, घर से हमने बुलवाया।
आज खुदा मेरठ आ पहुँचे, शिव से संदेशा आया।।
चल नियाज़ हासिल कर आवें, हम भी चल करके उनका।
बड़ा क़ीमती समय आज है, सोना अपने जीवन का।।
रिक्शा लेकर के हम दोनों, भाग लिये आनन फ़ानन्।
भवन चंदसीना जा पहुँचे, सदगुरू के पाये दर्शन।।
आँखों ने आँखें पहचानी, हैं ख़ुदा बंद ये विश्वेवीस।
बख़शी कुछ रहमत हम को भी, आँखों आँखी दी बख़्शीष।।
शिव ने झूंट नहीं बतलाया, अयाँ हैं सूरत से सरकार।
नहीं ये सूरत दुनियाँ वाली, निकला मुंह से वे अख़्त्यार।।
हमने भी ईमान धर दिया, महाराज के क़दमों में।
जब रूहों के लिये आए तो, छोड़ न जाना आप हमें।।
चलते वक्त कहा हमने यह, हम को भी दो कुछ आशीष।
हाथ धरा शफ़क़त का सर पर, रोज़े क़यामत हो बख़्शीष।।

शान्ती देवी पत्नी सुखबीर सिंह
मुरलीपुर

रस्ते पर क्यों चल पावे वो, जो जीवन में चला नहीं।
मार्ग स्वयं पथ दर्शाता है, लेकिन किरपा बिना नहीं।।
राधा स्वामी मात पिता थे, पैदा हुई पली जिस घर।
अनुयायी थे सब उन ही के, श्रद्धा थी उनकी उनपर।।
मेरा भी मन चला देखकर, तू भी राधा स्वामी बन।
मंत्र इन्हीं से ले लेतू भी, सफल बना अपना जीवन।।
स्वप्न हुआ उस रात मुझे इक, राधा स्वामी गुरू दीखे।
और गुरू हैं लड़की तेरे, मंत्र मिलेगा उन ही से।।
शादी हुई ससुर घर आई, मुरलीपुर मेरठ के पास।
भूली बात मंत्र लेने की, इसके चार साल के बाद।।
आ पहुँची वह पावन बेला, सदगुरू रामरतन महाराज।
मुरलीपुर में आन पधारे, बनने लगे स्वतः ही काज।।
जा पहुँची मैं भी दर्शन को, दर्शन करते ही भाऐ।
मानो अपना मिला आज कोइ, लक्षण साफ़ नज़र आऐ।।
हमने मंत्र ले लिया उनसे, आदेशों पर रक्खा ध्यान।
वस्तु मिली मन चाही हमको, किया आत्मां ने सन्मान।।
सुमरन जाप तारतम का नित, चलता रहा बैठकर घर।
चढ़ते चले भक्ति पथपर हम, नज़र रही गुरू की हमपर।।
एकबार बीमार पड़ी मैं, हुई कांख में कखराली।
तड़पा करती पड़ी खाटपर, ऐसी हालत कर डाली।।
रो रही थी मैं पड़ी एक दिन, कोने से आई आवाज़।
क्यों घर सर पर धर रक्खा है, मानो बोले हों महाराज।।
मुंह से निकल पड़ा मेरे झट, दर्द हमारे है बेढब।
तुम कहते हो क्यों रोती है, हम से पड़ा न जाता अब।।
बोला कौन इधर फिर सोचा, तो इक व्यक्ति नज़र आया।
लिपटी सर चादर मलमल की, खड़ा सामने ही पाया।।
ये तो फूट जाएगी कल को, चुप करके बस अब सो जा।
वो शरीर जो देखा मैंने, इस प्रकार मुझ से बोला।।
उठने भी नंहि पाइ ठीक से, अंतरध्यान हुआ इतने।
कृपा समझ चुप लेट गई मैं, गया दर्द भी शनः शनः।।
नींद आइ निर्द्वन्द रात में, प्रातः फूटी कखराली।

जो कुछ कहा करा वह पूरा, बात नहीं थी कुछ ख़ाली।।
श्रद्धा और बढ़ी सदगुरू पर, और ज़रा ज़्यादा समझा।
भक्ति भाव में समय बढ़ाया, चित से की सेवा पूजा।।
स्वप्न दिया सुबह को इक दिन, दी आवाज़ नाम लेकर।
देखो इधर शान्ती बोले, श्री सदगुरू सन्मुख होकर।।
तू कहती थी कामधेनु नंहि, देखी हमने लख वे हैं।
अच्छी तरह देखले इनको, गऊ लोक की गऊऐं हैं।।
दीखीं फिर तत्काल गोपियें, रूप बड़े सुंदर उनके।
पहने थीं सुंदर आभूषण, थे श्री कृष्ण संग उनके।।
ज़ेवर एक उतारा इक ने, और देना चाहा मुझ को।
तभी एक ने आगे बढ़कर, रोक दिया उस गोपी को।।
अभी वक्त आने दो ठहरो, रूक जाओ कुछ और अभी।
उसने देने दिया न मुझ को, हाथ पकड़ गोपी रोकी।।
जैसे अभी योग्य नंहि हूँ मैं, हो अनधिक्रत चेष्टा ये।
सिर्फ़ देख पाई मैं इतना, नज़्ज़ारे वे अलख हुवे।।
बहुत विचारा उठकर मैंने, क्या लीला जो दिखलाई।
अभी वक्त आने दो ठहरो, क्यों यह बात नज़र आई।।
ग़रज़ न समझा मैंने मतलब, गया बीतता यों ही वक्त।
समय के पग बढ़ते रहते हैं, आता जाता रहता वक्त।।
वक्त वक्त है, कभी न रूकता, सब पै आता है कम्बख़्त।
धाम गमन हो गया प्रभू का, खड़े देखते रह गए भक्त।।
कर न पाए हम सब के सब कुछ, इतने निकले नींच अधम।
रोते फिरते रहते केवल, या उदास रहते थे हम।।
धीरज मानो टूट गया हो, निकल गई हो जैसे जान।
दुनियाँ में फीका पन आया, लोप हुआ सब ज्ञान अज्ञान।।
रस नंहि रहा किसी वस्तू में, लगती हर इक हमको ब्याध।
मंसूबे सब मिले ख़ाक में, रहा न जीवन में कुछ स्वाद।।
रही बहुत दिन यह ही हालत, रहे खोए खोए से हम।
जैसे लुटे पिटे रहते हैं, याद आते रहरह प्रीतम।।
दिये दरश इक रोज़ प्रगट हो, आ गए हम तू रोती थी।
तेरे ही अब रहा करेंगे, रोना मत अब क्या समझी।।
जल्दी से कुछ बना भूक है, पग लेकर मैं दौड़ पड़ी।
न्हाऐंगे भी, मैंने उठकर, सभी व्यवस्था कर डाली।।
न्हिला धुलाकर कुछ खिलवाया, महाराज जी तत्पश्चात्।
अंतरध्यान हुवे आगे से, टूटा ध्यान तभी इक साथ।।

थी मेरी ध्यानस्त अवस्था, पधरौनी को किया प्रणाम।
हुवा मुझे विश्वास उसी क्षण, पधरे हैं घर पर धनिधाम।।
ज्ञात हुआ इक रोज़ और भी, लेटी थी उस कमरे मैं।
जहाँ हमारी सेवा पूजा, पधारा रक्खी है हमने।।
पधरौनी की और पींठ, करके मैं उस दिन लेट गई।
इतनी हमें समझ नंहि थी के, उधर पींठ नंहि की जाती।।
धक्का देकर मुझे हाथ से, करवट पर मजबूर किया।
मैंने पीछे मुड़कर देखा, धक्का किसने मुझे दिया।।
बैठी होती चली आइ जब, कोइ नहीं हमको पाया।
लगी सोचने अपने मन में, श्री राज जी क्या माया।।
नंगी कमर हमारी थी तब, जहाँ हुआ कर का स्पर्श।
जगह बर्फ़ सी ठण्डी थी वह, उठा हमारे में संघर्ष।।
कभी सर्प का फन छूवा हो, शंका बढ़ी हमारे में।
नहीं, हाथ था, कहती आतम, हाथ लगाया प्यारे ने।।
सर्प अगर छूता तो चमड़ी, क्यों होती निज, इतनी सर्द।
अन्य बात कोई नंहि दीखी, ना दीखा कुछ उसमें दर्द।।
समझ आइ बे अदबी की थी, पींठ करी जानिब उनकी।
और नहीं कुछ आइ समझ में, पिया ने सावधान की थी।।
अपने पति सुखबीर सिंह को, कमर छुआकर दिखलाया।
अन्य अस्थान गरम पाये पर, उतना ठण्डा ही पाया।।
उनके स्पर्शन से अपनी, चमड़ी अगर सर्द होती।
छूजाये यदि उनसे आत्माँ, तो जाने क्या गति होगी।।
ज्ञान उसी दिन हुआ प्रभू का, घर पधरे हैं, है निश्चय।
ताक़त मिली जानकर इतनी, दूर हुवे मन के संषय।।
जिससे पुष्टी हुई पूर्णतः, घटना घटी और इक दिन।
भोग लगा रही थी मैं उनका, आँखें बंद करी जिस छिन।।
बाहर पड़ा थाल जाकर के, जब धम से आवाज़ हुई।
बिखरे मिले भोग व्यंजन सब, आतम डार कर खेल गई।।
है गड़बड़ कुछ आज भोग में, जो आगे से फेंक दिया।
मैंने पूछ ताछ की जिसदम, ग्लास मिला उसमें झूंटा।।
लड़की ने मुंह लगा दिया था, जब चरणामृत बाँटा था।
रख आई वो यों ही जाकर, उसने ग्लास न माँजा था।।
स्वयं रसोई की दोबारा, भोग लगाया तत्पश्चात्।
जीम लिया चुपके से फिरतो, हुई न दोबारा कुछ बात।।
पिया यहीं हैं ख़ूब जान गए, रहीं नहीं शंका तिल मात्र।

रखने लगे ध्यान हर विध फिर, देखा करते पात्र कुपात्र।।
पति अपने सुखबीर सिंह भी, उनपर श्रद्धा ले आये।
हर प्रकार से बने उन्हीं के, चरण पिया के अपनाये।।
आश्रित हैं अब सभी उन्हीं के, सब कुछ उनको समझे हैं।
चाहे सर भी पड़े बेचना, हर प्रकार अब उनके हैं।।
दोनों की लो प्रभू वंदना, दोनों की कर वद्ध प्रणाम।
शान्ति और सुखीर सिंह का, सदगुरू मेरे रखना ध्यान।।

श्रीमती अंती बाई सेठानी सहारनपुर

कोइ नहीं दुनियां में ऐसा, जो न चाहता हो कल्यांण।
कोइ नहीं दुनियां में जिसने, खाये न हों प्रेम के बाँण।।
कोइ किसी से कोइ किसी से, प्रेम यहाँ करते आये।
किन्तु चाहिये किससे करना, इसको समझ नहीं पाये।।
है अधिकारी कौन प्रेम का, यह सजता है किसके साथ।
जहाँ बराबर की चोटें हों, होती वहाँ प्रेम की बात।।
मतलब जहाँ प्रेम मत जानो, उसे प्यार का ना दर्जा दो।
लेन देन हो जिसके संग में, उसे प्रेम से मत झाँको।।
हो निष्काम, प्रेम है वो ही, घर बैठे हमको पाया।
बड़े भाग्य शाली हैं हम जो, प्रेम ने हमको अपनाया।।
ब्रज का प्रेम सुना था केवल, ग्रंथों की आवाज़ों में।
पर हमने घर बैठे देखा, अपने ही दरवाज़ों में।।
देखे कृष्ण और ब्रज दोनों, और गोपियों के संग गोप।
लीला भी वैसी ही देखी, लगे गोपियों को आरोप।।
अंती बाई नाम हमारा, खालापार सहारनपुर।
मौक़े बहुत मिला करते हैं, पर यह मौक़ा था अफ़सर।।
भक्ति भाव तो था ही अंदर, दबी राख में जैसे आग।
जब आगे तूफ़ान वेग से, तो अंगारा उट्ठा जाग।।
फिर क्या था सब फूंक फांक के, इकदम सब मैदान किया।
प्रेम अगन का है स्वभाव यह, जिसमें लगी नहीं बख़्शा।।
लगी प्रेम की छींट हमें भी, पर ऐसी व्यापी ज्वाला।
हमें न सूझा अगला पिछला, कहाँ गया घर, घरवाला।।
हमें सहारनपुर ही प्रीतम, छोड़ गये अपना करके।
मंदिर भी स्थापित कर दिया, सदगुरू ने मेरे घर पै।।
मंत्र मिला जिसदम से हमको, मुझ से अलग न दीखे वे।
भाँति पती पत्नी के दोनों, आपस में हम रहते थे।।
मानो एक रूप मुझ में था, एक जगत का करता काम।
दुनियां को बस यही दीखता, मेरा मुझमें आठों याम।।
क्या क्या अंदर बीता करती, बाहर वाले क्या जानें।
अगर ढेट करके कह भी दें, तो यक़ीन क्यों थे आने।।
सदा सदा आना जाना था, महाराज का अपने पास।
बड़ी बड़ी लीला दिखलाते, होते रहते बड़े विलास।।

कहीं नहीं जाती बातन की, ऊपर से सब देखें फेन।
जबाँ कहाँ से लाऊँ वह मैं, जिससे कहूँ ऐन के ऐन।।
हम तो बस परनाम करेंगे, जो पूछेगा अपनी बात।
वे हम में हम उनमें रहते, देख सके तो देख प्रताप।।
रहनी देखो कहनी में क्या, रहनी साफ़ बताती है।
बीतक अपने श्री सदगुरू की, बाहर थोड़े हि आती है।।
बाहर तो बाहर जैसी है, भीतर है भीतर जैसी।
जबाँ बिचारी क्या कह सकती, अंदर है लीला कैसी।।
अपनी लो परनाम साथ जी, और श्री सदगुरू को परनाम।
अंती में बेअंत पधारे, इनका कौन सम्भाले ज्ञान।।

सवित्री है नाम हमारा, अमरनाँथ जी पति मेरे।
अंती बाई सास हमारी, तुलसी राम ससुर मेरे।।
मेरी सास बड़ी भक्त हैं, अंती बाई जिनका नाम।
रहतीं सदा राज सेवा में, हरदम उनको यह ही काम।।
भक्त एक जाता दो आते, तांता सदा लगा रहता।
पधरौनी पर श्री राज की, कथा कीर्तन नित रहता।।
नींचे मंदिर ऊपर रहना, आता रहता नज़रों में।
असर क्यों न हो स्वाभाविक था, आती अपने भी मन में।।
ले लें हम भी मंत्र तारतम, पर पति मेरे नाख़ुश थे।
था विचार में बड़ा फ़ासला, तासे हम मजबूर रहे।।
शैल नाम का लड़का जन्मा, हुवा महीने छः का जब।
पति मेरे बीमार पड़ गये, चक्कर में आई बेढब।।
कहने लगीं औरतें मुझ से, ले ले मंत्र सावित्री मान।
तुझ पै समय विकट है पगली, ज़रा समय की कर पहचान।।
नाज़ुक बात जंची हमको भी, छिपकर कर डाला यह काम।
महाराज जी भी आ पहुँचे, आख़िर लिया गया निज नाम।।
रह गई लाज कृपा से गुरू की, अमर नांथ जी ठीक हुवे।
किन्तु मंत्र की बातें खुल गईं, वे हम पै नाराज़ हुवे।।
बढ़ता चला गया यह झगड़ा, इतना इसको तूल दिया।
पिटने की नौबत आ पहुँची, चर्म सीम पर जा पहुँचा।।
बोल मंत्र के क्या हैं बतला, मार मार पूछा करते।
मौत हुआ खाना पीना सब, छाती पर बैठे रहते।।

बोल मंत्र के क्या हैं बतला, वरना तुझे सँवारूंगा।
जीना चाहे तो सावित्री, बता, नहीं तो मारूँगा।।
बड़े ज़ोर तोले लेने को, भेद, बहुत की गइं मैं तंग।
लेकिन मंत्र नहीं बतलाया, रही झेलती सारे दण्ड।।
गुरू कृपा से भाइ हमारा, लेने मुझको आ पहुँचा।
जन्मा उनके पुत्र वहाँ पर, पति मेरा लाचार हुआ।।
पड़ा भेजना पीहर मुझको, मुश्किल से तय्यार हुआ।
किन्तु भेजकर मयके मुझको, यह कहना आरम्भ किया।।
मैंने तो तलाक़ दे दी अब, सावित्री को छोड़ दिया।
मुझे न लाना उसको वापिस, इस रिश्ते पर थूक दिया।।
हू हू होने लगी सभी में, अपने और परायों में।
मेरे घर भी गई ख़बर यह, सुनी हमारे भाइयों ने।।
करके ज्ञात बात यह सारी, भाइ साहब बोले मेरे।
बुरा कर्म तो किया नहीं कुछ, धोंस भला क्यों हैं देते।।
आते आओ, न आते ना सहि, अपनी है, है अपने पास।
अपनी को हम आप सम्भालें, उत्तर दे दिया उनको साफ़।।
लाला जी निश्चिंत रहो तुम, इसके लायक़ तो हैं हम।
ना जायज़ पर तो हम नंहि थे, अब यह अपनी इसके हम।।
पाँच माह तक पत्र तलक नंहि, पाँच महीने के पीछे।
लाला अमर नाँथ जी इक दिन, लेने मुझको जा पहुँचे।।
बड़ी सफ़ाई दी तबियत की, लेकिन लगा मुझे भय सा।
मैंने कहा भाइ से भइया, मुझे जान का है ख़तरा।।
मेरे साथ ज़्यादती होगी, हो सकता है मरना हो।
मान नहीं सकते मारेंगे, मुझे वहाँ पर मत भेजो।।
काफ़ी चर्चा चली वहाँ यह, मैं इक वक्त भजन पर थी।
महाराज जी दीखे मुझको, बोले मुझ से डरो नहीं।।
वे खटके पर जाओ अपने, मदद करेंगे गुरू महाराज।
अमर नाँथ कुछ नंहि बोलेगा, सावित्री रक्खो विश्वास।।
भेज दिया मुझको उनके संग, जब सदगुरू ने वचन कहे।
किन्तु लगा भय मुझे रेल में, जैसे अब ये मारेंगे।।
फिर सदगुरू का दर्शन पाया, सावधान कर गये मुझे।
हम हैं तेरे साथ बावली, तू काहे को डरती है।।
जाने क्या कल ऐंठी उनकी, अच्छी तरह पहुँच ली घर।
हुआ न झगड़ा फिर आइन्दा, खेंच दिया अंदर अंदर।।
सदगुरू की सदगुरू ही जानें, गये सुधरते सब हालात।

बड़ी बात है गुरू कृपा की, उठा न फिर आइन्दा हाथ।।
शैल बड़ा लड़का जो मेरा, बना गुरू का अनुयायी।
पर दुर्भाग्य पती का कहिये, उनको समझ नहीं आई।।
झुके नहीं सदगुरू के आगे, रहे सागरों पर प्यासे।
ज्ञात नहीं क्यों रहे विमुख ही, खुले न दिल के दरवाज़े।।
धाम गमन हुआ अंति बाइ का, जो थीं अपनी सास सगी।
गया शेरपुर शव मां जी का, उनको वहीं समाधी दी।।
कइ मोटर ट्रक शव यात्रा में, सभी सहारनपुर का साथ।
श्रद्धाँजलि देने संग पहुँचा, जिनकी थी गई उनके पास।।
सदगुरू से बस यही प्रार्थना, अगर हमारी सुनते हों।
कृपा आपकी सब ही पर है, सब ही पर यों ही रक्खो।।
लो प्रणाम सावित्री का पिया, रखना आगे भी निज ध्यान।
आस आपकी पर बैठी हूँ, अपने संग ले जाना धाम।।

श्रीमती कृष्ण कुमारी बत्रा शाहदरा

कैसे रहें सहारे बिन अब, जा आया वह घबराया।
सदगुरू बिना रहे सब बैरंग, हाथ नहीं कुछ भी आया।।
मार और पुचकार रास्ते, दोंनों पी अपनाते हैं।
प्यार और भय दोंनो ही को, अदल बदल हम पाते हैं।।
खेल साहिबी का कोई अब, शेष नहीं रह जाना हैं।
है भी ठीक हमारें हैं यो, हम ही को दिखलाना है।।
जो मर्ज़ी हो करो पिया जी, मज़ा रज़ा में है तेरी।
हस्तक्षेप व्रथा है मेरा, कुछ औक़ात नहीं मेरी।।
दिल्ली हमने सुनी प्रशंशा, बहुत शेरपुर वालों की।
मेले में जाने की ख़ातिर, अनुमति ली घर वालों की।।
पग धरते ही उस भूमि में, अजब अवस्था हो आई।
जब दर्शन करने पहुंची तो, सौम्य मूर्ति बैठी पाई।।
मस्तक लगा चरण से जाकर, जैसे ताक़त नवा रही।
जल्दी झुक चरणों में इनके, जबरन मुझको झुका रही।।
ज्यादा नहीं विचारा केवल, अंतर द्वन्द समझ पाया।
किस भूमीं पर पहुंच गई तू, इतना समझ नही आया।।
मेले मेले वहां रही सत्, संग सुने श्री मुख से जब।
तो चर्चा कुछ लगी अनौखी, हुवा मुझे कुछ शक सा तब।।
मिली द्रष्टि से द्रष्टी जिस दम, और और ही कुछ पाया।
जैसे समझ नहीं पावेगी, इनको मेरे मन आया।।
एक रोज़ सत्संग जारी था, बतलाया पी का स्थान।
दुख के अंदर पावेंगे वे, सुख के अंदर उन्हें न जान।।
सुख्खें की मस्ती में मानव, भूला भूला रहता है।
और दुखों में ध्यान पूर्णतः, प्रीतम ही में जमता है।।
दुख्खों ही में तो उतरी हैं, आत्माऐ उनकी सारी।
अतः वही वे भी पाऐंगे, जहां पड़ीं उनकी प्यारी।।
हमने सुनकर सोचा समझा, बात ठीक हो हमें जंची।
वह दुख कैसे मिल सकता है, मैंने झट उनसे पूछी।।
बोले तुझे चाहिये क्या वह, हां मेरे मुंह से निकली।
बोले खूब सोच ले मन में, बात न कहने कहने की।।
रोती फिरे कभी तू हमको, मैंने फिर भी वही कही।
मौन हुवे सुनकर फिर मेरी, जैसे मन चाही बख़्शी।।

गिरता चला गया उत दिन से, मेरे पति का कारोबार।
आनी शुरू हुई फिर कमियां, अपने ऊपर सभी प्रकार।।
घाटा ही घाटा आता था, जहां हाथ पति ने डाला।
ऐसी किरपा भेजी हम पै, खत्म सभी कुछ कर डाला।।
भूके रहने तक की नौबत, कई बार हमको आई।
हम तो वक्त काट भी लें पर, बच्चों से मैं घबराई।।
उनका रोना और तडफना, हालत और बना देता।
डोल गये राणाँ प्रताप से, सब को दुख्ख डिगा देता।।
चली बहुत दिन तक यह हालत, गई शेरपुर भी इस बीच।
रोने को उनके चरनों में, ले गइ बुरी अवस्था खींच।।
लेकिन थे ताले हाठो पर, क्या बोलू मुंह नहीं पड़ा।
जैसे के आवेष शर्म का, मेरे ऊपर आन चढ़ा।।
अंतर यामी थे वे तो सब, जान रहे थे भीतर की।
पढ़ करके हालत को मेरी, बोले क्या हालत है जी।।
मैं अवाक सी रही देखती, काटो मुझ में ख़ून नहीं।
रोने को जी करता भी था, पर आंखों में बूंद नहीं।।
घबरा गई इधर देखो धन, अपने पास नहीं है कम।
जितनी मरज़ी आए उठाले, देख न सकते रोना हम।।
मैं बोली, क्या धन की ख़ातिर, पास आपके आई हूँ।
कैसे जान लिया के दुख से, पीड़ित हो घबराई हूँ।।
आप चतुर हैं जो जी आए, आप हमें वह कह डालें।
और आपका हाथ न रूकता, जो जी आवै दे डालें।।
मुश्किल तो हम जैसों की है, सुख में सुख ना दुख में चैन।
हम में अदल बदल आता है, रहते आप ऐन के ऐन।।
बड़ी आपकी बात हरिक हैं, है हर तरह हार अपनी।
जितनी मर्ज़ी हो कसवालो, प्रभू आप हमसे कसनी।।
मुस्का कर बोले कर लोगी, गर कुछ तो, कुछ पा लोगी।
धन ही धन सब ओर पड़ा है, दीख गया तो, ठा लोगी।।
लेकिन डरा परीक्षा में जो, वह हताष ही, हो जाता।
सफलताओं तक जना मुश्किल, लक्ष तलक नंहि जा पाता।।
लौट आइ में पुनः शाहदरा, ले प्रीतम से बोल अमोल।
कुछ मुरझाई थी जो दुख में, दीं मालिक ने आंखें खोल।।
थकी कर्ज़ ले लेकर सब से, जिससे लिया न जा पाया।
मजबूरी आ गई सामने, भुकमारी ने अपनाया।।
घर थी सिर्फ़ इकन्नी इकदिन, और नहीं था कुछ सामान।

बच्चे चींख रहे थे भूके, मुश्किल में थी मेरी जान।।
सोचा पाँच रूपैये जाकर, एक मित्र थी जा ले आ।
घंटों चलकर पैदल पहुँची, वहाँ हौसला नहीं पड़ा।।
पति पत्नी में झगड़ा था वहाँ, वातावरण न पाया ठीक।
विवश पड़ा चलना वापिस ही, थोड़ी देर रही नज़दीक।।
लौटी ज्यों की त्यों ही वापिस, बैठ गई चुप से आकर।
एक मांगने वाला बोला, अपनी डयौढ़ी पर आकर।।
माई एक इकन्नी दे दे, भूका हूँ कुछ खाऊंगा।
कई रोज़ का भूका हूँ, खाकर अशीष दे जाऊंगा।।
माँफ़ करो बाबा जी जाओ, घर में नहीं एक पैसा।
बाबा बोला झूँट न बोलो, यह घर नंहि ऐसा वैसा।।
देख तो गुरू गादी के नींचे, एक इकन्नी रक्खी है।
और नहीं तो उसे ही दे दे, वरना तेरी मरज़ी है।।
गुरू गादी के तले इकन्नी, वास्तवो में रक्खी थी।
जिसका हमें पता ही नंहि था, वहाँ पहुँच कर के देखी।।
थी उस वक्त वही घर दौलत, पर उस पर भी नज़र पड़ी।
उसी वक्त ठाकर बाबा को, वह दौलत हमने दे दी।।
वह तो गया मगर मैं दरपर, इसी सोच में खड़ी रही।
एक इकन्नी भी सदगुरू को, इस घर अच्छी नहीं लगी।।
भेज दिया उसको भी लेने, जाओ उसे भी ले आओ।
भूके तो हैं ही पर उनको, भूका और मार आओ।।
इधर हमारे घर बच्चों ने, किया बैठना मौत मुझे।
लगी सोचने किससे माँगू, माँगा देगा कौन मुझे।।
चली निकलकर इसी फ़िकर में, भाग आज क्या करता है।
भूका ही तड़पावेगा या, आज कहीं से भरता है।।
घूंम घाम कइ दरवाज़ों से, लौट रही थी वापिस घर।
एक पाँच का नोट नया सा, देखा पड़ा रास्ते पर।।
माल दूसरे का लेकरके, नहीं किसी ने सुख भोगा।
मैंने देख न छूआ उसको, ना जाने किसका होगा।।
आगे को बढ़ गई देख कर, बढ़ते ही आई आवाज़।
पीछे लौट कहाँ जाती है, नोट पड़ा है तेरे काज।।
डाला है हमने तेरे लिए, जा बच्चों को खिला पिला।
पूरी हुई परिक्षा तेरी, मुंह मांगा यह दुख्ख मिला।।
मैंने कहा सड़क है यह तो, उठा लिया होगा उसको।
बोले नोट हमारा है वह, दीख न सकता औरों को।।

और आज से आठ रोज़ में, सभी मामला होगा ठीक।
दुख के दिन माँगे थे ख़ुद ही, आठ रोज़ में होंए व्यतीत।।
मैं लौटी वापिस सुनकर यह, नोट वहीं मुझ को पाया।
खान पान लेकर घर पहुँची, तब बच्चों को खिलवाया।।
दिन जब आया वही आठवां, तो सुलझी उलझन अपनी।
इतनी दिन की थी मुंह मांगी, ख़त्म हुई शायद कसनी।।
क्यों कि काम में आइ सुगमता, पैसा शुरू हुआ अना।
हो सकता है श्री राज को, हो इस तरह आज़माना।।
दिया पूर्ण संतोष स्वप्न में, आया रतन बाई का भेष।
जिनके अंदर ओत प्रोत हैं, मेरे प्रीतम का आवेष।।
रामरतन और महाप्रभू में, एक मेकता दर्शाई।
ये तो वही पिया हैं अपने, पूरी तरह समझ आई।।
मैं मानव समझी थी जिनको, पाया उनमें मूल सरूप।
आतम ने पहचान लिया अब, ठेठ राज जी का है रूप।।
वचन सुने थे जो कुछ उनसे, पाता है दुख में प्रीतम।
ठीक बात निकली सदगुरू की, एक हुवे परमातम हम।।
निस्संदेह मिला उस दिन से, आतम से आतम का मूल।
हाथ न आये थे जो अब तक, अपने आप हुवे अनुकूल।।
बैठ गये उस दिन से हिय में, हिय पर निज अधिकार हुआ।
मेरे हैं पति देव आत्मपति, अंतस्तल से प्यार हुआ।।
एक बार हम से प्रतापसिंह, मेरठ वालों ने दिल्ली।
किया आग्रह बीतक के लिए, निज बीतक लेनी चाही।।
मना करी हमने प्रतापसिंह, से क्यों जी तुम्हें क्यों दे दें।
अपनी प्राइवेट बातें हैं, किसी और से क्यों कहदें।।
वे बोले मैं श्री सदगुरू की, बीतक कर रहा हूँ ऐकत्र।
लिखी जांएगी इक बीतक में, खोज रहा हूँ यों सर्वत्र।।
घटनाऐं जो घटी आप संग, श्री सदगुरू के ज़रिये से।
उन ही की है हमें ज़रूरत, माँग रहे हैं हम तुमसे।।
ना जी हमें नहीं हैं देनी, निधियाँ हैं वे सदगुरू की।
जितनी छिपें छिपानी हैं वे, हमें उजागर नंहि करनी।।
चले गये परतापसिंह सुन, पुनः न ज़िद की लेने की।
क्यों कि भाँप लीं भावनांए निज, नीयत नहीं है देने की।।
पड़ी सो रही थी घर पर, दो पहरी में दीखा सपना।
महाराज जी आए स्वप्न में, बोले, क्यों री ओ कृष्णा।।
हमने भेजा था प्रताप को, दी हुई है उसे, यही सेवा।

जिन जिन से सम्बंध हमारे, उन उन की बीतक लेना।।
मना करी बीतक की तेंने, तेंने अच्छा नहीं किया।
उसे अंग मेरा ही जानो, करके ना अपमान किया।।
जाओ बुलाकर ख़ुद लाओ अब, बिन बुलाए अब नंहि आवें।
क्षमाँ माँगकर कहना उनसे, आओ जी बीतक लिखवावें।।
अतः सदर बाज़ार गये हम, रहते थे जिस जगह प्रताप।
क्षमाँ माँगकर दिया निमंत्रण, बीतक लेने आवें आप।।
आपके बारे में सदगुरू ने, बता दिया है सारा राज़।
आप मान्यता प्राप्त हैं उनके, खोल गये सब कुछ महाराज।।
दिया समय हमने कृष्णा को, रवीवार को रहना घर।
तभी आंएगे बीतक लेने, आज नहीं हम पै अवसर।।
रवीवार को जब घर पहुँचे, बीतक लेने दिल्ली से।
तो कृष्णा जी दिल्ली पहुँची, साथ साथ अपने पति के।।
कुछ कपड़ा ख़रीदना था उन्हें, जब बजाज़ ने खोला थान।
थान पै में साइकिल लिए दीखा, निकल गई कृष्णा की जान।।
हम बीतक लेने आऐंगे, मिलना हमें आप घर पर।
याद आए वे शब्द उसे फिर, मानो वज्र गिरा सर पर।।
कपड़ा वपड़ा लेना भूली, भाग पड़ी घर को वापिस।
कृष्णा पहुँची अपने घर पर, हम आ गए अपने औफ़िस।।
पहुँचते हि पूछा लड़की से, कोइ आया था क्या घर पर।
बता दिया उसने प्रताप जी, आये थे यहाँ साइकिल पर।।
बहुत रोका पर बैठे नंहि, गये बहुत गुस्सा होकर।
हमें नहीं आना आइन्दा, आना जिसे आए घर पर।।
है फिज़ूल उसके घर आना, जो है इतना ला परवाह।
किस प्रकार ऐसों के संग में, हो सकता है भला निवाह।।
अगले दिन पहुँची मेरे घर, क्षमाँ बहुत माँगी जाके।
भूल गई थी शरमिंदा हूँ, आँख हैं नींची लज्जा से।।
उसी रोज़ संग जाकर हमने, बीतक ली कृष्णा जी की।
बीतक बहुत बड़ी थी उनकी, पर हमने ली थोड़ी सी।।
बातन गये उतरते मालिक, हर प्रकार कृत कृत्य किया।
भला वहाँ दुख कैसे व्यापे, रहते हों जिस ठौर पिया।।
है पी से करवद्ध निवेदन, रहें लगाये यों ही साथ।
अलग न होने दें अपने से, रामरतन आतम के नांथ।।
लो प्रणाम कृष्णा की प्रीतम, प्राँण वल्लभा मैं तेरी।
बही मेहर के सागर में मैं, गुरू द्वार पर ला गेरी।।

श्रीमती रेवती देवी "भगतनी" राड़धना

सब ही में रहती है इच्छा, चाहा करते सब कल्याँण।
प्यासे सब ही यहाँ दरश के, नहीं किसी को पर पहचान।।
सन्मुख होता रहा सभी कुछ, पर कोई नंहि जान सका।
लीला व्यस्त कौन है हम संग, कोई नहीं पहचान सका।।
मुझे रेवती देवी कहते, दबी हुई थी उर में आग।
मौक़ा मिला उखड़ने का अब, सीधा हुवा हमारा भाग।।
हाथ चरन आये सदगुरू के, हुई हमें कुछ कुछ पहचान।
घर अपना सूझा माया में, दान दिया कुछ ऐसा ज्ञान।।
किस प्रकार पहुँची मैं उन तक, जिससे चरन हाथ आये।
यमपुर चित्र देख लिया जिसमें, करनी के फल दिखलाये।।
दहशत लगी देख कर उनको, सोचा हमने हे भगवान।
बड़ा भयंकर है यमपुर तो, कैसे बचे वहाँ से जान।।
किससे मिलें जो रस्ता हमको, बचने का कुछ बतलावे।
जगी एक बेचौनी अंदर, जिससे हम अति घबराये।।
सदगुरू राड़धने में आये, सुनी औरतों ने चर्चा।
भागे फिरे दरश को उनके, लेकिन दर्शन नहीं मिला।।
घेर पँवारों का था जिसमें, ठहरे आख़िर में जाकर।
वहीं झलक सी पाई हमने, उर में चुभे दरश पाकर।।
कभी न फिर दरशन हो पाये, मेरे पति सोहन सिंह का।
कुछ दिन में देहान्त हुआ फिर, तब सदगुरू ने स्वप्न दिया।।
नज़र कुर्सी पर बैठे आये, हमने झुक कर किया प्रणाम।
अपना रूप दिखाकर हमको, हुवे प्रांणधन अंतरध्यान।।
जब चमेलसिंह के घर आये, जाने कैसा दर्श मिला।
लगी आग सी निज आतम में, जैसे कोई ज़हर घुला।।
लोचा करती आतम अंदर, जगते चैन न सोते चैन।
जैसा देखा दर्श वहां पर, दिखते वही ऐन के ऐन।।
हालत रही बहुत दिन ऐसी, काटा जैसे तैसे साल।
उठती रही साल भर यों ही, आतम बीच आग की झाल।।
मंत्र प्राप्त करने मजादपुर, पहुँच गये इक दिन आख़िर।
लोक लाज मर्यादा त्यागी, चरण परवारे आ सदगुरू।।
जिसदम आसन बिछा मंत्र को, अंदर ऐसा लगा हमें।
अंग छु आऐ बैठे जैसे, अनुभव ऐसा हुआ हमें।।

तन से तन जैसे आलंगित, आपस में लिपटे जैसे।
दो तन मात्र देखने के तक के, पर वैसे हम एक लगे।।
रोम रोम रोमाँचित हो गया, आलिंगन उनका पाकर।
घूंघट सा था कुछ अपने मुंह, तिलक लिया जब मस्तक पर।।
मिलीं आँख से आँख हमारी, आँखों के घूंघट उतरे।
हुआ आमना और सामना, सम्बंधी से आज लगे।।
इतनी पैनी नज़र कि आतम, जैसे अंदर बिंध गइ हो।
वे नज़रें दिखती रहती हैं, भूल न सकते हम उनको।।
हर प्रकार अब हुवे उन्हीं के, पासा बदला जीवन का।
आज और कल और निरंतर, अपना रहन सहन बदला।।
छोटे से जीवन में हमने, देखे बहु चरित्र उनके।
वरनन् करूँ कहाँ तक लीला, बलि बलि जाऊँ सदगुरू के।।
मोर मुकुट औ साँवरि सूरत, में दरशन इक बार दिया।
कमी न रहने दी काहे की, जो जब चाहा तभी मिला।।
थी मैं व्यस्त भजन में इक दिन, राड़धने की है यह बात।
जिंदा थे चमेलसिंह तब तक, बीत चुकी थी काफ़ी रात।।
इक आवाज़ कान में आई, साफ़ सुनाई दी मुझ को।
साकुंडल चमेल, बोला कोइ, दीखा नहीं कोइ हमको।।
सुन चमेलसिंह पै मैं पहुँची, बोली मैं उनसे जाके।
आज हमें इक संषय उपजा, साफ़ करो उसको सुनके।।
"साकुंडल चमेल", ध्वनि ऐसी, अपने कानों आज पड़ी।
इधर चमेली बहन हमारी, उधर आप पै नज़र पड़ी।।
साकुँडल आवेष बहन में, क्या मेरी हो सकता है।
कृप्या कुछ स्पष्ट करो यह, किस प्रकार की लीला है।।
इतनी सुन बोले चमेलसिंह, तुम यक़ीन नंहि ला सकती।
वैसे हम बतला सकते हैं, सुनकर मैं उनसे बोली।।
हमको है यक़ीन बतलाओ, बात आपकी मानेंगे।
जब तक बात नहीं खुलने की, भेद ये कैसे जानेंगे।।
कहने लगे हमें मुंशी जी, यह तुमको बतलाते हैं।
आप वासना साकुँडल की, इस चोले में ही समझें।।
छत्रसाल चोले में उनको, दुख का कम आभाष मिला।
अतः दख्ख पाने की ख़ातिर, अंकुर उतरा आज यहाँ।।
बिना दुख्ख पाये मुश्किल है, तजना यह दुख का संसार।
कुछ पहले कुछ पीछे इस विध, मिलना सब को दुख आहार।।
इतनी बात सुनी जब उनकी, समाधान हो गया हमें।

उनकी रहनी देख देख के, बहुत रास्ता मिला हमें।।
सोइ पड़ी थी एक रोज़ मैं, दीखा बड़ा भयंकर नाग।
आकर मुझे लपेटा उसने, लिपट गया जब आधा भाग।।
फन करके मेरे मुंह आगे, कहने लगे सर्प महाराज।
हम से तुम डरती काहे को, या हो तुम हमसे नाराज़।।
बाहों में भर कर फन उसका, मैंने छाती लिपटाया।
मानो मीत मिला हो अपना, हृदय शान्त होता आया।।
झलक लगी उसमें सदगुरू की, छाती लग हो गया विलिन।
सभी रूप श्री सदगुरू के हैं, पहले ही था हमें यक़ीन।।
आतम नाँथ राज राजेश्वर, एक निवेदन है मेरी।
चरनों में रहने देना बस, अगर रेवती है तेरी।।

श्री जगतनरायण मिड्ढा पट्टी कल्यांण

फिरे यहाँ पर सभी भागते, कोइ कहीं तो कोइ कहीं।
कहाँ कहाँ पर टक्कर खाईं, इसकी कुछ तादाद नहीं।।
किन्तु मीत ही मिला न अपना, जिसकी हर दम रही तलाश।
मरते जीते फिरे जगत में, बड़े खाए हमने आघात।।
चीज़ ज़रूरत की ढूंड़ो तुम, कम मिलती है कभी कभी।
ख़त्म ज़रूरत हो जाने पर, अकसर वह पा भी जाती।।
चीज़ एक ऐसी भी होती, सदा ज़रूरत है उसकी।
कभी न मिलती सुनी किसी को, कभी ज़रूरत नहीं मुकी।।
दिल्ली मंदिर गये एक दिन, एक वाक़या वहाँ घटा।
झुका न अपना शीष कहीं भी, किन्तु वहां जाते हि झुका।।
जंच गइ वही हाथ आऐ अब, जिनके लिये परेशाँ हाल।
खाते फिरे ठोकरें जग में, और बिताये अनगिन काल।।
बोल उठी आतम निज इकदम, ठीक विचारा वे ही हैं।
और न कोई हो सकता है, जिसके आगे शीष झुकें।।
श्री राज जी हैं ये इनको, को कहता है रामरतन।
थोड़ी देर छिड़ा भी मेरे, अंदर ऐसा संर्घषण।।
पर तय यही हुआ प्रीतम हैं, चरण लिये उठ बारम्बार।
आतम ने पूछा आतम से, कहाँ रहे अब तक सरकार।।
उत्तर मिला तुम्हीं में तो हैं, किन्तु यहाँ पहचाने कौन।
स्वयं तुम्हारे तक आये हम, लेकिन यहाँ मिले सब मौन।।
है यथार्तता जो फ़रमाई, निस्संदेह यही है बात।
खेल फ़रामोशी का ठहरा, मजबूरी यह भी है नाँथ।।
पार न अंदर रहा ख़ुशी का, अवसर ही ऐसा है वो।
जिस सायत प्यारा मिलता है, बलिहारी उस सायत को।।
वार करूँ दुनियाँ उस क्षण पर, प्रेमी ही जाने यह बात।
प्रेम न कीना सपने तक में, उसको कभी न आवे हाथ।।
मैं देहाती व्यक्ति एक हूँ, रहते सौ झगड़े तकरार।
इक संगीन मुकदमाँ मेरे, साथ लगा वहाँ पर इकबार।।
सभी मौऔज्ज़िज व्यकि गाँव के, मुलज़िम बना दिया मैंने।
दफ़ा एक सौ सात सभी पर, चलवा रक्खी थी मैंने।।
हरिक पंद्रवे दिन पेशी थी, सत्तर व्यक्ति वहाँ जाते।
आने जाने खाने पीने, में ही काफ़ी उठ जाते।।
पूरा गाँव परेशां कर रक्खा था, मैंने इकले ने।

दुश्मन अपने बने सभी वे, था निगाह में सबकी में।।
घटना घटी एक दिन ऐसी, पेशी पै जिस वक्त चला।
लगभग साड़े नौ का टाइम, पानीपत को जाना था।।
रूकवाई मोटर चढ़ने को, रोक रहा जैसे कोई।
नहीं दिया चढ़ने मोटर में, बात अजब की कुछ पाई।।
जिम्मां बहुत बड़ा था मेरा, था मुद्दई मुकदमे का।
बीस मिनिट तक रहा सोचता, अब की मोटर में चलना।।
जब वो रूकी वही फिर हरकत, आख़िर वो भी चली गई।
यके बाद दीगर आती औ, रूकती वहाँ चली जाती।।
साड़े नौ से डेढ़ बजे तक, जैसे कोई लिपट रहा।
जाने नहीं दिया आगे को, इक अजीब संघर्ष रहा।।
मोटर एक और आई औ, उसमें होने लगा सवार।
जगत नरायण जी के जाना, है मुझ को आई आवाज़।।
मोटर के उस तरफ़ पहुँच कर, देखा तो थे श्री महाराज।
चरण लपक कर गहे प्रभू के, भाग जाग गए मानो आज।।
वजह समझ आई के यह थी, भूल गया आवश्यक काम।
इससे बड़ा काम क्या होता, जिसके घर आवें धनिधाम।।
उसे ज़रूरत फिर काहे की, मैं ले करके चला उन्हें।
वृक्ष आम का है जंगल में, जो मेरे है फ़ारम में।।
पधराया उस जगह प्रभू को, घर मेरा इस योग्य न था।
जिसमें पी को बिठा सकूँ मैं, या आराम दिला पाता।।
भली लगी उनको भी वो ही, बड़े प्रफुल्लित रहे वहाँ।
चले गये संध्या तक दिल्ली, ज़्यादा रूकना नहीं हुआ।।
इधर मुक़दमे की पेशी पर, जब उस रोज़ नहीं पहुँचा।
अदम पैरवी में ख़ारिज हो करके, केस हमारा ख़त्म हुआ।।
मुल्ज़िम छूट गये सब उस दिन, सब पै इसका असर पड़ा।
लगे प्रशंषा करने मेरी, और मित्रता भाव बढ़ा।।
खुद ख़ारिज करवाया जैसे, ऐसा उनको ज्ञात हुआ।
बात हमारी चलने लग गइ, गाँव हमारे साथ हुआ।।
बढ़ी प्रतिष्ठा औ मकान भी, बन गए अपने जल्दी ही।
तीन बार फिर वहाँ पधारे, बड़ी कृपा हमको बख़्शी।।
दिन बसंत के पाठ बैठता, जिसपर के आया करते।
भाग हमारे जो पधारकर, झोंपड़ियों में पग धरते।।
श्रीराज राजेश्वार प्रीतम, स्वामी श्री श्री रामरतन।
अंग आपका जगत नरायन, किरपा ही रखना प्रीतम।।

श्री बाबूराम पुः मुरारी लाल पंडित मजादपुर

बाबूराम नाम है अपना, ब्राह्मणों के घर जन्मे।
पिता मुरारी लाल हमारे, हम भी आश्रम जा पहुँचे।।
लगे चिपकने जब चरनों से, होने लगे पिता नाराज़।
दिखलाया काफ़ी भय हमको, अगर गया तो घर से भाग।।
जायदाद में हक़ नंहि देंगे, डर दिखलाने लगे मुझे।
कर देंगे हम घर से बाहर, कुछ भी देंगे नहीं तुझे।।
हमने कहा नहीं कुछ परवा, हक पहुँचे या मत पहुँचे।
किन्तु आश्रम जाना अपना, किसी भाव भी नहीं रूके।।
आते जाते रहे नित्य हम, इल्म सभी था सदगुरू को।
कुछ दिन में पंडित जी मर गए, मिला न हक अपना हमको।।
जायदाद चलदी दूजे को, तब सदगुरू ने की किरपा।
एक शक्ति शाली रखवाला, मेरे सर पर खड़ा किया।।
जायदाद तब नाम हमारे, रखवाले ने करवाई।
सदगुरू की किरपा ने हमको, जायदाद सब दिलवाई।।
थी अटूट श्रद्धा सदगुरू में, बड़ी बड़ी देखी लीला।
नहीं बताया जाता हमसे, जो हमको यहाँ मिला।।
हरिद्वार डोई वाले औ, अन्य बहुत घूमे स्थान।
चमत्कार हर जगह दिखाये, करवाई अपनी पहचान।।
कौन उन्हें साधारण कहता, पूछो इस दिल से आकर।
स्वामी थे श्री राज महाप्रभु, देखा उन्हें दरश पाकर।।
बाबूराम महाप्रभू मेरे, करता बार बार परनाम।
तुम मेरे अनन्य स्वामी हो, दास तुम्हारा मैं धनिधाम।।

108 पारायण महाराज जी द्वारा शेरपुर में

हाथ बटन पै है अक्सर यह, कहते उन्हें सुना होगा।
और रील चालू होगी अब, यह भी बोल उन्हीं का था।।
बड़े अर्थ करती थी उम्मत, बड़ी चली इसपर चर्चा।
लेकिन परदे के पीछे क्या है, यह कभी नहीं सोचा।।
लगी हुई थी खेल कूद में, पूरी की पूरी उम्मत।
हाल ख़ुदा के बंदों का क्या, है बस कोई पूछो मत।।
इक तो शेष समय थोड़ा सा, दूजे पड़ कर करते क्या।
सिवा यहाँ तौहीन कराने, के उनको यहाँ मिलता क्या।।
बाँट गये चलने से पहले, जो भी कुछ था उनके पास।
इक सो आठ पारायण की, बन गई योजना तत्पश्चात्।।
दस सरूप साहिब पधराकर, चालिस दिन तक पाठ चले।
साथी जन हज़ार के लगभग, तीस रोज़ निभकर ठहरे।।
जब मेले के दस दिन रह गए, बढ़ती चली गई संख्या।
टूट पड़ा आलम ही आलम, रहने को नंहि रही जगह।।
क्या गिनती सामान रसद की, हरिक वस्तु थी बे शुम्मार।
घटना घटीं बहुत मेले पर, मुख्य मुख्य लिखता दो चार।।
पधरे थे सरूप मंदिर में, कर रहे थे पाठक गण पाठ।
उसी समय पर निज मंदिर में, जुड़ा कीरतन का भी ठाठ।।
धुनी चल रही थी ऐसी जो, इक कव्वाली की गत है।
बोल रहे मस्ती में सब तेरा, दर ही हमारी जन्नत है।।
मंदिर भरा हुआ बैठा था, लहर आइ ऐसी वहां एक।
आलम बना वहाँ भंगरे का, नाँच उठा उस दम हर एक।।
पाठ बंद से हो गए लगभग, लिया पाठकों ने भी रस।
बड़े द्वार पर कुछ सजनों में, छिड़ी हुई थी एक बहस।।
देख लिये पारायण इनके, देख लिये सब भक्ति भाव।
क्या रक्खा है इन पाठों में, ग़लत पड़ेगा बड़ा प्रभाव।।
बड़ी शान्ती रखनी पड़ती, जहाँ चला करते हैं पाठ।
धर्म किया ऐसो ही ने तो, भ्रष्ट और संग बारह बाट।।
व्यक्ति खड़े थे कौन कौन वहाँ, नाम सुनो उनके सब साथ।
राम किशन आहूजा मेरठ, और कान्ता जी के बाप।।
पन्ना लाल पुजारी पन्ना, इक थे श्री जवाहर लाल।

थे उस समय पुजारी केवल, अब हैं गादी पति करनाल।।
कई और सज्जन थे लेकिन, उनके नाम नहीं हैं ज्ञात।
भजन दास चोली वाले के, कानों में डाली यह बात।।
महाराज जी के तुम तो भई, बड़े पुराने चेले हो।
यह हुड़दंग है या पारायण, क्या यह समझा सकते हो।।
भजन दास को झट प्रतापसिंह, दिख गए आते अपनी ओर।
बस इतनी ही बात पूछनी, है या कुछ आगे भी और।।
तब तक बात बनाई उसने, जब तक़ मैं नंहि पहुँचा पास।
निकट जा लिया जब मैं उनके, भजन दास ने पकड़ा हाथ।।
लो प्रताप जी इनका है कुछ, समाधान करते जाओ।
मैंने उनकी ओर देखकर, पूछा क्या है बतलाओ।।
रामकिशन ने बात शुरू की, अजब ढंग से मेरे साथ।
पारायण येह किस ढंग का है, पूछी थी हमने यह बात।।
खड़क रहा हो ढोल मंजीरा, साथ साथ ठुमका हुड़दंग।
वहाँ पाठ खंडित नंहि होता, होगा क्या, है यह कुछ ढंग।।
क्या महत्व खंडित पाठों का, आप हमें यह बतलाओ।
बस, बस, बस, आगे मत बोलो, पहले तुम ही समझाओ।।
तुमसे कम अक़्ला है क्या वह, करा रहा है जो हुड़दंग।
उसे पता नंहि है क्या इतना, पाठ भी होते होंगे भंग।।
ख़ूब जानता है इसको भी, है यह धर्म विरोधी काम।
किन्तु विचारा क्यों नंहि उसने, क्यों नहीं दिया इधर को ध्यान।।
उसे न परवा धर्म कर्म की, उसे न परवा हुज्जत की।
उसे है परवा फ़कत एक, अपनी प्रिय प्यारी उम्मत की।।
पारायण है सिर्फ़ बहाना, तुम्हें यहाँ तक लाने का।
हम भी कुछ हैं हमें पिछानो, यह है राज़ बुलाने का।।
पाठों का महत्व तब तक है, जब तक होता नहीं मिलाप।
जब पाठों वाला आ बैठा, फिर पाठों की क्या औक़ात।।
अगर भेजने वाले ख़त का, संग संग ख़त के भी आले।
बात करे उससे, या वह ख़त, पढ़ा जाए उससे पहले।।
यह भंगरा हुड़दंग यों हि है, उसको ये पहचान गये।
जिसने यह वाँणी भेजी है, वह ही है यह जान गये।।
मिस्टर तुम भी करो परिश्रम, करो कसौटी इस्तैमाल।
खरा और खोटा पहचानो, किस मंडी का है यह माल।।
दम न मार पाये फिर वे सब, खड़े रहे सुनकर चुप चाप।
समझा समाधान अब हो लिया, फिर क्यों रूकता वहाँ प्रताप।।

वक्ता, वकता, योगी, भोगी, इल्मी, अमली, हंकारी।
अंश, कला, पूरन, सम्पूरन, ब्रह्म और शिव भंडारी।।
सब पहुँचे थे इस मेले पर, संत महात्माँ साध असाध।
सिर्फ़ लालसा यह थी सब की, इनके कर से मिले प्रशाद।।
मुझे ढूँढ़ता हुआ एक, लड़का सहसा मुझ पै पहुँचा।
तुमको सदगुरू बुला रहे हैं, मैं हुजूर पै जब पहुँचा।।
हुक्म दिया सदगुरू ने मुझको, बाहर जाकर के देखो।
कोइ आए हैं, उन्हें जगह और, देख रेख ख़ुद तुम रक्खो।।
किसी तरह की कमी न आवे, बाहर गया हुकम के साथ।
मुख्ख द्वार इक बाला योगी, अंग भभूत रमाये गात।।
कर त्रिशूल कर मंण्डल केवल, तग्गड़ मूंज मूंज लंगोट।
बगल मूंज बटुआ छोटा सा, सर पर बंधा लटा का चोट।।
सोलह साल उमर होगी बस, देखते हि जँचता पुरूषत्व।
क्यों सोंपी मुझ को यह सेवा, समझ गया मैं तभी महत्व।।
करते ही प्रणाम मैं उनको, इक झूंपे पै ले आया।
अनुमति लेकर ठीक रहेगा, उसमें आसन बिछवाया।।
था उसमें पहले भी धूना, उसमें लक्कड़ लगवाये।
सब आवश्यकता पूरी कर, एक हजूरी दे आये।।
की उसको ताकीद अगर कुछ, माँगे लाकर दे देना।
जब तक हम नंहि तुम्हें हटाऐं, तुम्हें यहाँ से नंहि हटना।।
वह दिन ढले हजूरी को ले, शिव सरूप जंगल पहुँचा।
एक भार के निकट भाँग, कटवाकर आश्रम आ पहुँचा।।
पेड़ों से पत्ते सुतवाकर, फिर कुँडी में भाँग घुटी।
निकट सेर भर के होगी वह, जो घुटकर नुक़दी बैठी।।
ढूक रहे चौतरफ़ा भंगड़ी, शायद सब को मिले प्रशाद।
बड़े बड़े अमली जुड़ रहे वहाँ, गिनै उन्हें जब हो इक आध।।
शिव सरूप ने उस नुकदी को, बना बना करके गोले।
भर भर घूंट कमण्डल में से, फिर वे सब गोले सटके।।
थर्रा गये भंगड़ी सारे, देख देख उसकी करतूत।
चर्चा का बन गया विषय वह, प्राँण जाँएगे इसके छूट।।
भाँग तेज़ है इस जंगल की, इतनी खाता पूरा गाँव।
झेल नहीं सकता यह इसको, तुम प्रतापसिंह को बुलवाओ।।
पहुँचा मुझ पै एक आदमी, समाचार यह लेकर के।
मैंने आकर देखा उसको, पूछी उससे आकर के।।
आप ठीक तो हैं भगवन, बतलाओ अब क्या जीमोगे।

हम अपना आहार ले चुके, बस अब हम आनंद हुवे।।
दूध दाध, मिष्टान आदि कुछ, सब को उसने इन्कार।
बैठे रहे रात भर भंगड़ी, उस सरूप के पहरेदार।।
जब जब गया पूछने को मैं, कहो महात्माँ कुछ लाऊँ।
खाने को कुछ खट्टा मीठा, अगर रूची हो मंगवाऊँ।।
नहीं किया स्वीकार अन्य कुछ, चेतन पाया उसी प्रकार।
बैठा रहा समाधी खेंचे, प्रातः तक वह निरआहार।।
शौच आदि से निव्रत होने, के लिए प्रातः जब उट्ठा।
नज़र नज़र ही में अलोप हो, गया पुनः फिर नंहि लौटा।।
महाराज से परिचय पूछा, और कौन होता शिव था।
लेने आया था प्रशाद सो, लेकर के वापिस लौटा।।
विदा हो रहा था जब मेला, दे रहे थे परशाद स्वयं।
महाराज पास विचित्रा, रानी बैठी थी और हम।।
था प्रशाद वालों का जमघट, जमाँ बहुत था सुंदर साथ।
उसी भीड़ में एक व्यक्ति ने, आकर के फैलाया हाथ।।
झोली में प्रशाद लेकर के, उसने फिर मथ्था टेका।
तभी विचित्रा जी की जानिब, महाराज जी ने देखा।।
पहचानो इसे कौन गया यह, थोड़ी दूर किया पीछा।
नज़रों ही नज़रों में इकदम, क्षण में अंतर ध्यान हुआ।।
दी रिपोर्ट वापिस आ करके, हम से तो छिप गया कहीं।
पहचाना नंहि कौन पुरूष था, अपने बसकी बात नहीं।।
अगर आप किरपा करदें तो, परख तभी हो आँखों में।
कौन गया आया मेले में, सभी आपके हाथों में।।
भीड़ हुई ढीली जिसदम कुछ, तब सदगुरू ने दी पहचान।
था बैकुंण्ठ नाँथ यह, विष्णू, इस भव सागर का भगवान।।
इस से पहले राम चंद्र और, हनूमान ले गये प्रशाद।
मुंह बाऐ बाऐ बैठे रह गए हम, सुनकर श्री सदगुरू की बात।।
किसके आगे कहें बात यह, कौन लाए इनपर विश्वास।
झिलती नहीं किसी से भी यह, इसी लिये है चित्त उदास।।
क्या निगुरा क्या सगुरा सारे, बह रहे एक प्रवाह।
पर आतम पति पर आतम की, ठहरी नहीं निगाह।।
देहली का था साथ एक दिन, इस ही मेले की है बात।
दर्शन दिये मुकुट बांधे हुवे, देख रहा था सारा साथ।।
मूल मिलावे के नज़्ज़ारे, मध्य विराजे हुवे हैं आप।
गोलाकार हार तीनों ही, पकड़े हैं हाथों में हाथ।।

बात यही है लादुन्नी में, जिसको कहा गुज्झ का गुज्झ।
ख़ुद की ख़ुद देगा पहचानें, आप करावे अपनी सुद्ध।।
आज बड़ी चर्चा है सब में, अन बोले भी अब बोले।
महाराज पै गर कुछ था तो, भेद स्वयं क्यों नंहि खोले।।
ख़ूब समझ लो और देख लो, खोल रहें हैं ख़ुद को आप।
जो न ज़ात का ना बिरादरी, उसे क्यों दिखलाते यह बात।।
दुनियाँ का दस्तूर यही है, ग़ैरों से होता परदा।
खुलता नहीं और के आगे, इश्क बड़ा नाज़ुक सौदा।।
इश्क सुना है किया नहीं है, इश्क पकड़ता जिसका हाथ।
खंडित होता और से रिस्ता, जुड़ जाता है उसके साथ।।
मिलन आत्माओं का है यह, जीव सृष्टि क्यों कर जाने।
बातन की बारीक बात को, कौन सुने, कैसे माने।।
निमटते हि पारायण से प्रभु, हरिद्वार के लिये चले।
कुछ पन्ना कुछ सोन गिरी के, श्री सदगुरू के साथ चले।।
और बहुत साथी थे संग में, पहले किया गंगा स्नान।
दिया सोन गिर वालों को कुछ, कुछ पन्ना वालों को दान।।

दाता तो आये बहुत पर ऐसा ना आए।
जिनको देनों को कोई झेल तलक ना पाए।।

गुरू पूनम सहारनपुर

गुरू पूनम पर सहारनपुर में, सदगुरू के संग पहुँचा साथ।
पर्व मनाया बड़े चाव से, पूजे सब ने आतम नाँथ।।
सत्संग, भजन, कीर्तन, चर्चा, और ही ढंग की थी इसबार।
बाँटे गये इत्र ज्ञानों के, बिलो बिलोकर प्याऐ सार।।
समाधान ही समाधान था, जिसने भी कर दिया सवाल।
बाँट गये दोनों हाथों से, परमधाम के हीरे लाल।।
ज्यों दिवालिये काटोटे में, निकल गया हो दीवाला।
साहूकार के भरपाये को, जैसे बिका बेच डाला।।
गुरू पूनम से फ़ारिग़ हो जब, चलने को तय्यार हुवे।
तो हम भजन बोलने के लिऐ, बाजा लेकर बैठ गये।।
रोने लगे भजन सुनकर सब, चिर विदायगी हो जैसे।
शब्द बड़े चुटियल पैने थे, गाया गया रूदन लयसे।।
जा रही हो ससुराल दुल्हन ज्यों, इस ढंग के बन गये हालात।
सराबोर भावुकता में सब, बिलख बिलख रो रहा था साथ।।
मानो अब जाके नंहि आना, बिछड़ रहे ज्यों स्थाई।
रो रही थी हर आँख द्वार पर, जिसदम तक रिक्शा आई।।
महाराज भी आँख पूँछते, हुवे चले रिक्शा की ओर।
हरगिज़ भी होतव्यताओं पै, चलता नहीं किसी का ज़ोर।।
रब ही जाने आगे क्या हो, बसकी नहीं किसी के बात।
बैठ बैठ रिक्शाओं में संग, चला श्री सदगुरू के साथ।।
चले मजाहिदपुर को सदगुरू, गुरू पूनम निमटा कर के।
बीतक की तय्यारी करनी, पड़ती थी उन्हें जाकर के।।
अतः मजाहिदपुर में जाकर, बीतक का आरम्भ हुआ।
सुनी ये बीतक जिस जिसने भी, सुनकर श्रोता दंग हुआ।।
थी प्रभाव शाली इतनी जो, आत्माओं के पार गई।
जिस आतम ने पहचाना उन्हें, उसे जान से मार गई।।
कहन अजब ही ढंग का था कुछ, अजब ढंग का समझाना।
लक्ष झलक रहे थे अंतिम से, जैसे आगे नंहि आना।।
बीतक के उपरान्त महाप्रभु, ने तज दिया मजाहिद पुर।
चरण हटे लीला भूमी से, छोड़े लता वृक्ष अंकुर।।
प्यार किया अंदर ही अंदर, अंतिम करी प्रणाम।
शीष झुकाया उस भूमी को, कहा जिसे ब्रज धाम।।

पक कर पात उड़ा डाली से, कहाँ गिरे अब जाए।
किस से जुड़े टूट कर यहाँ से, रिश्ते कौन बताए।।

शेरपुर से श्री पदमावती पुरी यात्रा

गये शेरपुर बीतक करके, पूर्व दशहरे की है बात।
ख़बर पहुँच ली जगह जगह, था जहाँ जहाँ निज साथ।।
चलना हो जिस जिसको पन्ना, समय सुनिश्चित पर आवे।
नाम लिखादे लिस्ट में अपनी, साथ हमारे जो जावे।।
लगे इधर सदगुरू भी अपना, काम धाम निमटाने में।
जिस जिससे जो लेना देना, देने और दिवाने में।।
सर्व प्रथम सदगुरू ने अपना, बक्स किया ख़ाली पहले।
ज़ेवर पैसा जिस जिस का है, हम से वह आकर ले ले।।
बक्स राँध रक्खे हैं अपने, अपनों में क्यों नंहि धरते।
अपनी चीज़ संभालो आके, हम नंहि रक्खेंगे अब से।।
फेंक दिये बहुओं के ज़ेवर, और धरोहर लोगों की।
युगलदास को पैसा सोंपा, ज़ेवर ले गई परकाशी।।
बड़बड़ाए महाराज, धरोहर, युगलदास तू किस किसकी।
कूँचा करता है क्यों जाने, मेरे बक्से में सबकी।।
समझ लिया बक्सा कबाड़ घर, ख़बरदार आइंन्दा से।
रक्खो अपने पास हमें, अब बख़्शो ऐसे झंझट से।।
लेन देन निमटाये सारे, आ पहुँचा सब सुंदर साथ।
अपनी बात वही जानें बस, जिसकी होती है जो बात।।
ताँगा भी आ पहुँचा बाहर, शेष रही करनी परनाम।
पड़ीं नज़र सब पै हसरत की, और नज़र भर देखा घाम।।
की प्रणाम सदगुरू गादी को, और लगाई रज मस्तक।
डबडबाई आँखों से देखा, सदगुरू फ़ोटो एक झलक।।
मुख करके अपनी गादी को, श्री सदगुरू ने नमन किया।
पहुँच गये फिर निज मंदिर में, साष्टाँग परनाम किया।।
परिक्रमाँ लेकर के पहुँचे, जहाँ कोठरी सदगुरू की।
अंदर घुसकर की प्रणाम, चूँमीं चौखट उनके दर की।।
फिर राज भवन चौखट चूँमीं, चूंमीं चबूतरे की पौड़ी।

हर वृक्ष बेल को की प्रणाम, जब चूंमी बाहर की डयौढ़ी।।
तो एक भाई सब देख रहा था, उसने पूछ लिया महाराज।
किस प्रकार की है प्रणाम जो, कर रहे हो तुम आज।।
महिमाँ बहुत बड़ी है इसकी, यह है सदगुरू का स्थान।
किनके का भी मोल न दुनियाँ, श्री सदगुरू हैं बड़े महान।।
मुख्य द्वार की रज को लेकर, मस्तक तिलक लगाया।
सरन दास जी वहीं खड़े थे, फिर उनसे फ़रमाया।।
जल्दी ही हम फिर आ लेगें, कहीं चले मत जाना।
सदगुरू ने मुंह मोड़ लिया, नज़रों से तजा ठिकाना।।
लगे बैठने जब ताँगे में, बली लगी छाती में।
निकली आह एक दम मुंह से, पकड़ा इक साथी ने।।
छाती को मल दल कर थोड़ी, देर बाद बिठलाया।
तभी मौसमी का रस लेकर, सदगुरू को पिलवाया।।
धाम यात्रा का वह जथ्था, ठहरा मेरठ जाके।
कोई हमारे साथ चलेगा, सब से कहा बुलाके।।
कुछ साथी मेरठ से जुड़ गए, कुछ साथी देहाती।
अगले रोज़ पहुँच लिए देहली, पुल बंगस सब साथी।।
राज बख़्श जी के लड़के की, अगले दिन थी शादी।
उसमें आमंत्रित थे सदगुरू, जाकर बात निंभादी।।
मेलाराम भगत के भाई, का भी था तब ब्याह।
पर ख़राब सी थी कुछ तबियत, वह भी दिया निबाह।।
तीजा काम कारख़ाने का, किया महूरत जाके।
जो प्रतापसिंह ने खोला था, ले गए साथ लिवाके।।
वहीं कारख़ाने पर मोटर, हरी किशन ले आया।
महाराज को ले जा करके, कुछ विश्राम कराया।।
होना था कीर्तन रात्री में, पुल बंगस मंदिर में।
अतः काम निमटा प्रताप भी, पहुंच गया रात्री में।।
महफ़िल ऐसी जमी क़यामत, तक वह याद रहेगी।
जो बातें कहडाली उसमें, ज़बाँ न फेर कहेगी।।
कहने को तो सिर्फ़ भजन था, पर सब कुछ कह डाला।
दर्शा दिया भजन में लोगों, भिड़ने को है ताला।।
ताला नींचे ताला ऊपर, ताले पै भी ताला।
ताला भी बिन ताली का जो, कभी न खुलने वाला।।
कहीं लगा ग़ैबी ताला तो, कहीं लगा अज ग़ैबी।
कहीं कहीं ताली ना ताला, ताला कहीं फ़रेबी।।

तालों की क्या गिनती जिनमें, रहता है घरवाला।
प्रीतम हरगिज़ समझ न आवे, जब तक खुले न ताला।।
लौट लौट कर भजन बुला यह, फिर फिर इसे गवाया।
वाह वाह की ख़ुश हो होकर, सदगुरू को अति भाया।।
लेकर के गुलाब दानी, हम पै गुलाब बरसाया।
औ किताब पै छिड़क छिड़क कर, उसका हरफ़ मिटाया।।
हरफ़ देखकर बड़े हंसे, इसके तो मिट गये सारे।
बंद बंद पर इस गाने के, हार गले में डारे।।
हरी किशन अपनी कोठी पै, ले गए प्रातः आके।
था आराम कराना उनको, कोठी पै ले जाके।।
जगह बहुत कम थी पुल बंगस, और साथ था ज़्यादा।
अधिकताई के कारण मौडल, टाउन चला गया आधा।।
सिर्फ़ उसी दिन और ठहरना, प्रातः थी तय्यारी।
था बुख़ार उनको हल्का सा, और न कोइ बीमारी।।
चिट्ठी भेज राजकरनी को, माडल टाउन बुलाया।
दो पहरी में वह भी आ गइ, दर्शन पर्सन पाया।।
साथ हमारे चलो धाम को, कहा राज करनी से।
उत्तर दिया राजकरनी ने, आऊँगी पीछे से।।
तीन बार इन ही शब्दों को, सदगुरू ने दोहराया।
किन्तु समझ में किसी भाइ के, अर्थ न इसका आया।।
कौन धाम की तय्यारी है, कौन धाम है जाना।
बैठे और धाम जाने को, पन्ना धाम बहाना।।
हम सारे पन्ना के भ्रम में, समझ भला क्यों आती।
साफ़ इशारे किये मगर सब, बुद्धू बन गए साथी।।
वक्त घट रहा अपनी गति से, एक रात का डेरा।
मंद मंद गति चला आ रहा, कलुषित मुंही सवेरा।।
नहीं किसी को ज्ञात हाल क्या, प्रातः होगा अपना।
मिंचै आँख हो जाय रात, फिर विनश जाए ये सपना।।
गिरे दर्ग का बुर्ज ब्रज की, काँप उठें दीवारें।
बिंन्दु सिंन्धु से उड़े गगन, तब उट्ठें, हा हा कारें।।
सावधान हे साथ सुबह, भूकम्प है आने वाला।
पता नहीं कैसे बीते, क्या, करेगा ऊपर वाला।।
दोपहरी में हुआ कीर्तन, साथ बहुत वहाँ आया।
महाराज जी ने भी प्रवचन, थोड़ा बहुत सुनाया।।
पहुँचा दो डब्बे लडडू ले, भोग श्री सदगुरू का।

जो प्रताप ने सदगुरू की, ख़ातिर निकाल रक्खा था।।
किये सर्मपित डब्बे जब, वापिस डब्बा पकड़ाया।
हुकुम दिया ख़ुद ही बाँटो तुम, मुझ ही से बंटवाया।।
एक एक देना चाहा तब, मुझे एक ने टोका।
इन्हें चूर लो तब बाँटो, यो पूरा नंहि होने का।।
सदगुरू बोले इक इक बाँटो, मैंने हुकुम बजाया।
सब कुछ में बंट कर भी बच गए, सदगुरू को दे आया।।
सदगुरू ने वह डब्बा बबरू, लड़के को पकड़ाया।
थे लडडू थोड़े, बरकत का, चमत्कार दिखलाया।।
महफ़िल जमी कीर्तन की फिर, दो घंटे तक डट कर के।
भाग लिया औरों ने भी, महराज श्री भी कुछ बोले।।
जमे रहे हरिकिशन भगत भी, जब तक यह सतसंग चला।
अक्सर कम बैठा करते थे, उनको फुरसत कहाँ भला।।
राजनीति की उलझन ठहरी, धर्म नीति को सिर्फ़ प्रणाम।
पास बैठना कैसे हो फिर, सर पर जहाँ काम ही काम।।
पहर तीसरे निमटे हम सब, चला गया दिल्ली का साथ।
तभी राज करनी ने भी की, रेवाड़ी जाने की बात।।
महाराज जी ने फिर टोका, साथ हमारे नंहि चलती।
मना राज करनी की सुनके, बोले तो तेरी मरज़ी।।
हाथ जोड़के सदगुरू बोले, अपनी तो लो धाम प्रणाम।
जब मरज़ी हो आती रहना, अपना समझो काम तमाम।।
अब भी साफ़ साफ़ कह गए पर, द्वर्थक अर्थ उपस्थित था।
बात कहाँ की कह रहे हैं ये, मतलब लगा नहीं इसका।।
गई राज करनी अपने घर, आ गए मुलखराज भाई।
घर ले जाना चाह रहे थे, साथ साथ मोटर आई।।
सदगुरू के संग मुलखराज, परताप और चोली वाला।
कुछ तबियत अच्छी सी नंहि थी, मोटर में बिस्तर डाला।।
बैठाकर जब चले सामने, उनको मुन्ना दीख गया।
रूकवाकर के कार मुझे, श्री सदगुरू ने आदेश दिया।।
देखो प्रताप इस मुन्ना को, मेरे आगे से हटवा दो।
कभी न आवे मेरे आगे, कान पकड़के टरकादो।।
चला जाए यह अभी यहाँ से, मैं उतरा इकदम नींचे।
पाँच चार करें करें से, शब्द पहुँचते ही खींचे।।
लौट जाओ मुरली पुर फ़ौरन्, अपना भला अगर चाहो।
सदगुरू बहुत ख़फ़ा हैं तुझ पै, नहीं गये तो पिट जाओ।।

भगा दिया वापिस मुन्ना को, सदगुरू को आ बतलाया।
कभी न आना फिर आइन्दा, यह भी उसे सुना आया।।
बहुत देर में शान्त हुआ, सदगुरू का बिगड़ा हुआ मिज़ाज।
मुन्ना के लिए जाने क्या क्या, कहते चले गये महाराज।।
मुलखराज के घर पर थोड़ी, देर ही उनको ठहराया।
हरी किशन की कोठी पर ही, मोटर वापिस ले आया।।
करने दो विश्राम रात को, हम सब की यह हुई सलाह।
कल को इन्हें सफ़र करना है, कर देगी फिर थकन तबाह।।
बंद किया सत्संग रात का, प्रातः ही आना जाना।
वह भी भाई सुबह को आवे, जिसको पन्ना जी जाना।।
चले गये सब अप अपने घर, बाहर के सब टिके वहीं।
हम भी गये कारख़ाने को, जब सदगुरू कुछ जंचे सही।।
सो गए बेच बेच ज्यों घोड़े, जैसे सोते करके ब्याह।
कल की किसे ख़बर क्या होवे, पल की मिली न जब यहां थाह।।
घड़ी वक्त की टिक टिक करके, पूरा चक्र घुमा देती।
होनी की बलवान भुजाएं, वक्त खींचकर ला देती।।
कहीं सज रहे होंगे वाहन, विदा कराके लाना है।
बदल रहे हों पौशाकें जिन, पारषदों को आना है।।
तोरन वंदरवार बांध रहे, होंगे उस घर वाले।
सज रहे होंगे द्वार भवन में, हो रहे हों उजियाले।।
छिड़की जा रही होंगी ख़ुश्बू, जिन राहों से जाना।
गा रहे होंगे साज़ वहाँ, स्वागत का मधुर तराना।।
हो रही हों मंगल गायन की, उस घर में तय्यारी।
सजे धरे हों थाल आरती, के जब जाए सवारी।।
तरह तरह की ख़ुशियाँ हो रही, होंगी उस दरवाज़े।
जब दुल्हन पहुँचेगी उस घर, होंगी बड़ी तवाज़े।।
क्यों प्रताप गाता उस घरकी, यहाँ की बात सुना।
कल तू कौन राग गाऐगा, क्या कोई राग चुना।।
यहाँ राग किसने बहकाया, यहाँ रूदन होता है।
यहाँ ख़ुशी का बीज नाश, जिसको देखो रोता है।।
सुबह देख लेना इस घर, जिसदम आँख मिंचेंगी।
कैसा हो कोहराम छातियाँ, कितनी यहाँ पिटेंगी।।
निकल निकल काजल आंखों से, कितने मुंह काले हों।
ऐसा लगे धाम को जैसे, सब जाने वाले हों।।
पर कुछ नंहि सब कुछ नकली है, हर दाना थोथा है।

यह वख्खल मतलब वालों की, मतलब को रोता है।।
यह मानव हैं और धातु के, ऊपर सिर्फ़ मुलम्मा।
परख सभी की कल हो जावे, निकले हरिक निकम्मा।।
दिखलावा ऐसा हो जैसे, इनके साथ मरेगा।
लिखलो मेरी बात इन्हीं की, यह तौहीन करेगा।।
जैसों पै मर मिटे क्या इनसे, इनकी ध्वजा चढ़ेगी।
ऐसों से तो जाए आबरू, रही सही उखड़ेगी।।
उस घर पै भी नज़र डालना, जिसमें जनम लिया था।
जिनके लिये आए औ सब कुछ, जिनके लिये किया था।।
क्या बदला देंगे जाते ही, छिपा नहीं रहने का।
बीतक बढ़ने दो आगे अब, समय नहीं कहने का।।
जितना देखो उतना बोलो, कलकी कल आने पर।
अब की अब कहनी है बाक़ी, सदगुरू के जाने पर।।
जिसने जो कुछ किया हमें तो, रोशन कर जाना है।
कोइ सुनो मत सुनो कलम के, नींचे सब आना है।।
क़लम नहीं कमज़ोर बांण से, बल्के ऊँचा नाता है।
बेवकूफ़ जो तलवारों से, नींचा इसे बताता है।।
गुनहगार पहले हाकिम की, क़लम से फाँसी खाता है।
किन्तु मरण तारीख़ और, जिसपै फाँसी आता है।।
रामचंद्र के हाथों राँवण, एक बार मर पाता है।
पर तुलसी हर वर्ष राम से, रांवण को मरवाता है।।
ख़ैर अभी छोड़ो यह बातें, समय तो आगे आने दो।
इन बातों का अभी वक्त नंहि, बीतक अभी सुनाने दो।।
हरी किशन को सुबह छः बजे, सपना एक दिखाया।
तेरे घर से धाम चलें, सदगुरू ने उसे बताया।।
खुली आँख हरि किशन लाल ने, बहुता अर्थ लगाया।
किन्तु समझ में लुग्गा भर भी, उसके अर्थ न आया।।
दी आवाज़ धर्म पत्नी को, आशा ज़रा उठो तो।
यह सपना दीखा है इसका, अर्थ ज़रा सोचो तो।।
आशा ने भी स्वपन विचारा, पर कुछ सार न पाया।
तब जोड़े का जोड़ा उठकर, महाराज पै आया।।
बैठे हुए नसवार सूंघ रहे, थे उस दम महाराज।
सपना सुना दिया आकर के, यह दीखा है आज।।
मुस्काकर थोड़ा सदगुरू ने, स्वप्न बताकर टाला।
और और बातें कह कह के, उसपर परदा डाला।।

उठा दिया यह कहकर सब को, निमट जाओ न्हाधोकर।
सर पै सफ़र धरा है तुम अब, उठ रहे हो सो सोकर।।
थाल सजाये बैठा था इक, भाई मंत्र लेने को।
उधर कोइ तय्यारी में है, अपने घर जाने को।।
महाराज जिस कमरे में थे, बग़ल और था कमरा।
बुद्धिदास के साथ साथ कुछ, और साथ था ठहरा।।
सिर्फ़ एक घंटा बाक़ी है, खेल ख़ातम होने में।
हाथ रतन जो आया वह, बहुमूल्य रतन खोने में।।
जिसे न छोड़ा आज तलक, लोगों ने कभी अकेला।
सर पर घोर रही उस ही के, आज विदा की बेला।।
कुछ क्षण में हों चीत्कार, हा हा कारों का मेला।
क्या विदायगी देंगे देखो, गुरू को चेली चेला।।
मिटती हुई साँस लिख रही है, बिरहा का इक लेखा।
छोड़ जायगी निष्ठुर जग के, लिये चरण की रेखा।।
दूत विदा के आ पहुँचे, है पल दो पल की देरी।
लेने को है साँस समाधी, थोड़ा हेरा फेरी।।
झंझावात द्वार आ पहुँचे, आए मूर्छा गहरी।
फाटक बंद होंए लोहे के, परदा पड़े सुनहरी।।
कहाँ मरे ये देह पुजारी, छोड़ा इष्ट अकेला।
हलक़ ख़ुश्क अब हुवा जा रहा, दौड़ो चेली चेला।।
आशा और प्रकाशी ने, भग करके उनको देखा।
खिंची पाई चेहरे के ऊपर, ख़ुश्की की सी रेखा।।
दोनों दौड़ीं अर्क़ मौसमी, लेने घर के अंदर।
भजनदास दौड़ा सुनते ही, जहाँ पड़े थे सदगुरू।।
भजन दास को हाथ थमा ख़ुद, मुंह पर चादर खींची।
छिपा लिया मुंह सदा सदा को, प्रभु ने आँखें मींची।।
शोर मचाया भजन दास ने, सदगुरू कैसे हो गए।
किसी डाक्टर को बुलवाओ, क्या सारे ही सो गए।।
हाथ छुआ जिसने भी आकर, वही देख घबराया।
था पड़ौस में एक डाक्टर, फ़ौरन् उसे बुलाया।।
जिसने करके चैकिंग उनका, इतनी बात कही है।
और किसी को दिखलादो, अब कुछ यहाँ नहीं है।।
खड़के टेलीफ़ोन खटाखट, एक गया इक आया।
कई डाक्टर आए चले गए, वहाँ न कुछ भी पाया।।

सदगुरू की दिल्ली से धामगमन यात्रा
शेरपुर समाधि

सुनकर धाम गमन सदगुरू का, हाथ पैर फूले सब के।
टेलीफ़ोन पहुँच गए सब पै, ख़बरें पहुँची घर सब के।।
युगलदास पन्ना में था तब, टैलीग्राम वहाँ पहुँचा।
दिल्ली का सब साथ इकट्ठा, हो कोठी पै जा पहुँचा।।
कई बार पहले भी सदगुरू, हुवे हैं इस बुत से न्यारे।
बात नहीं थी नई कोइ पर, अब के घबरा गए सारे।।
कई कई घंटे शरीर से, अलग रहे सदगुरू महाराज।
किन्तु ग़ज़ब इक कर गए अब कै, दाबा उन्हें बरफ़ में आज।।
निकल गई गरमी शरीर की, नाड़ी के जम गये प्रवाह।
वापिस अब किस पिंण्ड में आवें, कर दिया यह तो पिंण्ड तबाह।।
होनी ही ऐसी थी शायद, देते नहीं किसी को दोष।
होनी की होतव्यताओं में, रहा किसी को भी नंहि होश।।
क्या शुमार हा हा कारों की, क्रंदन और रूदन का क्या।
बिछुड़ रहा जब ऐसा प्यारा, यह तो होता ही होता।।
होकर के तय्यार शेरपुर, की जानिब को चला जलूस।
कभी साथ खुश हो हो जाता, आज है कैसा दिन मनहूस।।
पधरा कर शरीर मोटर में, आए शेर पुर लेकर के।
गाँव गाँव में पहुँची ख़बरें, दौड़ पड़े सब सुनकरके।।
भवन तारतम के बरामदे, में सदगुरू को पधराया।
जहाँ झोंपड़ी थी सदगुरू की, उस छप्पर को हटवाया।।
उसी जगह पर खुदी समाधी, जब चोऐ का जल आया।
चकित हुवे सब उसे देख कर, जल की जगह दूध पाया।।
भर भर कर शीशी चरणामृत, ले गए घर को अपने लोग।
करूं प्रशंषा क्या उस जल की, अति पवित्र अचवन के योग।।
खुद कर पूरी हुई समाधी, युगलदास की थी चर्चा।
बाट जोह रहे थे उस ही की, इतने वह भी आ पहुँचा।।
युगलदास से थोड़ा पहले, पहुँच लिये हम भी आश्रम।।
हमें सूचना मेरठ दी गइ, दिल्ली से आ लिए थे हम।
हम पै घुसा गया नंहि अंदर, मिंच गइ आँखें जाते ही।
कैसे देखूं इन आँखों से, क्या हो दर्शन पाते ही।।
घर का घर था साथ हमारे, आ पहुँचा द्वारे पर साथ।

किन पैरों अब अंदर जाऊँ, कौन सहेगा यह आघात।।
मार रहा था सर डयौढ़ी में, मेहर चंद ने पकड़ा हाथ।
दो ने उठा लिया गोदी में, ले गए सदगुरू तक इस भाँत।।
आई यह आवाज़ भीड़ से, कही न जाने किस किसने।
परसों ऐसा ताला गाया, तालाहि भेड़ दिया इसने।।
जब गुबार कुछ ढीले से हुऐ, मंदी पड़ी हृदय की डाह।
अब क्या करना चाह रहे हैं, उस पै भी कुछ करी निगाह।।
दो गज़ चौड़ा चार था लम्बा, छः फुट के लगभग गहरा।
योग्य समाधी के खोली इक, इस प्रकार का था गडढा।।
उसमें पधरा कर सदगुरू को, मिट्टी से भर देना था।
यह प्रोग्राम सैट था उनका, मुझ को अच्छा नहीं लगा।।
चलसीने वालों से मैंने, राय मिलाई जाकर के।
यह तो कब्र बना रक्खी है, इसे समाधी नंहि कहते।।
दाबोगे शरीर मिट्टी में, क्या ये मिट्टी लायक था।
हम पधरावें पक्की चिनकर, किन्तु किसी ने नहीं सुना।।
युगलदास को भी समझाया, वह भी बह गया उनके साथ।
किये सभी ऐकत्रित हमने, किन्तु न चलने दी यह बात।।
नौकर पेशा कुछ व्यौपारी, सब को हानि लाभ का ध्यान।
मेरी इन बातों पै बिलकुल, दिया एक ने भी नंहि कान।।
कभी न इकले से कुछ होता, एक चना क्या फोड़े भाड़।
अपनी अपनी हाँकी सबने, बहुत देर मारी गई राड़।
आख़िर कार उसी गडढे में, श्री सदगुरू को पधराया।
और नमक से भरदी खोली, मिट्टी देकर निमटाया।।
संध्या के छः बजे समाधी, देकर फ़ारिग़ हुवे तमाम।
न्हाने धोने, खाने पीने, का था फिर उनका प्रोग्राम।।
बड़े गेट की छजली है जो, मैं उसमें जा पड़ा तभी।
वहीं हमारे बच्चे भी थे, मुझे ढूंड़ते फिरे सभी।।
सोच रहा था तीन पिकरमाँ, सदगुरू ने ख़ुद बतलाई।
दो देकर जब निमटे तो यह, बात उन्होंने समझाई।।
फिर देंगे तीजी परकम्मां, धाम गमन जब पहुँची कान।
पीट लिया सिर मेंने अपना, मानो निकल गये हों प्रांण।।
धोका दे गए झूंट बोल गए, बीतक रही अधूरी ही।
हम विश्वास लिये बैठे थे, धारणांए थीं पूरी की।।
बात बिगड़ गइ अब क्या होगा, क्या क़ीमत इस आधी की।
सोच रहा था जाने क्या क्या, मत पूछो अपने जी की।।

इन्हीं ख़यालों की तंद्रा में, दी जाकर मुझको आवाज़।
चमन और जगदीश पहुँच ही, लिये ढूंड़ते मेरे पास।।
बोले मुझ से घंटे भर से, तुम्हें ढूंड़ते फिर रहे हैं।
लोग इकट्ठे हुवे बहुत, झण्डे के नींचे बैठे हैं।।
मैंने पूछा क्या कारण है, उत्तर दिया ट्रस्ट की बात।
सोंपें इन्तज़ाम अब किसको, सोच रहा है सुंदरसाथ।।
तुम से बात अलग है करनी, सोचे बैठे हैं वे अब।
तुम अपना विचार बतलादो, तुम्हें बुला रहे हैं वे सब।।
उतरा ख़ून आँख में मेरी, ऐसा तो मत करो करम।
अभी लाश संगवाकर आये, दुनियाँ की तो करो शरम।।
पड़ने लगीं माल पर नज़रें, किसको कहते हो तुम ट्रस्ट।
तेरह दिन वह भी चुप रहता, जो बिलकुल ही होता भ्रष्ट।।
सगे भाइ जब उनके बैठे, और किसे हक़ है इसका।
ट्रस्ट अधिक है सगे भाई से, यहाँ न छेड़ो यह किस्सा।।
चमन और जगदीश लिवाकर, ले गए मुझ को मीटिंग में।
मेंने जाते ही कहडाली, उचित नहीं यह बात तुम्हें।।
बुद्धि दास जी को क़ानूनन्, हक है भाई के पश्चात्।
अतः इन्हें चादर उढ़वाने, की ही करें आप अब बात।।
और यहाँ कुछ नहीं चलेगा, सदगुरू ख़ुद थे सख़्त खिलाफ़।
उनके घण्टे भर पीछे ही, यह क्या करने बैठे आप।।
जो कुछ अक़्ल हमें थी कहदी, और लगे जो तुमको ठीक।
बड़े शौक से करें आप, पर हम उसमें नंहि होंए शरीक।।
मैं उठ आया इतनी कहकर, बैठे छोड़े वहीं तमाम।
वहीं बंद हो गईं वे बातें, फिर न ट्रस्ट का आया नाम।।
प्रातः सबने बुद्धि दास जी, को चादर उढ़वादी।
ताली कुंजी सभी जगह की, उनके हाथ थमादी।।
तत्पश्चात् साथ सब का सब, हुआ विसर्जित आश्रम से।
कथा ख़तम श्री रामरतन की, निमट गये परमातम से।।
बजकर सात मिनिट पेंतिसपर, श्री सदगुरू ने तजा शरीर।
धाम गमन हो गया पिंण्ड से, फोड़ गये सब की तक़दीर।।
दिन सोमवार शुक्ल की सातें, और महीना कहा असौज।
सम्वत दो हज़ार इक्किस की, प्रातः धाम गमन का रोज़।।
जनम चौथ में गमन सप्तमी, जनम गमन प्रातः दोनों।
आए सुबह को गये सुबह को, हैं संयोग अजब दोनों।।
सत्तर बरस पिण्ड सदगुरू का, रहा ब्रह्म मुनियों के साथ।

हे श्रीमती रतन की आतम, नत्मस्तक है तुम्हें "प्रताप"।।
क्षमाँ चाहता हूँ यदि कोई, अनायास हो गई हो भूल।
अंतिम भेट है मेरे मालिक, स्वीकारो निज आतम फूल।।

— दो परिक्रमा समाप्त —

नेति नेति

प्रतापसिंह रचित
मेरठ